गुप्त-स्मारक-ग्रन्थके सम्पादक

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी

यज्ञारंभ

चौबीस वर्ष पहलेकी बात है। सन् १९२६ की दूसरी फरवरी थी। 'कलकत्ता-समाचार' के स्थानान्तरित होनेके बाद उसके नव पर्य्याय "हिन्दू-संसार"-कार्यालय, नया बाजार दिल्लीमें कुछ साहित्यिक महानुभाव अनायास ही एकत्र हो गये थे। उस दिन हम दोनोंके अतिरिक्त वहाँ पण्डित राधाकृष्णजी मिश्र, साहित्याचार्य पण्डित पद्मसिंहजी शर्मा और 'प्रतिभा'-सम्पादक पण्डित ज्वालादत्तजी शर्मा आदि भी उपस्थित थे। स्वर्गीय साहित्य-सेवियोंकी स्मृति-रक्षा-विषयक चर्चा चल पड़ी। इस प्रसङ्गको पण्डित पद्मसिंहजी शर्माने प्रारंभ किया था। वे साहित्य-सेवियोंकी कीर्त्ति-रक्षाके उत्कट अभिलाषी थे और इस पवित्र-श्राद्ध कार्यकी उपेक्षाको कृतघ्नताके नामसे पुकारते थे। उन्होंने इस सम्बन्धमें बड़े दुःखके साथ उस दिन हिन्दी-जगत्के उपेक्षा-भाव पर अपने विचार प्रकट किये थे। सहृदय शर्माजीके अन्तस्तलसे निकले हुए शब्दोंने हमलोगोंके हृदयमें घर कर लिया और हम दोनोंने यथाशक्ति पृथक् पृथक् अपनी सुविधा तथा अवकाशके अनुसार इस दिशामें कुछ कार्य भी किया। कई स्वर्गीय साहित्य-सेवियोंके संस्मरण लिखे और लिखवाये गये और उनकी कृतियोंको प्रकाशित करनेकी आयोजना की गई।

यह बात खेदपूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि यह सत्कार्य अधिक अग्रसर नहीं हो सका। साहित्यिक केन्द्रोंसे दूर और सैकड़ों मीलके अन्तरपर रहनेके कारण हम दोनोंका मिलना भी इस बीचमें दो-तीन बारसे अधिक न हो सका। हमें इस बातका पश्चात्ताप है कि इस पवित्र कार्यको हमने विधिवत् इससे पूर्व आरम्भ नहीं किया।

आज हिन्दी पत्रकार-जगत्‌के एक प्रधान स्तम्भ स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तके स्मृति-रक्षार्थ इस यज्ञको प्रारंभ करते हुए हमें स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी शर्मा और पण्डित राधाकृष्णजी मिश्रका स्मरण हो रहा है।

राजनीतिक क्षेत्रमें हम दोनोंका किसी दल विशेषसे सम्बन्ध नहीं और इस पुण्य कार्यको हम शुद्ध श्राद्ध-भावनासेही हाथमें ले रहे हैं। अपनी साधन-हीनतासे हमलोग परिचित हैं और यह भी जानते हैं कि, श्राद्ध-भावनाका हमारे यहाँ प्रायः लोप हो रहा है। हमलोग अपनी प्राचीन संस्कृतिका अभिमान तो बहुत करते हैं, पर उस पर ध्यान कम देते हैं और उसके लिये स्वयं कुछ करनेको तैयार नहीं होते। वास्तवमें साहित्य-सेवियोंकी कीर्त्ति-रक्षा करना तो पाश्चात्य महानुभाव जानते हैं और उनसे हमें बहुत कुछ सीखना है। कई वर्ष पहले मद्रासके 'हिन्दू' में अमेरीकाके शेक्सपियर-संग्रहालयका वृत्तान्त छपा था। आजसे साठ वर्ष पूर्व हेनरी क्ले फोल्जर नामक एक सज्जनने शेक्सपियरके विषयमें मसाला संग्रह करना आरंभ किया था और आज उनके संग्रहालयके आकार तथा मूल्यका आप अनुमान कर सकते हैं ?

इस संग्रहालयके लिये भूमि खरीदनेमें और उसपर विशाल भवन बनवानेमें ४ लाख पौंड—यानी ५५ लाख रुपये खर्च हुए हैं। संग्रहालयकी चीजोंका मूल्य दस लाख पौंड (यानी दो करोड़ साठ लाख रुपये) संग्रहालयके खर्च के लिये अलग जमा करा दिये गये हैं। इस संग्रहालयमें शेक्सपियर तथा उनके समकालीन लेखकों तथा कवियोंके विषयमें जितना भी मसाला इकट्ठा किया जा सकता था, किया गया है।

इस संग्रहालयकी नींव कैसे पड़ी ? सन् १८६४ ई० में अमरीकामें शेक्सपियरकी त्रिशताब्दी मनाई गई थी। उस अवसरपर सुप्रसिद्ध दार्शनिक लेखक एमर्सनने उनके विषयमें एक निबन्ध पढ़ा था। उस निबन्धका एक अंश फोल्जर (Folger) नामक एक साहित्य-प्रेमी विद्यार्थीने कहीं पढ़ा और उसके हृदयमें शेक्सपियरके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। उस विद्यार्थीकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। वह

शेक्सपियरका भक्त वन गया। सन् १८८५ ई० में फोल्जरने विवाह किया और सौभाग्यसे उनकी पत्नी भी शेक्सपियरकी भक्त निकली। उस दम्पतिने अपने अवकाशके समयका मुख्य भाग शेक्सपियरके लिये अर्पित कर दिया और इसीका सुफल हुआ—उपर्युक्त संग्रहालय।

जरा अनुमान तो कीजिये ५२ लाख रुपयेका विशाल भवन और उसमें एक करोड़ तीस लाखकी चीजें और उसके संचालनके निमित्त दो करोड़ साठ लाखकी स्थायी निधि! इस प्रकार शेक्सपियरका सच्चा श्राद्ध तो फोल्जर-दम्पतिने ही किया। इसके अतिरिक्त अमेरिकामें लिंकनके कितने ही संग्रहालय हैं। आलिवर आर० बेरट नामक एक सज्जनने १५ वर्षकी उम्रमें अपने लिंकन संग्रहालयका कार्य प्रारम्भ किया था और अपने जीवनके ३५ वर्ष उसी कार्यके लिये अर्पित कर दिये। बेरटने बीसियों स्थानोंकी खाक छानी और सैकड़ों स्त्री पुरुषोंसे जो कि लिंकनसे परिचित थे, हजारों चिट्ठियाँ इकट्ठी कीं। लिंकनके संस्मरणों और चित्रोंको इकट्ठा करनेमें बेरटने अपने जीवनके अनेक बहुमूल्य वर्ष व्यतीत कर दिये और इस प्रकार अपने आपको भी अमर कर लिया।

दूसरे सज्जन फ्रेडरिक एच० मेजर्सने लिंकन विषयक दो लाख फोटोग्राफ इकट्ठे किये। डेनियल फिस नामक तीसरे सज्जनने अनुसंधान करके १९०६ में एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें लिंकन विषयक २०८० पुस्तकों और पुस्तिकाओंके नाम और पते लिखे थे। सन् १९२५ में ओक्लीफ नामक चौथे सज्जनने इनमें १६०० पुस्तक-पुस्तिकाओंके नाम और जोड़ दिये और अब एक पाँचवें सज्जनने सैकड़ों नवीन पुस्तक-पुस्तिकाओंके नाम तलाश कर लिये हैं। इस प्रकार अब्राहम लिंकनके अनेक संग्रहालय आज अमेरिकामें विद्यमान हैं।

ये सब संग्रहालय काफी दूरके हैं, किन्तु वंगीय साहित्य परिषद्का उदाहरण तो हमारे सामने कलकत्तेमें ही विद्यमान है। क्या यह हमारे लिये असम्भव है कि हमलोग कलकत्तेमेंही 'हिन्दी-भवन' की स्थापना

कर उसमें हिन्दी पत्रोंके साथ-साथ हिन्दी-साहित्य और साहित्य-सेवियोंके विवरण संग्रह करें ? हमारा अखिल भारतीय संग्रहालय तो हिन्दी साहित्य सम्मेलनमें है ही, पर उसके पूरक संग्रहालय प्रत्येक जनपदमें होने ही चाहियें। चूँकि हिन्दीके प्रथम पत्र 'उदंतमार्त्तण्ड' का प्रकाशन सन् १८२६ में कलकत्तेसेही हुआ था और हिन्दी पत्रकार-कलाकी दृष्टिसे कलकत्ता अब भी समस्त भारतमें अग्रगण्य है, इसलिये हिन्दी पत्र-संग्रहालयकी स्थापना इसी महानगरीमें होनी चाहिये। श्रीजुगल-किशोर शुक्ल 'उदंत मार्त्तण्ड'-सम्पादकसे आरंभकर स्वर्गीय पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र, पं० सदानन्द मिश्र, पं० रुद्रदत्त शर्मा, पं० गोविन्द नारायण मिश्र, पं० हरमुकुन्द शास्त्री, पं० देवीसहाय शर्मा, पं० अमृत-लाल चक्रवर्ती, पं० माधवप्रसाद मिश्र, पं० प्रभुदयाल पांडे, बाबू हरिकृष्ण जौहर, पं० सदानन्द शुक्ल, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पं० नन्दकुमार-देव शर्मा, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा, कुँवर गणेशसिंह भदोरिया और मुन्शी नवजादिकलाल इत्यादिका कर्मक्षेत्र यही कलकत्ता है।

यहीं बाबू बालमुकुन्द गुप्तने 'हिन्दी बंगवासी' और 'भारतमित्र'के संपादकीय आसनपर क्रमानुसार समासीन होकर हिंदी पत्रकारिताको गौर-वान्वित किया था। गुप्तजीकी गणना हिन्दीके आचाय उन्नायकों और उसकी सरल-सुबोध शैलीके निर्धारकोंमें की जाती है। उनकी मृत्युके ठीक ४३ वर्ष पश्चात् संस्मरण और श्रद्धाञ्जलि-समन्वित उनका यह जीवन परि-चयात्मक "स्मारक-ग्रन्थ" बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावलीके साथ प्रकाशित हो रहा है और उस स्थितिमें प्रकाशित होरहा है, जब एक-एक करके लगभग उनके सभी सहयोगी, मित्र और बन्धु परलोकके पथिक बन चुके, उनका जीवन-सर्वस्व "भारतमित्र" भी दुर्भाग्यवश अपना अस्तित्व खो चुका। दुःखकी बात यह है कि बहुत प्रयत्न करने पर भी हम 'भारतमित्र'की पुराना फाइलें, जिनमें स्वर्गीय गुप्तजीके महत्त्वपूर्ण जीवन-की साहित्य-साधनाका इतिहास और उस समयकी देशकी राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति एवं प्रगतिका पूरा वर्णन था, प्राप्त न

कर सके। भारतमित्रकी पुरानी फाइलोंके साथ-साथ सन् १८६६ से १६०७ तक गुप्तजीसे सम्पर्क रखनेवाले साहित्य-सेवियोंके पत्राचारकी फाइलें भी जो गुप्तजीकी थीं, और एक धरोहरकी तरह 'भारतमित्र' कार्यालयमें ही रह गई थीं, उपलब्ध न हो सकीं। खोजमें इधर-उधर भटकने और पुराने साहित्य-सेवियोंके उत्तराधिकारियों तक पहुँचने, आदिमें हमने कोई त्रुटि नहीं रक्खी। इस कार्यके लिये हमारे आह्वानपर बाबू नवलकिशोरजी और उनके कनिष्ठ सहोदर श्रीपरमेश्वरीलाल गुप्त अपने व्यापारिक और पारिवारिक कार्यों को छोड़कर साथ हो लिये, किन्तु इतना श्रम और व्यय स्वीकार करनेपर भी 'भारतमित्र' की पुरानी फाइलें और गुप्तजीकी ओरसे उनके मित्रोंके नाम समय-समय पर भेजे हुए पत्रोंके संग्रहकी अमूल्य निधि प्राप्त न हो सकी!

स्वर्गीय गुप्तजीकी जीवनी आदिका लेखन, सङ्कलन और सम्पादन करनेके यथार्थ अधिकारी थे, प्रसिद्ध हास्यरसावतार पण्डित जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदी और बाबू महावीरप्रसाद गहमरी। चतुर्वेदीजी, गुप्तजीके घनिष्ठ मित्र थे। गुप्तजीका प्रोत्साहन पाकर ही वे हिन्दी-सेवामें विशेष रूपसे प्रवृत्त हुए थे और गहमरीजीने सहकारीकी हैसियतसे प्रायः आठ वर्ष इनके साथ रहकर अपने पत्रकारिता-ज्ञानको परिपक्व एवं परिपुष्ट किया था। हमें स्मरण है, गुप्तजीके निधनके अनंतर ही पण्डित जगन्नाथप्रसादजीने गुप्तजीकी बड़ी जीवनी लिखनेका विचार भी प्रकट किया था; किन्तु उनका वह विचार पूर्ण नहीं हुआ। आज यदि वे या गहमरीजी होते, तो उन्हीके द्वारा यह कार्य सम्पन्न होता और इससे कहीं उत्तम ढङ्गपर होता।

'भारतमित्र'में प्रकाशित कतिपय लेखोंकी कतरनें और स्वर्गीय गुप्तजीकी कुछ डायरियाँ भी, जो सिलसिलेवार नहीं हैं, बाबू नवल-किशोरजीने अपने पास सयत्न रख छोड़ी थीं। इनके अतिरिक्त गुप्तजीके हिन्दी-सेवा अपनानेके प्रारंभिक समयके मित्रोंकी कुछ चिट्ठियाँ भी उन्हींके घरपर गुड़ियानोंमें सुरक्षित थीं। ये सब चीजें उन्होंने

उपयोगार्थ हमें दी। इसी सामग्रीके आधारपर हमारा यह प्रयत्न है।

वृथा विस्तार न कर ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे स्वर्गीय गुप्तजीके लेखों तथा दैनिन्दिनीके उद्धरणोंके अतिरिक्त गुप्तजीके मित्रोंके पत्रोंके सहारे ही हमने संक्षेपमें उनके जीवनके प्रसङ्गोंकी कड़ियाँ जोड़ी हैं। वस्तुतः गुप्तजीके गुणानुस्मरणमें लिखित संस्मरण और श्रद्धाञ्जलि-प्रकरणके लेख ही उनके जीवनकी झाँकियाँ हैं। हमने अधिकारियों द्वारा लिखे हुए परिमित लेख देनेकाही ध्यान रक्खा। वैसे हिन्दीके उस प्रणम्य-पुजारी, देशभक्त सम्पादक, आर्य-संस्कृतिके समर्थक एवं श्रेष्ठ समालोचक गुप्तजीके प्रति अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करनेका कर्त्तव्य और अधिकार तो हिन्दी-साहित्यके सभी उपासकोंका है। यहाँ यह कहना भी अप्रासङ्गिक न होगा, कि स्वर्गीय गुप्तजी और उनकी साहित्य-सेवासे सुपरिचित अथवा उनके लेखों तथा कविताओंका स्वारस्य लेनेवाले कतिपय महानुभावोंसे ही लेख प्राप्तिके लिये हम प्रार्थी हुए थे। तदनुसार जिन सज्जनोंने अपने लेख भेजनेकी अनुकम्पा की है, उनके हम हृदयसे आभारी हैं।

गुप्त-निबन्धावलीके लिये लेखोंका निर्वाचन हमने सम्पादकाचार्य पण्डित अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयीकी सहायतासे किया है। उस समय वे कलकत्तेमें ही अवस्थान कर रहे थे। 'निबंधावली' और 'स्मारक-ग्रन्थ'के सम्पादनमें हमें श्री मोहनसिंह सेंगरसे पूर्ण सहयोग मिला है। हमारे परामर्शदाता रहे हैं – श्री ज्वालादत्त शर्मा, श्री श्रीराम शर्मा, श्री हरिशङ्कर शर्मा, प्रो० श्री ललितप्रसाद सुकुल, श्री मौलिचन्द्र शर्मा, श्री० महादेवसिंह शर्मा, और प्रो० श्री०कन्हैयालाल सहल इत्यादि। अपने इन सभी कृपालु मित्रोंके प्रति हम अपनी आन्तरिक कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं। यहाँ स्वर्गीय गुप्तजीके सुपुत्र श्री नवलकिशोरजी और उनके सुयोग्य कनिष्ठ श्री परमेश्वरीलाल एवं श्री० बंशीधर गुप्तकी पितृभक्तिका उल्लेख किये बिना हम नहीं रह सकते। हमारे गुप्त-बन्धुओंने स्वर्गीय

गुप्तजीकी स्मृति-रक्षाके शुभानुष्ठानमें उनकी अमर रचनाओंके साथ 'स्मारक-ग्रन्थादि'के प्रकाशनका ही नहीं, अपितु बालमुकुन्द गुप्त-स्मृति-महोत्सवका भी समस्त व्यय-भार-वहन करनेका धन्यवादार्ह उत्साह दिखाया है।

आशा है, स्वर्गीय गुप्तजीकी पुण्य-स्मृतिमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन-के कर्णधार, हिन्दी-हितैषी और अखिल भारतीय कांग्रेसके सभापति राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडनकी अध्यक्षतामें अनुष्ठित यह साहित्यिक श्राद्धायोजन हिन्दी-साहित्य-संसारमें एक अनुकरणीय परम्परा बनकर कितने ही विस्मृत स्वर्गीय साहित्यिकोंकी स्मृति-रक्षा करनेमें सहायक होगा।

अपनी त्रुटियोंके लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

स्वर्गीय गुप्तजीकी ४३ वीं पुण्य तिथि,
श्राद्ध-पक्ष, २००७ वि०

विनयावनत
झाबरमल्ल शर्मा
बनारसीदास चतुर्वेदी

क्षमा-याचना

'गुप्त-निबन्धावली' और 'स्मारक-ग्रन्थ'—दोनोंमें ही यत्र-तत्र मुद्रण-दोष और प्रूफ सम्बन्धी गलतियाँ रह जानेका हमें दुःख है। प्रूफ-संशोधकोंकी अनवधानतासे कुछ भूलें रह गई हैं। 'व' 'ब' के भेदका भी कहीं-कहीं ध्यान नहीं रक्खा गया। ३६७ पृष्ठकी ५ वीं पंक्तिमें "हिन्दीकी यान" को "हिन्दीका यान" पढ़ना चाहिये। १६ वें पृष्ठकी ३४ वीं पंक्तिके कुछ अक्षर भी छपते समय उखड़ गये हैं। इन सब दोषोंके लिये भी हम सखेद क्षमा-याचना करते हैं। —सम्पादक

श्रीः

आत्म-निवेदन

संवत् १९६४ भाद्रशुक्ला ११, ता० १८ सितम्बर, १९०७ को मेरे पूज्नीय पिता भारतमित्र-सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका स्वर्गवास दिल्लीमें हुआ। कई महीनों लगातार बीमारी भोगनेके बाद उनका शरीर इतना दुर्बल हो गया था कि चिकित्सकोंने तुरन्त जलवायु परिवर्तनकी सलाह दी। इसलिये वे कलकत्तेके निकटवर्ती स्वास्थ्यप्रद स्थान जेसिडीह (देवघर) चले गये। किन्तु वहाँ भी तबीयत नहीं सँभली। उस हालतमें उन्होंने अपने जन्मस्थान गुड़ियानी जानेकी इच्छा प्रकट की और उनकी आज्ञाके अनुसार मैं उन्हें अपने घर ले जा रहा था। दिल्लीमें मेरे मामाजीने हमलोगोंको ठहरा लिया और वहीं एक नामी हकीमका यूनानी इलाज शुरू हुआ। परन्तु पाँच-सात दिन बाद ही बीमारीने बढ़कर उनके जीवनको समाप्त कर दिया। पिताजीकी मृत्युसे हमारे परिवारपर मानो दुःखका पहाड़ टूट पड़ा। मेरे पूज्य पितृव्य लाला मुखरामजी और रामेश्वरदासजीने उस शोकाघातको पितृवियोगके समान ही दुःखद माना। मेरी उम्र उस समय २२ वर्षकी थी। मेरे अलावा मेरे छोटे भाई मुरारीलाल, परमेश्वरीलाल तथा दो चचेरे भाई रघुनन्दनलाल और वंशीधर—यों हम पाँच भाई थे, जिनमें सबसे बड़ा मैं ही था। पर मैं अनुभव-ज्ञान शून्य होनेके कारण किंकर्तव्य-विमूढ़ था। उस दारुण दुःखमें हमें सान्त्वना मिली थी, पिताजीके मित्रों और साहित्यिक साथी सहयोगियोंकी सहानुभूतिसे। पूज्यपाद पं० मदनमोहनजी मालवीय, पं० दीनदयालुजी शर्मा, पं० श्रीधरजी पाठक, पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्र, पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती, पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी, पं० राधाकृष्णजी मिश्र, पं० शम्भूरामजी पुजारी, बाबू ज्ञानीरामजी हलुवासिया, आदि महानु-

भाव उस समय विद्यमान थे। इन सबके व्यक्तिगत-पत्रोंसे हमें विशेष शान्ति मिली।

पिताजीकी मृत्युके बाद यद्यपि बाबू जगन्नाथदासजीके प्रेम और आग्रहवश मुझे प्रायः तीन वर्ष तक भारत-मित्र कार्यालयसे सम्बन्ध बनाये रखना पड़ा, तथापि मेरा मन उस कामसे उचट गया और अन्तमें मैं अपने भाइयों सहित व्यापारिक क्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ। यह क्षेत्र मेरे लिये नया था। इस क्षेत्रमें हमारे पथप्रदर्शक और सहायक रहे भाई हरिचरणजी हलुवासिया। सम्मान्य श्रीरामदेवजी चोखानीकी स्नेहसिक्त सहानुभूतिका हाथ भी हमारी पीठपर बराबर रहा। साहित्य-क्षेत्रसे सम्बन्ध विच्छेद होजानेपर भी साहित्यसेवियोंके प्रति मेरे श्रद्धाभावमें किञ्चित् भी कमी नहीं हुई। मैं पूज्य पिताजीकी सम्बन्ध-परम्पराके नाते साहित्यिकोंके दर्शन पितृभावसे करता हूँ और अपनेको उनका स्नेहभाजन मानता हूँ।

पूज्य पिताजीकी पुण्य-स्मृतिमें कलकत्तेके साहित्य-सेवियों द्वारा कई बार सभाएँ हुईं और कितनी ही बार उनकी जीवनी प्रकाशित करनेकी चर्चा चली, पर वह आगे न बढ़ सकी। सन् १९२८ में श्रीबनारसी-दासजी चतुर्वेदीके प्रयत्नसे न केवल यहां एक स्मृति-सभा हुई, बल्कि विशाल-भारतमें उन्होंने कई विशिष्ट साहित्यिकोंसे महत्त्वपूर्ण संस्मरण भी लिखवाकर प्रकाशित किये थे।

आदरणीय पण्डित झाबरमल्लजी शर्मा एवं पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी—ये दोनों महानुभाव स्वर्गीय साहित्य-सेवियोंकी कीर्ति-रक्षाके विशेष अभिलाषी हैं। पूज्य-पिताजीके जीवन-वृत्तान्तकी खोजमें श्रीशर्माजीने दो बार गुड़ियानी पधारनेकी कृपा की थी। गत सन् १९४८ के सितम्बर मासके दूसरे सप्ताहमें वे, पण्डित बनारसीदासजीसे परामर्श कर अपनी योजनाके साथ कलकत्ते आये। यहां आते ही उन्होंने स्थानीय प्रमुख पत्रकारों और साहित्य प्रेमियोंसे भेंट की और उन्हें अपने उद्देश्यसे अवगत किया। उन्होंने इस सम्बन्ध-

में हमारे परिवारको भी उसका कर्त्तव्य सुझाया। उनके आदेशानुसार हमने अपनी सेवाओंके साथ जो सामग्री हमारे पास थी, वह उनके हवाले करदी। सामग्री बिखरी हुई हालतमें थी। अवश्य ही यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो उसे एक गोरखधन्धा समझकर उदासीन हो जाता; किन्तु श्रीशर्माजीने एक साधककी तरह जुटकर अपने आरंभ किये हुए कार्यको पूर्णतापर पहुँचा दिया। उन्होंने अपनी और श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदीकी ओरसे 'गुप्त-निबन्धावली' और 'स्मारक ग्रन्थ'के संयुक्त-सम्पादनकाही नहीं, बल्कि बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक समितिके संयोजक-पदका दायित्व भी ग्रहणकर अपना व्रत पूरा किया।

मैं अपनी और अपने परिवारकी ओरसे श्रीशर्माजी, श्रीचतुर्वेदीजी और बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक समितिके सदस्योंका अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके सहयोगसे इस यज्ञमें साहित्यिकोंके पाद-प्रक्षालनका यह सुयोग मिला।

३०-६-१६५० १४७, हरिसन रोड कलकत्ता	साहित्य-सेवियोंका वात्सल्य भाजन, नवलकिशोर गुप्त

विषय-सूची

जीवन-परिचय

संस्मरण और श्रद्धाञ्जलियाँ

श्रद्धा-समर्पण (पण्डित रूपनारायणजी पाण्डेय माधुरी-सम्पादक)

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त, भारतमित्र-सम्पादक

बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ

जीवन-परिचय

[१]

जन्म-स्थान और वंश-विवृति

महिमामय हरियाना

हरियानेके लिये एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—"देसामें देस हरियाणा, जित दूध-दहीका खाणा"। दूध-दहीका खाना वहीं सुलभ हो सकता है, जहां दुधार गायें हों। वास्तवमें गायकी नस्लके कारण ही भारतवर्षमें हरियानेका अद्वितीय महत्व है। निस्सन्देह हरियानेकी गायपर समस्त देशको गर्व है। दूध-दहीके इस देशकी महिमाने भगवान् कृष्ण तकको इधर आकर्षित कर लिया था। एक किंवदन्ती सुनी जाती है कि ब्रजसे द्वारकाको जानेके लिये हरि (कृष्ण) के यानका यही निर्दिष्ट मार्ग था, अतएव यह भाग हरियाना कहलाया। इस जनपदके सम्बन्धमें प्रथितनामा सुदर्शन सम्पादक स्वर्गीय पं० माधवप्रसाद मिश्रजीका अभिमत है कि "हरियाना वेद-विदित कुरुक्षेत्र भूमिका सहोदर है और इस प्रान्तकी भाषासे उस प्राकृतका घनिष्ठ सम्बन्ध है, जिससे वर्तमान हिन्दीका जन्म हुआ है।"

भारतवर्षके समृद्धिशाली अग्रवाल-समाजका उद्गम स्थान 'अग्रोहा' हरियाना-प्रान्तमें अपने गत गौरवका स्मरण करानेके निमित्त पुरातत्त्वानुसन्धानकी सामग्रीके रूपमें अपना अस्तित्व आज भी बनाये हुए है। विक्रमकी १४ वीं शताब्दीके अन्तिम भागके एक * शिलालेखमें हरियाना देशको पृथ्वीपर 'स्वर्गसन्निभ' कहा गया है और वहांकी 'ढिल्लिका' (दिल्ली) नामक पुरी तोमर-वंश द्वारा निर्मित बतायी गयी है। इससे स्पष्टतया सिद्ध है कि हरियाना प्रान्तकी सीमा उस समय दिल्ली तक विस्तृत थी।

इसी हरियाना-प्रान्तके अन्तगत रोहतक जिलेके "गुड़ियानी" नामक ग्राममें गोयलगोत्रके सर्वसुख-सम्पन्न अग्रवाल लाला पूरनमलजीके गृहमें संवत् १६२२ विक्रमाब्द (सन् १८६५ ई०) कार्तिक शुक्ला ४ को बाबू बालमुकुन्द गुप्तका जन्म हुआ था।

गुड़ियानी ग्राम घोड़ोंकी सौदागरीके लिये मशहूर रहा है। वहांके बेर बड़े मीठे होते हैं। निकटतम रेलवे स्टेशन बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवेका 'जाटूसाना' है। यह रेवाड़ीसे हिसार जानेवाली लाइन पर है। वहांसे गुड़ियानीका अन्तर प्रायः एक कोस होगा।

---

* यह शिला-लेख सुलतान मुहम्मद बिन तुगलकके समयका है, जो दिल्लीसे पांच मील दक्षिण स्थित 'सारवन' नामके गांवसे मिला था और इस समय दिल्लीके म्युजियम (बी. ६) में रक्खा हुआ है। इस शिला-लेखमें तिथि संवत् १३८५— विक्रमीय फाल्गुन शु० ५ मंगलवार अंकित है। कुल १६ श्लोक हैं, जिनमें तीसरा श्लोक इस प्रकार है :—

"देशोऽस्ति हरियानाख्य पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः
ढिल्लिकाख्या पुरो तत्र तोमरैरस्ति निर्मिता।"

—एपिग्राफिका इंडिका भाग १ पृष्ठ ९३।

हमने "गुड़ियानी" की श्रद्धापूर्वक यात्रा की है। सन् १९४४ ई० में जब हम वहाँ गये थे, उस ग्रामकी जनसंख्या ५००० के लगभग थी। अपनी यात्रामें हमने वह हवेली देखी, जिसमें गुप्तजीका जन्म हुआ था। यह पुरानी इमारत उनकी अपनी बनाई हुई नयी* हवेलीसे थोड़े अन्तर पर है। वह मन्दिर भी हमने देखा, जिसमें गुप्तजी प्रातःकाल गुड़ियानी रहनेके दिनोंमें पूजा-पाठ किया करते थे और बाजारमें उनकी वह दूकान भी देखी, जहाँ बैठकर वे लेखादि लिखते थे।

गुप्तजीके समवयस्क दो पठान उस समय जीवित थे। बाबू नवलकिशोरजीको साथ लेकर हम उन दोनों सज्जनोंसे उनके घरपर जाकर मिले थे। एक साहबका नाम था जनाब नजीबुल्लाहखाँ और दूसरेका जनाब अता मुहम्मद खाँ। दोनों सज्जनोंने प्रेम-पूर्वक बातचीत की। उस समय गुप्तजीके सम्बन्धमें, उनके संस्मरण हमने नोट कर लिये थे। हमारे प्रश्नके उत्तरमें जनाब नजीबुल्लाह खां साहबने कहा था—

"मैंने लाला बालमुकुन्दके वालिदको भी देखा था। लाला बालमुकुन्दको मदरसेमें पढ़ते देखा है। वह अपने हमउम्र लड़कोंमें सबसे ज्यादह अक्लमन्द थे,—सबसे अव्वल रहते थे। लिबास बहुत सफेद रखते थे। उन्होंने दुकानदारीका कोई काम नहीं किया और हमेशह इल्मकी मजलिसमें बैठते रहे। हर किस्मके लोगोंसे बड़ी मुहब्बतसे पेश आते थे, और बस्तीके सब लोग उनकी बड़ी इज्जत करते थे। हमारे काजी वालिबअली साहब, जो एक बड़े कामिल बुजुर्ग थे, उनकी अक्सर

* अपना नया हवेलीका शिलान्यास गुप्तजीने संवत् १९५४ मार्गशीर्ष बदी २ वृहस्पतिवारकी रात्रिको सिंह-लग्नमें किया था। उस दिनकी उनकी डायरीमें लिखा है :—"रातको ९ बजे पंडित महासुखजी द्वारा नींव धरी गई। हम, सुखराम (गुप्तजीके मझले भाई) कारीगर रिछपाल, लाला खूबराम मानवाले तथा पंडित महासुख,—पाँच आदमी उपस्थित थे।"

तारीफ किया करते थे। एक दिन उनकी एक हिकायत भी बयान की थी। फरमाया—भाई, बालमुकुन्दने आज एक अजीब बात कही। वह यह कि, सुख दुनियांकी दौलतमें नहीं है, सुख कोई और चीज है—

"ना सुख घोड़े पालकी, ना छत्तरकी छाँह,
या सुख हरिको भगतमें, या सुख संतां माँह।"

लाला बालमुकुन्द अच्छे खूबसूरत जवान थे। उनको देखा तो सबसे अच्छा देखा। लोग उनके पास सलाह लेने जाते थे और उनसे बड़ी अच्छी सलाह मिलती थी। जिन दिनों वह तालीम पाते थे, यहाँ मदरसेमें उर्दू-फारसी पांच जमाअत तककी पढ़ाई होती थी। मुन्शी वजीर मुहम्मदखां मदरसा पढ़ाते थे। मुन्शीजी भी यहींके रहनेवाले थे। साथ पढ़नेवालोंमें काबिल जिक्र इस्मायलखां मेहरुद्दीनखां और बालमुकुन्द—ये तीन तालिब-इल्म थे, जिनमें पहले डाक्टर हुए, दूसरे मुन्शी हुए और तीसरे मुन्शी होकर मशहूर अखबार नवीस हुए।"

जनाब अता मुहम्मदखां साहबने फरमाया :—

"लाला बालमुकुन्द मुझसे बड़े थे। बड़ी अच्छी तबीयतके आदमी थे। कप्तान फजल रसूलखां जो उन दिनों जोधपुरमें कप्तान थे, उनके दोस्त थे और हमउम्र भी। बालमुकुन्दजी बहुत खुश खलीक आदमी थे। तालीम बहुत अच्छी पाई थी, सोहबत बहुत की थी। हरेक आदमीसे उनको इखलाक था। हर आदमी उनको अपना दोस्त समझता था। यह उनकी अपनी खूबी थी। तमाम गांव उनको इज्जत और मुहब्बतकी नजरसे देखता था।"

* * * *

स्वर्गीय गुप्तजीको अपने प्रान्तकी बोलीसे बड़ा प्रेम था। घरू बोलचालमें वे उसीका व्यवहार करते थे। हरियानेकी ठेठ बोलीमें

गुप्तजीका भेजा हुआ एक पत्र भिवानी निवासी स्वर्गीय पण्डित राधा-कृष्णजी मिश्रने इन पंक्तियोंके लेखकको एकबार दिखाया था। पत्र पण्डित माधवप्रसादजी मिश्रके नाम था, जिसका आरंभ यों होता था—"पा लागां हो दादा ! तेरे पोतेका ब्याह सै," अन्तमें विवाहमें अवश्य पधारकर शोभावृद्धि करनेका अनुरोध था। यह पत्र गुप्तजीने संवत् १९५७ में अपने ज्येष्ठ पुत्र बाबू नवलकिशोरके विवाहके उपलक्ष्यमें भेजा था। "तौं चाल म्हारै खेतमां देख के बहार सै" –इत्यादि हरियानो-बोलीकी सरस विनोदात्मक रचनाएँ सुननेका आनन्द तो उनके निकट सम्पर्कमें रहनेवाले लोग निरंतर लेते रहते थे। अपने हरियानेके लिये गुप्तजीके हृदयमें गहरा प्रेम था।

वंश और वंशज

यशस्वी गुप्तजीका घराना गुड़ियानीमें बखशीरामवालोंके नामसे प्रसिद्ध है। आरम्भमें इस परिवारका निकास हरियाना-प्रान्तवर्ती रोहतक जिलेके "डीघल" नामक ग्रामसे हुआ था, इसलिये वे 'डीघलिये' कहलाते हैं। "डीघल" "बेरी" के पास अग्रवालोंका एक बहुत पुराना कस्बा है। 'डीघल' से चलकर 'झज्जर' आ बसे और तदनंतर 'कोसली'-में आबाद हुए। जहाँ, जिस स्थानमें व्यापारिक सुविधाके अनुसार आमदनीका जरिया देखा, वहींका निवास स्वीकार किया। उस समय यही मुख्य लक्ष्य था। 'डीघलिया' परिवारकी तीन सतियोंके पूजाई पुरातन स्थान झज्जरमें विद्यमान हैं। उक्त परिवारके एक पूर्व पुरुष झज्जरका निवास छोड़कर कोसलीमें बस गये थे। उनके वंशज लाला बखशीरामने "गुड़ियानी" रहना आरंभ किया।

गुप्तजीके पितामहका नाम लाला गोरधनदास था। वे बड़े प्रभावशाली और सद्व्यवहार-निष्ठ सज्जन थे। उनके दो पुत्र हुए, एक लाला लेखराम और दूसरे लाला पूरनमल। विवाहके बाद ही

लाला लेखरामका देहान्त हो गया था। उनकी धर्मपत्नीने अपना वैधव्य-जीवन ईश्वरकी आराधनामें व्यतीत कर सबकी श्रद्धा अर्जित की थी। गाँवभरके स्त्री-पुरुष उस देवीका उपदेश श्रवण करनेको लालायित रहते थे। हमारे चरित नायक गुप्तजी लाला पूरनमलके ज्येष्ठ पुत्र थे। उनके दो छोटे भाई लाला मुखराम और लाला रामेश्वरदास हुए तथा दो बहिन हुईं। भाई-बहिनोंकी अवस्थामें प्रायः तीन-तीन वर्षका अन्तर था।

गुप्तजीके तीन पुत्र और दो पुत्रियां हुईं, जिनमें बड़े लाला नवलकिशोर और कनिष्ठ लाला परमेश्वरीलाल हैं। गुप्तजीके मध्यम पुत्र लाला मुरारीलालका देहान्त युवावस्थामें हो गया था।

गुप्तजीके मझले भाई लाला मुखरामजी * के दो पुत्र हुए, लाला

---

* लाला मुखरामजी सरल स्वभावके भक्त-हृदय सज्जन थे। अपने छोटे भाई रामेश्वरदास सहित 'गुड़ियानी'में रहते हुए उन्होंने पैतृक व्यवसाय—साहूकारी लेन-देन-को संभाला। वे बड़े प्रबन्ध-कुशल थे। घर-गृहस्थीकी ओरसे उन्होंने गुप्तजीको निश्चिन्त कर दिया था। लाला नवलकिशोरजीका कथन है—"हमारे चाचाजीने ही बिना भेद-भावके हम सबका पालन-पोषण किया। पिताजी तो विवाह-शादीके अवसर पर पाँच-सात दिन पहले मेहमानकी तरह आ जाते थे। सब कामोंकी व्यवस्था करनेवाले चाचा मुखरामजी ही थे। अपने लड़कोंमें और हममें उन्होंने कभी कोई अन्तर नहीं समझा। वे देवता-स्वरूप थे। उनके हाथसे माला नहीं छूटती थी। हृदयमें बड़ी दया थी।" वैशाख बदी ३ मङ्गलवार संवत् २००१ को ७६ वर्षकी आयुमें उनका स्वर्गवास हुआ। वे अपने ज्येष्ठ भ्राताके अनन्य भक्त थे।

गुप्तजीके तृतीय कनिष्ठ सहोदर लाला रामेश्वरदासजी इस समय विद्यमान हैं। उनकी उम्र ७५ वर्षके लगभग है। गुप्तजीके संस्मरणमें कुछ कहनेके लिये उनसे अनुरोध किया गया, तब वे गद्गद् होकर इससे अधिक न बोल सके कि, "मेरे भाई-जैसा भाई होनेका नहीं,"—इतना कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू छलक पड़े। लाला रामेश्वरदासजीके कोई सन्तान नहीं है। वे अपने भाई-भतीजोंकी सन्तानसे ही प्रजावान हैं।

स्वर्गीय गुप्तजीके कनिष्ठ सहोदर
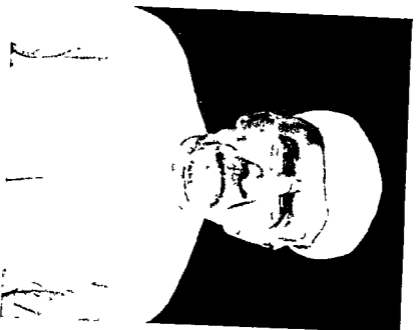
स्वर्गीय लाला मुखराम

लाला रामेश्वर

रघुनन्दनलाल और लाला वंशीधर। इनमें रघुनन्दनलालका शरीर भी अब नहीं रहा। ला० नवलकिशोरके पुत्र श्रीजगदीशप्रसाद और श्रीहरिकृष्ण हैं एवं ला० वंशीधरके पुत्र श्रीरत्नप्रकाश, रमणप्रकाश और आनन्दप्रकाश। स्वर्गीय रघुनन्दनलालके दत्तक पुत्र-रूपसे उत्तराधिकारी नवलकिशोरके बड़े पुत्र जगदीशप्रसाद हैं। परमेश्वरीलालने वंशीधरके द्वितीय पुत्र रमणप्रकाशको गोद ले रक्खा है। जगदीशप्रसादके दो पुत्रोंके नाम राम और श्याम हैं तथा हरिकृष्णके पुत्रोंके नाम कृष्ण और विजय। इस प्रकार अपने पूर्वजोंके पुण्य-बलसे स्वर्गीय गुप्तजीका वंश-वृक्ष पल्लवित होकर पुष्पित एवं फलित हो रहा है।

गुप्तजीकी माता बड़ी दयालु, धर्मशीला, उदार महिला थी। उसके कारण उनका घर सत्सङ्गका एक केन्द्र बन गया था। कथा-श्रवण और भजन-कीर्त्तनमें वह तल्लीन रहती थीं। एकादशीका जागरण तो उनके यहाँ नियमित होता ही था। इसके अतिरिक्त घरपर आया हुआ कोई अतिथि या साधु उनकी सेवासे वञ्चित नहीं रहता था। गुप्तजीमें ईश्वर-निष्ठा, संयमशीलता और सप्रेम आतिथ्य-तत्परता आदि सद्गुणोंका जो विकास हुआ, वह उनकी माताकी अभिभावकतामें रहनेका सुफल था।

गुप्तजीका विवाह रेवाड़ीके प्रसिद्ध "छाजूरामवालों" के—खानदानके लाला गङ्गाप्रसादजीकी पुत्री श्रीमती अनारदेवीसे संवत् १९३७ विक्रमाब्द तदनुसार सन् १८८० ई० में हुआ था। लाला गङ्गाप्रसादजीके एकमात्र पुत्रका नाम लाला मदनमोहन था। वे बड़े साधु पुरुष थे।

स्वर्गीय गुप्तजीने प्रेम, उदारता, सहिष्णुता एवं समान-व्यवहार-युक्त सद्भावनासे अपने परिवारको एकसूत्रमें संग्रथित रखनेका सदा ध्यान रक्खा। तदनुसार ही यह आनन्दकी बात है कि उनके संख्या-बहुल कुटुम्बके वर्तमान मुखिया बाबू नवलकिशोरजीके तत्त्वावधानमें बाबू

परमेश्वरीलाल तथा बाबू बंशीधरकी अनुवर्तितासे एकान्नवर्ती संयुक्त परिवार प्रथा अक्षुण्ण भावसे चली आ रही है।

गुप्तजीके देहावसानके बाद भारतमित्रके मालिक बाबू जगन्नाथदासजीने, बाबू नवलकिशोरको भारतमित्रके प्रबन्धक-पदपर नियुक्त कर अपना सौजन्य प्रदर्शित किया और उसके कई वर्षों बाद जब भारतमित्रको समुचित प्रकारसे चलानेके लिये एक लिमिटेड कम्पनी बनायी गयी, तब भी बाबू जगन्नाथदास अपनी ओरसे बाबू नवलकिशोरको भारतमित्र लिमिटेडका एक 'डाइरेक्टर' बनानेकी उदारता दिखानेमें नहीं चूके। परन्तु बाबू नवलकिशोरजी, उधरसे अपना मन हटाकर स्वतंत्र व्यवसायमें प्रवृत्त हुए और अपने सुयोग्य भाइयोंके साथ तबसे सफलतापूर्वक निजका कारोबार चला रहे हैं। कलकत्तेके हैसियनबारदानेके बाजारमें उनका प्रतिष्ठित फार्म श्रीनवलकिशोर बंशीधर एण्ड कम्पनीके नामसे प्रसिद्ध है।

स्वर्गीय मुरारीलाल (गुप्तजीके द्वितीय पुत्र)

[२]
विद्यार्जनमें विघ्न

"सूबा पंजाबमें दस हजार लड़कोंका इम्तिहान अब तक ले चुका हूँ, कोई लड़का इस ज़हानत और लियाक़तका नहीं देखा। अगर आगे तालीम न दिलाओगे तो एक हक़तलफ़ी करोगे।"

ये शब्द मदरसोंके एसिस्टेंट इन्सपेक्टर लाला बलदेव सहायके हैं, जो मुकाम कोसली (रोहतक-जिला) में इम्तिहान लेनेके लिये आये हुए थे। उस समयके नियमानुसार एक मदरसेमें कई स्कूलोंके छात्र नियत तिथिपर एकत्र हो जाते थे। इन्सपेक्टर वहीं पहुँचकर सब लड़कोंका इम्तिहान ले लिया करता। गुड़ियानीके मदरसेके लड़के भी अपने मुदर्रिस अव्वल मुन्शी वजीर मुहम्मदखाँ साहबके साथ इम्तिहान देनेके लिये कोसली आ गये थे। उनमें ५ वीं जमाअतमें पढ़नेवाला एक लड़का बालमुकुन्द था। उस समय उसकी उम्र १४ वर्षके करीब थी। पुत्रका स्नेह उसके पिता लाला पूरनमलको भी साथ ही कोसली ले गया। यथास्थान, यथासमय परीक्षा आरम्भ हुई। इन्सपेक्टर साहबने एक मुदर्रिसको हुक्म दिया कि ५ वीं जमाअतको अमुक सवाल लिखवाया जाय। मुदर्रिसने तदनुसार सवाल लिखवा दिया। प्रश्न कठिन था। ५ वीं जमाअतके जितने स्कूलोंके लड़के थे, उनमें किसीसे भी वह सवाल नहीं बन सका; किन्तु बालमुकुन्दका उत्तर सही पाया गया। इस पर इन्सपेक्टर साहबको सन्देह होना स्वाभाविक था। इसलिये वही हिसाबका सवाल फिर हल करनेके लिये दूसरी बार मुदर्रिसोंको दिया गया, परन्तु वे भी सही उत्तर न ला सके। तब तो इन्सपेक्टर साहबने

याबी हासिल की, कि मुझको भी शाबाशी दिलाई और खुशनूदिए मिज़ाजका परवाना साहिब डिपुटी कमिश्नर बहादुर जिला रोहतकसे दिलाया और उसके वालिदको बुलाकर लाला बलदेव सहायने समझाया कि उसको तहसील इल्मके लिये आगे भेजो। उन्होंने उज्र किया कि हमलोग तिजारत पेशा हैं, हमको ज्यादा पढ़ाकर रोज़गारकी ज़रूरत नहीं है। उस वक्त एसिस्टंट इन्सपेक्टर साहिबने फरमाया कि "सूबा पंजाबमें दस हजार लड़कोंका इम्तिहान अब तक ले चुका हूँ, कोई लड़का इस ज़हानत और लियाकतका नहीं देखा। अगर आगे तालीम न दिलाओगे तो हक़तलफ़ी करोगे।"

अपने बड़े पुत्र—बालमुकुन्दकी, शिक्षा-विभागके सहायक इन्सपेक्टर और परीक्षकके मुँहसे प्रशंसा सुनकर सानन्द लाला पूरनमल अपने घर लौटे। जो छात्र परीक्षामें उत्तीर्ण हुए, उनके मनमें उत्साह था, उमङ्ग थी और आगे पढ़नेका चाव था और फेल हो जानेवाले लड़कोंके चित्तमें थी अपनी असफलता पर उदासी। इसके साथ ही पढ़नेकी अपेक्षा खेल-कूदमें अधिक ध्यान रखनेकी अपनी पिछली प्रवृत्तिके लिये पश्चात्ताप भी कम नहीं था।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा और उसकी स्थितिके सम्बन्धमें गुप्तजीने प्रसङ्गवश अपने एक लेखमें लिखा है :—"सन् १८७५ के आखिरमें राकिम (लेखक) स्कूलमें दाखिल हुआ था, उस वक्त पञ्जाबके इब्तदाई मदरसे नीम मकतबोंकी शकलमें थे। उर्दूका कायदा मौजूद न था। कागजों पर 'अलिफ-बे' लिखकर पढ़ाई जाती थी। 'तहसील उल् तालीम' नामकी एक किताब उर्दूकी पहली किताब और उर्दूके कायदेका काम देती थी। उर्दूकी पहली और दूसरी और तीसरी किताबें बनी जरूर थीं, मगर वह सब स्कूलों तक नहीं पहुंच सकी थीं। कुछ दिन बाद उर्दूकी पहली और दूसरी किताबें आईं और 'तहसील-उल्-तालीम'से

लड़कोंका पिंड छूटा। उर्दूकी पहली किताबके दो हिस्से थे - पहले हिस्सेमें उर्दूका कायदा था और दूसरेमें कुछ लतायफ। यह लतायफ ऐसे मुश्किल थे कि बाज तो उनमेंसे आला जमायतोंके लड़कोंकी समझमें भी मुश्किलसे आते थे। मसलन् एक मन्तिकी और एक पीराकका लतीफा था जो दोनों एक साथ नावमें सवार हुए थे, इसी तरह एक मन्तिकी और एक मुल्ला तबलीका लतीफा था। मन्तिकी कौन होता है और इल्म मन्तिक क्या शै है? उर्दूका कायदा पढ़नेवाले लड़के भला क्या खाक समझें? इसी तरह उर्दूकी दूसरी भी ऐसे हिकायत और लताइफसे पुर थी, जो और भी मुश्किल थे। मगर सबसे मुश्किल थी उर्दूकी तीसरी किताब। उसे मिडल क्लासके लड़के भी अच्छी तरह नहीं समझ सकते। खसूसन उसका हिस्सा नज्म बहुत ही सख्त था, एक दो शेर उसमेंसे याद हैं, मुलाहिजा हों—

खौफ़ से गर यह मुबद्दल वदम सर्द हुआ,
बावर आया हमें पानी का हवा हो जाना।
अशरते कतरह है दरिया में फना हो जाना,
दर्द का हदसे गुज़रना है दवा हो जाना।
जो साया इस चमन में फिरा मैं तमाम उम्र,
शर्मिन्दहपा नहीं मरा बर्ग ग्याह का?

उस वक्त यह तोतेकी तरह रट लिये थे। मानी तो बहुत दिन बाद मालूम हुए *।

विधिका विधान बड़ा विचित्र है। मनुष्य जो सोचता है, वह नहीं होता। होता है, वही जो जगत्का नियन्ता ईश्वर चाहता है। लाला

* गुप्तजी द्वारा लिखित कानपुरके उर्दू मासिक-पत्र जमाना (जून सन् १९०७) जिल्द ८ नम्बर ६ में 'मौलवी मुहम्मद हुसेन आजाद' शीर्षक लेखसे।

—गुप्त-निबन्धावली पृष्ठ ९६

पूरनमलजी पुत्रके पाँचवें दर्जेमें पास हो जानेके बाद उसको आगे पढ़ानेका प्रबन्ध करनेके लिये सोच-विचार कर ही रहे थे कि इतनेमें अचानक सर्वग्रासी क्रूर कालने उन्हें आ दबाया। केवल ३४ वर्षकी अवस्थामें उनका परलोकवास होगया। उनके वृद्ध-पिता लाला गोरधनदासजी उस समय जीवित थे। इस दारुण दुःखका आघात वे सहन न कर सके। अपने प्रिय पुत्र लाला पूरनमलकी मृत्युके छठे दिन ही वे भी चल बसे!

यों पिता एवं पितामहकी संरक्षकतासे वञ्चित होकर चौदह वर्षके बालमुकुन्दको अपनी किशोरावस्थामें ही पढ़ने-लिखनेकी जगह घरके दायित्वका भार उठानेकी चिन्ता करनी पड़ी। ऊँची शिक्षा पानेकी आशापर पानी फिर गया। पाठ्य-पुस्तकोंके बदले अपने पैतृक-व्यवसायके हिसाब-किताबको समझने, बकाया वसूल करने और लेन-देनके झगड़े निबटानेमें लग जाना पड़ा। अपने सहोदर भाइयोंमें वही बड़े थे। यद्यपि वे अपनी स्कूली पढ़ाई आगे चालू नहीं रख सके, तथापि ज्ञानार्जन करनेका उन्होंने क्रम भङ्ग नहीं होने दिया। अवकाशानुसार अध्ययनमें प्रवृत्त रहे। जहाँ, जब, जैसा शिक्षा प्राप्तिका—ज्ञान बढ़ानेका, अवसर देखा, उसीसे लाभ उठाया। उर्दू और फारसीको ऊँची पढ़ाई करनेमें उन्हें कठिनता नहीं हुई, क्योंकि गुड़ियानी मुसलमान-प्रधान कस्बा था। वहाँ उर्दू-फारसीके आलिम-फाजिल मुन्शी वजीर मुहम्मदखाँ जैसे उस्ताद विद्यमान थे। बालमुकुन्द सदृश प्रखर-बुद्धि विद्यार्थीके लिये इतना सुयोग पर्याप्त था। उस्तादकी उनपर पूरी कृपा थी। स्वाध्याय एवं मननशीलताने उर्दू-फारसीमें पारङ्गत कर शीघ्र ही उन्हें 'मुन्शी बालमुकुन्द' बना दिया।

गुप्तजीके पिता और पितामहका देहान्त संवत् १९३६ (सन् १८७९) में हुआ था। इसके अनन्तर पाँच-छै वर्षका उनका समय घर पर

गुड़ियानीमें ही व्यतीत हुआ और यह उनकी अपनी विशेषता थी, कि उस चिन्ताजनक स्थितिमें भी अपनी इतनी योग्यता बढ़ायी। जब उनके छोटे भाई भी कुछ गृह-प्रबन्धमें हाथ बँटानेके योग्य हुए, तब वे आगेकी पढ़ाईकी धुनमें दिल्ली पहुँचे और दिल्ली हाई स्कूल बोर्डिङ्ग हाउसमें रहकर पढ़ना आरम्भ किया। कुछ महीनोंमें ही उन्होंने मिडिलकी परीक्षा दे दी थी। एसिस्टेंट रजिस्ट्रारके ता० २० जुलाई सन् १८८६ के कार्डसे जो उर्दूमें है, पता चलता है कि गुप्तजीने मिडिलकी परीक्षामें उत्तीर्णता लाभ की थी। उनका रोल नम्बर २८६० था।* यह बात ध्यान देने योग्य है कि उस समय मिडिल परीक्षा एक ऊँची परीक्षा मानी जाती थी।

* मूल कार्डका देवनागरी अक्षरान्तर इस प्रकार है :—

नम्बर ५७१

अज़ दफ़्तर साहब रजिस्ट्रार पंजाब युनिवर्सिटी, लाहौर

बजवाब तुम्हारी अरज़ी मौसूलह अम्रफ़िदह निगारिश है, कि रिज़ल्टमें तुम्हारा नाम मौजूद है और तुम कामयाब हो। फ़ह्‌रिस्त मतबूअमें तरतीबवार ९१ नम्बरके मुक़ाबिलहमें जो खन वाहिदानीके अन्दर तीन नाम हैं, उनमेंसे तीसरा नाम बाल-मुकुन्द न० २८६० मौजूद है। २० जुलाई सन् १८८६ ई०।

दस्तख़त साहब रजिस्ट्रार

कार्ड पर पता—

मौजे गुड़ियानी जिला रोहतक

पास बालमुकुन्द प्राइवेट तालिबेइल्मके पहुँचे।

[२]
उर्दूकी दुनियामें

उर्दू-फारसीके अध्ययन-कालमें ही गुप्तजीकी मित्रता पण्डित दीनदयालुजी शर्मासे हो गयी थी मुन्शी दीनदयालु और मुन्शी बालमुकुन्दके नामसे दोनों मित्रोंके लेख उस समयके उर्दू-पत्रोंमें आदरपूर्वक स्थान पाते थे। उन्हीं दिनों पण्डित दीनदयालुजीने वृन्दावनधाम पहुँच कर सन् १८८५ ई० में मथुरासे एक "मथुरा अखबार" नामक उर्दू-मासिक-पत्र निकाला। उसके सम्पादक, प्रकाशक,—सब कुछ पण्डितजी ही थे। गुप्तजी अपने घर गुड़ियानीसे लेख भेजकर उनकी सहायता किया करते थे। "मथुरा अखबार" के सम्बन्धमें गुप्तजी लिखते हैं—"पत्र बड़े आकारका था। इसमें सबसे पहले ईश्वरकी एक स्तुति हिन्दीमें और उसकी नकल उर्दूमें होती थी। पीछे राजनीति, समाज और धर्म सम्बन्धी लेख होते थे। पत्र राजनीतिक था, पर हिन्दू-धर्मका भाव उसमें खूब था। इस ढंगका वह एक ही पत्र था।" इसके पूर्व झज्जरसे उन्होंने "रिफाहे आम" नामका मासिक-पत्र प्रकाशित किया था, किन्तु वह वर्ष या दो वर्षसे अधिक नहीं चला।

एक वर्ष ब्रज-भूमिमें व्यतीत कर पण्डित दीनदयालुजीने देशके विभिन्न भागोंमें भ्रमण किया। उधर गुप्तजी भी उर्दूकी अखबारी दुनियामें एक लेखककी हैसियतसे प्रसिद्धि प्राप्त करनेमें सफल हुए। उस समयके नामी उर्दू लेखक 'शैदा' साहबका एक पत्र यहाँ उद्धृत किया जाता है, जो गुप्तजीकी योग्यता पर प्रकाश डालता है और यह

प्रकट करता है कि अपनी प्रारम्भिक स्थितिमें भी वे किस दृष्टिसे देखे जाते थे :—

"हजरत अखबी साहब, तस्लीम वादे ताजीम,

गरामीनामा मय पर्चा हाय अखबारे 'आजाद' सादिर हुआ। मुआज्जज फरमाया। अखबारे मजकूर बाद मुआयना वापस-य-खिदमत कर चुका हूँ। मुलाहिजेसे गुजरा होगा। मैं चूंकि, यहाँ न था, इसलिये जवाबमें ताखीर हुई। 'आजाद' जैसे इस्म वा मुसम्मा पर्चा है, नामानिगार भी बड़े लायक हजरात हैं। खुसूसन जनाबके मजामीनकी तारीफ हो नहीं सकती। आप एक लायक और आला-दिमाग हैं। जैसा अखबार देखते हैं, वैसा ही मजमून इरकाम फरमाते हैं। यह हर शख्सका काम नहीं। यह पर्चा बहुत जल्द तरक्की करेगा।"......

सन् १८८६ में ही गुप्तजी पं० दीनदयालुजीकी सलाहसे 'अखबारे चुनार' के सम्पादक बनकर चुनार गये। गुप्तजीने 'अखबारे चुनार' को ऐसी योग्यतासे चलाया कि उसे संयुक्तप्रान्तके सब अखबारोंमें श्रेष्ठ कर दिया।* उस समय पं० दीनदयालुजी लाहौरके उर्दू-पत्र 'कोहेनूर' का सम्पादन-भार ग्रहण कर चुके थे। अखिल भारतीय कांग्रेसके द्वितीय अधिवेशनमें सम्मिलित होनेके लिये वे कलकत्ते पहुँचनेसे पहले स्नेह-वश 'चुनार' ठहरकर गुप्तजीसे मिले थे।

कांग्रेसका अधिवेशन देखकर ही पण्डित दीनदयालुजी भारतधर्म-महामण्डल-स्थापन करनेकी भावना लेकर लौटे थे। इस विषयमें गुप्तजी लिखते हैं—"कलकत्तेकी दूसरी कांग्रेसमें पंजाबसे डेलिगेट होकर पण्डित दीनदयालु शर्मा गये थे। वहाँसे एक खयाल लेकर आये थे। कांग्रेस भारतके नाना धर्म, नाना जातिके लोगोंको एक करके एक पोलिटिकल

* हिन्दी कोविदरत्नमाला (रा० ब० बा० श्यामसुन्दर दास) प्रथम भाग पृष्ठ १००

प्लेटफार्म पर लाना चाहती है। दीनदयालुजीने सोचा कि भिन्न-भिन्न मतावलंबी हिन्दू भी इसी प्रकार एक हो सकते हैं। इस विचारके अनुसार चेष्टा की गई और सफलता भी हुई। हर साल तो नहीं, पर दो साल या कुछ अल्पाधिक समयके पश्चात् हिन्दुओंका एक महामण्डल भारतके किसी-न-किसी प्रसिद्ध स्थानमें हो जाता था। सब प्रान्तों और सब विचारोंके हिन्दुओंको तीन चार दिनके लिये एकत्र होने और अपने विचार सबके सामने प्रकट करनेका अवसर मिल जाता था।"*

संवत् १९४४ ज्येष्ठ शुक्ला १० को हरिद्वारमें पण्डितजीने सनातन धर्म-की रक्षाके लिये भारतधर्म महामण्डलकी नींव डाली थी। वहां 'अखबारे चुनार'के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त अपने पत्रके मालिक लाला हनुमान प्रसादके छोटे भाई लाला राधाकृष्ण सहित आये थे। 'धर्म-दिवाकर' के सम्पादक पण्डित देवीसहाय (कलकत्ता) साहित्याचार्य पं० अम्बिका दत्त व्यास (बिहार) कर्नल आलकाट (जिन्होंने बादमें थियोसोफिकल सोसाइटीकी स्थापना की) दीवान रामयशराय (कपूरथला) राजा हरवंशसिंह और मुन्शी हरसुखराय (लाहौर) इत्यादि भारत विख्यात व्यक्ति भारतधर्म-महामण्डलके उस प्रारम्भिक अधिवेशनमें पं० दीन-दयालुजीके आह्वानपर एकत्र हुए थे। उस समय लाहौरके मुन्शी हरसुख राय गुप्तजीसे मिलकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने चाहा कि किसी तरह गुप्तजी कोहेनूरका सम्पादकीय पद स्वीकार करें। इसके लिये गुप्तजी पर दबाव डालनेके लिये मुन्शीजीने पण्डित दीनदयालुजीको विवश किया। पण्डितजीके अनुरोधको भला गुप्तजी कैसे टाल सकते थे? फलतः थोड़े दिनों बाद ही चुनारसे घर जाकर वे लाहौर चले आये और कोहेनूरका सम्पादन-भार अपने हाथमें लिया। गुप्तजीके सम्पादकत्वमें कोहेनूरने अच्छी प्रसिद्धि प्राप्त की। कोहेनूर साप्ताहिकसे

* भारतमित्रका 'नया वर्ष' शीर्षक सम्पादकीय लेख (७-१-१९०५)

सप्ताहमें दो बार और फिर तीन बार होकर अन्तमें उनके समयमें ही दैनिक भी हो गया था। पण्डित दीनदयालुजीका कथन है कि सन् १८८८-८९ तक गुप्तजी कोहेनूरके सम्पादक रहे और इसी कालमें उनकी योग्यताका पूर्ण विकास हुआ। वे उर्दू साहित्यिकोंमें एक मान्य लेखक माने गये। उनके लेख अवधपंच, आदि पत्रोंमें भी प्रकाशित होते थे और बड़ी दिलचस्पीके साथ पढ़े जाते थे। उस समयके उर्दू-पत्र-सम्पादकोंका तकाजा लेख पानेके लिये बराबर बना रहता था। उर्दूमें गद्य और पद्य लेख लिखनेमें वे सिद्धहस्त थे। उन दिनों उर्दूमें पद्यात्मक मासिकपत्र गुलदस्तोंके रूपमें निकलते थे। गुप्तजीकी रचनाएँ गुलदस्तोंमें भी प्रकाशित होती थीं। उर्दूके उन कवितामय पत्रों का परिचय देते हुए गुप्तजी लिखते हैं—"यह एक बड़ी दिल्लगीकी बात है कि, इन गुलदस्तों को बहुधा वे ही लोग निकालते थे जो इतर बेंचते थे। लखनऊके निसार हुसैन और कन्नौजके रहीम — दोनों ही इतरेकी दुकान करते थे, यह कागजी गुलदस्ते उन्हीं के प्रबन्ध रूपी इतरसे सुगन्धित होते थे। इस लेखका लेखक भी उनको बूबाससे एक बार ही वञ्चित नहीं रहा। उसके तोड़े हुए दो चार जंगली फूल भी कभी-कभी इन गुच्छोंमें शामिल हो जाते थे। उस समय हवा ही ऐसी थी।"

उर्दू-फारसीके अपने शिक्षा—गुरुओंमें गुप्तजी मुन्शी वजीर मुहम्मदके अतिरिक्त गुड़ियानीके मुंशी बरकत अलीका नाम भी कृतज्ञता-के साथ याद किया करते थे। उर्दूकी पद्य-रचनामें वे मिर्जा सितम जरीफको अपना उस्ताद मानते थे। मिर्जा साहब हास्यरसके एक नामी 'शायर' हो गये हैं। गुप्तजीका तखल्लुस (उपनाम) 'शाद' था, जिसका अर्थ—है आनन्द। दर असल गुप्तजी एक आनन्दी पुरुष थे।

---

[४]

हिन्दीकी ओर

उर्दूके प्रवीण पत्रकार बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीके लिये उस समय हिन्दी कोई अज्ञात वस्तु नहीं थी। तब तक उसका जैसा कुछ रूप बन चुका था, उससे वे परिचित थे और अधिकाधिक परिचित होनेकी आकांक्षा भी रखते थे। उन्होंने दिल्ली हाई-स्कूलके बोर्डिंग-हाउसमें रहकर सन् १८८६ ई० में मिडिलकी परीक्षा पास की थी। ६-४-१९०१ ई० के भारतमित्रमें प्रकाशित "हिन्दीकी उन्नति" शीर्षक अपने लेखमें उन्होंने लिखा है—"मैंने मिडिल क्लासमें हिन्दी पढ़ी थी और हमारी हिन्दी-विद्या मिडिल क्लास तक पढ़नेमें पूरी हो जाती थी। आगे और किताब नहीं, कि पढ़कर विद्या बढ़ावें।" वस्तुतः उस समय हिन्दी इसी स्थितिमें थी। हिन्दी पद्यको छोड़कर तबतक ऊँची पढ़ाईके लिये गुप्तजीके कथनानुसार गद्यकी पुस्तकें बनी ही नहीं थीं! जितनी कुछ बन चुकी थीं, उनको उन्होंने पढ़ लिया था। उनके कथनसे यही सिद्ध होता है।

नागरी-हिन्दीसे गुप्तजीका सांस्कृतिक सम्बन्ध तो था ही। विष्णु सहस्रनाम, गोपाल सहस्रनाम आदि धर्ममूलक स्तोत्रोंका नित्य पाठ करनेके लिये उन्हें बचपनमें ही देवनागरी पढ़नी पड़ी थी और धर्म-बुद्धिसे प्रेरित होकर उन्होंने प्रतिदिन तुलसीकृत रामायण एवं सूर सागरका आंशिक पाठ करनेका नियम ग्रहण किया था। इस स्वाध्यायकी नियमितताने हिन्दुओंके ज्ञान-भाण्डार—"रामचरित मानस" और "सूर सागर" की कितनी ही आवृत्तियाँ उनसे अनायास करा दीं थीं। उनका जन्म ग्राम 'गुड़ियानी' रेवाड़ी—भिवानीका मध्यवर्ती स्थान होनेके कारण राजस्थानकी

सांस्कृतिक सीमाके घेरेमें था। उनके घरमें वैष्णव-सदाचारका पूरा-पूरा पालन होता था, जिसकी संरक्षिका—स्वयं उनकी धर्मशीला माता थीं। सन्त-वाणियों तथा भक्तिरस-लसित-पदों—भजनोंकी पावन-ध्वनि प्रातः सायं उनके कानोंमें निरन्तर पहुँचती रहती थीं।

देवनागरी ही क्यों—वंश परम्परागत पारिवारिक व्यवसाय—व्यवहारने गुप्तजीको 'मुड़िया' या सराफी लिपि सीखनेके लिये भी प्रेरित किया था। देवनागरीकी उपयोगिता दिखानेके प्रसङ्गमें गुप्तजी-ने कई बार मुडिया अक्षरोंकी कटु आलोचना की है, किन्तु आवश्यकता-नुसार अपने रिश्तेदारों या कुटुम्बियोंके लिये—जो नागरीमें लिखे पत्र पढ़ने या बही-खाते समझनेमे असमर्थ थे, गुप्तजीको मुड़िया लिपिका प्रयोग भी करना पड़ता था। मुड़िया अक्षरोंमें लिखे हुए उनके पत्र विद्यमान हैं।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीके जीवन-कालमें गुप्तजी लेखनी धारण कर चुके थे। यद्यपि उस समय उनका कार्यक्षेत्र उर्दू अखबारों तक ही सीमित था, तथापि हिन्दी पुस्तकों और हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंको वे दिलचस्पीके साथ पढ़ते थे। भारतेन्दुजीके लेखनी-प्रसूत भावोंकी अमिट छाप उनके हृदय-पटल पर अङ्कित हो गयी थी।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रका देहावसान होनेके प्रायः दो वर्ष बाद हिन्दीकी ओर गुप्तजीका झुकाव खास तौर पर होना पाया जाता है। जब उर्दू पत्र "अखबारे चुनार" की एडीटरी छोड़कर वे अपने घर गुड़ियानी पहुँच गये, तब उन्होंने ३-९-८७ को हिन्दोस्थान-कार्यालय कालाकांकर, के नाम कार्ड लिखा कि आपका दैनिक आनेपर हम स्थानीय समाचार भेजेंगे। गुप्तजीका यह अनुरोध स्वीकार कर लिया गया। उत्तरमें उनके नाम कार्ड आया :—

कालाकांकर
१७-६-८७

महाशय,

आपका कार्ड तिथि ३-६-८७ का तिथि १३ को पहुँचा. समाचार ज्ञात हुआ, आपने लिखा कि दैनिकके आनेपर हम विविध स्थानीय समाचार देंगे सो हम अति आदरसे स्वीकार करते हैं. हमने कार्यालयको आज्ञा दे दी है, दैनिक हिन्दोस्थान आपकी सेवामें जाया करेगा. आप अपने प्रतिज्ञाके अनुरूप समाचार देते रहिये और कृपा करके अन्य ग्राहक करनेका भी आपको प्रयत्न करना चाहिये देशके हितार्थ यह प्रकाश होता है और राजा साहबका काम है दूसरेका काम नहीं है.

आपका मित्र
Ramlal Mishra
आनरेरी म्यानेजर, हनुमत प्रेस

हिन्दोस्थान-कार्यालयके इस कार्डसे इस धारणाका स्वतः खण्डन हो जाता है कि सन् १८८६ के बाद गुप्तजीके हिन्दी सीखनेका समय आया। इस विषयमें यह कहा जाता है कि एक बार मेरठमें पण्डित दीनदयालु शर्मा, बाबू बालमुकुन्द और दूसरे कई सज्जनोंने हिन्दी सीखनेकी प्रतिज्ञा की थी। इसमें सन्देह नहीं कि उन दिनों मेरठ प्रसिद्ध नागरी-प्रचारक पण्डित गौरीदत्तके कारण हिन्दी-नागरीका केन्द्र बना हुआ था और भारतधर्म-महामण्डलके सम्बन्धसे पण्डित दीनदयालुजीका वहाँ आना-जाना प्रायः बना ही रहता था। अतएव यह सर्वथा सम्भव है कि पण्डित गौरीदत्तजीने पण्डित दीनदयालुजी और उनके अभिन्न मित्र गुप्तजीसे उर्दूकी जगह हिन्दीको व्यवहारमें लानेका आग्रह-पूर्ण अनुरोध किया हो। किन्तु गुप्तजीकी भाँति पण्डितजी भी देवनागरी अपने घरपर सीख चुके थे। इन पंक्तियोंके लेखकको स्वयं पण्डितजीसे ज्ञात हुआ था कि हिन्दीको अपनानेकी प्रेरणा आरम्भमें उन्हें बृन्दावनके प्रसिद्ध वैष्णव महात्मा नारायण स्वामीजीसे मिली थी। लेखकको स्मरण

है कि श्रद्धेय पण्डितजी उक्त स्वामीजी द्वारा रचित ब्रज एवं भगवान श्रीकृष्णकी महिमायुक्त दोहावली* मंगलाचरणमें बोलकर ही प्रायः अपना भाषण आरम्भ किया करते थे। पण्डितजीने सन् १८८५ ई० में मथुरासे जो "मथुरा-अखबार" नामक उर्दू पत्र निकाला था—उसमें वे सबसे पहले ईश्वरकी एक स्तुति हिन्दीमें ही देते थे, यह स्वयं गुप्तजीने लिखा है। गुप्तजीके हिन्दी सीखनेका नहीं—बल्कि हिन्दीको पूरी तौरपर अपना लेनेका सन् १८८८ ई० माना जा सकता है। इसका प्रमाण स्वयं उनके हाथका लिखा निजी पत्र-व्यवहारका एक रजिस्टर है, जिसमें पत्रोंकी रवानगी नाम, पते और विषय सहित दर्ज की गई है। सन् १८८८ ई० से पूर्व इस रजिस्टरकी खानापूरी उर्दूमें होती रही है। इस सन्के आरम्भमें उर्दूका स्थान हिन्दी—नागरीलिपिने ले लिया। इसी सन्में गुप्तजीने राजा लक्ष्मण सिंहको उनकी निर्मित हिन्दी पुस्तकोंका पता-ठिकाना पत्र भेजकर जानना चाहा है, जिसके उत्तरमें राजा साहबका कार्ड है :—

आगरा, २१ अप्रेल

महाशय,

मेघदूत आपको लाला काशीनाथ खत्रीसे मुकाम सिरसा, जिला इलाहाबादसे मिल सकेगा और रघुवंश मुन्शी नवलकिशोरसे, मेरा

---

* उस दोहावलीमेंसे कुछ दोहे ये हैं :—

"ब्रज चौरासी कोसमें, चार गाम निज धाम,
वृन्दावन अरु मधुपुरी, बरसानो नँदगाम।
वृन्दावन के बास कर, साक-पात नित खात,
तिनके भाग्यनको निरख, ब्रह्मादिक ललचात।
हम न भये ब्रजमें प्रगट, रही यही मन आस,
नित प्रति निरखें जुगल छवि, कर वृन्दावन बास।
नारायण ब्रज भूमिको, सुरपति नावैं माथ,
जहाँ आय गोपी भये, श्रीगोपेश्वर नाथ"

शकुन्तलाका नया अनुवाद हिन्दीके गद्य-पद्यमें आगरेके ठाकुर जाहर सिंहसे मिलेगा—

लछमनसिंघ

* * * *

अलीगढ़के प्रसिद्ध हिन्दीभक्त बाबू तोतारामजी वकीलसे भी गुप्तजी-का मित्रतापूर्ण पत्र-व्यवहार होना पाया जाता है। वह पत्राचार लाला श्रीनिवासदासजीकी हिन्दी पुस्तकोंके सम्बन्धमें हुआ था। इस समय गुप्तजी कविवर पं० श्रीधर पाठकजीके स्नेहभाजन बन चुके थे। गुप्तजीने पं० श्रीधर पाठकजीको उनकी रचित पुस्तक "ऊजड़ ग्राम"के लिये जो कार्ड भेजा था, उसकी अविकल प्रतिलिपि यह है :—

नं० ३६०, * Sent 22-6-88. लाहौर, कोहेनूर प्रेस

१६-६-८८

श्रीयुत॥ १३ जूनके हिन्दोस्थानमें आपका विज्ञापन देखकर मुझे चेष्टा हुई कि मैं भी आपकी नवीन ढंगकी सरस कविताको देखूं। इससे पहले मैंने काशी पत्रिकामें आपका अनुवादित ऊजड़ ग्राम देखा है और मेरा जी चाहता है कि उसको पूरा देखूं। इससे आप कृपा करके १ कापी उसकी मुझे भेज दें तथा और कोई ऐसी पुस्तक हो तो वह भी भेज दें। इनका मूल्य मैं आपके लिखने मूजब भेज दूंगा और कोहेनूरमें अपनी संमति भी प्रकाश करूंगा। विशेष शुभ

आपका—

बालमुकुन्द

सम्पादक कोहेनूर

लाहौर

---

* यह नम्बर गुप्तजीके निजी पत्राचारके रजिस्टरका है। यह रजिस्टर मौजूद है। इससे सिद्ध है कि गुप्तजी अपनी दिनचर्याको लिपिबद्ध करनेमें कितने सचेष्ट थे।

उर्दू 'कोहेनूर'-सम्पादक स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्त (सन १८८६)

पाठकजीने उन्हें राजा शिवप्रसादका गुटका और दुर्गेशनन्दिनी—दो पुस्तकें भेजी थीं। प्राप्ति-स्वीकारमें पाठकजीके नाम गुप्तजीने धन्यवाद सूचक-कार्ड ११-६-८८ को लिखा था, जिसका चित्र अन्यत्र दिया जाता है, वह उनकी उस समयकी हस्तलिपिका नमूना है। पाठकजीकी काव्य-कृतियोंकी समालोचना गुप्तजीने अपने सम्पादित कोहेनूरमें की थी। वह समालोचना उनके उस समयके हिन्दी-अनुराग और हिन्दी-ज्ञानकी निदर्शक है। देखिये कैसी सुन्दर और सरल उर्दूमें कोहेनूरके पाठकोंको उन्होंने हिन्दीके काव्य-रचयिता पाठकजी और उनकी रचनाका परिचय दिया है :—

"पण्डित श्रीधर पाठक साहब इलाहाबादी जिन्होंने सालगुजिश्तामें गोल्डस्मिथके "हरमिट" का तर्जुमा हिन्दीमें किया था और जिसका रिव्यू दर्ज 'कोहेनूर' हुआ था, इस साल उन्होंने उसी विलायतके मशहूर शायर गोल्डस्मिथकी एक आला दर्जेकी मशहूर नज्म "डेजर्टेड विलेज" का तर्जुमा "ऊजड़ गाम" के नामसे किया है। तर्जुमेकी हिन्दी आला दर्जेकी मीठी है। खूबी यह है कि लफ्ज लफ्ज तर्जुमा है और फिर इतना साफ है कि अगर असल किताबकी खूबसूरती देखी जाय तो इससे ज्यादा नहीं है और अगर श्रीधरजी अपने ही खयालातको अदा करते तो भी इससे उम्दा न कर सकते। यह वह दिलके पुरजा करनेवाली नज्म है, जिसे शायरने अपने वतनके उस गांवकी तबाहीको देखकर लिखा था जिसमें वह पैदा हुआ, बढ़ा और खेला था। अफसोस है कि उर्दूके अखबार होनेसे हम अपने नाजरीनको न हिन्दी ही का मजा दिखा सकते हैं न अंग्रेजीका, वरना वह समझ सकते कि वह किस गजबकी नज्म है। उर्दूवालोंने यह ढंग लिया ही नहीं। शाहनामा फारसीमें अलबत्ता बाज मुकामातसे कुछ इस किस्मके शेर निकल सकते हैं, मगर इसके बादके फारसी शेर अभी उस ढंगपर न चल सके।

हिन्दी भाषामें भी यह रंग न था, संस्कृतमें अलबत्ता था। अब श्रीधरजीकी इनायतसे भाषाको यह बात नसीब हुई और हम उम्मीद करते हैं कि अब हमारे उर्दू शायर भी नेचरल नजारोंकी तरफ फर्जी खयालातको तर्क करके मुतवज्जह होंगे। हम श्रीधरजीकी खास तारीफ इसलिये करते हैं कि वह हिन्दीमें एक नई जान डाल रहे हैं और उनका तर्जुमा उन युरोपियन मुसन्निफोंके तर्जुमासे किसी तरह कम नहीं है, जिन्होंने रामायण, मेघदूत वगैरहका अंग्रेजी नज्ममें तर्जुमा किया है। क्या हमारा मुल्क भी अपने शायरकी वही दाद करेगा, जो युरोपने अपने शायरोंकी की। हमारे हिन्दीदां नाजरीनको यह किताब देखनी चाहिये।"

सन् १८८६ का वह दिन सचमुच हिन्दीके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखने योग्य है, जिस दिन भारतधर्म-महामण्डलके द्वितीयाधिवेशनके अवसर पर बृन्दावनमें व्याख्यान-वाचस्पति श्रीपंडित दीनदयालु शर्माजीने कोहेनूर-सम्पादक गुप्तजीको भारतभूषण पं० मदनमोहन मालवीयजीसे मिलाया। महामना मालवीयजी शास्त्रमर्मज्ञ सनातनधर्मानुयायी विद्वान् थे और थे हिन्दीके प्रथम दैनिकपत्र "हिन्दोस्थान" के सम्पादक। गुप्तजी भी उसी धर्म तथा संस्कृतिके दृढ़ानुयायी एक मशहूर उर्दू पत्रकार थे। एक दूसरेके नामसे परिचित होने पर भी दोनों ही महानुभावोंका पहले मिलन नहीं हुआ था। इसी मिलनके परिणाममें आगे चलकर गुप्तजी हिन्दी दैनिक हिन्दोस्थानके सम्पादकीय विभागमें प्रविष्ट हुए और उनकी नियमित हिन्दी सेवा आरम्भ हुई। तदनन्तर अपनी आयुके प्रायः १८ वर्ष उन्होंने हिन्दीकी आराधनामें ही व्यतीत किये।

बृन्दावनमें मालवीयजीसे गुप्तजीकी भेंट सन् १८८६ के आरम्भमें हुई थी और वे हिन्दोस्थानके सम्पादकीय विभागमें पहुँचे थे सन् १८८६ ई० के अन्तिम भागमें। पहली भेंटमें ही मालवीयजीसे गुप्तजीकी

घनिष्ठता इतनी बढ़ी कि वे उनके अनुरोधकी रक्षामें "हिन्दोस्थान" में प्रकाशनार्थ लेख और टिप्पणियां भेजने लगे थे। उस समयका पूज्य मालवीयजीका एक कार्ड और पत्र क्रमानुसार पढ़िये :—

श्रीः

लखनऊ

२६ अप्रैल सन् १८८६

प्रिय बालमुकुन्दजी,

हम आज ५ दिनसे लखनऊमें मुंशी गंगाप्रसादके स्थान पर ठहरे हैं. कांग्रेसके लिये चन्दा एकत्र करानेको आये हैं. कदाचित् कल गोरखपुर जांय. पत्र लिखिये तो गंगाप्रसादके पते से. आपने टिप्पनी भेजी सो मैंने कालेकांकर भेज दी हैं, उनमेंसे जो एक बार छप न चुकी होंगी वे छप जायंगी.

मुझको कोहेनूरकी वे कापियां अभी तक नहीं मिलीं जिनमें आपने हिन्दोस्थानकी समालोचना की थी. कृपाकर शीघ्र मंगाकर मेरे पास भेज दीजिये. विना उसके मैं नोटिस नहीं छापना चाहता. लेख भेजनेमें संकोच न कीजिये. बराबर भेजते जाइये.

हम आशा करते हैं कि चिरकालके उपरान्त घर पहुंचकर आप अपने कुटुम्बजनोंके साथ सुख और प्रसन्नतासे समय बिता रहे हैं.

आपका हितैषी

मदनमोहन मालवीय

* * * *

श्रीः

प्रिय बालमुकुन्दजी,

रुष्ट होनेकी हमारी ऐसी बान नहीं जैसा आप समझते हैं. जवाब हम भेज चुके. कई दिन हुवे, पोस्टकार्ड अवश्य अब पहुंचा होगा.

मालवीयजी सम्पादक थे। बाबू शशिभूषण चटर्जी बी० ए०, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त तथा दो तीन और भी लोग उक्त पत्रकी सम्पादक-मण्डलीमें शामिल थे। मालवीयजीके जीमें पत्रकी उन्नतिके विषयमें बड़े-बड़े ऊँचे विचार थे। पर कुछ दिन पीछे वह वकालतकी परीक्षाकी तैयारी करने लगे। जल्द ही वह "हिन्दोस्थान" से सम्बन्ध छोड़ने पर विवश हुए। उनके अलग होने पर बाबू शशिभूषण-जी पत्रके सम्पादनमें अधिक परिश्रम करने लगे। कोई एक सालतक उनका साथ रहा। पीछे वह भी अलग हो गये। कुछ दिन पीछे पण्डित प्रतापनारायण मिश्र भी अलग हो गये। तब पण्डित शीतलप्रसादजी बुलाये गये थे। दो सालसे कमके भीतर ही यह सब उलटा पलटी हो गई। अन्तमें पण्डित शीतलप्रसादजीको छोड़कर हमें भी अलग होना पड़ा।"

......'उस समय "हिन्दोस्थान" पत्रका कोई आफिस न था। प्रेसमें छापनेके सिवा और किसी कामके लिये स्थान न था। वहाँ कभी प्रूफ देखनेके लिये जाना पड़ता था। एडिटर लोग अपने रहनेके स्थानों ही में अलग-अलग लिखते थे। पण्डित मदनमोहनजी अपनी कोठीके आगे उसारेमें बैठकर लिखते थे। हमलोग भी कभी-कभी वहीं पहुँच जाते थे। हमलोग अपने-अपने ठिकाने पर लिखते थे। मदनमोहनजी-के काम छोड़ देनेपर शशि बाबू, पण्डित प्रतापनारायण और हम बहुधा हमारे ही स्थान पर एकत्र होकर लिखते थे। यह मेल बहुत दिन तक रहा।".........

हिन्दोस्थानके सम्पादक-मण्डलमें प्रविष्ट होने पर गुप्तजीको भारतेन्दुजीके अनन्य भक्त पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्रके सत्सङ्गका लाभ उठानेका विशेष सुयोग मिला था। मिश्रजीसे गुप्तजीने हिन्दीके पुराने पद्य साहित्यका मर्म समझा और हिन्दीमें कविता करना भी

सीखा। उदार-हृदय गुप्तजी मिश्रजीका गुरुभावसे स्मरण किया करते थे। उन्होंने अपनी फुटकर कविताओंकी संग्रह पुस्तक 'स्फुट कविता' मिश्रजीकी पवित्र आत्माको ही श्रद्धापूर्वक समर्पित की है। यह पुस्तक सन् १६०५ ई० में प्रकाशित हुई थी और भारतमित्रके ग्राहकोंको उपहारमें दी गई थी।

जिन दिनों गुप्तजी कालाकांकरमें थे, उन्हीं दिनों ब्रजभाषा और खड़ी बोलीके प्रश्नको लेकर "हिन्दोस्थान" में खूब वाद-विवाद चला था। दो दल बन गये थे। ब्रजभाषाके समर्थक पं० प्रतापनारायण मिश्र एवं पण्डित राधाचरण गोस्वामी थे और खड़ी बोलीके पक्ष-प्रतिपादक बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री तथा पं० श्रीधर पाठक। गुप्तजीने भी इस साहित्यिक विवाद पर मिस्टर हिन्दीके नामसे कई लेख लिखे थे। "भैंसका स्वर्ग" नामकी कविता उन्होंने उसी समय बनायी थी।* वह उनकी विनोदात्मक पहली हिन्दी रचना है। अपनी पद्य रचनाको गुप्तजी तुकबन्दी कहा करते थे। ब्रजभाषा और खड़ी बोली—दोनोमें उनकी रचनाएँ मिलती हैं। वे प्रचलित बोलचालकी भाषामें कविता करनेके विरोधी नहीं थे, उन्होंने स्वयं ऐसी कविता लिखी है। उनको आपत्ति थी हिन्दीसे भिन्न—खड़ी बोलीके नाम पर। गुप्तजीका कथन था "अरबी अरबकी है, फारसी फारिसकी है और हिन्दी हिन्दुस्थानकी,—पर यह खड़ा देश कौनसा है, जिसकी बोली खड़ी है। यदि खड़ी बोली वाले ऐसा अनघड़ नाम न रखते तो लोग इस नामको सुनकर इतना न चौंकते खैर, अब नाम तो वे रख चुके पर काम जरा ठीक-ठीक करना चाहिये।"‡

'हिन्दोस्थान' पत्रके ऊपर सम्पादककी जगह नाम केवल मालवीयजीका छपता था। उनकी अनुपस्थितिमें राजा रामपाल सिंहने सम्पादकका

---

* गुप्तजीके निधन पर भारतमित्रका लेख २८-९-१९०७ ई०।

‡ खड़ी बोली—शीर्षक लेख भारतमित्र १९०१ ई०।

पद अपने ही लिये रक्षित रख छोड़ा था। सम्पादकीय विभागमें जितने लोग थे, वे सब सहकारी या सहायक-सम्पादक कोटिमें थे। मालवीयजीने जब कानून पढ़नेके लिये सम्पादन-कार्यसे अवकाश लेकर प्रयागसे कालाकांकर आना जाना बन्द कर दिया, सब सहायक सम्पादकोंकी मण्डली 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक राजा साहबकी सहायक कमेटीके रूपमें रह गयी और बाबू बालमुकुन्द उस कमेटीके सभापति या मुखिया थे।* वह नवरत्न कमेटी कही जाती थी।

चैत्र शुक्ला ३ वृहस्पतिवार संवत् १९४९ (सन् १८९१ ई०) को अस्वास्थ्यवश गुप्तजी छुट्टी लेकर कालाकांकरसे अपने घर चले गये थे।

उस समयका मालवीयजीका एक कार्ड है :—

श्रीः

प्रयाग, ६ मार्च ९१

प्रिय मुन्शी बालमुकुन्दजी,

आपका २४ फे० का लिखा पत्र परसों चौथी मार्चको मुझे कालाकांकरमें मिला आप कुशलपूर्वक घर पहुंच गये, यह समाचार मुझको उस पत्रसे मालूम हो गया था जो आपने चौबेजीको लिखा था, तो भी आपका पत्र पानेकी चिन्ता लगी थी, रोहतकवाला मेमोरियल मय आपके तर्जुमेके मैंने † मोतीलाल को भेज दिया था, किन्तु यद्यपि ८ दिन हो गये आजतक प्राप्ति उन्होंने स्वीकार नहीं की, उनका पत्र आने पर आपको समाचार दूंगा, कन्सेंट बिलके विषयमें अपना मत मुझको अवश्य लिखियेगा, विशेष कल लिखूंगा,

आपका

म० मो० मालवीय

* हिन्दी-कोविदरत्नमाला (डा० श्यामसुन्दर दास) प्रथम भाग पृष्ठ १००-२

† अमृतबाजार पत्रिकाके सम्पादक बाबू मोतीलाल घोष।

यह कार्ड बतलाता है कि मालवीयजीके हृदयमें गुप्तजीके प्रति कितना प्रेम था और वे उनका मत जाननेके लिये कितने समुत्सुक थे। उस समयका मालवीयजीका एक स्वीयत्व सूचक अन्य कार्ड भी उद्धृत किया जाता है :—

श्रीः

प्रिय मुंशी बालमुकुन्दजी,

मेरी परीक्षाका हाल आज प्रकाशित हुआ है, मैं जिलेमें पास हूं और बहुत शीघ्र वकालत प्रारम्भ करूंगा, आगामी नवम्बरमें जो एल० एल० बी० की परीक्षा दूंगा उस्से हाईकोर्टमें वकालत करनेका अधिकार भी प्राप्त हो जायगा, विशेष फिर

प्रयाग — आपका

७-३-६१ — मदनमोहन

गुप्तजीके लिये वापस लौटकर कालाकांकर पहुँचनेकी जो तिथि निर्दिष्ट थी, जब उस पर वे वहाँ नहीं पहुँचे, तब राजा साहबको मौका मिल गया। उन्होंने उसी दिन ता० १ फरवरी सन् १८६१ को हिन्दोस्थान कार्यालयमें इस आशयका हुक्म जारी कर दिया—"मुन्शीजीको आज आना चाहिये था सो अपने नियत समय पर नहीं आये, इसलिये हमारे चले जाने पर * उनका लेख जाने योग्य न होगा, कारण गवर्नमेंटके विरुद्ध बहुत कड़ा लिखते हैं, अतएव इस स्थानके योग्य नहीं हैं।" राजा साहबकी यह आज्ञा वस्तुतः गुप्तजीकी देश-भक्तिका एक प्रमाण-पत्र है। सचमुच उस समय गौराङ्ग महाप्रभुओंके शासनके विरुद्ध भारतीय हित-साधनकी दृष्टिसे निर्भीक होकर लेखनी चलाना बड़े साहसका काम था। तब तक देशवासियोंकी मोह-निद्रा भङ्ग नहीं हुई थी। स्वतन्त्रचेता गुप्तजीने उस मोह-निद्राको दूर कर उनमें देश-भक्तिकी भावना भरनेका जीवनभर प्रयत्न किया।

* राजा साहब उस समय विलायत जा रहे थे।

राजा साहबके उक्त आदेशकी सूचना पं० रामलाल मिश्रजीके निजी पत्र द्वारा गुप्तजीको मिली थी। प्रस्तुत विषयमें एक कार्ड गुप्तजीके तत्सामयिक सहकर्मी पं० शीतलाप्रसाद उपाध्यायजीका भी यहाँ दिया जाता है :—

कालाकांकर ७-२-९१

प्रिय,

आपका पोस्टकार्ड आया, समाचार ज्ञात हुआ, आपके विषयमें महाराजका जैसा ख्याल है, वह आप पर विदित हो गया होगा, मुझको इस बातसे अत्यन्त ही खेद है, एक तो कुछ कालके लिये आपके जाने ही से उदास था, अब सदैवके लिये जुदा होनेसे और अधिक रंज है, परन्तु इसमें वश क्या है ? महाराजकी ऐसी ही इच्छा है, आपके विषय में मैंने अमृतबाजार पत्रिकाको लिख दिया है, अब आप क्या प्रबन्ध करते हैं ? आपका रुपया मैं दूंगा, परन्तु शीघ्र नहीं दे सकता हूं; क्योंकि अभी तक वेतन नहीं मिला है, जिस समय वेतन मिलेगा, अवश्य भेज दूंगा। मुझे आशा है कि आप समयानुसार अपने समाचारसे अवगत अवश्य कीजियेगा,

आपका मित्र
सीतलाप्रसाद उपाध्याय *

* पं० शीतलाप्रसाद उपाध्यायजीका जन्म 'मिश्र-बन्धु' विनोद (तृतीय भाग पृष्ठ १३०५) के अनुसार संवत् १९१७ में हुआ था। उनके रचनाकालका आरम्भ संवत् १९४३ से माना गया है। उनके पिताका माम पं० दिक्पाल उपाध्याय था। उपाध्यायजीकी रची पुस्तकें—(१) दूरदर्शी योगी (२) शीतल समीर (३) शीतल सुमिरनी (४) राजा रामसिंहकी बानी (५) राजा रामपालसिंहकी योरप यात्रा (६) धर्मप्रकाश, इत्यादि हैं। "हिन्दोस्थान" के स्वामी राजा साहबके उत्तराधिकारी श्री रमेशसिंहने जब "सम्राट्" नामक पत्र निकला, तब उसका भी सम्पादन बर्षोतक उपाध्यायजी करते रहे। उनका उल्लेख मिश्र बन्धुओंने शीतलप्रसाद उपाध्यायके नामसे किया है; किन्तु उपाध्यायजीके पत्रोंमें 'सीतलाप्रसाद' नाम मिलता है। उपाध्यायजी गहमर (गाजीपुर) निवासी थे।

हिन्दोस्थानसे सम्बन्ध छूट जाने पर भी अपने सहकर्मियोंसे उनका प्रेम-सम्बन्ध पूर्ववत् बना रहा, जिसका पूर्णाभास पं० रामलाल मिश्र, पं० सीतलाप्रसाद उपाध्याय, पं० गुरुदत्त शुक्ल और बाबू गोपालराम गहमरीके उस समयके लिखे हुए उपलब्ध पत्रोंसे मिलता है। जिन राजा साहबने उनकी पदच्युतिकी आज्ञा बिना किसी पूर्व सूचनाके एकाएक दे डाली थी, उनके प्रति भी सहृदय गुप्तजीके मनमें किसी प्रकारकी दुर्भावना स्थान नहीं पा सकी थी। यह थी उनके चरित्रकी महत्ता।

उस समय गुप्तजी अमृतबाजार पत्रिकाके यशस्वी प्रवर्त्तक एवं सम्पादक बाबू मोतीलाल घोषसे सम्बन्ध रखते थे, यह भी उनके लिये कम गौरवजनक नहीं है। घोष महाशयकी गणना वर्तमान भारत राष्ट्रके निर्माताओंमें की जाती है। वे गुप्तजीको अपना विश्वासभाजन मानते थे। इसका संकेत उपाध्यायजीके पूर्वोद्धृत पत्रमें मिलता है, यही नहीं, स्वयं घोष महाशयका भी उस समयका एक पत्र गुप्तजीके नाम है:—

My Dear Balmukund,

Here is the translation of the article of Khair Khat.* You will see how facts have been misrepresented. So, you have no cause for anxiety. Write to the editor of the paper that he has not only misrepresented facts, but he has actually insulted the Hindus to influance the Dy. Commissioner. So he ought to apologize. Tell him also that the correspondent of the 'Patrika' never said that the Hindus

* "खैर खत" उस समयका एक उर्दू अखबार था।

were made to eat beaf. Do not fail to write atonce. I hope you got my telegram.

Yours Sincerely,
Sd/- Motilal Ghose.*

गुप्तजीका 'हिन्दोस्थान' पत्रसे पृथक् किया जाना उस समयके साहित्य-सेवियोंको कितना अखरा था और गुप्तजी किस दृष्टिसे देखे जाते थे, इसका किञ्चित् आभास पं० श्रीधर पाठकजीके एक पत्रसे मिलता है, जो उन्होंने गुप्तजीके नाम लिखा था। पत्र यह है :—

श्री प्रयाग मार्च १, १८६१

मित्रवर,

केवल कल रात्रिको मदनजीसे † ज्ञात हुआ कि आप अब कालाकांकरमें नहीं हैं यद्यपि 'हिन्दोस्थान' की भाषा (आधुनिक) कुछ कालसे

---

* इस अंग्रेजी पत्रका हिन्दी-भाषान्तर यों है :—

प्रिय बालमुकुन्द,

यह "खैर खन" के लेखका अनुवाद है। इसमें आप देखेंगे कि असली बातें किस तरह विकृत रूपमें उपस्थित की गई हैं। अतः आपके लिये चिन्तित होनेका कारण नहीं है। पत्रके सम्पादकको लिखिये कि आपने सिर्फ वास्तविक बातोंको ही गलत रूपमें पेश नहीं किया है, बल्कि डिपुटी कमिश्नरको प्रभावित करनेके लिये हिन्दुओंको अपमानित भी किया है, इसलिये आपको माफी मांगनी चाहिये। यह भी लिखिये कि पत्रिकाके संवाददाताने यह कभी नहीं कहा है कि हिन्दुओंको गो-मांस खानेके लिये बाध्य किया गया। तुरन्त पत्र लिखनेमें न चूकियेगा। आशा है कि आपको मेरा तार मिला होगा।

आपका
मोतीलाल घोष

† पाठकजीका अभिप्राय पं० मदनमोहन मालवीयजीसे है।

स्वर्गीय पण्डित श्रीधर पाठक

ॐ लाहोर २२-९-८८

श्रीमहाराज प्रणाम।

TOO LATE.

कल्ह कृपाकार्ड और राजा शिवप्रसादकी गुटका पोंहची और थोड़ी देर पीछे दूसरी डाकमें दुर्गेशनन्दिनी पोंहची आपको कोटानकोट धन्यवाद है गुटका आपने मुझे विना मूल्य भेजा है उसको मैं आपकी कृपाका बोहत बड़ा चिन्ह समझकर विना मूल्य ही स्वीकार करता हूं मुझे आपके शरीरकी पीड़ासे बड़ा खेद है मेरी ओर यही प्रार्थना रही है मुझे आशा है कि मुझ सेवक पर इसी तरह आपकी दया रहेगी

आज्ञाकारी बालमुकुन्द गुप्त:

पाठकजीके नाम गुप्तजीका कार्ड—प्रारम्भिक समयकी हस्तलिपिका नमूना

सन १८८८ ई०

गुप्तजी द्वारा 'हिन्दोस्थान' से सम्बन्ध-विच्छेदकी सूचना पाकर मालवीयजीने उनको अपने ५-२-९१ के पत्रमें लिखा था :—

श्रीः ॥

प्रिय मुन्शी बालमुकुन्दजी,

"आपके २ ता० के दो पोस्टकार्ड पहुँचे. दूसरेको पढ़कर अत्यन्त दुःख हुवा. राजा साहबने क्या समझकर आपको डिसमिस किया है, वे ही जानते हैं अथवा जो कालाकांकरमें हैं वे जानते हों, किन्तु उन्होंने बुद्धिमानीकी बात नहीं की. हिन्दोस्थानके लिये जो आप करते थे वह दूसरा इतने अल्प वेतनमें संतोष करनेवाला पुरुष कदापि नहीं कर सकेगा. अस्तु, इच्छा उनकी. आप कालेकांकर जाकर अपना शेष वेतन, आदि ले आइये और वहांसे लौटकर कृपाकर इधर दो एक दिनको चले आइयेगा. ईश्वर चाहेगा तो शीघ्र आपको कोई अधिक हितकारी काम हाथ आजायगा.

आपको कोई ऐसा कार्य जिसमें अधिक (देशाटन) घूमना पड़े करना कैसा प्रिय होगा ? यदि पत्रिका वाले आपको कुछ मासिक कर दें और घूमनेका खर्च दें तो उनका कार्य जो अधिक अंशमें आपका, हमारा, देशका कार्य है,—आपको स्वीकार्य होगा ? मुझसे उनसे कुछ इस प्रकारकी बातचीत नहीं आई. केवल उन्होंने एक बार अंग्रेजी हिन्दुस्तानके निकलनेपर मुझसे पूँछा था कि क्या बालमुकुन्दका कार्य अब हिन्दोस्थान आफिसमें न रहेगा—उनको आपकी तबियतके हिन्दोस्थानी सज्जनकी आवश्यकता मालूम देती है. यदि आपको पसन्द हो तो लिखिये कि आप किस वेतन पर और किन शर्त्तोंपर उनके घूमते करेस्पांडेंट होना स्वीकार करेंगे. आपका पत्र आनेपर मैं उनसे इसकी साफ २ बातचीत करूँगा. कार्य वह ऐसा ही चाहेंगे

कि जैसा रोहतकमें जाकर वहां उचित कारवाई करना—गोचारन विषय-में—देशी राज्योंमें जाकर वहां ठीक २ समाचार देना इत्यादि।

कृपाकर उत्तर शीघ्र लिखियेगा ।

आपका हित०

५-२-६२, मदन मोहन मालवीय

रोहतकमें क्या हुवा सो भी समाचार लिखियेगा, कन्सेंट बिलका विरोध वर्तमान अवस्थामें अनुचित निष्फल और कांग्रेसके लिये अत्यन्त हानिकारी है, किन्तु विशेष आपके आनेपर कहेंगे।

[६]
उन दिनोंके मित्र

अपने राजनीतिक विचारोंकी उग्रताके कारण "हिन्दोस्थान" का सम्पादकीय सम्बन्ध छूट जानेके पश्चात् कुछ समय तक गुप्तजीने गुड़ियानीमें ही निवास किया और उर्दू अखबारोंके लिये लेख एवं कविताएँ भेजनेका उनका नियम चालू रहा। उन्होंने इस अवसरका उपयोग अपना अंग्रेजी भाषा-ज्ञान बढ़ानेमें भी किया। वे पण्डित श्रीधर पाठकजीको डाक द्वारा अपना परचा * भेज देते और पाठकजी उनके परचेको अंग्रेजी शब्दों एवं वाक्योंके उच्चारण तथा अर्थ लिखकर लौटा देते। इस कार्यमें पाठकजीके अतिरिक्त "हिन्दोस्थान" के सम्पादन-कालके अपने एक साथी पण्डित शीतलाप्रसाद उपाध्यायसे भी गुप्तजीने सहायता ली थी और मालवीयजीको भी लिखा था, किन्तु मालवीयजी

* पत्राचार द्वारा अपना अंग्रेजी भाषा-ज्ञान बढ़ानेके समयका एक परचा गुप्तजीके हाथका हलके गुलाबी रंगके कागजका मिला है। इसमें मूल अंग्रेजी शब्द और वाक्य गुप्तजीके लिखे हुए हैं और उनका उच्चारण तथा अर्थ पाठकजीका। अन्तिम पृष्ठ पर अपने अभिप्रायकी सूचक पाठकजीकी लिखी हुई ये पंक्तियाँ हैं :—

"मित्रवर,

लीजिये, इन्हें लिखकर आज जयपुरको जाता हूं पाँच दिनमें लौटूंगा, तबतक आप दूसरा परचा भेजियेगा, मैं परम प्रसन्नतासे आपकी साहाय्य (यथाशक्ति) दूंगा, शरीर बीचमें कुछ दिनों अच्छा था पर अब पुनः रोगावलम्बी हो गया है। प्रारब्धका फल अवश्य भोक्तव्य।

आपकी सानन्द होलीका अभिलाषी—श्रीधर पाठक।

स्वयं एल० एल० बी० की परीक्षा देनेकी तैयारीमें व्यस्त थे, इसलिये उन्होंने अवकाशाभावके कारण क्षमा चाही थी* यहाँ पाठकजीके तीन कार्डोंके अतिरिक्त एक गुप्तजीके पत्रकी प्रतिलिपि दी जाती है। इनसे गुप्तजीकी अंग्रेजी भाषाके अध्ययनकी संलग्नता प्रकट होती है और उनके प्रति पाठकजीके प्रकृत स्नेहका परिचय मिलता है। जिस प्रकार गुप्तजी पाठकजीसे अपना अंग्रेजी भाषाका ज्ञान-वर्द्धन कर रहे थे, उसी प्रकार उर्दूमें अपना अभ्यास बढ़ानेके प्रसङ्गमें कठिन शब्दोंका अर्थ जाननेके लिये पाठकजी भी उनसे सहायता लेनेके इच्छुक थे। दोनों ओर पारस्परिक सहानुभूति और सहायताकी कितनी गहरी भावना थी, यह भी उनके पत्रोंसे स्पष्ट झलकता है।

पाठकजीका एक कार्ड :—

श्रीप्रयाग २०। ११। ६१

मित्रवर,

१८ का कृ० का० प्राप्त—आपका साहस और उत्साह (विद्योपार्जनमें) सराहने योग्य हैं, चार रीडर आपने समाप्त करलीं यह सुनकर बड़ा आनन्द हुआ, Practical English के लिये यदि रामकृष्ण खत्री

---

* ६-१०-९१ के अपने पत्रमें मालवीयजी लिखते हैं :—

प्रिय मुंशी बालमुकुन्दजी,

आपका १९ सित० का पत्र पहुंचा, आजकल मैं एल० एल० बी० की परीक्षाके लिये परिश्रम कर रहा हूं. इससे दो मास मुझे आपको अंगरेजी पढ़नेमें सहायता देनेका अवसर नहीं, क्षमा कीजिये। परीक्षा हो जाने पर प्रसन्नतासे दूंगा, राजा साहबने अबतक रुपया नहीं दिया, बुरा किया, पर लिखते जाइये एक दिन अवश्य देंगे मैं भी फिर उनसे कहूंगा, कृपा दृष्टि बनाये रहियेगा,

आपका

म० मो० मालवीय

बनारसको लिखियेगा तो वह वे० पे० पो० में भेज देगा, प्रथम पार्ट मंगाइये—दाम पांच छैः बरस हुए, १६ या २० आने था अब भी वही या कुछ कम होगा,

अधिक आज्ञाओंका प्रतीक्षक, आपका शुभैषी
श्रीधर पाठक

'ऊजड़गाम' से हमें १५०) से ऊपर घाटा हुआ। ६५० प्रति घर पर पड़ी हैं।

गुप्तजीका उत्तर :—

॥ श्रीः ॥

गुड़ियानी २५-११-६१

पूज्यवर प्रणाम।

२० के कार्डके उत्तरमें सविनय निवेदन है कि आज मैंने Practical English के लिये बाबू रामकृष्णको लिख भेजा आशा है कि पुस्तक मुझे मिलेगी। अब कृपा करके आप बताइये कि मै Grammer (कैसे पढ़ूं ?) आप पढ़नेकी तरकीब बताइये उस्ताद कोई नहीं है। एक कापी ऊजड़ ग्रामकी सनातनधर्म गजट स्यालकोट पंजाबको भेजिये और भेजनेकी इत्तिला मुझे दीजिये. आशा है कि कुछ लाभ होगा। एक मासके लिये हिन्दी बंगवासीमें विज्ञापन छपवाइये अवश्य बिकेंगी वह पत्र ६००० बिकता है एक कापी उसे रिव्यूके लिये भी भेजिये चाहे वह रिव्यू करे वा न करे परन्तु विज्ञापन अवश्य छपवाइयेगा। आपने इस पुस्तकके छपवानेमें लागत बहुत लगाई एकान्तवासी योगीकी भांति छपवाते तो १५०) की हानि न होती मैं और भी उद्योग करूंगा।

सेवक—बालमुकुन्द

पाठकजीका दूसरा कार्ड है :—

श्रीप्रयाग ११-७-६७

मित्रवर,

आप अवश्य कापी मेरे पास भेजिये, मैं उसे देखकर पूर्ववत् लौटा दिया करूंगा और Companian का लेना भी अच्छा होगा.

मैंने उर्दू सीखनेका आरम्भ पुनः किया है और शायद शब्दोंके अर्थोंके लिये आपको कष्ट देना पड़ेगा. बं० वा० मे वि०* देनेका अभी इरादा है.

शुभैषी—

श्रीधर पाठक

* * * *

पाठकजीका तीसरा कार्ड यह है :—

श्री प्रयाग

मित्रवर, नवं० २६, ६२

आपके कृपा कार्डके उत्तरमें एक कार्ड मैंने नारायणीतड़ाग (नैनीताल) से भेजा था—सो पहुंचा होगा. इसके द्वारा आपको मंगल समाचार देता हूं कि, अब मेरा मासिक १००) हो गया है, मित्रवर, अवकाशके अभावसे कुछ लेख भारतप्रकाश † के लिये नहीं भेज सका हूं, और अब भारती भवनमे उसे देख सका हूं. अतः पृथक कापीकी आवश्यकता नहीं है।... ...

आशा है, कौन्ग्रेसके अवसर पर मिलना होगा—आप मेरे ही स्थान पर ठहरियेगा।

शु० श्री० पा०

* * * *

* हिन्दी बंगवासी।

† भारतप्रताप ?

राजा रामपालसिंहजी विलायत जा रहे थे, इसलिये उनके विशेषानुरोधसे मालवीयजी 'हिन्दोस्थान' की देखभाल फिर करने लगे थे। मालवीयजीने गुप्तजीके साथ विचारोंके आदान-प्रदानका सिलसिला उनके "हिन्दोस्थान" से अलग हो जानेके बाद भी जारी रखा। गुप्तजीकी रायका वे कितना आदर करते थे, उन्हें किस दृष्टिसे देखते थे, कितनी हितचिन्तना करते थे, ये सब बातें उन्हींके निम्नोद्धृत पत्रोंसे जानी जा सकती हैं। यथा :—

श्रीः

कालाकांकर
११-३-९१

प्रिय मुन्शी बालमुकुन्दजी,

आपका ६ का कार्ड पहुंचा, जो लेख आप भेजेंगे, उनका जबतक मैं यहां हूं, उचित आदर किया जायगा, यदि आप कन्सेंट बिलके विरुद्ध अपनी संमति प्रकाश करना चाहते हैं तो अवश्य कीजिये, मैं छाप दूंगा, यद्यपि मैं समझता हूं बिलके उठा लेनेके लिये लेख लिखना बिलकुल निष्फल है,

महर्षि मण्डलमें दीनदयालुजी क्या करना चाहते हैं, किस प्रकारके लोगोंके आनेकी आशा है, यह सब दीनदयालुजीसे पता लगाकर लिखिये, आजकल वे कहां हैं सो भी लिखिये,

मैं हरिद्वारमें अबकी बार उपस्थित होनेको बहुत उत्सुक हूं किन्तु जा सकनेकी आशा बहुत कम है,

आपका
मदनमोहन

श्रीः

कालाकांकर

२०-३-६१

प्रिय बालमुकुन्दजी,

आपका १७ का पोस्टकार्ड पहुंचा, इतने दिन उत्तर न आनेसे चित्तमें शंका होती थी कि मेरा पत्र नहीं पहुंचा, प० चन्द्रिका प्रसाद (बंबईवाले) ने मेरे बिल सम्बन्धी लेखोंके विरुद्ध एक बहुत बड़ी चिट्ठी लिखी है, उसको सोमवारको छापूंगा अपने उत्तरके साथ, बहुत कुछ भाव जो उन्होंने प्रकाश किया है, उसमें आप और मैं—एक मत हूं—

महर्षिमण्डलका व्यौरा जाननेको मैं अति उत्सुक हूं, कृपाकर उसका सब पता लेकर लिखिये। आपकी—राम राम,—राजा साहिबकी खोई हुई पुस्तक गंगासहायके पास कल आ गई और पंडित रामलालको सौंपकर उनसे रसीद ले ली गई, कुशल पत्र लिखते जाइयेगा।

आपका

म० मो०

श्रीः

प्रयाग

७-४-६१

प्रिय मुन्शी बालमुकुन्दजी,

मुझे खेद है कि मैं हरिद्वार न जा सकूंगा, यदि आप जा सकिये तो अवश्य जाइये, ऐसे अवसरों पर न उपस्थित होनेका बहुत दिनतक पछतावा करना पड़ता है, आपके जानेसे, प० दीनदयालजीको संमतिकी भी सहायता मिलेगी, यदि जाइये तो वहांका पता लिखियेगा और सब समाचार वहांका लिखियेगा—

आपका हितैषी

मदनमोहन मालवीय

श्रीः

प्रयाग २४ मई, सन् १८९१

प्रिय मुं० बालमुकुन्दजी,

आपके १२ और २२ मईके दोनों पत्र पहुंचे, मुझे खेद है कि आपको भी नेत्र पीड़ाने सताया है, अब कृपाकर लिखिये आपके तथा आपकी पत्नीके नेत्रोंकी क्या दशा है—मैं आशा करता हूं कि दोनोंकी दशा अच्छी है कालेकांकरसे आनेसे पूर्व राजासाहबसे आपके रुपयोंके विषयमें दो बार कह चुका था, उन्होंने दोनों बार कहा था कि मैं अवश्य भेज दूंगा, चलते समय मैं प० रामलालसे भी कह आया हूं, और मुझे निश्चय है कि थोड़ा शीघ्र हो या विलंबमें महीने पन्द्रह दिन मात्रका अन्तर होगा, यदि वे देनेमें बहुत विलंब करेंगे तो मैं फिर एक दिनके लिये कालेकांकर चला जाऊंगा और आपका रुपया ले आऊंगा, यदि आप अपनी पत्नीके क्लेशका ठीक-ठीक निदान लिखिये तो मैं हाल साहबकी चिकित्साका वृत्तान्त लिखूं—पूछकर लिखना होगा, पं० दीनदयालुकी दयालुतासे मुझे भी एक भा० ध० म० मंडलसे तगमा मिला है, मुझे इसका शोक है—मैं किसी प्रकारसे अपनेको इस तगमेका अधिकारी नहीं समझता किन्तु अब क्या करूं ?

आपका—

मदन मोहन

* * * *

मालवीयजीके उक्त पत्रोंमें जिस 'कन्सेंट बिल' की चर्चा है, उस सहवास-वयोवृद्धि कानूनके प्रश्नको लेकर उस समय घोर आन्दोलन हुआ था। महर्षि-मण्डलका ब्यौरा जाननेकी भी मालवीयजीने उत्सुकता प्रकट की है। पण्डित दीनदयालुजी भारत धर्म-महामण्डलकी स्थापना संवत् १९४४ वि० (सन् १८८७ ई०) में कर चुके थे।

महामण्डलका दूसरा अधिवेशन वृन्दावन और दिल्लीमें हुआ था। इसके अनंतर पंडितजीने महामण्डलके तत्त्वावधानमें महर्षि-मण्डलके नामसे एक विशेष महोत्सव पुनः हरिद्वारमें कुम्भ (संवत् १९४८ वि०) के अवसर पर ऋषिकल्प परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी श्री विशुद्धानन्द सरस्वती महाराजकी अध्यक्षतामें करनेका आयोजन किया था। इस सम्बन्धमें पण्डितजीने जो विज्ञप्ति प्रकाशित की थी, उसमें लिखा है :—

"इस उत्सवमें महामण्डलके रक्षक, व्यवस्थापक और अन्यान्य धर्म-सभाओंके सभापति और सब सम्प्रदायोंके प्रसिद्ध पण्डित, सभाओंके उपदेशक, महोपदेशक सब लोग पधारेंगे। उत्सवके समय प्रधानतः देववाणी संस्कृतमें ही वक्तृताएं होंगी और सभापतिजी महाराजकी आज्ञाके अनुसार बड़े-बड़े विद्वानोंका शास्त्रीय विचार होगा। मुख्य-मुख्य बातोंका आशय सबको समझानेके लिये आवश्यक वक्तृताएँ हिन्दी भाषामें भी दी जायंगी......। महर्षिमण्डलमें साम्प्रदायिक वाद-विवाद अनुचित समझा गया है। सब पण्डितोंको, जो वक्तृता करेंगे अपने भाषणमें किसी सम्प्रदाय अथवा मत विशेषकी स्तुति-निन्दा करनेका वा किसी सम्प्रदायके सिद्धान्त विरुद्ध बोलनेका अधिकार न होगा। क्योंकि महर्षिमण्डलका मूल सिद्धान्त यही है कि सब सम्प्र-दायोंके अनुयायी विद्वज्जन एकत्र होकर परम प्रीतिपूर्वक परस्पर सम्मिलन करें और वैदिक और स्मार्त्तधर्मका जो सभी सम्प्रदायोंका मत है, विचार करें।"

एकबार राजा शशिशेखरेश्वर राय (ताहिरपुर-बंगाल) का एक जरूरी तार पाकर गुप्तजीको काशीकी यात्रा करनी पड़ी थी। चैत्र कृष्ण ३ संवत् १९४९—तदनुसार ता० १६ मार्च, बुधवार सन् १८९२ ई० को वे काशी पहुँचकर राजा साहबसे मिले थे। दूसरे दिन राजा साहब को जाना था। अतएव वे कलकत्ते चले गये और गुप्तजीने वापस

अपने घर लौटना निश्चय किया। उन दिनों गुप्तजीके मित्र भिवानी निवासी पं० माधवप्रसाद मिश्रजी काशीमें ही थे। गुप्तजीको काशीमें देवमन्दिरों और दर्शनीय स्थानोंको दिखानेमें मिश्रजी साथ रहे। भारतजीवन-सम्पादक बाबू रामकृष्णसे पहली बार गुप्तजी अपनी उसी काशीकी प्रथम यात्रामें मिले थे। इसके बाद ज्वराक्रान्त हो जानेके कारण उनको मिश्रजीके स्थानपर तीन दिन विश्राम करना पड़ा। मिश्रजी त्रिपुरा-भैरवी रामलालके मठमें रहते थे। उम्र उनकी २१ वर्षके लगभग थी। वे सर्वतंत्र स्वतंत्र महामहोपाध्याय प० राममिश्र शास्त्रीजी-से दर्शन-शास्त्रका अध्ययन कर रहे थे। प० माधवप्रसाद प्रेमवश मुगलसराय तक गुप्तजीको पहुँचाने साथ-साथ आये थे। मुगलसराय पहुँचकर गुप्तजीने सोचा कि, प्रयाग रास्तेमें पड़ता है,—सिराथू पास है; चलो कालाकांकर होते चलें—अपनी पुरानी बकाया वसूल होनेके सिवाय मित्रोंसे मिलना भी हो जायगा। यही विचारकर वे प्रयाग स्टेशनसे उतरकर सिराथू और वहाँसे इक्का करके मध्याह्नोत्तर ४ बजे २१ माच सन् १८९२ को कालाकांकर पहुँचे। मार्गमें उन्हें गंगाजीकी कई धाराएँ हो जानेसे नावमें चढ़ने-उतरने और खुश्कीपर चलनेसे अत्यन्त कष्ट हुआ। कालाकांकरमें उनके पूर्व परिचित लाला मोहरसिंह गंगा सहायकी दूकान थी, उन्हींके यहाँ वे ठहरे। मार्गकी थकानसे उन्हें ज्वर हो गया था। सूचना पाकर 'हिन्दोस्थान' कार्यालयके प० सीतलाप्रसाद उपाध्याय, प० रामलाल मिश्र, और बाबू गोपालराम आदि आये और जबतक वे वहाँ रहे, बराबर आते रहे। डाक्टर नागेन्द्रनाथने उनका औषधोपचार किया। डाक्टर सूखी दवा देता रहा। सवेरे-शाम दोनों समय, देखने आता था। गुप्तजीको कालाकांकरमें एक सप्ताह—ता० २८ मार्च तक ठहरना पड़ा। ज्वरसे मुक्त होनेपर वे अपने घरके लिये रवाना हो सके। राजा

साहबने रु० ५०) का चेक भेजकर उनका पिछला हिसाब बेबाक कर दिया था। *

भारतेन्दु-सखा पं० प्रतापनारायण मिश्रजीको गुप्तजी अपना आदरास्पद गुरु मानते थे, परन्तु मिश्रजीने सदा उनसे मैत्री सम्बन्ध रक्खा। उनकी तबीयत रँगीली थी। वे मस्त थे और वह मस्ती उनमें सीधी—भारतेन्दुजीसे आयी थी। भारतेन्दुजीको मिश्रजीने अपना उपास्य मान लिया था। वे हरिश्चन्द्राय नमः लिखने लगे थे। श्रीगणेशाय नमःकी जगह उनके हस्तलिखित पत्रोंके प्रारम्भमें हरिश्चन्द्रजीका स्मृति-स्वरूप अर्द्धचन्द्राकृति-चिन्ह अङ्कित है। वही चिन्ह उनके 'ब्राह्मण' पत्र पर छपता था। मिश्रजीका गुप्तजीके नाम आया हुआ एक पत्र—जिसपर ता० या मास, तिथि संवत् कुछ नहीं, किन्तु लिफाफे पर कानपुर डाकखानेकी रवानगीकी मुहर ५ जनवरी सन् १८६२ की है,—हम यहाँ देते हैं। इससे मिश्रजीके प्रेम, आन्तरिक स्वभाव तथा दिनचर्या इत्यादिका पता चलता है :—

प्रियवरेषु,

शुभमस्तु—सब आनंद हैं 'नित्योत्सवंहि वैतेषां नित्यश्री नित्य मंगलं। येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरिः' ब्राह्मण स्वर्ग तो नहीं गया पर बांकीपुर खड्गविलास प्रेस चला गया यह उसका सौभाग्य है! एडिटर हमीं है, पर और सब झंझटसे पाक। खड्गविलास वाले बड़ी भारी दया, अत्यन्त प्रेम करते है !!! राहुजी पाजी है, वह रु० बीसियोंका गपक बैठे हैं, नालिश करदो न? गवाही हम भी दे देंगे। नगरी मित्रोंका हाल 'वही अतवारे सदरंगी जो आगे थे सो अब भी है'। आपके भी तावेदार हैं आमार नामई प्रेमदास, जोदी आपनार मोने आमार प्रेम तबे आमी आपनार क्रीतदास !!! भला कानपुरमें और जो? कहां होता है अस्मादेव कारणात्, कांग्रेस विषयेपि तदेव टांय टांय

* गुप्तजीकी डायरीसे।

फिस—अवकाश दिन रात है, गुजारेका बन्दोबस्त पिताजी खुद ही कर गये हैं, ऊपरसे दो घंटे मात्र मिहनतपर एक अंग्रेज बहादुर पन्द्रह रुपया महीना भी देते हैं—निदान सब मजा है केवल शरीर गड़बड़ रहता है सो उसका नाम ही शरीर (फारसीवाला) है किन्तु डाक्टर भोलानाथकी जै हो उनकी दयासे उसकी भी शरारत दबी ही रहती है! अपनी कथा तो कहिये ! दुकान पर प्राप्तिका क्या हाल है ? शरीर घर घरनी भ्राता पुत्रादि सब प्रसन्न हैं ? दिन कटनेकी क्या राह है ? हम तो ब्राह्मण सम्पादन बंगभाषा पुस्तकानुवाद तथा कविताकी मौजमें रहते हैं, यदि दुनियांके झमेलोंने सताया, इकतारा ले बैठे उसमें भी जी न लगा तो एक माहरू भी है बस ! इधर कई किताबोंका अनुवाद भी कर डाला है, छप रही हैं, देवी चौधरानीका अनुवाद इन दिनों कर रहा हूं, अच्छा नावेल है ! अयोध्यार बेगमका पता बतलाओ तो उसे भी मंगाके करी डालें—महात्मा संपतराम कहां हैं ? कैसे हैं ? क्या करते हैं ? अब जो जवाबी पोस्टकार्ड आया तो जवाब 'नल्वाहं राज' जब इधरसे जवाबमें देर हो तो कारण केवल आलस्य अथवा जगज्जाल समझियेगा और बस फिर कभी

भवदीय
प्रताप मिश्र कानपुरी

* * * *

यह एक कार्डका मजमून है, जिसका आकार वर्तमान कार्डसे छोटा है और एक तर्फ ही लिखा गया है। मिश्रजीने मानों गागरमें सागर भर दिया है। यह भी उनकी एक विशेषता है, किन्तु उनकी मौज थी। सदा इसके पाबन्द भी नहीं थे। इसी प्रसंगसे सम्बन्धित उनके एक ---- कार्डका रसास्वादन कीजिये—

प्रियवरेषु,

वहुत अच्छा हुजूर बांट दूंगा * और लेख भी इंशा अल्लाहतआला दिया करूंगा आप ब्राह्मणको सहारा दीजिए तो—ज़िहे किस्मित ज़िहे ताला ज़िहे वख्त— आपके कई पत्र आए पर उत्तर नहीं दे सका क्षमा मांगते भी लाज लगती है, पर "जो पै जिय गनि हौ औगुन जनको तौ क्यों कटैं सुकृत नखते मापै विपुल वृक्ष अघ बनके" ..यार कई महीनेसे तबीयत सख्त परेशान है इसीसे कुछ नहीं होता हुवाता। अपना हाल लिखोगे ? शर्म्माजी‡ हैं कहां ? कभी फकीरोंकी याद भी करते हैं ?

एक तकलीफ देंगे पर जल्द मदद दीजिए तो बने, नहीं तबीअत और कोठेमें गई तो फिर बस! इन दिनों जी भी चाहता है कई मित्रोंका तकाजा भी है इससे मतलबकी सुनिए—

आपके पास हिन्दोस्थानका फायल जरूर है उसमें हमारा जुवारी खुवारी प्रहसन है अधूरा, यदि उसकी नकल भेज दीजिये तो पूरा करके छपवा डालें नहीं इच्छा आपकी कालेकांकरवाले कहते हैं पुरानी कापी नहीं रहीं, इसीसे आपको कष्ट देते हैं। कुबूल हो तो खैर नहीं तो अभाग्य फिर जवाबी कार्ड ? छिः

Yours
Pratap Misra

राजा राममोहन रायकी जीवनीका बंग-भाषासे और सती प्रताप नाटकका हिन्दीसे उर्दूमें उल्था गुप्तजीने अपने गुड़ियानी रहनेके दिनोंमें ही किया था। ये दोनों पुस्तकें मुन्शी प्रतापकृष्णके रहबर प्रेस, मुरादाबादसे प्रकाशित हुई थीं। उर्दू पत्र "भारत-प्रताप"की पहली संख्या जुलाई सन् १८६२ ई० में निकली थी। यह गुप्तजी द्वारा सम्पादित पं० दीनदयालुजी शर्माका मासिक पत्र था। इसका कार्यालय झज्जर, मुद्रण-स्थान

* मिश्रजीका यहाँ मतलब भारत प्रतापके विज्ञापनोंसे है, जो गुप्तजी द्वारा उनके पास भेजे गये थे।

‡ पण्डित दीनदयालु शर्मा।

मुरादाबाद और सम्पादक गुप्तजीका निवास 'गुड़ियानी' था। विज्ञापन-से आरंभकर मजमून तक सब सम्पादककी कलमसे निकले हुए थे। पत्र उर्दू होनेपर भी उसमें हिन्दीभक्त गुप्तजीने 'हिन्दी, हिन्दु-हिन्दुस्थान'की महिमा गायी थी। भारत-प्रतापकी प्राप्ति स्वीकारमें पं० प्रतापनारायण मिश्रजीका एक मनोरंजक पत्र है। इसपर भी मनके मौजी मिश्रजी मिति या तारीख लिखना भूल गये हैं, विराम चिन्होंका भी कहीं कोई ठिकाना नहीं!—

प्रियवरेषु,

यह तो आप जानते ही हैं कि, काहिलीमें इंजानियको पदे वैज़ा हासिल है लेकिन आपके इरशादके बमूजिब लिखनेका इरादा किया था तब तक भारत प्रताप साहब आही पहुँचे—खैर जो लिखा है इरसाले खिदमत है पसन्द आवै तो छाप डालिएगा वरना कोई पुड़िया बांधने भरको कागज भेजा है यही क्या कम इहसान है? उरदूके हरूफ बड़े खूबसूरत बनते हैं और नस्र लिखनेका मुहावरा भी पहले सिरेका है लिहाज़ा सँभाल सुँभूल लीजिएगा.

कभी २ तो जरूर ही लिखेंगे छापिये या न छापिये लेकिन यह भी याद रखिएगा एक तो काहिल दूसरे दायमुल मरज़ तीसरे 'एक मुश्ते उस्तरव्वां है लाख जंजीरोंके बीच' पण्डित मदनमोहन मालवी साहब B. A. तशरीफ़ लाए थे उन्होंने भी भारत प्रताप देखा कांग्रेसकी फिक्रमें आए थे और कई शहरोंमें जाना था इससे सिर्फ एक ही दिन ठहरे थे शायद १५ या २० दिनमें राजा भेमपालसिंह भी तशरीफ़ लावैं और बाज फरमावैं देखिये अपने रामसे कैसी ठहरती है क्योंकि वह राजा ठहरे और हम महराज! खुदा ही खैर करे.

yours
Pratap Misra

एक प्रति बाबू रामदीनसिंह खड्गविलास प्रेस बांकीपुरको भी भेजिये वह भी मंडलके बड़े भक्त हैं और कहा है

'भारत प्रताप' को पाकर पण्डित माधवप्रसाद मिश्रजीने काशीसे गुप्तजीको खड़ी बोली और ब्रजभाषामें कवितामय पत्र भेजकर अपना हार्दिक हर्ष प्रकट किया था। मिश्रजीका वह पत्र भी पढ़ने योग्य है :—

श्रीहरिः

त्रिपुरा भैरवी रामलालका मठ
काशीधाम २२। ८। ९२

(छप्पै)

स्वस्ती श्रीवरवैश्यवंश-भूषण सुखमाकर।
धर्मनिरत निज मातृ भूमि हित दक्ष सुतत्पर।
त्यक्त मान ममतादि सकल दुर्गुणगण दुस्तर।
श्रीमद् बालमुकुन्द प्राणप्रिय सुधी सुहृद्वर।
वदति मिश्र तव सर्वदा हो, लक्ष्य श्रीराधारमण,
नवनीरप्रद सुन्दर वरण, कलुष हरण अशरण शरण।

(दोहा)

मिल्यो पटल आनन्दघन, नेह नीर सरबोर।
भाव मधुर सुनि धुनि करत, हर्षित ह्वै मन मोर।
निहचे मोरे मन विषे, होत अहै अनुमान।
तोरे या "परताप" सों हरियाना हरियान।
अहो हमारे देशसों भो भारत परताप,
भारतको परिताप करि, करि भारत परताप।
लह्यो हृदय उपदेश वह, प्रथमहीं सुधा समान,
"लिखहु जपहु दिन रात इक, हिन्दी, हिन्दुस्तान।"
सुनो कियो आनन्द है प्यारे दया निकेत,
सिमलासों निज पत्र दै, घन निज कुसल समेत।

लिख्यो न जावे प्रेम दल, अन्त न हो गम्भीर,
कर पद छाते सों बढ़त, ज्यों द्रोपदिको चीर।
तासों सेप वृतान्तको, समुझो आपु अखिन्न,
विनय करत हौं आपुका,
माधव मित्र अभिन्न।
दीज्यो पत्र न कीज्यो देर, यही हमारी अन्तिम टेर।

* * * *

उक्त पत्रके लेखक एवं प्रेषक पण्डित माधवप्रसाद मिश्रजी भी गुप्तजीकी भांति कविता-रचनामें प० प्रतापनारायण मिश्रजीको ही अपना आदर्श मानकर चले थे। यह दीक्षा उन्होंने समीप रहकर नहीं—ब्राह्मण-पत्र द्वारा उनकी रचनाओंको पढ़कर ग्रहण की थी। भाव और भाषा—दोनों दृष्टियोंसे मिश्रजीकी प्रारंभिक पद्य-रचनाका यह नमूना भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं।

गुप्तजीके सम्पादकीय सम्बन्धके कारण उर्दू "भारतप्रताप" ने हिन्दी सेवी-संसारमें यथेष्ट प्रसिद्धि प्राप्त की थी। भारतेन्दुजीके फुफेरे भाई हिन्दीके यशस्वी रचनाकार बाबू राधाकृष्णदासके पत्रमें भी भारत-प्रतापका जिक्र मिलता है। बाबू राधाकृष्ण दासजीके चार पत्र हमारे सामने हैं। ये पत्र गुप्तजीके साथ उनके प्रगाढ़ सम्बन्धके सूचक ही नहीं हैं, बल्कि उनसे उस समयकी और भी कितनी ही साहित्य-सम्बन्धी बातों पर प्रकाश पड़ता है। बाबू राधाकृष्णदास चाहते थे कि, गुप्तजी भारतेन्दुजीकी जीवनी लिखें। प० प्रतापनारायणजीके आलसी स्वभावसे वे परिचित थे, अतएव उन्होंने अपने पूर्वानुरोधके अनुसार जानना चाहा है कि, जीवनीकी सामग्री आप मिश्रजीसे ले गये होंगे और उसमें क्या कर रहे हैं? 'हिन्दी बङ्गवासी'में प्रकाशित अपने

"सती प्रताप नाटक" की विरुद्ध समालोचनाका उत्तर भी बाबू राधाकृष्णदास गुप्तजीके द्वारा ही लिखवाना चाहते थे। उन्होंने सती-प्रतापकी समालोचना भारत-प्रतापमें प्रकाशित करनेका स्मरण भी दिलाया है। वे चारों पत्र यहा अविकल दिये जाते हैं :—

(१)

श्रीहरि·

बनारस १७-७-९२

प्रियवर,

कृपाकार्ड नोटिसोंके साथ मिला नोटिस बाट दिया मैं बड़े हर्षके साथ इसमे लेख देता परन्तु उत्तम उर्दू लिखनेका मुझे अभ्यास नहीं मूर्ख बनना मंजूर नहीं अतएव मजबूर, हिन्दी होगा तब अवश्य ही लेखनी चलाऊंगा.

पं० प्रतापनारायणसे Life का matter आप ले गए होंगे उसमे आप क्या कर रहे है ?

पत्रोत्तर कुशल समाचार तथा योग्य सेवा सहित बराबर लिखकर अनुगृहीत करते रहिए,

भवदीय

राधाकृष्णदास

(२)

बनारस

२३-८-९२

प्रियवर,

"सती प्रताप" भेजता हूं, "भारत प्रताप" में इसकी समालोचना लिखिए, "हिन्दी बंगवासी" ने जो इसकी समालोचना की है यदि उचित जानिए तो खंडन कीजिए, तीन दोष दिए हैं तीनोंका उत्तर :—

१. पांचवां दृश्य आधा भाई साहबका लिखा है, नाटकोंमें यों पात्र विशेष आते ही हैं, विवाह वैदिक मन्त्रोंसे वा धूमधामकी बारात निकालना आवश्यक नहीं, कथाछलसे बहुत-सी क्रिया दिखाई जाती हैं, "सत्य हरिश्चन्द्र" में रोहिताश्वका मरना आदि.

२. दूसरा दोष इतना मात्र ठीक है कि पहिले ही नहीं उठी एक बर लेकर उठीं परंतु यह सब वर उमने लिए ही और अन्तरमें इच्छा सत्यवानके जीवन ही की थी. यमराजसे उलट-पुलट कर कबुलवाया.

३. बिलकुल निर्मूल, सखियोंको उस भयानक दिनका हाल नारदजीसे विदित ही था फिर उस दिन अपनी प्यारी सखीसे मिलने और उसके विपत्तिमें सहाय देनेको आना पहिले ही असंभव क्या था ?

एक चुटकुला लिखा है भेजते हैं. पसंद हो "प्रताप"में छापिए.
विशेष फिर

भवदीय
राधाकृष्णदास

और पुस्तकें भी समालोचनार्थ भेजता हूं. हि० वं० वा० का उत्तर उसीमें लिखिए.

(३)

श्रीहरिः

बनारस २-१०-९२

प्रिय मित्र जयश्रीकृष्ण,

बहुत दिनोंसे कृपापत्र नहीं मिला. मैं सकुशल हूं समालोचना अभी नहीं हुई. हिन्दी बंगवासीका उत्तर भी आपने अब तक नहीं भेजा. चुटकुला 'रहबर' में छपा ? भेजिए. "स्वर्णलता"का उर्दू अनुवाद मैं करूंगा पर अभी Press में है Out होने पर लिखूंगा.

प्रतापनारायणजीने मेरी कौनसी प्रार्थना भेज दी है मैंने समझा नहीं कृपाकर लीखिए,

भाई साहबके Life में आपने कुछ हाथ लगाया ? पत्रोत्तर कृपाकर शीघ्र दीजिएगा,

भवदीय
श्रीराधाकृष्णदास

(४)

श्रीहरिः

बनारस, २०-१२-९३

प्रियवर,

भला इतने दिनोंके पीछे हमारा स्मरण तो हुआ ! मेरा शरीर इन दिनों कुछ अस्वस्थ था अब कुछ अच्छा हूं, "सती प्रताप" की समालोचना "भारत प्रताप" में कीजिए न ? "भारत प्रताप" मेरे पास बहुत दिनोंसे नहीं आता, "साहित्य सुधानिधि" मुजफ्फरपुरसे उठ आया है अब आशा है कुछ प्रबंध ठीक हो, आप उसे पसन्द करते हैं ? कुछ ग्राहक दीजिए, ग्राहकोंका बड़ा अभाव है, व्यास रामशंकरजी पूज्य भाई साहबकी लाइफ लिखनेवाले है परंतु अभी तक तो हाथ ही नहीं लगाया है देखें कब तक क्या करते हैं, विशेष कुशल, कभी-कभी तो स्मरण किया कीजिए,

भवदीय
श्रीराधाकृष्णदास

* * * *

सन् १८९२ ई० के अन्तमें बाबू कार्तिकप्रसादजी खत्री प्रभृति साहित्य-सेवियोंने जब "साहित्य-सुधानिधि" नामक मासिक-पत्र प्रकाशित करनेका निश्चय किया, तब गुप्तजीका सहयोग प्राप्त करना वांछनीय

समझा गया था। इस विषयमें बाबू कार्तिकप्रसाद खत्रीकी प्रेरणासे गुप्तजीको प० माधवप्रसाद मिश्रजीने लिखा था :—

त्रिपुरा भैरवी—रामलालका मठ
श्री काशीधाम, २३-१२-९२

प्रियवर ! स्वस्त्यस्तु,

पत्र आया, आनन्द हुआ। श्री पं० जीका पत्र भी लखनऊसे आया। हमारे कई मित्रोंने १ मासिक पत्र निकालनेका प्रबन्ध किया है जिसमें कार्यकर्त्ता ४ हैं—कवि रत्नाकर, बाबू राधाकृष्ण, बाबू कार्तिकप्रसादजी और देवकीनन्दजी और भी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकोंने इसमें स्वार्थ लिया है। इन लोगोंकी प्रेरणासे ही मैंने यह पत्र लिखा है कि आप भी इसके 'सहकारी" बनें। कई एक श्रीमानोंने अभीसे सहायता दी है। आज तक इस ढंगका हिन्दीमें पत्र नहीं निकला है। विशेष क्या, देखने पर सब ज्ञात होगा। इस समय बाबू कार्तिकप्रसादजी पास बैठे लिखा रहे हैं। १ जनवरीसे पत्र प्रकाशित होगा तब प्रथम संख्या ले बाबू साहिब निज मित्रों सहित आपसे भेंट (परिचय) करेंगे। खेद है कि आप आये थे तब कई कारणोंसे इन लोगोंसे भेंट न करा सका। फिर सही, हमारे चञ्चल कवि बाबू जगन्नाथ गुप्त बी० ए० (रत्नाकर) आपके गुणोंसे ही आपमें अनुरक्त हो सके हैं।

आशा है कि आप इस मण्डलीकी मैत्रीको सहर्ष स्वीकार करेंगे।

आपका

माधव शर्मा

"साहित्य सुधानिधि" मासिक पत्र मुजफ्फरपुरके नारायण प्रेससे प्रकाशित हुआ। उसके व्यवस्थापक बा० देवकीनन्दन खत्री थे। "साहित्य-सुधानिधि" के प्रथम अङ्ककी प्राप्ति-स्वीकार-पत्रके उत्तरमें गुप्तजीको स्वयं बाबू कार्तिकप्रसादजीका यह पत्र मिला था :—
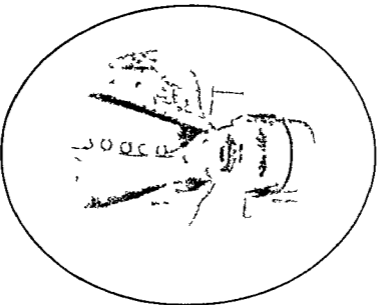
स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदास

स्वर्गीय पण्डित माधवप्रसाद मिश्र

बनारस, गढ़वाली टोला
१७-३-९३

बंधु,

आपका कार्ड पाकर बड़ा आनन्द हुआ यदि सा० सु० नि० से तात्कालिक शुभ फल मिला तो यह मिला कि आपसे सुजनसे पत्र व्यवहार चला। जिस समय अलकट यहाँ आये थे सायत मैं मुजफ्फरपुर गया हुआ था इसलिये न तो लेक्चर मैंने सुना और न भा० जी० में छपा। आपने लिखा कि सा० सु० नि० लेखकी ओरसे कमजोर है सो प्यारे यह पत्र तो आप ही ऐसे सज्जनोंके भरोसे पर प्रकाशित हुआ है। जैसा चाहिये लिखिये और इसके नामके पक्षका निर्वाह कीजीये अर्थात हिन्दीके साहित्यकी जिससे पुष्टी हो वह उपाय कीजीये। सबसे पहले तो यह है कि इसके ग्राहक बढ़ानेकी चेष्टा कीजीये जिस्से सब कुछ है। अनेक कार्योंके झंझटसे पत्रोत्तरमें विलम्ब हुआ क्षमा कीजीयेगा। आशा है "प्रताप" में सा० सु० नि० की समालोचना हुई होगी कृपाकर वह नं० भेजीयेगा।

त्वदीय
कार्तिकप्रसाद

मित्रोंके अनुरोधकी रक्षामें गुप्तजी "साहित्य सुधानिधि" में प्रकाशनार्थ कविता और लेख भेजते थे। बाबू देवकीनन्दनजी खत्रीने "साहित्य सुधानिधि" आफिस, नारायण प्रेस मुजफ्फरपुरसे १६।३।१८९३ ई० के अपने कार्डमें कविताकी पहुँच लिखनेके साथ लेख भेजनेका तकाजा किया है। उक्त खत्रीजीने ता० २।४।१८९३ ई० के कार्ड द्वारा उन्हें वसन्तोत्सव छप जानेकी सूचना दी है और उसकी पूर्ति भेजनेका अनुरोध किया है। बादमें इस "साहित्य सुधानिधि" का कार्यालय मुजफ्फरपुर से काशी चला गया था। बाबू राधाकृष्णदासजीके पूर्वोद्धृत चतुर्थ पत्रमें इसकी सूचना है।

[७]

वङ्गवासीका बुलावा

पण्डित अमृतलालजी चक्रवर्तीने वंग-भाषा-भाषी होते हुए भी हिन्दी-सेवाका व्रत ग्रहण किया था। चक्रवर्तीजीके द्वारा हिन्दीकी अभिनंदनीय सेवा हुई है। उन्हींके साथ-साथ हिन्दी-सेवा-क्षेत्रमें अवतीर्ण होनेवालोंमें एक बाबू शशिभूषण चटर्जीका नाम भी मिलता है, जिन्होंने "हिन्दोस्थान"के सम्पादकीय विभागमें प्रविष्ट होकर अपनी कुशलता प्रदर्शित की थी। इन दोनों महानुभावोंके पूर्व बाबू नवीन-चन्द्रराय महाशयने कई शिक्षा विषयक पुस्तकें लिखी थीं। वे पंजाब विश्वविद्यालयके रजिस्ट्रार थे। हिन्दीकी सुप्रसिद्ध लेखिका स्वर्गीया हेमन्तकुमारी देवी चौधरानी उन्हींकी पुत्री थीं।

चक्रवर्तीजीके साहसपूर्ण उत्साह और प्रेरणासे बंगवासी प्रेसके मालिक बाबू योगेन्द्रचन्द्र वसुने संवत् १६४७ में साप्ताहिक 'हिन्दी वङ्गवासी' प्रकाशित किया था। आकार और प्रकारमें वह उस समय-का सबसे बड़ा पत्र था। वङ्गवासी-प्रेससे "वङ्गवासी"के अतिरिक्त "जन्मभूमि" नामक एक मासिक पत्रिका भी निकलती थी। ये दोनों ही वंग-भाषाके पत्र थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्तजी—'बंगवासी' 'हिन्दी वङ्गवासी' और 'जन्मभूमि'—इन तीनों पत्रोंके पाठक थे। लखनऊके 'हिन्दुस्थानी' (उर्दू) पत्रके सिवा कलकत्तास्थ शरत्‌चन्द्र सोम द्वारा प्रकाशित "हिन्दी महाभारत" भी उनके नाम 'गुड़ियानी' पहुँचता था। महाभारतका यह हिन्दी अनुवाद खण्डशः प्रकाशित होता था। हिन्दी लेखकोंकी संख्या उस समय परिमित थी और उनकी गणनामें गुप्तजी

भी आने लगे थे। नियमित रूपसे उनकी हिन्दी-सेवाका आरंभ 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक-मण्डलमें सम्मिलित होनेके साथ ही हो चुका था।

प० अमृतलाल चक्रवर्तीजी "हिन्दी बङ्गवासी" पत्रके प्रधान सम्पादक थे। उनके सहकारी थे प० भुवनेश्वर मिश्र। मिश्रजी दरभंगाके रहनेवाले थे। उनसे गुप्तजीका पत्र-व्यवहार था।

संवत १९४९ (सन् १८९२ ई०) में जब हिन्दी बङ्गवासीमें "मडेल भगिनी" नामक बंगला उपन्यासका हिन्दीमें उल्था "शिक्षिता-हिन्दूबाला" शीर्षकसे प्रकाशित होने लगा, तब गुप्तजीको उसकी दोषपूर्ण भाषा मूलके भावोंको बिगाड़नेवाली प्रतीत हुई, इसलिये उन्होंने फटकार बताते हुए एक लम्बा पत्र हिन्दी बङ्गवासीके सम्पादकको लिखनेमें विलम्ब नहीं किया। उसका प्रभाव बङ्गवासीके सम्पादक एवं स्वामी दोनोंपर पड़ा।

गुप्तजीने एक पत्र अपने मित्र पं० भुवनेश्वर मिश्रजीको भी लिखा था। उसमें भी उन्होंने अपनी सम्मति "शिक्षिता हिन्दूबाला"के विषयमें स्पष्ट प्रकट कर दी थी। गुप्तजीके पत्रके उत्तरमें मिश्रजीका आया हुआ एक पत्र अगहन बदी १४ संवत् १९४९ का मिला है, उससे मालूम होता है कि, मिश्रजी उस समय कलकत्तेमें कानूनकी पढ़ाई कर रहे थे। उनकी परीक्षा फरवरीमें होनेवाली थी। इसलिये अपनी पुस्तकोंसे ही उन्हें फुरसत नहीं मिलती थी। "हिन्दी बङ्गवासी" कार्यालयमें वे एक या दो घण्टेसे अधिक उन दिनों नहीं रहते थे। उनकी इच्छा हुई कि मैं अपने घर चला जाऊँ और गुप्तजी यहाँ आकर हिन्दी बंगवासी कार्यालयमें काम करें। अपने पत्रमें इसी आशयकी बातें मिश्रजीने गुप्तजीको लिखी हैं। यही पत्र आगे चलकर बङ्गवासी-कार्यालयसे गुप्तजीका सम्बन्ध स्थापित होनेका कारण हुआ मिश्रजीने इस पत्रमें लिखा है :—

............"जिस कारणसे 'शिक्षिता हिन्दूबाला' लिखा जा रहा है, उससे उसका नीरस होना सम्भव है; परन्तु मैं उसकी भाषाको भद्दी कहनेको मुस्तैद नहीं हूँ। वास्तवमें मैं उसे न तो उतना उत्तम समझता हूँ, जितना उसके लेखक कहते हैं और न वैसा वाहियात समझता हूँ जितना आपने लिखा है। "मडल भगिनी" का हिन्दी अनुवाद होनेकी बातचीत बहुत दिनोंसे है। यदि मेरी परीक्षा न होनेवाली होती तो उसमें हाथ भी लग गया होता। सो अगर आप उसका अनुवाद करना चाहें तो उसके प्रथम खण्डका अनुवाद इस छापेखानेके लिये कर सकते हैं, किन्तु पहिले आप अपने पारितोपिककी बात ठीक कर लें। देन-लेन की बात निश्चय हो जायगी तब आप हाथ लगावेंगे। उसके प्रथम खण्डका अनुवाद करनेमें आप कितना वा किस हिसाबसे लेंगे सो शीघ्र लिखियेगा। मैं यह बात 'मडल भगिनी' के स्वत्वाधिकारीकी आज्ञासे पूछता हूँ। जिस समय आपकी चिट्ठी आई थी, उस समय मैं मौजूद था।"

* * * *

उक्त पत्रका गुप्तजीने क्या उत्तर दिया, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु प० भुवनेश्वर मिश्र एवं पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीके इस विषयमें आये हुए पत्रोंसे प्रकट है कि, बङ्गवासी कार्यालयसे 'मडेल भगिनी' नामक मूल बँगला पुस्तकका हिन्दी अनुवाद कर भेजनेके लिये गुप्तजीको लिखा गया, तदनुसार उन्होंने पत्रके साथ अपने किये हुए अनुवादकी पाण्डु-लिपि पण्डित भुवनेश्वर मिश्रजीके नाम डाक द्वारा भेज दी। मिश्रजी तबतक कानूनकी परीक्षा देनेकी तैयारी करनेके लिये अपने घर दरभंगा जा चुके थे। इसलिये उनके नामका पैकेट चक्रवर्तीजीने खोल लिया और तदनन्तर उन्होंने गुप्तजीको यह पत्र लिखा :—

श्रीगणेशाय नमः

हिन्दी बङ्गवासी औफिस
३४।१ कोल्हू टोला कलकत्ता।

स्वस्तिश्री सर्व्वोपमा योग्य श्रीयुक्त बालमुकुन्द गुप्तजीको अमृतलाल शर्माका आशिर्व्वाद है। आगे आपने पण्डित भुवनेश्वर मिश्रजीके नामसे 'मडेल भगिनी' का जो अनुवाद भेजा है, वह पण्डितजीकी गैरहाजिरीमें मुझे ही खोलना पड़ा। आपका अनुवाद सब प्रकारसे प्रशंसा योग्य हुआ है और हम लोगोंने छापना भी आरम्भ किया है। पर आपने अभी तक जितना भेजा है, वह बहुत ही थोड़ा है छप जानेमे कुछ विलम्ब न होगा। इसलिये अधिकसे अधिक १५ दिनके अन्दर अन्ततः और एक भागका अनुवाद न मिलनेसे हम लोगोंके प्रबन्धमे बड़ी गड़बड़का होना सम्भव है। सो अवश्य ही आप ऐसे उत्साहशील पुरुषसे १५ दिनके अन्दर उस सामान्य कामकी आशा करनी अनुचित नहीं होगी। इति सम्वत् १९४९ फागुन सुदी १४

पुनः। शायद पण्डितजीसे आपके बंगवासी औफिसमें आनेके बारेमें कुछ दिन पहिले लिखा-पढ़ी हुई थी, और आपने शीघ्र ही अंगरेजीकी कसर मिटानेकी चर्चा भी उठाई थी। अगर मैं ही अँगरेजीमें उन्नतिके बारेमें इस समय आपकी सम्मति पूछूँ तो अवश्य ही आप अप्रसन्न न होंगे। इतना साहस केवल आपकी सज्जनता पर निर्भर करके, किया है, और भी एक अभिप्राय है, आप ऐसे सुलेखक तथा हिन्दीके परम रसिकसे सदा एकत्र कार्य करनेमे बड़ा आनन्द होगा।

आपका मित्र
अमृतलाल शर्मा
सम्पादक हिन्दी बङ्गवासी

* * * *

उक्त पत्र प्राप्त होनेके अगले दिन गुप्तजीको चक्रवर्तीजीका निम्नोद्धृत कार्ड और मिला :—

श्रीगणेशायनमः

स्वस्तिश्री वालमुकुन्द गुप्तजीको मेरा आशिर्वाद। आगे कलके पत्रसे आपको मालूम हुआ होगा, कि अनुवादका प्रयोजन बहुत ही शीघ्र है। पर इसीलिये आपको अतिरिक्त परिश्रमसे दिक करनेका अभिप्राय नहीं है। अगर कुछ विलम्ब करनेसे भी आपको सुवीता हो तो वही कर सकते हैं। इति संवत् १९४६ फागन सुदी १५।

आपका मित्र
अमृतलाल शर्मा

पण्डित भुवनेश्वर मिश्रजीका एक कार्ड गुप्तजीके नाम है :—

श्रीगणेशायनमः

स्वस्ति श्री बाबू बालमुकुन्द गुप्तको लिखा मिश्रटोला दरभंगासे श्रीभुवनेश्वर मिश्रका यथोचित आशीर्वाद पहुँचे। चिट्ठीके उत्तरमें विलम्ब हुआ क्षमा कीजियेगा। मैं अब यहीं रहता हूँ। शायद फिर कलकत्ते नहीं जाऊँगा। आईन परीक्षा हो गई। फल नहीं मालूम हुआ है। मैंने आपकी चिट्ठी श्रीअमृतलालजीको भेजदी है वही उसका उत्तर देंगे। आपका अनुवाद तो मैंने नहीं देखा, पर श्रीअमृतलालजीने उसकी बड़ी तारीफ की है। यदि मेरे नाम कोई पत्र भेजना आप उचित समझें तो यहीं भेजियेगा। इति। चैत्र वदी ५ सं० १९४६.

* * * *

पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीजीका चैत्र बदी ८ संवत् १९४६ का एक पत्र यह है :—

श्रीगणेशाय नमः

स्वस्ति श्री बालमुकुन्द गुप्तको अमृतलाल शर्माका आशिर्वाद है। आगे पत्र मिलनेसे सब हाल मालूम हुए। आपने अपने अनुवादकी

पोथीके साथ पण्डित भुवनेश्वरजीके नाम जो चिट्ठी भेजी थी, वह सीधे उनकी सेवामें चली गई थी। अब उनके भेज देने पर हमारे हाथ आई है। उसके अनुसार जन्मभूमि आपके पतेसे भेजवाई थी।

अनुवादकी बात, उसके पारिश्रमिककी बात इत्यादि इत्यादि अन्य पत्रमें लिखी जायँगी। आज आपके यहां आनेकी बात पूछनी है। आप अगर आवें तो कब तक पधार सकते हैं और कितनी तनखाह फिलहाल आपको मजूर होगी। इस समय आपको समझना होगा कि काव्यशास्त्रकी चर्चा ही यहां आपका प्रधान अवलंबन रहेगा, वेतनके बदले उसीका प्रेम ही अधिक आनन्ददायी समझना होगा। आगे अङ्गरेजीमें अधिकार लाभकर हिन्दी बंगवासीके सम्पादनमें विशेष अधिकार प्राप्त करनेसे आपका मूल्य यहां बहुत अधिक हो जायगा। आपका उत्तर अवश्य ही शीघ्र आवेगा। जन्मभूमिकी तरह हिन्दी-मासिककी चर्चा यहां आने पर की जायगी। इति चैत बदी ८ संवत् १९४९।

* * * *

चक्रवर्तीजीका उक्त पत्र पानेके प्रायः दो सप्ताहके अनन्तर गुप्तजी-को प० भुवनेश्वर मिश्रजीका पुनः पत्र मिला। उस समय मिश्रजी चक्रवर्तीजीकी अस्वस्थताके कारण फिर कलकत्ते पहुँचकर हिन्दी बंग-वासीका काम सँभालनेको विवश हुए थे। वह पत्र उन्होंने गुप्तजीके नाम बंगवासीके स्वामीके आदेशसे लिखा था। पत्र इस प्रकार है :—

"स्वस्ति श्री बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीको यथोचित आशीर्वाद। आप शायद कुछ चकित हो जायंगे, पर मेरे यहां आनेका कारण कोई विशेष नहीं है। श्री पं० अमृतलालजी अतिशय पीड़ित हो गये हैं, काम कुछ भी नहीं कर सक्ते हैं, इसलिये मुझे फिर भी वहांसे आना पड़ा, परन्तु एक महीना वा डेढ़ महीनेके अन्दर ही घर चला जाऊँगा। मेरी

परीक्षाका फल बुरा हुआ, इसलिये शुरूसे अधिक परिश्रम करना भी आवश्यक है।

आपके यहां आनेके सम्बन्धमें हि० व० के कर्त्ताओंकी राय है कि आप अकेले आवें। अगर आप किसी दूसरेको भी शामिल लावेंगे तो आपको खर्च बहुत पड़ेगा। सम्प्रति आप अकेले चले आवें और जैसे मैं यहां रहता हूं, वैसे ही रहकर कुछ दिनों तक यहांका रंगढंग समझ लें। फिर पीछे जैसा उचित समझें करें। इस प्रकार रहनेसे आपका खर्च २०) महीनासे अधिक न होगा। आप जैसे-जैसे अपनी प्रवीणता दिखावेंगे वैसे-वैसे आपके वेतनकी तरक्की होती जायगी। शायद कहना नहीं होगा, आपके आनेका राह-खर्च यहांसे मिलेगा। यदि आपको स्वीकार हो तो जल्द चले आइये।

एक बात और कह देना अच्छा होगा। श्रीयुक्त शरत्‌चन्द्र सोमके यहां भी कुछ-न कुछ काम सदा रहता ही है आप बंगला बखूबी जानते ही हैं सो अगर यहां आकर उनके काममें भी कुछ परिश्रम करेंगे तो उधरसे भी कुछ मिल जाया करेगा। यदि आनेकी इच्छा न हो तो पत्रोत्तर शीघ्र दीजियेगा। इति

३४।१, कोलूटोला स्ट्रीट कलकत्ता चैत्र सुदी ७ सं० १९५०	आपका मित्र भुवनेश्वर मिश्र"

गुप्तजीकी ओरसे इस पत्रका उत्तर अस्वीकृति सूचक गया। उसमें हिन्दी बंगवासीमें जानेकी अनिच्छा तो प्रकट कर दी थी, किन्तु उसका कोई कारण नहीं बताया था, इसलिये प० भुवनेश्वर मिश्रजीने फिर उनको लिखा :—

"आपकी चिट्ठी आज पहुँची। मडलभगिनीके द्वितीय भागका जो थोड़ा अनुवाद आपने भेजा था, वह यहाँ समयानुसार पहुंच गया था।

आपके यहां आनेमें असम्मति प्रकाश करनेसे मुझे बड़ा खेद हुआ। इस खेदका विशेष कारण यह है कि आपने इस असम्मतिका कोई कारण नहीं लिखा है। पण्डित अमृतलालजीके शीघ्र आराम होनेकी मुझे उम्मीद नहीं है। इसलिये यहां आ जाते तो मेरे घर जानेका बड़ा अवसर हो जाता। यदि आप न आवेंगे तो अवश्य ही किसी दूसरे आदमीकी खोज करनी होगी। किन्तु इससे मेरे घर चले जानेमें विलम्ब हो जायगा। अधिक मैं कुछ नहीं लिख सक्ता हूं, अपनी सम्मतिसे शीघ्र ही अवगत कीजिये। इति मिति वैसाख वदी ३ सं० १६५०"

* * * *

इस प्रकार हिन्दी बंगवासी कार्यालयमें गुप्तजीको बुलानेके लिये उत्तर-प्रत्युत्तर भुगतते रहे। अगहन संवत् १६४६ (सन् १८६२) से प० भुवनेश्वर मिश्रजीने माध्यम बनकर पत्र-व्यवहार आरंभ किया था। इन पत्रोंको पढ़नेसे पाठकोंको पता लग सकता है कि हिन्दी बंगवासीसे गुप्तजीका सम्बन्ध कैसे स्थापित हुआ और कितने आग्रहके साथ वे बुलाये गये थे।

हिन्दी बंगवासीके साथ पत्र-व्यवहारमें यों कई महीने व्यतीत हो गये थे। अन्तमें गुप्तजीके लिये संवत् १६५० पौष शुक्लामें कलकत्ते पहुँचनेका योग आया और उन्होंने पौष शुक्ला १३ बृहस्पतिवार (सन् १८६३) का हिन्दी बङ्गवासी-कार्यालयमें एक सहायक-सम्पादकके पद पर नियुक्त होकर कार्यारंभ किया। उस समय प० भुवनेश्वर मिश्र दरभंगा चले गये थे। पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्रके सुझावसे चक्रवर्तीजी, प० प्रभुदयाल पांडेको बुलाकर अपने सम्पादकीय विभागमें स्थान दे चुके थे। पांडेजी भी पण्डित प्रतापनारायणजीके साहित्य-मर्मज्ञ प्रिय शिष्य थे। उनके असामयिक निधनपर शोक प्रकाश करते हुए अपने लेखमें गुप्तजीने लिखा था :—"जब हम हिन्दी

बङ्गवासीके लिये कलकत्तेमें आये तो कानपुरमें पण्डित प्रतापनारायणजीने कहा था—हमारा प्रभुदयाल भी वहीं है, उसका ध्यान रखना। हाय! आज स्वर्गीय प्रतापका वही प्यारा प्रभुदयाल छिन गया!"......

कलकत्तेकी ओर आते समय गुप्तजी अपने श्रद्धेय प० प्रतापनारायण मिश्रजीसे मिलनेके लिये ही कानपुर ठहरे थे। उन्हें घरसे रवाना होनेके पहले मिश्रजीका मिलनेकी उत्सुकतासे भरा हुआ पत्र प्राप्त हो चुका था। उसमें लिखा है :—

प्रियवरेषु,

अहो भाग्य! कानपुर जुरूर आइए मुहल्ला जनरलगंज नौघरा है Generalganj Naughra .....में आठ महीनेसे बीमार हूं, अब तबीअत कुछ अच्छी है पर ताकतका नाम नहीं है! ब्राह्मणके मिलनेका व्योरा खड्गविलास प्रेस बाकीपुरके मेनेजर साहबसे पूछिए या रास्तेमें तो हुई, पूछ लीजिएगा.

जुरूर आइए! अब मिलनेको जी बहुत उछलने लगा!! जुरूर एकबार मिल लो!!!

भवदीय
प्रतापनारायण मिश्र
जनरलगंज नौघरा
कनपुर *

---

* यह भी मिश्रजीका पूर्ववत् तिथि-तारीख-रहित पत्र है। डाकखानेकी मोहरमें भी तारीख स्पष्ट नहीं है,—सन् ९३ साफ है।

[८]

कलकत्तेमें पहली बार

हिन्दी-बङ्गवासी-कार्यालयके बुलावे पर बाबू बालमुकुन्द गुप्त संवत् १९५०—पौष मासके अन्तमें कलकत्ते पहुँचे थे। वह उनकी पहली कलकत्ता-यात्रा थी। हिन्दी-बङ्गवासी कार्यालयसे अपने स्थान पर और स्थानसे कार्यालयमें—प्रारम्भमें उनकी पहुँचकी परिधि यहीं तक सीमित थी। पं० अमृतलाल चक्रवर्ती और पं० प्रभुदयालु पांडे तो नित्य के साथी थे ही, बङ्गवासी-प्रेसके मालिक बाबू योगेन्द्रचन्द्र वसु और बँगला बंगवासीके सम्पादकीय विभागके इन्द्रनाथ बाबू, पांचकौड़ी बाबू, काली बाबू तथा भूधर बाबू आदिसे भी उनका मिलना-जुलना होता रहता था। इनके अतिरिक्त तुलापट्टीमें बाबू मुरलीधरकी * दुकान पर आने-जानेका उल्लेख भी गुप्तजीकी डायरीमें मिलता है।

गुप्तजीकी जान-पहचान कलकत्तेमें धीरे-धीरे बढ़ी। उस समय कलकत्तेमें हिन्दी-समाचार पत्रोंके प्रधान प्रवर्तक पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रजी-का स्थान स्थानीय साहित्यसेवियों एवं साहित्यानुरागियोंका केन्द्र बना हुआ था। पण्डितवर गोविन्द नारायणजी मिश्र, प० देवीसहायजी पाटन-वाले पं० सदानन्दजी मिश्र प्रभृति हिन्दीके महारथी वहीं आकर बैठते थे। देशकी राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थितिकी मिश्रजीके दरबारमें खुली आलोचना होती थी। मिश्रजी विनोदशील प्रकृतिके महानुभाव थे। अमृतबाजार पत्रिकाके संस्थापक एवं सम्पादक बाबू शिशिरकुमार

* बाबू मुरलीधर बहादुरगढ़ (जिला रोहतक) निवासी थे। तुलापट्टीमें उनकी कपड़ेकी दूकान थी।

घोषको वे अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। गुप्तजी पर मिश्रजीका अत्यधिक स्नेह था और गुप्तजीकी थी उनमें प्रगाढ़ भक्ति।

गुप्तजी कलकत्तेमें नये थे। इसलिये रहनेके स्थानका कष्ट देखकर पं० दुर्गाप्रसादजीने उनको अपने यहाँ बुला लिया था। केवल काम करनेके समय वे बंगवासी-कार्यालयमें चले जाते थे। भोजन करनेको जाते थे गुप्तजी एक मारवाड़ी बासेमें, जो तुलापट्टीमें था। मिश्रजीका 'उचितवक्ता प्रेस' सूतापट्टीमें दूधनाथ महादेवके सामने था। गुप्तजीने उस स्थानमें कई वर्षों तक निवास किया। मिश्रजीके भतीजे पण्डित केशवप्रसादसे गुप्तजीकी जान-पहचान घनिष्ट मैत्रीमें परिणत हो गयी थी। गुप्तजीका रहना-सहना उनके यहाँ ठीक स्वजनोंकी भाँति होता था।

पण्डित केशवप्रसाद मिश्र एक सेवा-परायण स्वदेशानुरागी युवक थे। पहली बार जब कलकत्तेमें प्लेग महामारी उग्ररूप धारणकर जन संहार कर रही थी, तब प्लेगकी विजिलेंस कमिटीके सेक्रेटरी बनकर पं० केशवप्रसादने बड़ाबाजार-निवासियोंकी बड़ी सेवा की थी। कोई घर और रोगी उनकी सँभालसे नहीं छूटा था। उस सेवाकी सराहना कलकत्ता कारपोरेशनके तत्कालीन चेयरमैन श्री पी० एस० ग्रीयर और बंगालके छोटे लाट सर जान उडबर्न तकने मुक्तकण्ठसे की थी और उनकी असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकाश किया था। पण्डित केशव-प्रसाद मिश्रके उत्साहसे ही सन् १६०० में स्थानीय बड़ाबाजार लाइब्रेरीकी स्थापना हुई थी। पं० केशवप्रसादका देहान्त २२ फरवरी सन् १६०२ को हुआ उनकी उम्र उस समय केवल २६ वर्षकी थी।

भारतमित्रमें प्रकाशित—"हा केशव !" शीर्षक अपने एक लेखमें गुप्तजी लिखते हैं :—
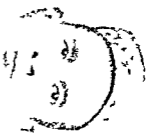
स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र
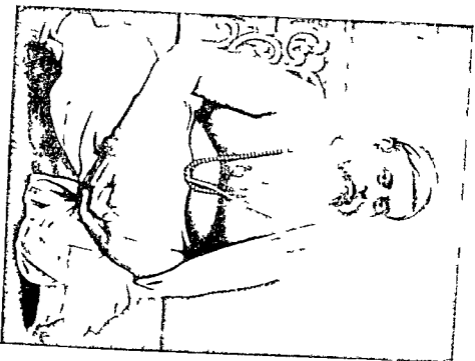
स्वर्गीय पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र

"केशवके बडे तीन पीढीसे कलकत्तेमें आये थे। वह काश्मीरान्तर्गत जम्मू प्रान्तके प्रसिद्ध पाधा कुलमेसे हैं। राजधानी जम्मूके पास उनका निवास स्थान 'साम्बा' है। जम्मू-नरेशके दरवारमें पाधाकुलका बडा आदर रहा है। यहाँ भी केशवके दादाका बडा भारी कारोवार था। वह बडे अमीर थे। समय कभी एकसा नहीं रहता। अब उनकी वैसी दशा न थी। तथापि उनके कुलकी प्रसिद्धिमें अब भी किसी तरहकी कमी नहीं है। केशवके पिताका नाम पं० बलदेव प्रसाद मिश्र था। वह बड़े विद्यानुरागी थे। इनके चाचा पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र हैं, जो 'उचितवक्ता' पत्र चलाते थे। हिन्दीके पुराने सुलेखकोंमें वह अपने ढंगके एक ही पुरुष हैं। कलकत्तेमें हिन्दी अखबारोंकी नींव डालने वाले पण्डित दुर्गाप्रसाद ही हैं। उन्हींके हाथसे एक दिन भारतमित्रका पहला नम्बर निकला था।"*

---

* गुप्तजीकी १९-२ १९०२ ई० आरम्भ कर २३ २ १९०२ तककी डायरीके पृष्ठोंसे अवतरण —

१९ फरवरी १९०२—

सुना केशवको कुछ ज्वर है। उसके मकान पर गये। जानेपर विदित हुआ कि प्लेग है। बातें कीं। वैद्य श्रीनारायणजीको लेकर गये

२० फरवरी—

दो वार केशवको वैद्य श्रीनारायणजीको दिखाया।

२१ फरवरी—

केशवकी बीमारी बढ रही है। इलाज डाक्टर (श्रीकृष्ण) वमनका है। वैद्यजीने कहा हृदय कमजोर है।

२२ फरवरी—

सवेरे केशवको अन्तिम वार देखा। दिनके एक बजे उसने प्राण दिया।

२३ फरवरी—

पं० दुर्गाप्रसादजीके यहाँ शोकको गये। केशवकी मूर्ति न मिली।

इसी लेखमें गुप्तजीने पं० केशवप्रसादके लिये कहा है कि बड़ा-बाज़ार वालोंको उन्होंने प्लेगके कितने ही हैरान करनेवाले कष्टोंसे बचाया। वह सेवा केशवने जैसी उत्तमतासे की, वह उन्हींका काम था। दूसरी सेवा उनकी और भी बड़ी—बड़ाबाजार लाइब्रेरीकी स्थापनाको बताते हुए कहा गया है कि, वह एक ऐसा काम है कि बड़ा-बाजारमें आजतक दूसरेसे नहीं हुआ। इसके लिये पं० केशवप्रसादने दो साल तक दिनरात परिश्रम किया था। इन दोनों कामोंके लिये समझदार लोग उनके ऋणी रहेंगे।

* * *

गुप्तजी हिन्दी बङ्गवासीमें ५०) रु० मासिक वेतन पर आये थे। इतना वेतन * उस समय अनुभवी एवं ख्याति-लब्ध पत्रकारको ही मिलता था। कलकत्ते पहुँचकर उन्होंने अंग्रेजी भाषा-ज्ञानकी अपनी

* प० क्षेत्रपाल शर्मा मथुराकी सुख सचारक कम्पनीकी स्थापना करनेसे पहले 'भारतमित्र' और 'आर्यावर्त' के सम्पादक थे। गुप्तजीके नाम उन्होंने आर्यावर्त आफिस १०६ काटन स्ट्रीट कलकत्तासे ३-३-१८९१ ई० के अपने पत्रमें लिखा है :—

......"मेरे वेतनके सम्बन्धमें आप क्या पूछते हैं। मेरा जी 'आर्यावर्त'को जीसे चलानेमें था (और है) यही समझकर जिस स्वल्प वेतनमें इसको मैं चलाता हूँ, आप सुनकर हँसेंगे अर्थात् आर्यावर्तके सम्पादनके २०) और अन्यान्य कार्योंका पृथक् हिसाब है। अतएव ३० मासिकका हिसाब पड़ जाता है। हिन्दी बंगवासीके सं० अमृत-लालजीके ५०) हैं, प० रुद्रदत्तजीके ४५) थे। राधाकृष्णजीके ३०) हैं। भारत-मित्रसे तो बाबू रामदास वर्माजीके आते ही मैं पृथक् हूँ। यद्यपि आजतक मालिकोंने मेरी छुट्टी मजूर नहीं की, तथापि विश्वास किया जाता है कि यह लोग छुट्टी देदेंगे।

आपका मित्र

क्षेत्रपाल शर्मा।"

अपूर्णताको पूर्ण करनेमें सफलता लाभ की। पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीने उन्हें हिन्दी वङ्गवासी-कार्यालयमें बुलानेके लिये जो पत्र लिखा था, उसमें भी अंग्रेजीमें योग्यता बढ़ानेका स्पष्ट संकेत किया था। उस समय अंग्रेजी भाषाके संवाद-पत्रोंका आशय समझकर भाषान्तर करनेकी पूरी दक्षता गुप्तजीमें नहीं थी। अतएव सबसे पहले उन्होंने पं० अमृतलाल चक्रवर्ती एवं पं० दुर्गाप्रसाद मिश्रजीकी सहायतासे उस कमीको पूर्ण किया। संस्कृतका अध्ययन भी वे गुड़ियानीमें प्रारम्भ कर चुके थे। तदन्तर कलकत्ते आकर उन्होंने रघुवंश आदि काव्य पढ़े। जिस समय वे कलकत्ते आये, उनकी अवस्था २८ वर्षके लगभग थी।

उन दिनों कलकत्तेका ईडन गार्डन और किलेका मैदान—दोनों ही गुप्तजीके सांध्य-भ्रमण एवं वायु-सेवनके नियत स्थान थे। प्रायः प्रतिदिन वे पं० प्रभुदलाल पांडेजी सहित जाते थे। कभी-कभी चक्रवर्तीजी भी साथ हो लिया करते थे। उस समय प्रातःकाल गंगास्नान करनेका भी उनका नियमसा था। वहाँसे सन्ध्यावन्दनादि कर लौटते थे। गंगा-स्नान करनेके नियमका पालन उन्होंने वर्षोंतक लगातार किया।

हिन्दी वङ्गवासीके समयकी गुप्तजीकी हिन्दी-सेवाका परिचय देनेके लिये यहाँ हम प० अमृतलाल चक्रवर्तीजीका अनुभवसिद्ध मत उपस्थित करते हैं। चक्रवर्तीजीका कथन है :—

. ..."जिस समय गुप्तजीने हिन्दी वङ्गवासीमें आकर हिन्दी लिखनेमें परिश्रम करना आरम्भ किया था, उस समयकी हिन्दीसे वर्तमान हिन्दीकी तुलना करनेवाले निःसंकोच कह देंगे कि हिन्दी-भाषाके लिये मानों युगान्तर उपस्थित हुआ है। अवश्य ही उससे बहुत पहले आधुनिक हिन्दीके पिता स्वरूप स्वर्गीय बाबू हरिश्चन्द्र मार्जित हिन्दीका आदर्श छोड़ गये थे, किन्तु उस समयके लेखक प्रायः किसी आदर्शके अवलम्बनसे भाषा लिखकर भाषाकी भविष्य-श्रीवृद्धिके लिये प्रयत्न

करनेका लक्षण नहीं दिखाते थे। सब अपनी-अपनी डफली अलग बजाते हुए भाषामें एकता लानेके बदले अनैक्य बढ़ानेमें ही बहादुरी समझते थे। अब भी एकआध ऐसे विचित्र प्रकृतिके लेखक नहीं मिलते हैं ऐसा नहीं; बंगालसे लेकर बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, मध्यप्रदेश, राजस्थान— प्रत्येक हिन्दी भूमिकी हिन्दी बहुत कुछ एक ही लेखककी लेखनीसे निकली हुई प्रतीत होती है। ध्यानसे भाषाका विचार करनेवाले आनन्दके साथ इस परिवर्तनका अनुभव करते होंगे। इस परिवर्तनमें बाबू बाल-मुकुन्दका परिश्रम साधारण नहीं है।"

"जिस समय बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी बंगवासीमें आये, उस समय स्वर्गीय पण्डित प्रभुदयाल पांडे, गुप्तजी और मैं—हम तीन भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषा-भाषियोंका विचित्र सम्मिलन हुआ। इनमें गुप्तजी दिल्ली प्रान्तके और पाण्डेजी व्रजमण्डलके,—दोनों ही सुघड़ हिन्दी बोलनेवाले थे और मैं एक तो बङ्गाली,—दूसरे जो कुछ हिन्दी बोल लेता था, वह न बिहार न युक्त प्रान्त—दोनोंके मध्यस्थलकी एक प्रकारकी खिचड़ी हिन्दी होती थी। कदाचित् इन भिन्न-भिन्न भाषा भाषियोंका एकत्र हिन्दी लिखनेमें आरूढ़ होना हिन्दी भाषाके लिये कुछ लाभकारी हुआ। तीनोंके नव-यौवनका प्रायः सारा आवेग लिखित हिन्दी भाषाको सुघड़ बनानेमें ही खर्च होता था। किसी-किसी दिन एक शब्दके पीछे दो-दो तीन-तीन बजे रात तक तीनोंमें कठिन लड़ाई होती थी। इस प्रकार हिन्दी भाषा सम्बन्धी कितने ही झगड़े उस समय आपसमें तय कर लेते थे और आज दिन उन तय किये हुए सिद्धान्तोंके अनुसार हिन्दीके प्रायः सभी वर्तमान लेखक अपनी भाषा निःसङ्कोच लिख रहे हैं। इस विषयमें स्वर्गीय पाण्डेजी और स्वर्गीय गुप्तजी जो परिश्रम कर गये हैं, उसका साक्षीस्वरूप मैं बना हुआ हूँ......स्वर्गीय बाबू बाल-मुकुन्द गुप्त बहुत हिन्दी लिख गये हैं। हिन्दी बंगवासी और भारतमित्रमें

उनके लिखे हुए लेखोंको इकट्ठा करने पर महाभारतसे कहीं बड़ा ग्रन्थ बन सकता है।" *.........

हिन्दी बंगवासीके समयकी गुप्तजीकी हिन्दी-सेवाकी स्मृतिके रूपमें दो पुस्तकें हैं। ये दोनों ही पुस्तकें अनुवाद होने पर भी अपना महत्त्व रखती हैं। इनमेंसे एक है "रत्नावली नाटिका" और दूसरी "हरिदास"। प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्रीहर्षदेव विरचित रत्नावली नाटिकाके गुप्तजी-कृत इस हिन्दी अनुवादका भी एक इतिहास है। गुप्तजीके ही शब्दोंमें सुनिये :—

"सन् १८८८ ई० में बांकीपुर खड्गविलास प्रेसके स्वामी श्रीयुत बाबू रामदीन-सिंहने स्वर्गीय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रकी नाटकावली छापी। वह मैंने पूरी पढ़ी। उसीमें मैंने देखा कि भारतेन्दुजीने रत्नावली नाटिकाके अनुवादमें हाथ डाला था, पर उसे पूरा नहीं किया। सवत् १९२५ वैशाख शुक्ला १ को उन्होंने यह अनुवाद आरम्भ किया था, पर केवल पहले अङ्कका विष्कम्भक मात्र लिखकर छोड़ दिया। इसके पीछे उन्होंने कितने ही नाटक लिखे, पर इसकी सुध न ली। इसके १५ वर्ष पीछे सवत् १९४० में उन्होंने नाटकोंके विषयमें 'नाटक' नामकी एक पुस्तक लिखी। उससे विदित होता है कि किसी एक सरकारी कालिजके पण्डितने रत्नावलीका हिन्दी अनुवाद किया और वह सरकारी व्ययसे छपा। भारतेन्दु उसे देखकर बहुत खिन्न हुए, तथापि अनुवादके पूरा करनेका उन्हें अवसर न मिला।

सन् १८८९ में मैं और स्वर्गीय पण्डित प्रतापनारायण मिश्र कालाकांकरके दैनिक हिन्दी पत्रसे सम्बन्ध रखते थे। उक्त पण्डितजी भारतेन्दुजीके बड़े भक्त थे। मैंने उनसे विनय की कि आप रत्नावलीका हिन्दी अनुवाद पूरा कर दीजिये। उन्होंने हां की। बम्बईके निर्णयसागर प्रेससे संस्कृत रत्नावली मँगाई गई, पर वह भी कुछ ऐसे झमेलेमें पड़े कि काम आगे न चल सका। कुछ दिन पीछे मेरा और उनका साथ

* गुप्तजीकी अपूर्ण पुस्तक "हिन्दी-भाषा" के प्रथम संस्करणकी पं० अमृतलाल चक्रवर्ती लिखित—भूमिका (सवत् १९६५ सन् १९०८ ई०)।

छूट गया। अनुवादकी बात फिर अन्धेरेमें पड़ गई। क्या अच्छा होता जो वह इस कामको कर जाते।

अन्तको सन् १८९८ ई० सितम्बर महीनेमें मैंने स्वयं रत्नावलीका हिन्दी अनुवाद करनेका साहस किया। मुझे केवल एक महीनेका समय मिला, उसीमें अनुवाद पूरा करके कलकत्तेके "हिन्दी बंगवासी" पत्रके उपहारके लिये देना पड़ा। जल्दीमें काम अच्छा न हो सका, फिर छपनेमें पुस्तक बहुत ही खराब हो गई। बहुत भूलें रह गईं। इतने पर भी हिन्दीके वर्तमान सुलेखक और कविवरोंने उसे पसन्द किया। यह मेरा उत्साह बढ़ानेकी बात हुई। मैंने सोचा कि किया तो साहस ही था, पर काम कुछ हो गया।

अब मैंने सन् १९०२ ई० के भारतमित्रके उपहारके लिये इस पुस्तकको बड़े ध्यानसे फिर पढ़ा और शुद्ध किया। पहलेसे इसका बहुत परिवर्तन हो गया है। कविताका बहुत अंश उस समय छूट गया था वह अब संयोजित कर दिया गया है। शुद्ध करते समय मेरे सामने रत्नावली नाटिकाकी दो संस्कृत, दो बँगला और दो ही हिन्दी पुस्तकें रही हैं। मुझसे जहाँ तक बन पड़ा है, अपनी पुस्तकको शुद्ध और सरल बनानेमें त्रुटि नहीं की।

इस नाटिकाका अनुवाद करना मेरा काम नहीं था। क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता। तथापि स्वर्गीय भारतेन्दुजी पर बहुत भक्ति होनेके कारण मैंने यह काम किया। मुझे इससे बड़ा आनन्द है कि भारतेन्दुजीकी सबसे पहले छेड़ी हुई यह पुस्तक आज पूरी होगई। इसमें गद्यकी जगह गद्य और पद्यकी जगह पद्यकी रचना की गई है। भारतेन्दुजीने इसी प्रकार आरम्भ किया था। इसके विष्कम्भकमें एक कवित्त और एक सवैया स्वर्गीय भारतेन्दुजीका बनाया हुआ है। वह दोनों उनके स्मारककी भाँति इस पुस्तकमें रखे गये हैं।" *

* * * *

* बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित रत्नावली नाटिकाके द्वितीय संस्करणकी भूमिका—६ दिसम्बर सन् १९०२ ई०।

गुप्तजीके "रत्नावली नाटिका" के अनुवादकी हिन्दी-क्षेत्रमें बड़ी प्रशंसा हुई थी। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने झाँसीसे भेजे हुए अपने १३ दिसम्बर सन् १८६६ ई० के पत्रमें गुप्तजीको लिखा था : ...... "रत्नावलीका जो अनुवाद आपने किया है वह हमने देखा है—देखा ही नहीं अच्छी तरह मनन किया है, "शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ"—इसका जब-जब हमको स्मरण आता है तब-तब साथ ही साथ आपका अनुवाद भी स्मरण आता है—हमको आप चाटुकार न समझें यदि हम यह कहें कि जैसा श्रीधरजी अंगरेजीका अच्छा अनुवाद करके पढ़नेवालोंके मनको मोहित कर लेते हैं वैसा ही आप संस्कृतका अनुवाद करके मोहित कर लेते हैं। आप कहते हैं कि आप संस्कृत नहीं जानते। न जानते होंगे—जब आप नहीं जानते तब तो ऐसा उत्कृष्ट अनुवाद कर सके यदि जानते होते तो न जाने क्या दशा होती। निश्चय आपका रत्नावलीका अनुवाद बहुत ही सरस है"........

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि उक्त पत्र द्विवेदी-युगके पूर्ववर्ती समयका है और गुप्तजीके रत्नावली नाटिकाके अनुवादकी सरसता एवं उत्तमताका उत्कृष्ट प्रमाण है।

गुप्तजीने 'हरिदास' नामकी दूसरी पुस्तक वङ्गभाषाके प्रसिद्ध लेखक बाबू रंगलाल मुखोपाध्याय—रचित पुस्तकके आधार पर लिखी थी। संवत् १६५३ में वह प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तकके विषयमें गुप्तजीके वक्तव्यका आशय है—"यह उक्त बङ्गला पुस्तकका तरजुमा नहीं, किन्तु मूलाधार या मसाला उसीका है। घटनाओंको उठाकर मैंने अपने ढंगपर अपनी भाषामें लिख लिया है।" इस पुस्तकके लिखनेका प्रयास क्यों किया गया—इस सम्बन्धमें गुप्तजीका कथन है—'इस पोथीके नायक साधु हरिदासजी पंजाबके लाहौर नगरमें ही अधिक प्रसिद्ध हुए थे। दैवयोगसे उनको

ऐसा अवसर मिला था, कि अंगरेजोंको भी वह अपना योगबल दिखा सके थे। परन्तु उधर उनका नाम भी कोई नहीं लेता है। अपने हरिदासको वह एकदम भूल गये हैं। एक हरिदास क्या, कितने ही हरिदास हुए हैं और तलाशसे कहीं एक आध अब भी मिल सकता है। परन्तु अब उनकी ओर कौन ध्यान करता है। पढ़े-लिखे लोगोंको देशोन्नतिसे अवकाश नहीं और मूर्खोंको पेटसे फुर्सत नहीं। अगरेजोंके 'मिसमिरिज्म' और थियोसोफीवालोंके 'योगाभ्यास' ने दबे हरिदासको बंगालमें अंगरेजी पढ़े बङ्गाली बाबू (रंगलाल मुखोपाध्याय) की लेखनीसे उखड़वाया। मेरी इच्छा हुई कि मैं हिन्दुस्थानी पोशाकमें हरिदासजीके हिन्दुस्थानियोंको दर्शन कराऊँ, जिससे वह अपने देशके गौरव साधु हरिदासजीको पहचानें तथा अपनी भूलपर कुछ तो लज्जित हों। उसीसे यह सब किया है।"

* * * *

गुप्तजीकी डायरीके अनुसार उनकी 'हरिदास'—नामकी पुस्तक सन् १८९६ ई० ता० १४ मईको बङ्गवासी स्टीम मेशीन प्रेसमें छपनेको दी गई थी और वह २३ जुलाई सन् १८९६ को छपकर तथा बँधकर तैयार हुई। उसको भी लोगोंने बड़ा पसन्द किया था। तदनंतर उर्दूवालोंके आग्रहपर गुप्तजीको सन् १८९८ में हरिदासका उर्दूमें अनुवाद करना पड़ा। हरिदासका वह उर्दू संस्करण 'रहबर' प्रेससे प्रकाशित हुआ था। रहबर प्रेस और पत्रसे गुप्तजीका सम्बन्ध बहुत पहलेसे चला आता था।

हिन्दी बङ्गवासीके सम्पादकीय विभागमें गुप्तजी सन् १८९३ के आरम्भसे १८९८ ई० के अन्त तक, प्रायः छै वर्ष रहे और अच्छी मान-प्रतिष्ठाके साथ रहे। बङ्गवासी-प्रेस और पत्रके स्वामी बाबू योगेन्द्र-चन्द्र बसु उनका बड़ा आदर करते थे। उस समय प्रधान सम्पादक और सहकारी सम्पादकमें केवल नामका भेद था, कर्त्तव्यमें कोई अन्तर नहीं समझा जाता था। सहकर्मियोंमें भी किसी प्रकारकी भेद-भावना नहीं थी। पारस्परिक सद्भावपूर्ण प्रेम और सहानुभूति ही देखी जाती

थी। मिला-जुला काम था। हिन्दी बङ्गवासीके लम्बे-चौड़े कलेवरमे जितनी पाठ्य सामग्री जाती थी, वह आपसके सलाह-मशविरेसे तैयार होती थी। पत्रका कोई स्तम्भ किसीके लिये रिजर्व नहीं था। समाचार, स्थानीय, मुफस्सिल अग्रलेख, पैरा, विशेषलेख, कहानी, समालोचना, चित्र-परिचय एवं कविता आदि, साप्ताहिक हिन्दी बंगवासीके निश्चित विषय थे। गुप्तजीने इन सभी विषयों पर लिखा और खूब लिखा।

नगरमे कहीं कोई घटना या दुर्घटना हो जाती तो उसे देखनेके लिये घटनास्थल पर हमारी—'चक्रवर्ती—चौबे—गुप्त'—त्रिमूर्ति ही नहीं, प्रत्युत् बंगला बंगवासीके सम्पादक भी साथ रहते थे। गुप्तजीकी डायरी में लिखा है :—

"मंगलवार, ता० ३ मई १६४८, वैशाख सु० १२ संवत् १६५५

सवेरे लिखापढी की। बासे होकर आफिस गये। नगरमे गड़बड़ है। रायटकी सी मारपीट है। दोपहरको पाचू*, अमृतलाल, चौबे, हम देखनेको निकले। बडी उदासी थी।"

इसके पूर्ववर्ती वर्षके भूकम्पका हाल :—

"शनिवार ता० १२ जून १८६७ ज्ये० सु० १२

सवेरे स्नानादि श्री गंगाजी पर किया। पुस्तक पढ़ी। आफिस गये। लेख शेष किया। इधर-उधरके काम किये, सन्ध्याको पांच बजे भयानक भूचाल आया। सब डर गये। मकान गिर गये। कोई पांच मिनट रहा। सब आफिस छोड भागे।" ....

"रविवार ता० १३ जून १६४७ ज्ये० सु० १३

सवेरे स्नानादि घर पर किया। व्रत रखा। चौरंगी, धर्मतल्ला, आल्

---

* बाबू पांचकौडी बन्दोपाध्याय, प० अमृतलाल चक्रवर्ती, चौबे प० प्रभु दयाल पांडे और स्वय बाबू बालमुकुन्द गुप्त।

गोदाम फिरकर साहबोंके मकान देखे। बड़ाबाजार देखा। सब भूचाल-से चूर थे। आफिस गये। भूचालका लेख लिखकर ४ बजे आये।

* * * *

गुप्तजीको अपनी दक्षताके कारण कभी-कभी सम्पादन सम्बन्धी कार्यके अतिरिक्त प्रधान व्यवस्थापककी अनुपस्थितिमें एक-दो सप्ताह ही नहीं,—वल्कि महीनों तक हिन्दी-बङ्गवासी कार्यालयके प्रबन्ध विभागको भी सँभालना पड़ता था। वे प्रबन्ध-पटु भी थे। अपने साथियोंके कष्टका बड़ा ध्यान रखते थे। जब छुट्टी पर घर जाते थे, तब घरसे भी अखबार-के लिये लेखादि बराबर भेजते थे। यह संयोगकी बात है कि सन १८९८ ई० के नवम्बरमें बङ्गवासीसे उनका इतना पुराना और घनिष्ठतर सम्बन्ध बातकी बातमें छूट गया।

उस समय व्याख्यान-वाचस्पति पं० दीनदयालुजी शर्मा सनातन धर्मके सिद्धान्तोंकी रक्षा और प्रचारके लिये प्रयत्नशील थे। पंजाब और उत्तर भारतमें पण्डितजीके व्याख्यानोंके प्रभावसे धर्म सभाएँ एवं पाठशालाएँ जगह-जगह स्थापित होती जा रही थीं। पण्डितजी जहाँ पहुँच जाते, वहाँके लाग अपना अहोभाग्य समझते। सन् १८९८—ता० ३१ अगस्तको पण्डितजी कलकत्ते पधारे थे। उस यात्रामें उन्होंने कलकत्ते-में तीन महीने निवास किया। गुप्तजीके शब्दोंमें—"वक्तृताएँ आपकी होती रहीं। पाँच-पाँच हजार आदमी एकत्र होते थे। बड़ा प्रभाव पड़ा। सात बजे (शाम) से १० बजे तक बड़ाबाजारके कामकाजी लोग काम छोड़कर व्याख्यान सुनने जाते थे। धर्मोत्साह जाग उठा। एक दिन सर्वसाधारणके चन्देसे १५ हजार रुपये एकत्र हो गये। अब तक यह चन्दा मारवाड़ियोंके यहाँ ही जमा था। उन दिनों स्थानीय "बङ्गवासी" धर्म-भवनके लिये दान माँग रहा था। उस चन्देसे वह ऐसा चिढ़ा कि

वर्षोंसे प्रशंसा करते-करते यकायक पंडित दीनदयालुजीको गालियाँ देने लगा।”……

यदि हिन्दी बङ्गवासीमें आलोचना पण्डित दीनदयालुजीके किसी अनुचित कार्यको लेकर सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे की जाती तो पंडितजी-के मित्र होते हुए भी गुप्तजी उसको सहन कर लेते, किन्तु हिन्दी बङ्ग-वासीने केवल इसलिये कि उसके प्रस्तावित धर्म-भवनके लिये उस चंदेको दे डालनेकी सलाह उन्होने लोगोको नहीं दी, पण्डितजीके विरुद्ध आन्दो-लन छेड़ दिया। गुप्तजी जैसा न्यायप्रिय तेजस्वी पत्रकार इस अनौ-चित्यकी कैसे उपेक्षा कर सकता था ? गुप्तजीने पत्रके प्रधान सम्पा-दक श्रीअमृतलालजी चक्रवर्तीको समझाया कि “आप आठ वर्षसे जिसका पक्ष करते आये हैं आज उसका विरोध न करें। क्योंकि ऐसा करनेमें आपकी निन्दा है। लोग आपको साफ स्वार्थी कहेंगे।”* किन्तु चक्रवर्तीजी बङ्गवासीके मालिककी नीतिसे मजबूर थे। इसपर गुप्तजीने तुरन्त नौकरी पर लात मार दी और उनका यह त्याग प्रशंसनीय समझा गया था।

उनके बङ्गवासीसे अलग होनेकी बात फैलते ही भारतमित्रके तत्कालीन मालिक बाबू जगन्नाथ दासने अपने पत्रके सञ्चालनका भार स्वीकार करनेके लिये गुप्तजीसे अनुरोध किया, किन्तु वे कलकत्तेसे एक बार अपने घर गुड़ियानी जाना निश्चित कर चुके थे। बाबू जगन्नाथ-दासजीको उन्होंने ही उत्तर दिया कि “इस समय तो मैं घर जाता हूँ। आप आवश्यकता समझें तो मुझे लिखियेगा।” यों हिन्दी बङ्गवासीसे हटनेके दो तीन दिन बाद ही ता० २४ नवम्बर सन् १८९८ ई० कार्तिक शुक्ला ११ बृहस्पतिवारकी रातको गुप्तजी, पण्डित दीनदयालुजीके साथ

* भारतमित्र ४ जून सन् १९०० ई०।

कलकत्तेसे रवाना हो गये। उनकी उस दिनकी डायरीमें लिखा है— "आज चला-चलीका दिन था। असबाब बांधा। मिला-जुली की। मुरलीधरके घर भोजन किया। सन्ध्या तक लोग पण्डित दीनदयालुजीसे मिलते रहे। ७ बजे चौकड़ी पर उनको विदा किया गया। बहुतसी फिटनें साथ थीं। सब रईस स्टेशन पर आये। गोस्वामी देवकीनन्दनजी तक आये। बड़ी धूमसे ट्रेन विदा हुई।"

---

[६]
"भारतमित्र" के सर्वेसर्वा

'हिन्दी बङ्गवासी' से अलग होनेके बाद गुप्तजी अपने घर 'गुड़ियानी' पूरे महीने भर भी न रहने पाये होंगे कि ता० २४ दिसम्बर सन् १८९८ ई० को उनके नाम भारतमित्रके स्वामी बाबू जगन्नाथदास डुर्रानीजीका तार पहुँचा :—"कृपया ३० वीं के पहले यहाँ निश्चित रूपसे पहुँचिये, उत्तर दीजिये (Please reach here before 30th positively reply)".

इस तारको पाकर गुप्तजी जनवरीके दूसरे सप्ताहमें कलकत्ते आये और १९-जनवरी, सन् १८९९ की 'भारतमित्र' की संख्या उनके द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुई।

भारतमित्रके उस अङ्कमें गुप्तजीने "दिल्लीसे कलकत्ता" शीर्षक लेखमें अपनी यात्राका वृत्तान्त अपने स्वाभाविक मनोरंजक ढंगसे लिखा था। अब तो वह विवरण गुप्तजीके जीवन-इतिहासका एक अंश बन गया है। उस सरस वर्णनको पढ़िये :—

"१० वीं जनवरीकी रातको मैं दिल्लीसे कलकत्तेके लिये मेल ट्रेनमें सवार हुआ। टिकट इण्टरका लिया। ट्रेन प्लेटफार्म पर आकर लगी, तो देखा कि इंटरमिडियट-की गाड़ी केवल एक ही है। उसमें भी एक कमरा युरोपियन साहबोंके लिये और एक युरोपियन लेडियोंके लिये। शेष तीन कमरोंमें हिन्दुस्थानी स्त्री-पुरुष सब। कड़कड़ाती हुई सर्दीके मारे असबाबके गट्ठड़ भी लोगोंके पास कम न थे। इससे उनकी वह बुरी नौबत हुई कि कुछ न पूछिये। बहुत लोग घबराकर तीसरे दरजेकी गाड़ीमें चले गये और जो भिच-भिचाकर रह सके, वह इटरमें पड़े रहे। ट्रेनको देखा तो उसमें दूसरे और पहले दरजेकी गाड़ियाँ केवल चार ही नहीं थीं; पांच थीं; तीसरे दर्जेकी भी दो थीं। परन्तु इटरमिडियटकी जिसकी मेलमें बड़ी जरूरत रहती है, केवल एक ही गाड़ी थी। भले मानुस हिन्दुस्थानी इसी दरजेमें सिर छिपाया करते हैं। उनके भाग्यसे रेलमें उसकी एक ही गाड़ी रह गई। दूसरे और पहले दरजेकी गाड़ियां मजेसे खाली चली जा रहीं थीं। उनमें कभी कोई एक-दो साहब-बीबी दिखाई देते थे।"

"इटरका टिकट लिया था। इससे जी न हुआ कि तीसरे दरजेमें बैठें। दबते-दबाते इण्टरमिडियट हीमें पड़े चले आये। जैसी दुर्दशा भोगी वह जी ही जानता है। जहां रेल ठहरती, वहाँ यदि एक आदमी उतरता था, दस घुसनेको दौड़ते थे। धक्कम-धक्का होकर कमसे कम दो आदमी तो घुस ही जाते थे। इस प्रकार भीड़ बढ़ती ही जाती थी। रात जिस प्रकार कटी उसे शरीरका जोड़-जोड़ जानता है।

सवेरा हुआ। सूर्य चमका। सरद हवा सनसनाती थी, तो भी सूर्यकी चमकसे जरा मुँह निकालनेका साहस हुआ। खिड़की खोलकर देखा तो गाड़ीके दोनों ओर हरी खेती लहलहाती थी। गाड़ी उस समय कानपुरके पास थी। दिल्लीसे उस तरफ इस साल खेती कम है। चनेकी फसल तो है ही नहीं। फसल हो तो कहांसे? कानपुरसे बक्सर तक दिन था, खेती दिखाई देती थी। इतनी दूरमें अबके चनेकी फसल अच्छी है। और भी खेती अच्छी है। विहारका जो अंश जलमग्न हुआ था, उसमें फसल खूब लहलहाती दिखाई दी। पञ्जाबका जगल, दिल्ली

का प्रान्त, हरियाना और शेखावाटीमें अबके खेती नहीं है इस तरफ फसल अच्छी है। इतना भी भला।"

"प्रयागमें मकरके स्नानके लिये यात्री जा रहे थे। दोनों ओरसे ट्रेनें भरी आ रहीं थीं। स्टेशन पर बड़ी भीड़भाड़ थी। कुछ कालेजोंके विद्यार्थी परीक्षा देकर प्रयागसे लौट रहे थे। इनका भी एक रेला मेल ट्रेन पर अच्छा पडा। दो-चारको जगह मिली। कुछ मित्र लोग इनको पहुंचाने प्लेटफार्म तक आये थे। एक गोरे साहबने उनको धक्के लगाकर बाहर निकाल दिया और उनका उजर कुछ भी न सुना। बेचारे पढ़े-लिखे लडकोंकी यह खराबी देखकर अनपढ़ोंको भी दुःख हुआ।

यहाँ उतरकर मैंने फौजी ढगका-सा स्नान किया परन्तु कुछ खा लेनेको कहीं जगह न मिली। गाड़ीके भीतरकी दशा तो सुना ही चुका हूँ। बाहर भी स्थान न था। यात्री फिरते थे, साहब-मेम फिरते थे। कबाब रोटीवाले फिरते थे, असबाबवाले कुली फिरते थे और गोरे-काले पुलिसवाले फिरते थे। हिन्दू बेचारा कहाँ भोजन करे? खैर, खड़े-खड़े ही दो पेड़े मुँहमें डाल पानी पी गाड़ीमें बैठना पड़ा। गाड़ी चली। सड़कके सहारेसे नगरका जो भाग दिखता था, वह रमणीक मालूम होता था। पुल परसे देखा यमुनाजीकी धारा बहुत ही क्षीण दशामें है। रेती चमकती थी। शायद इस माससे और सूख जायँगी। दिल्लीमें यमुनाकी ऐसी दशा है, मानों वह दिल्लीसे उठ जानेको है।" ....

"शाम होते-होते गाड़ी चौसा स्टेशन पर पहुंची, यह प्लेगके बीमारोंकी देख-भालका अड्डा है। यहाँ आकर ट्रेन ठहर गई। खिड़कियां पहले ही से बन्द थीं। पुलिसके दूत दौड़े आये और दरवाजे रोककर खडे हो गये। ठीक इस प्रकार जैसे कैदियोंको! मानों यात्री लोग भी गाड़ीसे उतरकर भाग जायँगे। इसके बाद खिड़की खुली और हमारे कमरेवालोंको नीचे उतरनेकी आज्ञा हुई। हमलोग नीचे प्लेटफार्म पर उतरे। आज्ञा हुई कि कतार बाँधो। हमने कतार लगाई। इसके बाद गाड़ीकी खिड़कीमें रस्से दोनों ओर डाले गये और उनमें हमलोग रोके गये। पशु रस्सेसे रोके जाते हैं परन्तु चौसे पर हम मनुष्य कहलानेवाले रस्सेके घेरमें थे।

दो गोरे साहब हमें देखने आये और दूर हीसे देखकर चल दिये, परन्तु कई आदमियोंकी जो हमारे पास ही थे खूब नाड टटोली गई। पीछे जान पड़ा कि, हमलोगोंको मोटा ताजा जानकर साहबने दूर ही से धन्य किया था।"

हमारी वाली गाड़ीके एक कमरेमें दो गोरी-मेम थीं। उनको गाड़ीसे उतरनेका कष्ट न हुआ। गोरी डाक्टरनीने उनकी गाड़ीके पास जाकर कुछ पूछा और अलग हुई। परन्तु दो बंगालिन स्त्रियाँ भी उसी गाड़ीमें थीं। उनको डाक्टरनीजीने उतारा और देर तक उनकी नाड़ी पर हाथ धरे रहीं। उसी गाड़ीमें दो साहब थे, वह भी नीचे उतरनेके कष्टसे बचे। ट्रेन भरमें किसी दरजेके किसी साहबको नीचे न उतरना पड़ा और हिन्दुस्थानी कोई भी रेलके भीतर न रहने पाया।"

"ट्रेन चली तो देखा कि तीन-चार आदमी उतार लिये गये। इनमें एक स्त्री थी और एक पुरुष कुछ दुर्बल। बेचारे कुछ बीमार भी न थे, कहा-सुनी भी उन्होंने बहुत की, परन्तु कुछ सुनाई न हुई। इनके चेहरे फीके पड़ गये थे। बेचारे हैरान थे कि क्या करें? प्लेटफार्मसे नीचे उतारकर यह प्लेगी मकानकी ओर किये गये। वहाँ दो प्लेगी ठेले थे, उनपर डालकर घसीटे गये, मानों वह सचमुच ही बीमार थे, मानो सचमुच प्लेगग्रस्त थे। जब कलकत्तेमें प्लेग कहा जाता था तो कलकत्तासे जानेवाली ट्रेनें भी चौंसेमें रोकी जाती थीं। और उनमेंसे इकनाइक दस-बीस यात्रियोंको उतारकर प्लेग-कैम्पमें सड़ाया जाता था। वही दशा अब कलकत्ताकी ओर जानेवाली ट्रेनोंकी होती है।......"

"जहाँ साहब लोगोंका भोजन वहीं ट्रेनका मुकाम। पहले मेल ट्रेन मुकामामें ठहरती थी। परन्तु अब रात जल्दी होती है, इसीसे दानापुरमें तीस मिनट ठहरने लगी। आश्चर्य कुछ नहीं, रेल साहबों ही के लिये है। रेलमें सुख पाना हो तो विलायतमें पैदा होनेकी प्रार्थना करो।"

"हुगलीसे हावड़ा तक प्रभातका समय था। रेलके दोनों ओर जल भरा था। उसमेंसे इतनी भाप उठ रही थी कि पेड़-पत्ते और भूमि आदि कुछ दिखाई न देते

थे। यह अधिक सरदी होनेका प्रताप था। पञ्जाब और पश्चिमोत्तर प्रदेशमें तो अबके अपार जाड़ा है ही, परन्तु बंगदेशमें भी खूब है।"

यह है 'दिल्लीसे कलकत्ता' तककी इस यात्राका गुप्तजी द्वारा अङ्कित शब्द-चित्र। गुप्तजी ता० १० जनवरी, सन् १८९९ की शामको दिल्लीसे रवाना होकर ता० १२ जनवरीको सवेरे कलकत्ते पहुँचे थे। इस बार वे केवल सम्पादक ही नहीं,—भारतमित्रके कर्णधार बनकर आये थे। उदारमना बाबू जगन्नाथदासजीने उनको विश्वास दिला दिया था कि भारतमित्रको आप अपना पत्र समझकर चलाइये। हम इससे कमाई करना नहीं चाहते। देश और समाजकी इसके द्वारा भलाई हो, आरंभसे भारतमित्रके संस्थापकोंकी यही कामना रही है। इसकी आमदनी इसीकी उन्नतिमें लगती रहे।

अपने इस वचन पर बाबू जगन्नाथदास बराबर कायम रहे। समय समय पर उनकी और उनके मित्रोंकी भारतमित्रमें गुप्तजी द्वारा खरी आलोचना प्रकाशित होनेपर भी उन्होंने कभी यह नहीं पूछा कि आप लिखते क्या हैं? इस समय ऐसे स्वामी और सम्पादक दिखाई नहीं देते। बाबू जगन्नाथदास दुर्रानी (अग्रवाल) चाँदीके प्रसिद्ध व्यवसायी थे। स्थानीय नेशनल बैंक आफ इंडिया लिमिटेडमें उनका आफिस था और उसके वे एकमात्र सोनेके दलाल थे। बड़े दबंग, साहसी, और अपनी धुनके पक्के थे। उनका बड़ा रौब-दाब था और वे 'दासजी' के नामसे मशहूर थे। उनकी पहुँच सर्वत्र थी। भारतमित्रको चलानेमें उन्होंने मुक्तहस्त होकर व्यय किया था। ता० १५ जनवरी, सन् १९३६ को निस्सन्तानावस्थामें बाबू जगन्नाथदासजीका देहान्त हुआ।

[१०]

आठ वर्षकी साहित्य-साधना

सन् १८६६ ई० के आरम्भमें गुप्तजीने साप्ताहिक भारतमित्रके सम्पादन एवं सञ्चालनका भार ग्रहण कर सर्वप्रथम पत्रका आकार बढ़ाया और जनसाधारणकी सुविधाके विचारसे उसका वार्षिक मूल्य रु० ३) से घटाकर २) रु० किया। उसी लम्बे-चौड़े आकारमें भारतमित्र बड़ी धूमधामसे चला और उसके द्वारा साढ़े आठ वर्ष उन्होंने हिन्दी-साहित्यकी एकनिष्ठ सेवा की। इस अवधिमें वे देशके राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक प्रश्नोंपर निर्भय होकर अपने स्पष्ट विचार व्यक्त करते रहे। किसी व्यक्ति विशेषसे दबकर ठकुर-सुहाती करना या पक्षा-पक्षीके झमेलेमें उभय-पक्षी "रामाय स्वस्ति रावणाय स्वस्ति" की नीतिके अवलंबनसे मतामत देना गुप्तजीके स्वभावके सर्वथा विपरीत था। गुप्तजीकी निर्लेप एवं निर्भीक नीतिने समूचे देशमें उनकी और उनके भारतमित्रकी प्रसिद्धिका डंका बजा दिया था। ब्रिटिश-वैभव-प्रदर्शनके राजसूय—लार्ड कर्जनके सन् १६०३ ई० के दिल्ली-दरबारमें भारतमित्र-सम्पादक गुप्तजी अंग्रेजी पत्रोंकी भाँति निमंत्रित होकर सम्मिलित हुए थे। हिन्दी पत्रोंमें उस समय यह सम्मान भारतमित्रको ही मिला था। सन् १६०४ ई० में न्याय निर्धारणार्थ कलकत्ता हाईकोर्टमें गुप्तजी सादर स्पेशल जूरर मनोनीत हुए थे।

पण्डित दीनदयालुजी पर किये हुए बङ्गवासीके अनुचित आक्रमणोंका प्रतीकार गुप्तजीने 'भारतमित्र' में बैठते ही "मूल सहित ब्याज चुकाने" की लोकोक्तिके अनुसार जवाब देकर किया। बँगला बंगवासीके प्रधान सम्पादक बाबू पांचकौड़ी वन्द्योपाध्यायके पद-त्यागकी सूचना पढ़कर उन्होंने "पांचकौड़ी भी नहीं" शीर्षक लेख लिखा; जिसमें बङ्गवासीके स्वामीकी स्वार्थपरायणताका परिचय देनेके साथ धर्म-भवनका पूरा रहस्य खोलकर बता दिया गया। उस लेखका कुछ अंश इस प्रकार है :—

बङ्गवासीसे दो दो बातें

"बंगला-बंगवासीके प्रधान सम्पादक बाबू पांचकौड़ी वन्द्योपाध्याय नौकरी छोड़ गये। बंगवासीने ११ फरवरीके अकमें उनके चले जानेका दुःख इस प्रकार किया है, मानों वह फिर भी आयेंगे। परन्तु फिर आनेवाले छोड़कर नहीं चले जाया करते, दूर ही से धमकी दिखाया करते हैं। पांचकौड़ी बाबू बी० ए० थे, सुलेखक थे। सभा-समाजोंमें जाने, हाकिमोंसे मिलनेके उत्साही थे। बंगवासी आफिसमें अपने ढंगके एक ही योग्य आदमी थे। उनके अचानक नौकरी छोड़ जानेसे सबको आश्चर्य हुआ है। परन्तु आश्चर्य होनेकी कोई बात नहीं है। प्लेग आनेके कुछ पहिलेसे बगवासीको एक महाव्याधिने घेरा है, जो लोग इस बीमारीका मुकाबिला करके ठहर सकेंगे उन्हींका बगवासी आफिसमें गुजारा है, नहीं तो नहीं है। बंगवासीके मालिक एक कायस्थ महाशय हैं, आप ही हिन्दी बङ्गवासी भी चलाते हैं, आप ही वी० बसु कम्पनीके रूपमें 'विजया वटिका' और हाथी मार्का 'सालसा' भी बेचते हैं, 'जन्मभूमि' नामका एक बगला मासिक-पत्र तथा एक अंग्रेजी मासिक-पत्र भी निकालते हैं, प्लेगके समय प्लेगकी दवा भी आप ही बेचते थे। आपके आदिस्थान 'बेहुग्राम' जिले बर्दवानमें एक 'शुभचण्डी देवी' हैं। उन देवीने आपको एक पाचन चूर्ण दिया, वह चूर्ण भी बेचकर देशोपकार करते हैं, उन भगवती शुभचण्डीका मेला भी हर साल लगवाते हैं, उस मेलेके लिये बड़ी धूमधाम करते हैं, विज्ञापन देते हैं, मेलेमें रण्डीका

नाच कराते हैं, पहलेसे विज्ञापन देते हैं कि रण्डी ऐसी है, ऐसा गाती-बजाती है। इस साल भी शुभचण्डीका मेला था, रण्डीके नाचके विषयमें ४ थी फरवरीका बंगवासी यों लिखता है :—कलकत्तेकी श्रीमती पन्नाका कीर्त्तन मेलेमें होनेकी बात थी, किसीको विश्वास न था कि वह अपने पन्ना नामको सार्थकता करेगी। उसका पन्ना नाम इसलिये है कि वक्तपर वह 'पान ना" यानी मिलती नहीं है। कलकत्ते पन्नाका तार आया कि मैं बहुत बीमार हूँ, इस तारसे पन्नाके आनेकी आशा टूट गई। यद्यपि पन्नाके न आनेसे मेलेकी कुछ हानि न थी, तथापि मेलेके मालिकोंने शिकायतके डरसे श्रीमती मानकुमारीको नचाया। मानकुमारीने उत्तम कीर्त्तन किया। जयदेवके पद जब उसने गाये तो एक भट्टाचार्यने कहा,—संस्कृतानभिज्ञ रमणीके कण्ठसे ऐसी विशुद्ध संस्कृत कभी न सुनी थी।

इतने पेशे करने पर भी बंगवासीके अध्यक्षको सन्तोष न हुआ। एक नया ढोंग आपने निकाला, वह यह कि बंगवासीका आफिस भी बने और साथ ही एक शिवालय, एक षट्दर्शन पाठशाला, एक लेक्चर हाल और ईश्वर जाने क्या-क्या बने। हिन्दुस्थानके लोग अढ़ाई लाख रुपया इस महाकार्यके लिये बंगवासीके बंगाली कायस्थ प्रभुको प्रदान करें। यदि घरके रुपयेसे यह सब बनता तो किसीको एतराज ही क्या था? पर नहीं; रुपया पराई जेबसे आवे। जब सुना कि पण्डित दीनदयालुजीके व्याख्यानोंसे कलकत्तेके बड़े बाजारमें १५ हजारका चन्दा हो गया तो बंगवासीके अध्यक्षकी निगाह उसपर पड़ी। उसके छीननेके लिये तीन-चार सप्ताह तक पण्डित दीनदयालुजीकी निन्दा की। बालमुकुन्द गुप्तने इस भयसे कि अब पत्रमें पण्डित दीन-दयालुजीकी निन्दा छपेगी, हिन्दी बंगवासीसे अपना सम्बन्ध छोड़ दिया। परन्तु अब बंगवासीके प्रधान सम्पादकने अपना सम्बन्ध क्यों छोड़ा। उनके तो किसी दीनदयालुकी इज्जतका भय न था? सुना है, इन पांचकौड़ी बाबू तथा हिन्दी बंगवासीके सम्पादक अमृतलालजीको धर्म-भवनके लिये भिक्षा मांगनेकी आज्ञा हुई थी,—कहा गया था कि आप देश-विदेश फिरकर धर्म-भवनके लिये चन्दा लाइये। पांचू बाबूको

ह भिक्षाटन पसन्द न हुआ, नौकरी छोड़ गये……… । अखबारके सम्पादक खबार लिखनेको होते हैं या भीख मांगनेको ?" *………

इसके अनन्तर गुप्तजीने समय-समय पर कितने ही लेख, टेसू, ोगीड़ा और व्यङ्ग्य चित्र प्रकाशित कर बंगवासीके अनौचित्यका पूरा-ूरा प्रायश्चित्त कराया।

उर्दू बनाम नागरी

काशी नागरी प्रचारिणी सभाके आन्दोलन एवं महामना प० मदन-मोहन मालवीयजीके प्रभावपूर्ण उद्योगके फलस्वरूप पश्चिमोत्तर प्रदेश और अवध सरकारकी ओरसे संख्या ५८५—सन् १९०० ई० ३—२४३ सी० ्८ द्वारा ता० १८ एप्रिलको इस आशयकी आज्ञा प्रकाशित हुई :—

(१) समस्त मनुष्य प्रार्थना-पत्रों और अर्जीदावोंको अपनी अपनी इच्छाके अनुसार नागरी वा फारसी अक्षरोंमें दे सकते हैं।

(२) सभी समन, विज्ञप्तियां और दूसरे प्रकारके पत्र जो सरकारी न्यायालयों वा प्रधान कर्मचारियोंकी ओरसे देशी भाषामें प्रकाशित किये जाते हैं, फारसी और नागरी अक्षरोंमें जारी होंगे और इन पत्रोंकी खाना-पूरी फारसी अक्षरोंकी भांति ही हिन्दीमें की जाय।

(३) अंगरेजी आफिसोंको छोड़कर आजसे किसी न्यायालयमें कोई मनुष्य तब तक नियत नहीं किया जायगा जब तक वह नागरी और फारसीके अक्षर अच्छी तरह लिख-पढ़ न सकता हो।

गवर्नमेंटने किसीके दबावमें आकर अचानक नहीं, प्रत्युत् बहुत दिनोंके विचार-विमर्श और जांच-पड़तालके बाद यह आज्ञा दी थी। सरकारके पास न्यायालयों तथा सरकारी दफ्तरोंमें नागरी अक्षरोंका

* भारतमित्र १६ फरवरी, १८९९।

व्यवहार करनेके लिये विभिन्न तिथियों या तारीखोंके बहुसंख्यक आवेदन-पत्र पहुँचे थे, सन् १८६८ ई० में नागरी अक्षरोंका प्रचार चाहनेवालोंका एक डेपुटेशन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एण्टनी मेकडानलसे मिला था। नागरी-हिन्दीके विरोधमें पहुँची हुई अर्जियाँ भी उसके सामने थीं। इसके अतिरिक्त उक्त प्रान्तोंके न्यायालयों और सरकारी दफ्तरोंमें नागरी अक्षरोंके प्रचारके विषयमें रेवेन्यू बोर्डकी १६ अगस्त सन् १८६६ ई० की रिपोर्ट एवं इसी सन्की मनुष्य-गणनाके समय अंगरेजी, उर्दू, नागरी और कैथीमें गिनती करनेवाले मध्यम श्रेणीके पढ़े-लिखे आदमियोंके आंकड़े विचारार्थ उपस्थित किये गये थे। इन सब बातोंके उल्लेखके साथ नागराक्षरोंके सम्बन्धमें आज्ञामें यह भी बता दिया था कि पहले यहां न्यायालयोंमें फारसी भाषा और फारसी अक्षरोंका व्यवहार था। फारसीके स्थानमें देशी भाषाओंका व्यवहार करनेका प्रबन्ध पहले पहल सन् १८३७ ई० में हुआ था। उस समय सपरिषद् गवर्नर जेनरलने बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रान्तके न्यायालयोंकी भाषामें परिवर्त्तन करनेका हुक्म दिया था। इसी उद्देश्यसे सन् १८३७ ई० के नवंबरमें एक कानून भी पास किया गया था। इसके दो वर्ष पश्चात् सदर दीवानी अदालतने अपनी अधीनस्थ सब अदालतों में हिन्दुस्तानी अर्थात् उर्दूके प्रचारके लिये आज्ञा दी थी। वह आज्ञा केवल उर्दू भाषाके विषयमें थी,—अक्षरों के विषयमें नहीं। सन् १८६८ ई० में न्यायालयों में फारसी अक्षरों के स्थानमें नागरी अक्षरों का व्यवहार-स्वीकार करनेके लिये गवर्मेंटसे प्रार्थना की गई थी और उस समयसे अब तक उसका ध्यान बराबर आकर्षित किया जा रहा था। पश्चिमोत्तर प्रान्तके पड़ोसी बिहार और मध्यप्रान्तके न्यायालयों में फारसी अक्षरों के स्थानमें नागरी अक्षरों का प्रचलन पूर्णरूपसे हो गया था, इसलिये हिन्दी अक्षरों के अधिक प्रचारसे भविष्यत्में इन प्रान्तों की एक बड़ी संख्याके

मनुष्योंकी सुविधाके विचारसे बोर्ड आफ रेवेन्यू और हाईकोर्ट तथा अवधके जुडिशियल कमिश्नरकी सम्मतिसे सहमत होकर लेफ्टिनेण्ट गवर्नरने नागरीके सम्बन्धमें उक्त आज्ञा प्रचारित की थी।

इस आज्ञाके निकलते ही मुसलमानोंमें तहलका मच गया। उनके अन्धाधुन्ध आन्दोलनका तूफान नागरीके विरोधमें उठा। अपने अखबारों और सभाओं द्वारा उन्होंने आकाश-पाताल एक कर डालनेका अकाण्ड-ताण्डव किया। लखनऊमें एक "उर्दू डिफेंस सेंट्रल कमेटी" बनाई गई। दिल्ली, इलाहाबाद और लाहौर भी नागरी-विरोधके उन दिनों अड्डे हो रहे थे। उस समय गुप्तजीने भारतमित्र द्वारा बड़ी धीरतासे डटकर नागरी-हिन्दी विरोधियोंके कुतर्कोंका साधिकार उत्तर दिया था। उन्होंने उर्दूके हिमायती-नागरी-हिन्दी-विरोधियोंको प्रायः निरुत्तर कर दिया था। उनकी बहुजनादृत "उर्दूको उत्तर" नामकी विनोदात्मक कविता उसी समय और प्रसङ्गकी रचना है।

इस सम्बन्धमें गुप्तजीके लिखे हुए कुछ लेखोंके शीर्षक हैं:—

"नागरी अक्षर", "मुसलमानी नाराजी", "उलटे अक्षर", "उर्दूकी मौत", "उल्टी दलील", "पंजाबी उर्दू", "नागरीकी अर्जी", "गरारेदार पण्डत", "मौलवीका ऊँट", "नागरी और उर्दू", "कुल्हियामें गुड़", "हिन्दी उर्दूका मेल", "हिन्दो और उर्दू", "नागरीका फैसला" इत्यादि।

'नागरी अक्षर' शीर्षक लेखमें कहा गया है—"काशीकी नागरी प्रचारिणी सभा देवनागरी अक्षरोंके सरकारी दफ्तरोंमें प्रचार करनेके लिये कई वर्षसे लगातार चेष्टा कर रही थी। अब उसका इतना फल निकला है। अब तक बेचारे देवनागरी अक्षरोंको सरकारी दफ्तरोंमें कोई कौड़ीको भी नहीं पूछता था, अब उनकी कुछ कदर हुई। लखनऊके दिल्लगीबाज अखबार "अवधपंच" ने इस पर एक बड़ी दिल्लगीका चित्र बनाया है। देश-भाषा रूपी ऊँट पर आगे फारसी अक्षरोंको एक मुसलमानके वेषमें बिठाया है और पीछे देवनागरी अक्षरोंको एक हिन्दूके

रूपमें सवार कराया है। नीचे लिखा है कि "देखिये यह ऊँट किस कल बैठे।" इसी लेखमें आगे लिखा है—"नागरी प्रचारिणी सभाके उद्देश्यकी इस थोड़ी-सी सफलताका भी हमको बड़ा हर्ष है। हम उसके उद्योगी मेम्बरोंकि दृढ़तासे नागरी आन्दोलन करनेकी प्रशंसा करते हैं और उनको बधाई देते हैं। परन्तु इस विषयको लेकर इस समय जो आन्दोलन खड़ा हुआ है उसकी हड़बूँगमें फँसनेसे उनको रोकते भी हैं। हम देखते हैं कि एक तरफ तो देवनागरी प्रचारिणीवाले इससे इतने प्रसन्न हुए हैं कि अपनेको आपही धन्यवाद और बधाई दे रहे हैं। दूसरी ओर मुसलमानोंने यह समझ लिया है कि उनके साथ मानों बड़ा वज्र अन्याय हुआ है। इस समय उनका यह कर्तव्य है कि मुसल्मानोंको शान्त करें। उनको समझावें कि वह कुछ लुट नहीं गये हैं और न उनका हक छीनकर हिन्दुओंको दे दिया गया है। देवनागरी-को केवल अदालत तक आनेकी आज्ञा मिली है। जब फारसी अक्षरोंके जाननेवालोंसे देवनागरी जाननेवाले कई गुना अधिक हैं तो क्या उनका कुछ भी लिहाज नहीं होना चाहिये! लखनऊके मुसलमानोंने सभा करके पश्चिमोत्तर प्रदेशके छोटे लाटकी इस आज्ञाका विरोध किया है। मि० हमिदअली खाँ बारिस्टर इस कामके अगुआ हैं। उन्होंने चाहा है कि यह आज्ञा लौटा ली जाय। मुसलमानोंके जितने अखबार हैं, सब इस विषयको मजहबी रंगमें रँगकर इसे उर्दू-हिन्दीकी लड़ाई बना रहे हैं। यदि इस विषयको लेकर हिन्दू-मुसल्मानोंके मेलमें कुछ मनमेल पड़े तो अच्छी बात नहीं। नागरी प्रचारिणी सभावालोंको चाहिये कि जब तक यह नया बखेड़ा शान्त न हो तब तक खूब शान्तिसे काम करें। झूठमूठके आनन्दमें उन्मत्त होनेकी कोई जरूरत नहीं है। मुसल्मानोंको यह जानना चाहिये कि—जिस भाषाको वे उर्दू कह रहे हैं, वह हिन्दीसे अलग नहीं है। उर्दूके आदि कवियोंने उस भाषाको 'हिन्दवी' कहकर पुकारा है। हिन्दीको आप लोग जबर्दस्ती फारसी अक्षरोंमें लिखने लगे थे, जिसमें वह ठीक लिखी भी नहीं जा सकती है। इसीसे शुद्ध हिन्दी शब्दोंको आप लोगोंने अपने अक्षरोंके अनुसार तोड़-फोड़ डाला है। प्रसादको 'परसाद' बनाया, समुद्रको 'समन्दर'

किया, हरिद्वारका 'हरदवार' बनाया, वृन्दावनको 'बंदरावन' बनाया। हिन्दीके हजारों प्रचलित शुद्ध शब्द आपलोगोंके इन फारसी अक्षरोंके कारण नष्टभ्रष्ट हुए। आप लोग खूब समझें कि देवनागरी अक्षरोंके प्रचारसे आपकी हानि नहीं—लाभ होगा। आप लोगोंके फारसी अक्षर आपके भी कामके नहीं हैं। आपके अली बिलग्रामी अपनी प्रसिद्ध उर्दू पुस्तकमें इस बातको भलीभांति प्रकाश कर चुके हैं।"*

"मुसलमानी नाराजी"—शीर्षक लेख लखनऊके मुसलमानों द्वारा नागरीके विरोधमें भेजी हुई अर्जीके उत्तरमें लिखा गया था। मुसलमानोंकी अर्जीमें कहा गया था कि नागरी अक्षर उपयुक्त होते तो 'बनिये महाजन वगैरह तिजारजपेशा कौमें अपने लिये मुखतलिफ किस्मके हरूफ ईजाद करने पर मजबूर न होतीं।' गुप्तजीने इसका जवाब यह कह कर दिया :—"बनिये महाजनोंकी बात लेकर नागरी अक्षरोंको अयोग्य कहना ठीक नहीं है। बही-खातेकी बातको लेकर बहस करना है तो दिल्लीके प्रायः सब दुकानदार मुसलमान महाजनी अक्षरोंमें 'बही-खाते' रखते हैं, कलकत्तेके कोल्हूटोलामें दिल्लीके मुसलमानोंका बड़ा जोर है, यहां भी उनका 'बही-खाता' मुड़िया महाजनी अक्षरोंमें चलता है। फिर यह भी नहीं कि मुसलमान साधारण महाजनोंकी तरह अनपढ़ होते हैं, वरञ्च वह भली भांति फारसी अक्षर और उर्दू भाषा सीखे हुए होते हैं। लखनऊके मुसलमानोंको उनसे पूछना चाहिये कि वह फारसी अक्षरोंमें 'बही-खाता' क्यों नहीं लिखते? क्या फारसी अक्षर निकम्मे हैं? नागरी अक्षर कुछ मुश्किल नहीं हैं। फारसी अक्षरोंकी भांति नागरी अक्षरोंके सीखनेमें चार-पांच साल नहीं लगते हैं। नागरी अक्षर तो महीने पन्दरह दिनमें ही आ जाते हैं। मुसलमान भाई नागरीको सीखकर फारसी अक्षरोंसे उनका मुकाबिला करें और तब कुछ कहें।"

मुसलमानोंने अपनी अर्जीमें एक उज्र यह उठाया था कि मुसलमान लोग नागरीको हिन्दुओंकी धर्म-भाषा समझकर नहीं पढ़ते और न

* भारतमित्र ; २१ मई सन् १९०० ई०।

पण्डित लोग अपनी पवित्र नागरी भाषाको उन्हें सिखाते हैं। सरकारी मदरसोंमें मुसलमान कुछ नागरी सीख लेते हैं, पर ब्राह्मण लोग स्वयं मुसलमानोंको देवनागरी सिखाना पसन्द नहीं करते। इससे नागरी जाननेवाले मुसलमान बहुत कम हैं। यदि मुसलमानोंके दुर्भाग्यसे सरकार दफ्तरोंको नागरीमें कर देगी तो मुसलमान बरबाद हो जायंगे। इसपर गुप्तजीने एक प्रसिद्ध मुसलमान बैरिस्टरकी सलाहसे ऐसे खुराफातसे भरी अर्जी लिखी जानेके लिये अफसोस करते हुए कहा है :—

"देवनागरी किसी भाषाका नाम नहीं है, यह तो केवल अक्षरोंका नाम है। कोई पण्डित ऐसा नहीं है जो मुसलमानोंको देवनागरी अक्षर सिखानेसे इनकार करे। मध्यप्रदेशके मुसलमान देवनागरीमें अच्छी तरह लिख-पढ़ सकते हैं। पश्चिमोत्तर प्रदेशमें सैकड़ों नहीं—हजारों मुसलमान, शुद्ध देवनागरी लिख-पढ़ सकते हैं। केवल पढ़ते ही नहीं—स्कूलमास्टर बनकर कितने ही हिन्दुओंको पढ़ाते हैं। कितने ही मुसलमान देवनागरी लिखना-पढ़ना ही नहीं जानते—शुद्ध हिन्दी भाषामें उत्तम-से-उत्तम कविता भी करते हैं। बङ्गालके मुसलमान बङ्गाक्षर यहां तक सीखते हैं कि फारसी अक्षरोंका वह नाम भी नहीं लेते। बम्बईके मुसलमान मरहठी भाषा और मरहठी अक्षर यहां तक सीखते हैं कि वहांके सरकारी दफ्तरोंमें अनुवादका काम करते हैं। बम्बईके अखबारों पर जब सरकारने सिडिशनका मुकदमा चलाया था तो मुसलमान अनुवादकोंने ही मरहठीका अनुवाद अंगरेजीमें कराया था। बङ्गालके मुसलमान भी बङ्गाली अक्षर सीख सकते हैं और बम्बईके मरहठी तो क्या लखनऊके मुसलमानोंको कोई देवनागरी अक्षर सिखानेवाला नहीं मिलेगा।"*

"उल्टे अक्षर" शीर्षक लेखमें कहा है—"सब जानते और मुसलमान भी मानते हैं कि उर्दू शाहजहांके लश्करमें बनी। अजभाषा और फारसीके मेलसे इसकी उत्पत्ति है। बादशाहोंके समयमें दफ्तरोंकी भाषा फारसी थी और फारसी अक्षरोंमें ही यह लिखी जाती थी। फारसी अक्षरोंका अधिक रिवाज होनेसे नई भाषा भी उन्हीं

* भारतमित्र २१-५-१९०० ई०।

अक्षरोंमें लिखी जाने लगी। नहीं तो फारसी अक्षरोंका इस भाषा पर कुछ हक नहीं है। हिन्दुस्थानके देवनागरी अक्षरोंमें ही इसका लिखा जाना जरूरी था। परन्तु खैर, तब जैसा समय था वैसा हुआ। अब भी हर एक आदमी उन्हीं अक्षरोंमें लिखने पर लाचार किया जाय, यह कुछ बात नहीं। मुसल्मानोंको चाहिये कि उलटे अक्षरोंमें कुछ बहुत गुण हैं तो दिखावें। उनको अपने उलटे अक्षर बहुत पसन्द हैं तो उन्हींमें लिखा करें सरकारने उनको रोका नहीं है। परन्तु करोड़ों हिन्दुओंको नागरी अक्षर लिखनेसे वह क्यों रोकना चाहते हैं? यह हमारी समझमें नहीं आता। संसारमें सब बाईं तरफसे दाईं तरफको लिखते हैं। केवल मुसलमान ही दाईं ओरसे लिखते हुए बाईं ओरको आते हैं। उनके उलटे अक्षर ऐसे नामुकम्मिल हैं कि जिस भाषाके लिये वह बने हैं; उसीको ठीक-ठीक नहीं लिख सकते। इब्रानी भाषासे यह अक्षर अरबीमें आये। परन्तु क्या आये; न उनमें 'य' है न 'ट' है; न 'च' है; न 'ड' है; न 'ड़' है; न 'ग' है। फारसीवालोंने उनकी बनावटको जरा सीधा करके उसमें 'चे' 'पे' और 'गाफ' घुसेड़ा है। परन्तु बाकीकी कसर रह गई। पीछे आई उर्दू। उसके लिये तो देवनागरीके सभी वर्णोंकी आवश्यकता थी; इसीसे उर्दूवालोंने एक 'टे' गढ़ी; 'डाल' बनाई और 'ड़े' निकाली। परन्तु उससे भी क्या हो सकता था? 'घ' रह गया। छ, झ, ठ, ढ, ध, इत्यादि कितने ही व्यञ्जन रह गये। इनके लिये उर्दूवालोंसे कुछ न बना तो एक 'दोचश्मी हे' निकाली। उसे 'टे' 'दाल' 'डाल' आदिमें मिलाकर उक्त वर्णोंकी आवाज निकालने लगे। परन्तु उससे भी मतलब पूरा नहीं हुआ। बहुत चीजोंकी कसर रह गई। 'ण' की आवाज उर्दू-अक्षरोंमें नहीं है। 'प्रचारिणी' लिखनेमें वह 'परचारिनी' लिखेंगे। बहुत शुद्ध लिखने बैठते हैं तो 'परचारिडी' लिखते हैं। ह्रस्व और दीर्घका उर्दूमें भेद नहीं; 'प्र' और 'पर' का भेद ही नहीं। इसीसे बेचारे अली बिलग्रामी अपनी किताबकी भूमिकामें भींखे थे कि उर्दू अक्षरोंमें ठीक-ठीक लिखनेकी शक्ति नहीं है। पढ़नेवाला अपनी लियाकतसे शुद्ध पढ़ सकता है; अक्षरोंमें इतनी योग्यता नहीं है कि; पढ़नेवाला अक्षरोंके भरोसे शुद्ध पढ़ सके। एक बिन्दीके फेरमें इन अक्षरोंसे बाबू 'याबू' और जुदा 'जुदा' बन सकता है।"*

* भारतमित्र ११-६-१९०० ई।

लाहौरके 'पैसा अखबार' ने नागरी अक्षरोंके जारी होनेको उर्दूके लिये 'पैगामे मौत' कहा था और लिखा था कि अक्षरोंके बदलनेसे यह ज़ुबान मलियामेट हो जायगी। मलियामेट होनेका कारण यह बताया था कि नागराक्षर कामके नहीं, उनमें उर्दू शब्दोंके लिखनेकी शक्ति नहीं। पैसा अखबारके लेखके उत्तरमें गुप्तजीने "उर्दूकी मौत"—शीर्षक लेखमें पूछा है—"जाल—ज़े—ज्वाद और जोयके उच्चारणमें क्या फर्क है और यदि फर्क नहीं है तो क्यों यह—'जाल'—'ज़े', 'ज्वाद' 'जोय' इकट्ठे किये गये हैं। उर्दू भाषाका तो एक भी शब्द ऐसा नहीं है कि जिसमें सिवाय 'जीम' और 'ज़े' के 'जाल-ज्वाद-जोय' किसीकी कुछ भी जरूरत पड़ती हो। इसी प्रकार 'स्वाद' और 'से' की भी कुछ जरूरत नहीं है। दुर्भाग्यवश उर्दू फारसीके अक्षरोंमें लिखी जाने लगी और फारसीने वही अक्षर अरबीसे प्राप्त किये थे, इसीसे फारसी-अरबी शब्दोंके उर्दूमें घुसेड़नेके साथ 'जाल-ज्वाद' काम आती है; नहीं तो उसकी भी कुछ जरूरत नहीं है। 'जाल-ज़े-ज्वाद-जोय' सबका उच्चारण एक ही सा है। इसलिये बेचारा विद्यार्थी नहीं जान सकता कि किस शब्दको वह जालसे लिखे और किस शब्दको 'ज्वाद' या 'जोय' से। इसी प्रकार वह समझ नहीं सकता कि किस शब्दमें 'स्वाद' लिखे और किसमें 'सीन' और 'से'। अरब लोगोंके कण्ठ-तालु भारतवासियोंकेसे नहीं हैं। अरबवालोंके मुँहसे 'प' का उच्चारण नहीं होता। इसीसे उनके अक्षरोंमें 'पे' नहीं है, 'फे' है और 'ग' का उच्चारण भी वह लोग नहीं कर सकते हैं सो उनके यहाँ 'गाफ' भी नहीं है। 'गाफ' की जगह हलक फाड़नेवाला 'गैन' उनके यहाँ है। उसी 'गैन' और बड़े 'काफ' आदिको उर्दूमें घुसेड़नेके लिये पैसा अखबार साहब मरे जाते हैं।" *

'उलटी दलील' नामक अपने लेखमें 'पैसा अखबार'के एक लेखके उत्तरमें गुप्तजीने लिखा है:—"कौन कहता है कि हिन्दी मुर्दा जबान है? वह हिन्दी ही तो है, जो हिन्दुस्थानके हरएक कोनेमें थोड़ी-बहुत समझी आ सकती है। बाकी वह 'काफ'

* भारतमित्र १८-६-१९०० ई०।

और 'गाफ' से भरी हुई गलेमें अटकनेवाली मौलवियाना उर्दू तो आपके दस-पाँच मौल्वी लोग ही बोलते होंगे। "पैसा अखबार" कहता है कि हिन्दीके बेतकल्लुफ बोलनेवाले बहुत कम हैं। हम कहते हैं कि नहीं—हिन्दी सभी बोलते हैं। आपकी उर्दू ही बोलनेवाले बहुत कम हैं। आप कसम खाकर कहें कि आपके पंजाबी मुसलमानोंमें जो लोग शिक्षित हैं और बी० ए० एम० ए० हैं; उनमेंसे भी सौमें पाँच-सात शुद्ध उर्दू बोल सकते हैं या नहीं? स्वयं पैसा अखबारके एडीटर साहब ही कहें कि वह शुद्ध उर्दू बोल सकते हैं? हमसे आपकी दो दफे मुलाकात हुई है। आपके उर्दू बोलने पर हमको हँसी तो बहुत आई, परन्तु घर आयेकी वेइज्जतीके खयालसे उसमें नुक्ता-चीनी नहीं की। आप कैसे कहते हैं कि, हिन्दी मुर्दा है? हिन्दीमें इस समय जैसे अखबार निकलते हैं, हमको तो आशा नहीं है कि वैसी उन्नति आप अपने अखबारोंको बीस सालमें भी कर सकें। बस, आपका एक "पैसा अखबार" ही तो उर्दूमें सबसे अधिक विकता है। यहीं तक उर्दूकी करामात है। परन्तु हिन्दीमें कई ऐसे अखबार हैं जो पैसा अखबारके बराबर ही नहीं—उससे अधिक विकते हैं। रही यह बात कि उर्दू तेज लिखी जाती है या हिन्दी,—इसकी भी काशीमें परीक्षा हो चुकी है। श्रीमान् लाटूश, जो कुछ दिनके लिये मेकडानल साहबके छुट्टी जानेपर पश्चिमोत्तरके छोटे लाट हो चुके हैं, नागरी प्रचारिणी सभामें इसका तमाशा देख चुके हैं। और मात्रा छूटनेकी आपने खूब कही! हिन्दी लिखनेवाले न तो मात्रा छोड़ते हैं, न हिन्दीमें कुछका कुछ पढ़ा जाता है। यह तो उर्दू ही है, जिसमें "कुल जिस्म तल्ला हो गया" का "कुल चस्म पोख्ता हो गया" पढ़ा जाता है और नुक्तोंके हेर-फेरसे 'सानी' और 'नानी' में कुछ भेद नहीं रहता।" *

"गरारेदार पण्डत"—शीर्षक लेखमें गुप्तजी लिखते हैं—

"कायस्थ साहबोंसे दूसरा दर्जा हिन्दीके विरोधियोंमें काश्मीरी पण्डत साहबोंका है। यह भले मानस भी नागरी अक्षरोंको "भैंसाका सींग" ही समझते हैं। इनके

* भारतमित्र १८-६-१९०० ई०।

बड़े पण्डित थे, परन्तु यह पण्डत हैं। शायद इन्हींके मुबारक नामपर बादशाहीमें 'पण्डत खाने' बने थे। इन्हींका काफिया उर्दूके कवि जौकने अपनी किताबमें 'खण्टन' किया है। इन गरारेदार पण्डतोंके नाम सुनिये—पण्डत इक़बाल नरायन, पण्डत परताप किशन, पण्डत महाराज किशन। माशाअल्लह क्या शुद्ध सस्कृत नाम हैं! पोशाक देखो तो नीचेसे ऊपर तक गरारेदार, मुँहपर लम्बी डाढ़ी। ज़ुबानपर हर घड़ी इन्साअल्लह और सुबहान अल्लह। मानो कभी यह काश्मीरसे आये ही न थे और न कभी इनके बड़ोंने सस्कृत पढ़ी थी। ऐसे पण्डतोंके कारण ही शायद प्रयाग इलाहाबाद बना है। "रफ़ीके हिन्द" से विदित हुआ कि इलाहाबादमें मुसलमानोंने नागरी-विरोधकी एक सभा की, उसमें स्वर्गवासी पं० अयोध्यानाथ (उर्दूमें इनका नाम 'पण्डत अजुधिया नाथ' लिखा जाता था) के घरके चिराग पण्डत अमरनाथजीने भी नागरी अक्षरोंका विरोध किया और कहा कि इन अक्षरोंमें लिखनेसे उर्दू उलट-पलट हो जायगी, उसके पण्डत साहबने कई उदाहरण दिये। ·········हमारे नये पण्डतजी-ने वह बात कही, जो किसी मुसलमानको भी कहनी न आई। सुना है, लखनऊकी नवाबीके समय ऐसे नवाबजादे थे, जिन्होंने कभी गेहूँका पेड़ नहीं देखा था। एक मुसाहिबने उनसे कहा कि हुज़ूर आज गुलाम गेहूंका पेड़ देख आया। सत्तर दो बहत्तर हाथ ऊँचा था। एक फौज उसके नीचे आराम कर सकती है। उसी तरह क्या आश्चर्य, जो आनरेबल अयोध्यानाथजीके सुयोग्य पुत्रने देवनागरीका पेड़ भी न देखा हो। नहीं तो इतनी घोर बुद्धिमानीका परिचय न देते। खैर, सब कश्मीरी भी हमारे इन पण्डत साहबकी भाँति 'मासूम सिफ़त' नहीं हैं। पण्डित रतनाथ सरदार (उर्दूमें पण्डत रतननाथ शरसार) ने उर्दू-नागरी पर "अवध अखबार" में एक अच्छा फैसला लिखा है। उर्दू लिखनेमें रतनाथजीकी सारे हिन्दुस्थानमें धूम है। उनका लिखा फ़िसान-ये-आजाद (उर्दूमें 'फसाना आजाद' लिखा जाता है) मुसलमानोंके घर-घर पढ़ा जाता है। सब मुसलमान लोहा मान गये कि हिन्दू भी किस गजबकी उर्दू लिख सकते हैं। वही प० रतनाथ लिखते हैं:—

"·········इनसाफ़से देखिये तो उर्दू जम्र गासिब (परायामाल हजम करने-

वाली) है। अच्छा फिर ऐसा तो हुआ ही करता है। लेकिन मुल्ककी असल जुबानको जड़से नेस्तोनाबूद कर देना इन्साफकी गर्दनको बेबिस्मिल्लह कहे हुए छुरीसे रेतना है। और छुरी भी कौन ? कुन्द,—नकटेकी नाक भी मुद्दतोंमें कटे।

गवर्नमेंटने क्या खूब फैसला कर दिया कि उर्दू और हिन्दी—दोनों जुबानें अदालतकी कार्रवाईमें इस्तेमाल की जावें। यह बिला रूरिआयत फैसला बाज असहाबके नापसन्द है। मौहमिल ताबीलात है। ऐसे लोग हमारा मगज खाते हैं और अपना गला फाड़ते हैं।·········

·········खास उर्दूका इलाक करना ऐसा ही है जैसा गवर्नमेंट दक्खन हुक्म करे कि जो भीख मांगे वह उर्दू में मांगे। अरबी, फारसी, पश्तो, तिलंगी, मरहटीमें भीख मांगनेवालेको छ महीनेकी फाँसी। गवर्नमेंट निजामने खूब किया कि फारसीकी कैदसे मुल्कको आजादी बखशी। फारसी तो ईरानकी जुबान है। हम गैर मुल्ककी जुबानको खामखाह अपने मुल्ककी अदालतोंमें क्यों इस्तेमाल करें ? यह तो कोई आपसे कहता नहीं कि हुरूफ़की तरह जुबान भी बदल दो, फिर शिकायत क्या ?

एक अमर और भी याद रखनेके काबिल है कि जो लोग फारसीख्वाँ हैं वह हिन्दी बहुत जल्द सीख सकते हैं। गबीसे गबीके लिये एक हफ्ता काफी है। अब यह बताइये कि हिन्दीदाँ बेचारा कितने बरस, कितने महीनोंमें उर्दू सीख सकता है ! अगर एक हफ्तेकी जरा-सी मेहनतमें हिन्दी आ जाय तो शिकायत क्या रही ? कुछ भी नहीं। हमको न शोखीनी उर्दू बहूसे याराना है न ठुकराइन हिन्दी कँवरसे। अल्लह लगती कहेंगे। अगर यह कहा जाय कि हम हिन्दू हैं, इस सबबसे हिन्दीकी पछ करते हैं, तो इसका जवाब हमारे पास यह है कि हम पण्डत बराये नाम हैं। नागरी तो हम टोह-टोहके पढ़ते हैं। उर्दू हमारी जुबान है। हमारी कुल तसानीफ उर्दू है। उर्दू अखबारोंकी हमेशह एडीटरी और नामानिगरी की। रोटियाँ उर्दू और अंगरेजीकी बदौलत पैदा करते हैं। फायदा तो उर्दूसे है। पर तअस्सुबसे हमको चिढ़ है। अपने जाती फायदेको पब्लिकके फायदे पर तरजीह देना नाइन्साफी है।"

इस प्रकार प० रत्ननाथके लेखका अवतरण देकर गुप्तजीने अन्तमें लिखा है—"हम अपनी तरफसे क्या कहें, प० रत्ननाथ उर्दूके अवतार हैं। उनकी राय मुसलमान भाई तथा गरारेदार हिन्दुओंको ध्यानसे पढ़ना चाहिये।" *

सन् १९०३ ई० मे युक्तप्रान्तकी गवर्नमेंटके जुडिशियल सेक्रेटरी एस० एच० बटलर साहबका एक पत्र युक्तप्रान्तके सरकारी गजटमें प्रकाशित हुआ था। उसमे कहा गया था कि पढ़े-लिखे मुसलमान और हिन्दू जो भाषा बोलते हैं वह सबके समझने लायक है, वही स्कूलोंकी प्राइमरी शिक्षाके लिये जारी होनी चाहिये। इसका उल्लेख करते हुए गुप्तजीने अपने "हिन्दी-उर्दूका मेल" शीर्षक लेखमें लिखा है :—

"पढ़े-लिखे हिन्दू कचहरियोंमें जो भाषा बोलते हैं और लिखते हैं, घरमें स्त्रियों और बच्चोंसे वैसे नहीं बोलते। कचहरियोंमें वह फारसी अरबीके शब्दोंसे भरी हुई उर्दू बोलते हैं और घरमें स्त्रियों और बालकोंसे ऐसी हिन्दी, जिसमें बहुतसे संस्कृतके असली या बिगड़े शब्द होते हैं। पढ़े-लिखे लोगोंकी भाषा शहरमें जरुर समझी जाती है, पर देहातमें वह ठीक-ठीक नहीं समझी जाती। इससे युक्तप्रदेशकी सरकार क्या ऐसी भाषा लेगी जो सबके कामकी हो सके ? कुछ समझमें नहीं आता। उर्दू हिन्दी दो भाषा नहीं हैं, दो न होनेपर भी उनके दो होनेका एक बहुत बड़ा कारण है। यदि मुसलमान लोग नागरी अक्षर सीखते और पुरानी हिन्दीका पठन-पाठन करते तो इसके दो खड न होते। हिन्दू-मुसलमान सबकी एक भाषा होती। पर मुसलमान लोग हिन्दीको फारसी लिपिमें लिखने लगे, इसीसे फारसी शब्द और फारसी मुहावरे भी उसमे आपसे आप घुसने लगे और वह एक अलग भाषा बनने लगी। अब भी उस भाषाके लिये वही बीमारी मौजूद है। • अगरेज लोग जिस भाषको हिन्दुस्थानी कहते हैं, हमारी समझमें युक्तप्रदेशकी गवर्नमेंट वही भाषा जारी करना चाहती है। वह न हिन्दी है, न उर्दू और हिन्दी है, उर्दू भी है।

* भारतमित्र २-७-१९०० ई०।

पर यह भलीभांति जान लेना चाहिये कि वह बेमुहावरा भाषा है। उसे हम साहिबाना या पादरियाना हिन्दी कह सकते हैं। इस समय युक्तप्रदेशकी गवर्नमेंट जो भाषा बनाना चाहती है, वह इस पादरियाना भाषासे बेहतर नहीं बनेगी। ......दो (हिन्दी-उर्दू) भाषाओंका असली मेल जब ही हो सकता है कि अक्षर एक किये जायँ और वह अक्षर देवनागरी हों। क्योंकि फारसी अक्षर इस भाषाको अरब और ईरानकी ओर घसीट ले गये। ......वह समय दूर है कि मुसलमान भी नागरीकी खूबीको समझें।" *

* * * *

सजग प्रहरी

गुप्तजी सद्विचारों एवं सद्भावनाओंके प्रसारमें ही देशवासियोंका कल्याण समझते थे। स्वदेश-हित-विरोधी कार्यों और विचारोंके प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। पश्चिमी सभ्यता-विमुग्ध विदेशी भावनाओंके अन्ध समर्थक भारतीयोंके वे बड़े कटु आलोचक थे। साहित्यकी मर्यादा, धर्मकी मर्यादा और समाजकी मर्यादाके विपरीत जब जिस किसीके द्वारा कोई अन्यथा विचार सामने आता, चाहे वह भाषणके रूपमें हो, चाहे लेख अथवा पुस्तकके रूपमें, उनकी लेखनी उसका उपयुक्त उत्तर देनेके लिये सदा सन्नद्ध रहती थी। गुप्तजी अपने समयके हिन्दी साहित्य-संसारके एक सजग एवं कर्तव्यनिष्ठ प्रहरी थे। इस सम्बन्धमें उदाहरणों-की कमी नहीं है।

सन् १८९९ ई० में पटना निवासी 'श्री सुसीलजी'ने अपनी बनाई "उजाड़ गांव", "साधु" तथा "यात्री"—नामकी तीन पुस्तकें "भारतमित्र" को समालोचनार्थ भेजीं। इस पर गुप्तजीने "कविता पर कविता" शीर्षक लेख लिखकर 'सुसील कविजी'को उनकी भूल समझायी। हिन्दी

* भारतमित्र सन् १९०३।

साहित्य-क्षेत्रकी वे पूरी खोज-खबर रखते थे। प० श्रीधरजी पाठककी "एकान्तवासी योगी" और "ऊजड़-ग्राम" नामकी पुस्तकें बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी थीं। गुप्तजीने उक्त प्रसंगमें पाठकजी और उनकी प्रशंसित रचनाकी विशेषता दिखानेके लिये लिखा था :—

"सन् १८८६ ई० में पण्डित श्रीधरजी पाठकने प्रयागसे "एकान्तवासी योगी" नामकी एक पोथी छपकर प्रकाश की थी। यह पोथी विलायतके प्रसिद्ध कवि गोल्ड-स्मिथकी "दी हरमिट" नामकी एक कविताका अनुवाद थी। इस अनुवादकी हिन्दी व्रजभाषा नहीं है, खडी हिन्दी है। खडी हिन्दीका अर्थ यह है कि जिस भाषामें गद्य हिन्दी लिखी जाती है, उसीमें यह पुस्तक है। हिन्दी भाषाकी कविता प्रायः व्रजभाषामें होती है। यह पुस्तक खडी हिन्दीमें लिखी जाने पर भी बहुत पसन्द की गई। दो बार छपकर बिकी। इसके पीछे उक्त पडितजीने सन् १८८९ ई० में "ऊजड़ग्राम" नामकी दूसरी पोथी निकाली, जो उसी गोल्डस्मिथ कविके 'डिजर्टेड विलेज' नामकी एक कविताका अनुवाद थी। यह व्रजभाषामें लिखी है। विलायतके हिन्दी जाननेवाले प्रसिद्ध लेखकों और कवियोंने विलायती अखबारोंमें इस सुन्दर कविता-की जो कुछ भी प्रशंसा की है, वह अलग रहे, हिन्दुस्तानमें भी इसका बड़ा आदर हुआ। हिन्दुस्थानके हिन्दी-उर्दू-अखबारोंने भी इसको बहुत सराहा। स्वर्गवासी पण्डित प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी भाषाके विचित्र शक्तिशाली कवि थे, वह भी इस पुस्तकको पढ़कर मुग्ध हो गये। वास्तवमें हिन्दी भाषामें अंगरेजीकी उत्तम कविताका ऐसा सुन्दर सरस अनुवाद इससे पहले और नहीं देखनेमें आया।

इस एक ही ५१४ पंक्तियोंकी कविताने पण्डित श्रीधर पाठकजीकी कविता-शक्तिका डंका हिन्दुस्तानसे विलायत तक बजा दिया। परन्तु दुःखकी बात है कि उतनी ही प्रशंसा पर सन्तोष करके हमारे ऐसे अच्छे कवि पण्डित श्रीधरजी महाराज चुपचाप बैठ गये। दस बरस हो गये, तबसे उनकी रसीली कविताकी एक पंक्ति भी फिर कहीं देखनेमें नहीं आई। जिनमें विधाताने ऐसी अनूठी कविता-शक्ति दी है, वह यों चुप-चाप कोनेमें बैठे रहें, इसमें पण्डित श्रीधरजीका दोष नहीं, इस देशके जल्वायुका दोष

है। श्रीधरजीको लोग भूले हुए थे और हम भी लोगोंकी तरह भूले हुए थे कि अचानक उनके स्मरण होनेका एक कारण हो गया। सुशील कवि श्रीपत्तनलालजीको हम धन्यवाद देते हैं कि, उन्होंने स्वरचित दो तीन छोटी-छोटी कविताकी पुस्तकें भेजकर हमें भूले हुए पण्डित श्रीधरजीकी याद दिलाई। सुशीलजीने अपनी बनाई "उजाड़गांव" "साधु" तथा "यात्री" नामकी तीन पुस्तकें समालोचनाके लिये हमारे पास भेजी हैं। इनमेंसे पहली दो वही पुस्तकें हैं, जो पण्डित श्रीधरजी लिख चुके थे।

पाठकजीकी पुस्तकका नाम "एकान्तवासी योगी है" और सुशीलजीकी पोथीका नाम "साधु"। इसी प्रकार पाठकजीकी पुस्तकका नाम "ऊजड़ग्राम" है और सुशीलजीकी कविताका "उजाड गांव"। एक ही चीजके दो अनुवाद हो सकते हैं। राजा लक्ष्मणसिंहजीने मेघदूतको हिन्दी कवितामें लिखा था और फिर लाला सीतारामजीने भी लिखा, परन्तु दोनों दो चीज हैं, एकसे दूसरेका ढग निराला है। शकुन्तलाको राजा लक्ष्मण सिंहजीने भी हिन्दीमें लिखा है और पण्डित प्रताप नारायणने भी। दोनोंका ढग अलग-अलग है, रग अलग-अलग है। दोनों दो पुस्तक हैं। सुशीलजीकी पुस्तकोंको देखकर भी हमारा ऐसा ही विचार हुआ था कि यह पाठकजीकी पुस्तकोंसे कुछ भिन्न वस्तु होंगी, परन्तु पुस्तक खोलकर देखनेसे वह सब विचार दूर हो गया। हमने देखा कि सुशीलजीकी दोनों पुस्तकें पाठकजीकी पुस्तकोंकी भद्दी नकल के सिवाय और कुछ नहीं हैं। सुशीलजी पाठकजीसे उमरमें बड़े हैं, परन्तु नकल करके उन्होंने बच्चोंको भी मात किया है। नकल क्या एक बातकी की है? रंगमें, ढंगमें, छन्दमें—सब प्रकार नकल ही नकल मौजूद है। जान पड़ता है, पाठकजीकी पुस्तकें सुशीलजीको बहुत पसन्द आई, इसीसे नकल करते समय पाठकजीकी कवितामें लय हो गये। 'एकान्तवासी योगी' में पाठकजीने जो छन्द रखा है, वह उन्होंने ही अपने मनसे चलाया है, उनसे पहले किसी कविने वैसे छन्दमें कविता नहीं की। सुशीलजीने उस छन्दकी भी नकल की है।" इसके बाद गुप्तजीने पाठकजी और सुशीलजीकी कविताओंके उद्धरण देकर अन्तमें कहा—

"दुःखकी बात है कि, नकल की, सो भी अच्छी नहीं बनी। इसके सिवाय सुशील कविने कोई कारण नहीं दिखाया कि श्रीधरजीकी पुस्तकोंके होते उनको ऐसी नकल करनेकी क्या जरूरत पड़ी थी। यदि न्यायसे देखा जाय तो सुशीलजीने अच्छे कवियोंके करने योग्य काम नहीं किया। यदि वह और किसी अंगरेजी कविताका अनुवाद करते तो उनका नाम भी होता। हम और अधिक क्या कहें, सुशीलजी स्वयं समझ लें।" *

गुप्तजीकी इस आलोचनासे सुशील कविजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी ओरसे उत्तर लिख भेजा और गुप्तजीसे अनुरोध किया कि—"जिस भाँति आपने आलोचना की है, मेरे पत्रको भी मुद्रित कर दीजिये।" अपने उत्तरमें सुशीलजीने गुप्तजीकी आलोचनाका औचित्य स्वीकार करते हुए लिखा—

"कविता पर कविता नामक लेख जो मेरे अनुवादित साधु और उजाड़गांवकी आलोचनामें आपने लिखा है वह बहुत ठीक है, उसमें कोई बात भी ऐसी नहीं है, जिसके विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता हो। कहनेकी आवश्यकता केवल एक बात पर है कि, आपने पूछा है क्यों सुशीलने ऐसा किया सो इसमें बात यह है कि मेरे एक मित्रने जो बी० ए० क्लासके छात्र हैं कई बार अनुरोध किया कि आप गोल्ड-स्मिथके तीनों ग्रन्थोंका कवितानुवाद कीजिये। मैंने उनकी बात शिरोधार्य कर मिश्रित छन्दोंमें अनुवादकर उनको अर्पण किया, किन्तु उनका पुनः अनुरोध हुआ कि आप इसे उसी छन्दमें कीजिये जिसमें प० श्रीधरजीका अनुवाद है। लाचार मैंने उन्हीं छन्दोंमें बना उनको दे दिया। अब यह बात आपहीके विचाराधीन है कि, एक ही ग्रन्थ एक ही विषयका एक ही छन्दमें दो मनुष्यों द्वारा बने तो उसमें कहाँ तक अन्तर रह सकता है?...यदि सत्यहीमें मुझसे अनुचित हो गया है तो अब तो वह उचित होगा ही नहीं, उस अनुचितके लिये सब विद्वानोंसे मेरी प्रार्थना है कि, क्षमा करें और

* भारतमित्र २१ अगस्त सन् १८९९ ई०।

भली-भाँति ग्रन्थोंको देखकर अनुचित समझें, तो प्रशंसाको तो भाड़में जाने दें, किन्तु बदनाम करनेकी ओर ध्यान न दें। विशेष विनय।"

श्री पत्तनलालजी (सुशील कवि) के पत्रको ज्योंका त्यों प्रकाशित कर उस पर गुप्तजीने यह टिप्पणी की :—

हमारी विनय है कि, हरेक कामको समझकर करना चाहिये। यदि सुशीलजी भी अपने बी० ए० में पढ़नेवाले मित्रकी तरह बालक होते तो हम उनको कुछ न कहते। यह समझकर चुप हो रहते कि यह चपलता है। परन्तु सुशीलजी प० श्रीधरजीसे अधिक अवस्थाके हैं, इससे उन्हें विचारना था कि उनके बालक मित्रका अनुरोध ठीक है या नहीं। एक आदमी जिस विषय पर दस साल पहले परिश्रम कर चुका है, दूसरेका विना कारण उसपर कुछ लिखना वैसा ही सुन्दर होगा जैसा बाबू हरिश्चन्द्रजीकी 'अन्धेर नगरी' पर काशीके बाबू रामकृष्णजीका 'महा अन्धेर नगरी' छापना। फिर हम यह नहीं समझे कि सुशीलजीने श्रीधरजीकी कविताको उत्तम समझा या अनुत्तम। क्योंकि उनकी भूमिकामें पण्डित श्रीधरजीकी पोथियोंका न कुछ हवाला है और न कुछ उनकी प्रशंसा या निन्दा है। जब सुशीलजीके मित्रने उनसे कहा कि श्रीधरी छन्दमें लिखो, तो बड़े दुःखकी बात है कि, सुशीलजीने श्रीधर-जीका नाम तक न लिया। सुशीलजीके मित्र तथा स्वयं सुशीलजी जानते थे कि प० श्रीधरजी इन पुस्तकोंको लिख चुके हैं। ऐसी दशामें उनका कर्तव्य था कि श्रीधरजी-की बनाई पुस्तकोंकी बात कहकर भद्रताका परिचय देते। यदि अब भी सुशीलजी अपने इस कामको अनुचित समझनेमें सन्देह करते हैं तो कृपा करके यह बतावें कि उन्होंने श्रीधरजीका नाम क्यों न लिया? स्पष्ट रीतिसे यह क्यों न लिखा कि पण्डित श्रीधरजी इसपर लिख चुके हैं। हम चाहते हैं कि हमारे देशके सुलेखक और कवि दूसरेके जूठे पर गिरनेकी आदत छोड़ें। हम सुशीलजीको अच्छा कवि समझते हैं। उनमें अच्छे ग्रन्थ बनानेकी शक्ति है यह भी मानते हैं। इसीसे हमने उनको इतना लिखा। यदि वह अपनी पुस्तकोंकी भूमिकामें श्रीधरजी पाठककी पुस्तकोंकी कुछ बात कह जाते तो भी उनपर इतना दोष न रहता।"

इस समालोचनाके फलसे जिस प्रकार सुशील कवि श्री पत्तनलाल लज्जित हुए, उसी प्रकार कविवर प० श्रीधर पाठकजी उत्साहित हुए थे। उनका सुप्तप्राय कविता-रचनाका उत्साह पुनः जागरूक हो उठा, अत-एव भारतमित्र द्वारा उनकी सरस कविता पढ़नेका फिर पाठकोंको अवसर मिला। यहां पाठकजीके पत्रोंके उत्तरमें भेजे हुए गुप्तजीके ३ पत्र दिये जाते हैं। इन पत्रोंकी नकल पाठकजीके निवासस्थान प्रयागसे बन्धुवर श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी स्वयं लाये थे। इन पत्रोंसे उस समयकी साहित्यिक स्थिति और गुप्तजीकी स्पष्टवादिताके सिवाय पाठकजीकी मनोवृत्तिका भी परिचय मिलता है :—

(१)

BHARATMITRA OFFICE — 97, Muktaram Babu's Street
Calcutta 5. 8 1900.

पूज्यवर !

प्रणाम। आपका दो अगस्तका कृपापत्र आया। बाँचकर दुःख हुआ। ३० जुलाईका भारतमित्र आपको बराबर भेजा गया है, क्योंकि नाम छपा हुआ है। परन्तु किसी कारणसे न पहुँचना भी असम्भव नहीं है। उसके लिये दालमें काला कहनेकी जरूरत नहीं, प्रबंधकी खराबी कह सकते हैं। कल आपको उक्त पत्र फिर भेज दिया गया है। रही तकाजेकी बात, उसका कारण सुनिये। उस कार्डमें जो यह छपा हुआ है कि "पत्र पाते ही मूल्य भेज दें" यह कुछ भूल है। असलमें यह *जिनका मूल्य शेष हो जाता है, उनके लिये है।* आपको तकाजा जो भेजा गया है वह भी भेजा नहीं था। कारण यह कि आपका नाम ग्राहक श्रेणीमें लिखा हुआ है। तकाजा करनेवाले क्लर्कने जैसा और ग्राहकोंको तकाजा लिखा, वैसे ही आपको भी लिख दिया। यदि ग्राहक श्रेणीसे आपका नाम अलग होता तो आपको तकाजा न जाता। इसमें

जो कुछ भूल है सो मेरी ही है कि मैंने क्लर्कको कह न रखा था कि जब आपका नाम आवे तो तकाजा न किया जाय। परन्तु अब मैंने कह दिया है कि अब तकाजा न जायगा। पत्र भेजना बन्द नहीं किया गया। आप ही को पत्र बन्द किया जायगा तो भेजा किसके पास जायगा ?

सावित्री-स्तम्भके बारेमें हमारे ऊपर बहुत लोगोंने एतराज किया है। विशेषकर सुदर्शनवाले पण्डित माधवप्रसादजीका बड़ा एतराज है। शायद उनके बहकानेसे ही दिल्लीके पण्डित विश्वम्भर दयालुजीने लिखा था कि आप वेंकटेश्वरसे "संस्वार्थ"का अर्थ पूछने चले हैं परन्तु अपने "सावित्री स्तम्भ" का अर्थ तो बताइये।"

मैं उसका ठीक-ठीक उत्तर न दे सका, इससे आप कृपा कर ठीक-ठीक उत्तर दें। इस समय आपने जो उत्तर दिया है, उससे वह लोग मानेंगे नहीं। एक बार ठीक उत्तर दे देने हीसे खटका मिट जायगा।

उंगलीसे सब तरह आराम हो जाने पर अभी दो महीना तक अच्छी तरह न लिखा जा सकेगा। क्योंकि अभी उंगली साफ नहीं हुई। कल सन्ध्याको महामण्डलके लिये दिल्ली जाऊँगा। इस बार आपके दर्शन करनेकी पूरी आशा है। और बहुत-सी बातें तो जबानी होंगी। केवल इतनी विनय है कि जो भाव आपकी इस चिट्ठीसे प्रगट हुआ है, वैसा फिर मनमें न लाइये।

भवदीय
बालमुकुन्द गुप्त

यह चिट्ठी भूलसे पड़ी रह गई थी सो आज भेजी जाती है।

—मैनेजर, १३-८-१९००

(२)

पूज्यवर, प्रणाम।

आपके चार पत्र मिले। इस कृपाका कहां तक धन्यवाद करूं। 'एडविन अञ्जलैना" की प्रस्तावना बहुत ही सुन्दर हुई है। पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्रजीने बहुत ही पसन्द किया।

इस सप्ताह मैंने सब छाप दिया है। बहुत ही अल्प था, दो कालममें बुरा लगता, इसीसे एक कालममें छापा। आगे अधिक आनेसे दो ही कालममें छपेगा। कृपा करके इसे अवश्य शेष कर दें। चाहे देर हो चाहे सवेर। आशा है कि मेरी यह प्रार्थना खाली न जावेगी। Travellers आप लिखने लगे हैं, अच्छी बात है।

यदि आप उजड़गांवके विषयमें कुछ लिखेंगे तो भारतमित्र हाजिर है, 'Traveller जितना बन गया हो भारतमित्रके लिये भेज दें।

पत्तनलाल पर अबके भी लिखा गया है सो आप देखेंहीगे। पत्तनलाल खूब लज्जित हुआ है और होगा।

अवश्य आप अधूरे ग्रन्थोंको पूरा करें। शरद पर आपने जो लिखा है, अति सुन्दर है। नवरात्रिमें जो भारतमित्रका अंक निकलेगा वह कवितामय होगा। उसीके लिये शरद ऋतुकी कविता दरकार है। मैं आशा करता हूँ कि आप शरद ऋतु पर कुछ और लिखेंगे।

कृपा करके एक कविता यदि बादलोंको सम्बोधित करके वर्षाके लिये लिखी जावे तो उत्तम हो। अकाल पड़ गया है, मेघसे प्रार्थना की जावे कि तुम रक्षा करो।

पत्तनलालकी पुस्तक ईश्वरने चाहा तो फिर छपेगी। आपके अनुत्साहका कारण है कि आपकी कविताकी चोरी हुई। अनुत्साहने आपको गुमनाम कर दिया। गुमनामका माल हर कोई चुरा सकता है। जरा मैदानमें आइये, देखें फिर कोई कैसे आपका माल चुराता है। यदि

पत्तनका मित्र या पुत्र वैसा करेंगे तो क्या आपके पुत्र मित्र न रहेंगे जो उनके दांत तोड़ दें। वास्तवमें बड़ा ही गन्दा काम पत्तनने किया। परन्तु हमलोग पीछा थोड़ा ही छोड़ेंगे। खैर, सब कुशल है। आपकी कृपा (के लिये ?) बहुत धन्यवाद है।

भारतमित्र प्रेस
७-६-१६

भवदीय दास
बालमुकुन्द गुप्त
कलकत्ता

(३)

पूज्यवर प्रणाम।

आपको अखबारोंसे प्रेम नहीं है सो ठीक है। भारतमित्र खरीदनेका आपसे मैंने अनुरोध नहीं किया। क्योंकि आपकी सेवामें बेदाम जाना ही उसकी इज्जत थी, परन्तु आपने दाम भी भेज दिया था और मैनेजरने जमा भी कर लिया था इसीसे आपका नाम ग्राहकोंमें था। तकाजा करनेवाला क्लर्क औरोंके साथ आप पर भी तकाजा कर गया। वह तो आपसे परिचित न था।

हां, लिखनेका अनुरोध मैंने किया था और आप दया करके लिखने लगे इसका मैं हृदयसे धन्यवाद करता हूं। आपका जी इतना कचा है कि उसमें हरदम सन्देह उठते हैं और आपको यही खयाल हो जाता है कि सब दोष बालमुकुन्द करता है और जान-बूझकर करता है।

रही दाम देकर लिखनेकी बात सो हिन्दीके भाग्यमें अभी यह बात नहीं है। अंगरेजी अखबारोंके भाग्यमें और हिन्दी अखबारोंके भाग्यमें सोने और मिट्टीका फर्क है।

नये भारतमित्रको भी खरीदार चावसे नहीं खरीद सकते हैं। आपकी कविता ही को सौमें दो भी समझनेवाले नहीं। ऐसी दीन दशावाली हिन्दी पर आपको दया ही चाहिये।

बालमुकुन्द गुप्त *

१७-६-१९००

*   *   *   *

'कामशास्त्र' नामकी पोथीके लिये मुरादाबाद निवासी लाला शालिग्राम वैश्यको गुप्तजीने बड़ी लथाड़ बताई थी। वैश्य महाशयने अहम्मन्यताके भावसे पत्र लिखकर उनसे अपनी पुस्तककी अच्छी समालोचना करानी चाही थी और भूमिकामें स्वप्नमें सिद्ध महात्मा गोरखनाथजी द्वारा पुस्तक प्राप्त होना और इसके प्रचारके लिये आज्ञा देना—आदि ढोंग भरी बातें लिखी थीं। गुप्तजी मिथ्याडम्बरके विरोधी थे।†

गुप्तजीकी आलोचनाके प्रभावसे भारतजीवनके मालिक बाबू रामकृष्ण वर्माजीकी प्रकाशित और बंगभाषासे अनुवादित "चित्तौड़ चातकी" एवं 'अश्रुमति' नामकी दो पुस्तकोंके विरुद्ध हिन्दी जगत्में ऐसा आन्दोलन हुआ कि दोनों पुस्तकें गंगाजीमें प्रवाहित करनी पड़ी थीं। उनमें मिथ्या कल्पनाके आधार पर आर्य-गौरवके अभिमान-स्थल मेवाड़के राज-वंशकी धवल-कीर्ति पर दोषारोपण किया गया था। गुप्तजीने इसकी तीव्र भर्त्सना की थी। 'अश्रुमति' नाटकके लेखक बंगालके प्रसिद्ध एवं प्रतिष्ठित ठाकुर घरानेके श्रीज्योतिरिन्द्रनाथ महाशय, कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके अग्रज थे। 'अश्रुमति' नाटककी आलोचना

* इसी सिलसिलेमें २६-११-१९०० का लिखा हुआ पाठकजीके नाम गुप्तजीका एक महत्त्वपूर्ण पत्र प० बनारसीदास चतुर्वेदीजीके लेखमें अन्यत्र पढ़िये।

† भारतमित्र ५ फरवरी सन् १९०० ई०।

ने, जिसका समावेश गुप्त निबन्धावलीमें किया गया है, पाठकोंके हृदयको हिला दिया था और स्वयं बाबू ज्योतिरिन्द्रनाथजीको भी अपनी भूल मान लेनी पड़ी थी। उनका पत्र है :—

19, Store Road, Ballygunge.
3, Oct. 1901

Dear Sir,

I admit the justice of your criticism of my drama "Ashrumati" and fully appreciate the spirit in which it was concieved.

The point of view you suggest did not strike me before, but now that you have drawn my attention to the undesirablity of bringing the names of some Rajput Heroes into a drama which was placed before the public mainly as a work of imagination, I shall most certainly take steps to adopt one or other of the courses you have proposed.

Your truly,
Sd. Jyotirindra Nath Tagore *

---

* इसका हिन्दी भाषान्तर यह है :—

१९ स्टोर रोड, बालीगंज
३ अक्टूबर, १९०१

प्रिय महाशय,

आपने मेरे नाटक 'अश्रुमति' की जो आलोचना की है, उसकी न्याययुक्तता मैं स्वीकार करता हूं और उसकी सद्भावनाका पूरी तरह अनुमोदन करता हूं। इस विषयमें आपने मुझे जो सम्मति दी है वह पहले मेरे ध्यानमें नहीं आई थी, पर अब आपके ध्यान दिलानेसे मेरी समझमें आ गया कि ऐसे नाटकमें जो एक कल्पित रचनाके रूपमें सर्वसाधारणके सम्मुख रखा गया है, हमारे उन कई प्रसिद्ध वीर राजपूतोंके नाम नहीं आने चाहियें थे। अतएव मैं निश्चय ही या तो इस पुस्तकका प्रचार बन्द कर दूँगा या उसको सुधार दूँगा।

आपका
ज्योतिरिन्द्रनाथ टैगोर

उक्त पत्र प्रकाशित करते हुए गुप्तजीने लिखा था—

"हम हृदयसे श्रीमान् बाबू ज्योतिरिन्द्रनाथ ठाकुरका धन्यवाद करते हैं। वह जैसे उदार पुरुष हैं, वैसी ही उदारता दिखाकर उन्होंने सब हिन्दुओंको प्रसन्न किया है। वह सचमुच महाराणा प्रतापपर भक्ति रखते हैं और उनकी 'सरोजनी' आदि पुस्तकें राजपूतोंकी कीर्तिको उज्ज्वल करने वाली हैं।" *

'चित्तौड़ चातकी' और 'अश्रुमति' सम्बन्धी आन्दोलनमें उस समयके सभी हिन्दी पत्रोंने भारतमित्रका साथ दिया था।

तुलसी-सुधाकर, तारा (उपन्यास) और अधखिला फूल नामक पुस्तकोंकी आलोचनाएँ संक्षिप्त होने पर भी—सारगर्भित हैं और गुप्तजीके लिये साहित्य क्षेत्रकी संभाल रखनेका प्रमाण देती हैं। ये तीनों ही पुस्तकें उस समयके साहित्य-महारथी महामहोपाध्याय पं० सुधाकरजी द्विवेदी, पण्डित किशोरीलालजी गोस्वामी और पं० अयोध्यासिंहजी—उपाध्याय द्वारा लिखी जाकर प्रकाशित हुई थीं।

गुप्तजी अपनी तीक्ष्ण-दृष्टि केवल पुस्तकों पर ही नहीं, सामयिक पत्रोंकी भाषापर भी पूरी तरह रखते थे। व्याकरण-विरुद्ध, अशुद्ध और बेमुहावरेकी भाषाका प्रयोग करनेवालों

'शेर' शब्द पर शास्त्रार्थ

को—चाहे कोई हों, वे बेधड़क टोक देते थे। श्रीवेंकटेश्वर समाचारमें एक बार नागरी प्रचारिणी सभाके सर्वस्व बाबू श्यामसुन्दरदास एवं बाबू राधाकृष्णदासके चित्र प्रकाशित हुए थे और बाबू राधाकृष्णदासको "भारतेन्दुजीका निकटस्थ सम्बन्धी" लिख दिया गया था। इसको पढ़कर गुप्तजीने

* भारतमित्र—५ अक्टूबर १९०१ ई०

'अश्रुमति' नाटकके विषयमें गुप्तजीकी आलोचनाके हवालेसे बड़ाबाजार लाइब्रेरीके आनरेरी सेक्रेटरी प० केशवप्रसाद मिश्रने नाटककार बाबू ज्योतिन्द्रनाथ टैगोर महाशयसे पत्र-व्यवहार करनेमें बड़ी तत्परता दिखाई थी।

लिखा—"फुफेरे भाईको सम्बन्धी बताना प्रशंसा नहीं, गाली हुई।" इस पर वारान्तरमें श्रीवेङ्कटेश्वर-समाचारने पूछा—"क्या फुफेरा भाई निकटस्थ सम्बन्धी नहीं होता ?" उत्तरमें गुप्तजीने फिर लिखा—"क्या आपके प्रान्तमें फुफेरे भाईको निकटस्थ सम्बन्धी कहते हैं ? यदि कहते हैं तो निकटस्थ सम्बन्धी क्या कहलाते हैं ? शायद आप इतने पर भी न समझे हों, इससे विनय है कि भाईको सम्बन्धी कहना गाली है। हमारा विश्वास न हो तो जी चाहे जिस हिन्दी जाननेवालेसे पूछ लें। चाहे, जिनकी प्रशंसा की है, उन्हींसे पूछ देखें।" यह चर्चा सन् १६०० ई० की है। इसी प्रश्नोत्तरके सिलसिलेमें श्रीवेंकटेश्वर-समाचारने "शेष" शब्दको लेकर भारतमित्रसे शास्त्रार्थ छेड़ दिया था। भारतमित्रमें गुप्तजीने "शेष" शब्दका प्रयोग अन्तके अर्थमें किया था। उन दिनों श्रीवेंकटेश्वर-समाचारके सम्पादक पण्डित लज्जारामजी मेहता (बूंदी निवासी) थे। २० जुलाईके श्रीवेंकटेश्वर-समाचार द्वारा मेहताजीने कहा—..."अब केवल इतना ही कहना है कि, हमारा मित्र 'समाप्ति' वा 'अन्त' शब्दकी जगह 'शेष' न मालूम किस आधार पर लिखता है ?"

गुप्तजीने मेहताजीके समाधानार्थ "शेषका अर्थ" शीर्षक सम्पादकीय लेख ३० जुलाई सन् १६०० ई० के भारतमित्रमें प्रकाशित किया, उसमें लिखा:—"इस प्रश्नसे स्पष्ट है कि श्रीवेंकटेश्वर समाचार 'शेष' का अर्थ 'समाप्ति' या 'अन्त' नहीं मानता। अभी तक हमें यह भी मालूम नहीं है कि वह शेषका अर्थ क्या मानता है। तिसपर भी वह जो कुछ पूछता है, उसका उत्तर दिये देते हैं। हमारे सहयोगीको मालूम हो कि, हम जहाँ तक सम्भव होता है, उन्हीं शब्दोंका प्रयोग करते हैं, जो सर्वत्र प्रचलित हैं। मनसे गढ़कर या अटकलसे अंगरेजी तरजुमा करके कभी नहीं लिखते। 'शेष' शब्द सारे उत्तर भारतमें 'अन्त' के अर्थमें बोला जाता है। काशीवाले बोलते हैं, कलकत्तेवाले बोलते हैं और हिन्दी जाननेवाले मात्र बोलते हैं। जब सब बोलते हैं तो भारतमित्रके बोलनेमें क्या दोष है ? बंगाली लोग 'शेष' शब्दका सबसे

अधिक प्रयोग अन्तके अर्थमें ही करते हैं। ब्रह्म-समाजके नेता किन्नी ही भाषाओंके पण्डित राजा राममोहन राय गा गये हैं—'मने कर शेषेर से दिन भयङ्कर।' यह गीत ब्रह्मसमाजमें गाया जाता है। हम भगवान् शेष और बलदेवजीके सिवाय शेषके तीन अर्थ समझ रहे थे—अन्त, अनन्त और अवशेष। सहयोगीके प्रश्न करने पर हमें प्रमाण ढूंढने पड़े।" इसके पश्चात् गुप्तजीने सन् १८६३ ई० की लखनऊकी छपी रायल डिक्शनरी, सन् १८६२ की गवर्नमेंट आफ इंडियाकी छपाई हुई जे० सी० टामसनकी हिन्दी-इंगलिश डिक्शनरी और प्रसिद्ध बंगीय विद्वान् पं० रामकमल विद्यालङ्कारके सर्वमान्य "सचित्र प्रकृतिवाद अभिधान" से छांटकर शेष शब्दका अर्थ अपने प्रयुक्त अर्थके समर्थनमें उपस्थित किया। इसी प्रसङ्गमें पीछे उन्होंने कलकत्ता संस्कृत कालेजके प्रोफेसर महामहोपाध्याय पण्डित गोविन्द शास्त्रीजी, पं० श्रीधर पाठकजी, पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी और पण्डित माधवप्रसाद मिश्रजीकी सम्मतियाँ प्राप्त कर प्रमाण रूपमें छापीं और अपने पक्षका प्रतिपादन किया। पण्डित गोविन्द शास्त्रीजीने "वेणीसंहार" नाटक एवं "नैषध चरित" के अतिरिक्त—"परिभाषेन्दु शेखर" की अपनी 'जटाजूट' नामकी व्याख्यासे, पं० श्रीधर पाठकजीने प्रचलित प्रयोगोंसे, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजीने वामन शिवराम आपटेकी "संस्कृत अंगरेजी डिक्सनरी"के अतिरिक्त पण्डितराज जगन्नाथकृत "रस गंगाधर"से और पण्डित माधवप्रसाद मिश्रजीने मीमांसा दर्शन, नैषध चरितकी मल्लिनाथी टीका, नारायण काव्य और मेदनीकोषसे 'शेष' शब्दके जितने भी अर्थ थे, सब तलाश करके लिख भेजे थे। यह साहित्यिक वाग्विलास खूब चला था। श्रीवेंकटेश्वर-समाचारके पक्षमें काव्य-व्याकरणतीर्थ (उस समय महामहोपाध्याय-उपाधि नहीं मिली थी) पं० सकलनारायण पाण्डेयजीने जिन पुस्तकोंके अवतरण उपस्थित किये थे, उनका सम्यक् उत्तर भारतमित्रमें पं० देवकीनन्दन तिवारी मिरजापुरीने दिया था और

गुप्तजीने अपना पक्ष प्रमाणित कर लिखा था—"यदि यह प्रमाण यथेष्ट हों तो खैर, नहीं तो और भी प्रमाण देंगे। कृपाकर श्रीवेंकटेश्वर-समाचारजी यह प्रमाण दें कि "शेष" शब्दका अर्थ 'अन्त" नहीं हो सकता है। और हमसे जब उनकी जो कुछ इच्छा हुआ करे, पूछा करें।"

इस विवादके सम्बन्धमें पण्डित लज्जारामजी मेहताने अपनी "आप बीती" में लिखा है :—"श्रीवेंकटेश्वर समाचारका इतिहास लिखते समय काममें आने योग्य मेरी "आप बीती" में और भी कितनी ही घटनाएँ हैं, जिनमें प्रथम है 'शेष' शब्द पर वादानुवाद। बात यह हुई कि जिन दिनों मैं इस पत्र (श्रीवेंकटेश्वर समाचार) का सम्पादक था, बाबू बालमुकुन्द गुप्त भारतमित्रके सिद्धहस्त और प्रशंसित सम्पादक थे। इस शब्द पर मेरा उनका झगड़ा हुआ। जैसा यह झगड़ा था वैसा हिन्दी पत्रोंमें विभक्ति प्रत्ययके सिवाय कभी नहीं हुआ।"*

श्रीवेंकटेश्वर-समाचारके उठाये हुए विवादकी समाप्ति करते हुए गुप्तजी "शेषका शेष" शीर्षक अपने लेखमें लिखते हैं :—

"शेषका झगड़ा बहुत बढ़ा। आजकल हिन्दी भाषा जिस प्रकार पितृ-मातृहीन बनी हुई है उससे उसके विषयमें इस प्रकार झगड़ा उठना मङ्गलसूचक है। उससे अनेक शब्दोंकी मीमांसा हो जाती है, किन्तु एक बातके अर्थपर और झगड़ा बढ़ाना अनुचित जंचता है। नवीन सहयोगी श्रीवेंकटेश्वर समाचारकी तर्कनाओंकी परिपाटीसे हम वास्तवहीमें प्रसन्न हुए हैं। अक्सर समाचार-पत्रवाले हाकिम न होकर वकील होते हैं। वेंकटेश्वर समाचारने अपने चुने हुए आसामी "शेष" की वकालत अच्छी की। किन्तु सहयोगीको बड़ा ही कमजोर मुकद्दमा लेकर वकालत आरम्भ करनी पड़ी थी। इससे परिणाम जो होना था सो होनेपर भी सब लोगोंको उस वकालतकी प्रशंसा करनी होगी।

* "आप बीती" (प० लज्जाराम मेहता) पृष्ठ ११२.

पहलेके अनेक प्रसिद्ध हिन्दी लेखक चाहे बंगालियोंकी नकल अथवा संस्कृत भाषाके अवलम्बनसे 'शेष' शब्दको अवशिष्टके अतिरिक्त 'अन्त' तथा 'अन्तिम' अर्थमें भी प्रयोग कर गये हैं। ऐसा जानकर भी शायद भाषाके उपकारार्थ ही सहयोगीने 'अन्त' अर्थके विरुद्ध वकालत की। फल यही हुआ कि लोग भलीभांति 'शेष' शब्दके सब अर्थोंकी मर्यादा जान गये। नैषध, रसगङ्गाधर प्रभृतिके उठाये हुए श्लोकोंका प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर कपोलकल्पित अर्थ सहयोगीने जिस बुद्धिमत्तासे समझानेकी चेष्टा की है, वह भी सर्वथा प्रशंसनीय है।

सहयोगीकी प्रशंसाकी और भी एक बात है कि उसने एक तरहसे 'शेष'का 'अन्त' अर्थ भी मान लिया है। पहले शेषका झगड़ा उठाते समय उसने पूछा था कि भारत-मित्र न जाने किस आधार पर शेषको अन्तके अर्थमें लिखता है। गत सप्ताह उसने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि शेषके अन्त अर्थको गौण समझनेमें उनको उज्र नहीं है। भारतमित्र उसके मुँहसे इससे अधिक स्वीकार कराना नहीं चाहता था। सहयोगीने इतना स्वीकार कर केवल वकालतकी प्रशंसा ही हासिल नहीं की, हाकिमका न्याय भी उसने प्रगट किया है। अपने उठाये हुए झगड़ेकी आप ही ने मीमांसा कर दी है। शेषका अन्त अर्थ नये लेखकोंके लेखमें देखनेसे उसको सन्तोष नहीं होता। वह पुराने लेखकोंके लेखमें 'शेषको' अन्त अर्थमें व्यवहृत देखना चाहता है। केवल इसीलिये आज हमने एक पत्र-प्रेरकका पत्र अन्यत्र छापा है उसने दिखाया है कि भारतेन्दुजीने भी शेषको अन्त अर्थमें व्यवहार किया है सो अब झगड़ा तय हो गया।" *

* * * *

"सरस्वती" और "सुदर्शन" दोनों सन् १९०० ई० के आरम्भमें साथ-साथ ही प्रकाशित होने लगे थे। "सुदर्शन" काशीके लहरी प्रेस द्वारा प्रकाशित हुआ था और "सरस्वती" काशी नागरी प्रचारिणी सभाके अनुमोदनसे इंडियन प्रेस प्रयागसे निकलने लगी थी। "सुदर्शन"-

परखकी कसौटी

* भारतमित्र सन १९०० ई०।

के स्वामी और सम्पादक क्रमानुसार बाबू देवकीनन्दन खत्री एवं पं० माधवप्रसाद मिश्र थे और सरस्वतीके प्रकाशक बाबू चिन्तामणि घोष। सरस्वतीका सम्पादन एक सम्पादक-समिति द्वारा होता था, जिसके सदस्य थे बाबू कार्त्तिकप्रसाद खत्री, पण्डित किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर', बाबू राधाकृष्णदास और बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०। "सुदर्शन" दो वर्ष और कुछ महीने निकलकर ही बन्द हो गया, किन्तु सरस्वती अपने गौरवमय इतिहासके साथ हिन्दी साहित्यकी शोभा निरन्तर बढ़ाती आरही है। गुप्तजी 'सरस्वती'को उन दिनों मजाकमें पांच भाइयोंकी बहिन कहा करते थे। उक्त सम्पादक-समिति द्वारा सम्पादित होकर "सरस्वती" एक वर्ष ही निकली। दूसरे और तीसरे वर्ष उसके सम्पादकपद पर केवल बाबू श्यामसुन्दरदास रहे। सन् १९०३ ई०—से "सरस्वती" पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी द्वारा सम्पादित होने लगी। रंग-ढंगमें गुप्तजी सरस्वतीको हिन्दीमें सुन्दर मासिक पत्रिकाओंका एक अच्छा नमूना मानते थे, किन्तु जब उसमें कोई भाषा या भावकी विपरीतता या त्रुटि दिखाई देती थी, तब वे बिना सङ्कोच अपनी राय प्रकट कर दिया करते थे। उनकी लेखनी परखकी कसौटी थी। उनका खयाल था कि बड़ोंकी भूलका 'यद्‌यदाचरतिश्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः' के अनुसार बुरा प्रभाव पड़ता है। नये लेखकोंका उत्साह बढ़ानेमें भी गुप्तजी अपने समयमें एक ही थे। किन्तु वे घमण्ड अथवा अभिमान—'राईभर बुद्धि रखनेवालेका सरसों भर'-तकही सहन कर सकते थे, जहाँ सरसों भरसे बढ़कर माठ या चनेकी बराबरी करते किसीको देखते, उसको अपनी आलोचनाका निशाना बना लेते थे। उनकी आलोचनाका उद्देश्य किसीका गिराना या अपदस्थ करना नहीं, प्रत्युत उसको उसकी गलती बताकर सावधान करना होता था। समालोचनाके

सम्बन्धमें उन्होंने अपना अभिमत एकबार इस प्रकार प्रकट किया था—
"अपने बहुतसे गुण-दोष मनुष्य बहुत समझदार होनेपर भी स्वयं नहीं समझता, समालोचककी लेखनीसे जब गुण-दोष प्रगट होते हैं, तब ही वह उसकी समझमें आते हैं, आगे उसे अधिकार है कि चाहे वह उसको सुनकर नाराज हो या समझ कर लाभ उठावे।" सन् १९०६ में काशीस्थ भारतजीवन-सम्पादक बाबू रामकृष्ण वर्माजीको एक चिट्ठीका—जो उनके नाम लिखी गई थी, उद्धरण देकर गुप्तजीने भारतमित्रमें अपना समालोचना-सम्बन्धी सिद्धान्त और भी स्पष्टतासे समझाया है। उन्होंने लिखा है :—

"भारतमित्र-सम्पादक आपहीका नहीं, सब हिन्दीवालोंका है। सदा वह सब हिन्दी प्रेमियोंका उत्साह बढ़ानेकी चेष्टा किया करता है। हिन्दीवालोंका बराबर तरफदार रहता है। उनके छोटे-मोटे कोई दोष दिखावें तो उनपर कान भी नहीं धरता। केवल इतना अवश्य करता है कि जो पोथी उसे बुरी, नीति और सभ्यताके विरुद्ध जचती है, या जिस पोथीसे वह हिन्दुओंकी हानि देखता है उसके बनानेवाले-को टोक देता है, जिससे वह वैसा करनेसे बाज रहे। यह बर्ताव उसका सदा सबसे है। अपने मित्रों और तरफदारोंकी पोथियोंमें भी उसने कोई दोष देखा तो धीरेसे बता देनेकी चेष्टा की। उसने यदि किसीका मुकाबला किया है तो उसका जो अपनी बड़ाईके लिये दूसरे हिन्दीवालोंकी बेइज्जती करने आया।"

पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी गुप्तजीके चिर परिचित मित्र थे। श्री पं० श्रीधरजी पाठक और द्विवेदीजी दोनोंके कीर्ति-विस्तारमें गुप्तजी-का पूरा हाथ था। पाठकजीसे तो गुप्तजी उर्दू पत्र कोहेनूरकी एडिटरी करते समय ही परिचय प्राप्त कर चुके थे, इसके थोड़े दिनों बाद द्विवेदीजीसे उनकी जान-पहचान 'हिन्दोस्थान'के सम्पादन-कालमें हुई। उस समय द्विवेदीजी भी पद्य ही लिखा करते थे। गुप्तजी लिखते हैं :—
"सन् १८८९ ई० में जब हम कालाकांकरमें थे, तब हमने द्विवेदीजीको पहले पहल जाना। आपने अपना भर्तृहरिका हिन्दी अनुवाद "हिन्दोस्थान"में छपनेको भेजा था।

तब हमने अनुमान किया था कि आप एक संस्कृत जाननेवाले पण्डितोंमेंसे हैं। यह अनुवाद कुछ दिन छपा। इसे देखकर एक और सज्जनने गङ्गालहरीका अनुवाद भेजना आरम्भ किया। वह भी "हिन्दोस्थान"में छपने लगा। इससे द्विवेदीजी नाराज हुए। आपने लिखा कि जब तक मेरा अनुवाद छपता है, दूसरेका न छपे। हमने दूसरे सज्जनको रोका तो वह बिगड़ गये। कहने लगे द्विवेदीजीका अनुवाद बड़ा अनोखा है कि उसके सामने दूसरेका न छपे। फल यह हुआ कि दोनों अनुवाद ही छपनेसे बन्द हो गये। जब द्विवेदीजीने अपना अनुवाद पुस्तकाकार छपवाया तब खरीदकर पढ़ा। उत्तम हुआ था। ब्रजभाषामें गङ्गालहरी जैसी द्विवेदीजीकी और कविता देखनेमें नहीं आई,—फिर छपने योग्य चीज है।"

सन् १९०१ ई० में भारतमित्रके "तेईसवां वर्ष" शोर्षक अपने लेखमें गुप्तजीने गत वर्षकी हिन्दीपद्य चर्चाका उल्लेख करते हुए हिन्दी कवियोंको स्पष्टतया चेतावनी देनेके लिये प्रियतमाकी कोरी विरह-व्यथा-वर्णनात्मक शृङ्गार-रस-प्रधान कविता-रचनासे ध्यान हटाकर दूसरा मार्ग निकालनेकी राय दी थी। उस प्रसङ्गमें भी वे अपने मित्र पाठकजी और द्विवेदीजीको दाद देना न भूले। गुप्तजीके शब्द ये हैं:—

"हिन्दी पद्यकी भी कुछ चर्चा, भारतमित्रमें गत वर्ष (सन् १९०० ई०) हुई। उससे कमसे कम इतना हुआ कि हिन्दीके कवि अपने लिये एक पथ निकाल सकते हैं। परन्तु अपने जीमें इतना समझ रखें कि प्यारीकी विरह-व्यथा-वर्णन और नायिका-भेद बतानेका समय अब नहीं है। पिछले कवि उक्त विषयमें जो कुछ कर गये हैं, वह कम नहीं है। इस समयके कवि उनकी नकल करके नाम नहीं पा सकते। अब दूसरा मार्ग तलाश करना चाहिये। हम प० श्रीधरजी पाठक तथा प० महावीरप्रसादजी द्विवेदीका हृदयसे धन्यवाद करते हैं। हिन्दी पद्यको पथपर ले जाना आप जैसे लोगों होका काम है।"*

* भारतमित्र—'तेईसवां वर्ष' शीर्षक लेख सन् १९०१ ई० का आरम्भ।

सन् १८९९-९० ई० में "भारतमित्र" में पाठकजी और द्विवेदीजीकी रचनाएँ बराबर छपती थीं और गुप्तजी उनको प्रमुख स्थान देकर उत्साहित करते थे। द्विवेदीजीने लाला सीतारामजीकी काव्य-पुस्तकोंकी समालोचना "भारतमित्र" में ही की थी। उन दिनोंके चार पत्र द्विवेदीजीके नाम उनके पत्रोंके उत्तरमें गुप्तजीके लिखे हुए इस समय काशी नागरी प्रचारिणी सभामें द्विवेदीजीके संग्रहमें सुरक्षित हैं। उन पत्रोंमेंसे ता० ११-१२—सन् १९०० ई० के लिखे गुप्तजीके एक पत्रका उत्तर द्विवेदीजी द्वारा भेजा हुआ हमें अपने अन्वेषणमें मिला है। ये अर्द्ध-शताब्दी पूर्वके पाँचों साहित्यिक-पत्र वर्तमान हिन्दी पत्रकारिताके आदि समुन्नायक गुप्तजी एवं द्विवेदीजीके व्यक्तित्व, स्वभाव और साहित्यिक दृष्टिकोणोंपर अच्छा प्रकाश डालते हैं। पत्रोंकी प्रतिलिपि क्रमानुसार यहाँ दी जाती है :—

गुप्तजीका कार्ड द्विवेदीजीके नाम—

॥ श्रीः ॥

पूज्यवर प्रणाम।

कार्ड सामने है उसी पर लिखे देता हूं। कृपापत्र आया समाचार जाना। जरा सीतारामजी पर कृपा ही रखना चाहिये। आपसे हमने रुचि-भङ्गकी विनय नहीं की, आप चाहे कठिनसे कठिन लिखें। "पसन्द अपनी अपनी"—दास चूं न करेगा। कई एक पिछले नम्बरोंमें पं० श्रीधरजीके लेख हैं वह और भेजने हैं। आजकल मैं ज्वरसे पीड़ित हूं। इसीसे भूल रहती है। प्रबन्ध हो रहा है। बहुत जल्द अशुद्धि आदिका बखेड़ा दूर होगा। आप जो जो कृपा करेंगे (लेख भेजगे ?) सब सादर स्वीकार होंगे।

दास—बालमुकुन्द गुप्त

कलकत्ता ५-१२-९९

गुप्तजीका पत्र द्विवेदीजीके नाम—

॥ श्रीः ॥

Bharatmitra Office.
Calcutta 1-12-99

पण्डितजी, प्रणाम ।

आप जो "भारतमित्र" पर कृपा करने लगे हैं उसके लिये हम आपका बहुत-बहुत धन्यवाद करते हैं आशा करते हैं कि आपकी सदा ऐसी ही कृपा बनी रहेगी ।

"भारतमित्र" आपकी सेवामें जाने लगा, बराबर पहुंचेगा । "शरत्-सायङ्काल" वाला लेख बहुत कठिन था संस्कृत स्टाइलका होनेसे उसका समझना भी कठिन था मैं उस रात बीमार हो गया था इसीसे वह लेख अशुद्ध छपा ।

आपका दूसरा लेख भी बहुत कठिन था सर्वसाधारणके समझने योग्य न था । ऐसे कठिन लेख लिखने हों तो कुछ सरल और रोचक ढङ्ग निकालना चाहिये । तीसरा लेख अबकी छपेगा यह कुछ सरल था । आशा है कि आप सरल पथपर चलना पसन्द करेंगे क्योंकि कठिन पथपर जाना अधिक आदमी पसन्द नहीं करेंगे ।

दुर्गापूजाका "भारतमित्र" आपके पास भेजा था । उसमें एक लेख पण्डित श्रीधरजीका है । एक बाबू राधाकृष्णका है तथा दो एक मेरे हैं । आपकी भाषाका ढङ्ग यदि उसी तरह सरल रहे तो अच्छा है । यह आपसे विनय की है उस तरह अपनी रायका आपको अधिकार है । बहुत बातें लिखनी हैं । कभी अवकाशमें लिखूंगा । आपकी कृपाका पुनः धन्यवाद करके चिट्ठी पूरी करता हूं ।

भवदीय
बालमुकुन्द गुप्त

द्विवेदीजीके पत्रके उत्तरमें गुप्तजीका पत्र :—

॥ श्रीः ॥

पूज्यवर प्रणाम।

७ दिसम्बरका पत्र आया। "कविकी दिव्य-दृष्टि" अबके छपेगी। परन्तु पत्तनलाल पर और लिखना कुकविको सुकवि बनाना है। मैंने जो लिख दिया था वही काफी था। सीतारामजी मेरे मित्र नहीं। मेरा उनका पत्र-व्यवहार या जान-पहचान कुछ नहीं, पर मैं उनको एक प्रकारका अच्छा लेखक समझता हूं। कालिदासके काव्यमें वह भूलते हों तो आश्चर्य नहीं। कालिदासके काव्यका ठीक अनुवाद उनसे न हो सकने पर भी एक प्रकारकी कविता-शक्ति उनमें है। मेरा रिमार्क "स्वप्न" पर भी था और जनरल भी था। मेरा मतलब यह है कि यदि वह किसी संस्कृत काव्यको अनुवाद करनेमें जबरदस्ती बिगाड़ते हों तो बेशक अन्याय है। यदि भूलसे हो तो वैसा दोष नहीं।

दुःख यही है कि मैं सीतारामजीसे कभी मिला नहीं। इसीसे उनकी प्रकृतिके विषयमें कुछ नहीं जानता। मेरा मतलब यह है कि किसी अच्छे लेखकसे कुछ भूल भी हो तो उसपर अधिक कटाक्ष न होने पावे।

मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। मुझे कालिदासके काव्य समझनेकी शक्ति नहीं, इससे विशेष कुछ कह नहीं सकता, परन्तु लाला सीतारामका उत्तर यही है कि कुछ अच्छे तरजुमा करनेवाले पैदा हों और अच्छा अनुवाद करें।

मैंने रत्नावलीका अनुवाद किया है। पण्डित श्रीधरजी पाठकने तो उसकी बड़ी तारीफ की है, पर यदि उसमें भी सीतारामी दोष निकले और ग्रन्थ-कारका स्वर्गमें मुंह काला हो और मुझे उसकी जोरूको फुसलानेका इलजाम लगे। जरा तबीयत अच्छी होनेसे अपनी पोथी आपके पास भेजूंगा।

बहुत बातें लिखनेको था, पर लिख न सका फिर सही।

कलकत्ता
११-१२-६६.

दास
बालमुकुन्द

गुप्तजीके नाम द्विवेदीजीका पत्र उनके उक्त पत्रके उत्तरमें—

झांसी,

१३ दिसम्बर ९६

प्रिय महाशय,

आशीष,

११ दिसम्बरका पत्र आया, कल हम आपको एक पत्र और भेज चुके हैं, आशा है यथा समय मिले, आपसे पत्र व्यवहार करनेमें हमको बड़ा आनन्द आता है, सत्य जानिए,

रत्नावलीका अनुवाद जो आपने किया है वह हमने देखा है—देखा ही नहीं अच्छी तरह मनन किया है, "शीतांशुर्मुखमुत्पले तव दृशौ पद्मानुकारौ करौ—" इसका जब जब हमको स्मरण आता है—तब तब साथही-साथ आपका अनुवाद भी स्मरण आता है, हमको आप चाटुकार न समझें, यदि हम यह कहें कि जैसा श्रीधरजी अंगरेजीका अच्छा अनुवाद करके पढ़नेवालोंके मनको मोहित कर लेते हैं वैसा ही आप संस्कृतका अनुवाद करके मोहित कर लेते हैं। आप कहते हैं कि आप संस्कृत नहीं जानते। न जानते होंगे—जब आप नहीं जानते तब तो ऐसा उत्कृष्ट अनुवाद कर सके यदि जानते होते तो न जाने क्या दशा होती, निश्चय आपका रत्नावलीका अनुवाद बहुत ही सरस है,

क्या ही अच्छा होता यदि आप लाला सीतारामजीके मित्र होते वैसा होनेसे आप उनसे यह कह सकते कि आप जरा संभालकर अनुवाद किया कीजिए, जहां तक हम जानते हैं लाला साहब संस्कृत समझते हैं, परन्तु हम यह नहीं कह सकते कि क्यों उनका अनुवाद बुरा होता है, अजी अनगिनत श्लोक छोड़ जाना, कितने ही श्लोकोंके आधे आधे भागको छोड़ जाना, कितनों ही की एक-एक टांग तोड़ देना—उपमाओंका सत्यानाश कर देना—शब्द ऐसे रखना कि उनसे कुछ

यह क्या खेल है। यदि कोई छोटा-मोटा आदमी ऐसी-ऐसी भूल करे तो उसको क्षमा भी कर सकते हैं परन्तु आप क्या लाला साहबके समान विद्वानोंको भी उसी कक्षामें रखना चाहते हैं? हम नहीं जानते वे जबरदस्ती अनुवादको बिगाड़ते हैं या यह आप ही आप बिगड़ जाता है.

अजी बाबूजी, वह आपने जोरूजोरूकी क्या बात लिखी, वह आपके लिए नहीं, रत्नावलीवाले श्रीहर्षकी जोरू तो आपके ऊपर दिलोजानसे फिदा होगी!

यदि आप लाला सीतारामजीको सुलेखक समझते हैं तो हम समझ चुके—उनके सुलेखक होनेके विषयमें हमारा कोई विवाद नहीं, हमारा विवाद है उनके *हिन्दी कालीदासके* विषयमें. *हिन्दी कालीदासकी* भाई, उन्होंने बहुत ही बुरी दुर्गति की है. हमारी समालोचना—रघुवंश भाषाकी दो ही चार दिनमें समाप्त होनेवाली है—उसे हम आपके पास भेजेंगे और आपको छापना भी पड़ेगा, क्योंकि हम अपना परिश्रम व्यर्थ न जाने देंगे—उसे आप देखिएगा और यदि कहीं भी हमने अनुचित भूल दिखाई हो तो उसे फौरन काट दीजिएगा और यही नहीं किन्तु निरर्थक आक्षेप करनेके लिए हमको सजा भी दीजिएगा. यदि ऐसा आप कहते हैं कि आप संस्कृत अच्छी तरह नहीं समझते तो कृपा करके किसी पंडितको दिखला लीजिएगा और हमारी दिखाई हुई भूलोंमें यदि वह गलती बतलावै तो हमें आप कायल कीजिएगा.

एक बात हम आपसे और कहना चाहते हैं वह यह कि क्या सुलेखकों और सुकवियोंकी कृतिकी आलोचना, यदि आलोच्य हो तो, न करना चाहिए? कसूर माफ हो, बिहारी विहारीकी बहार तो आप ही ने दिखाई थी, परन्तु आपने हमारी लिखी हुई थर्ड रीडरकी समालोचनाका

नाम तक भारतमित्रमें नहीं दिया. यह शिकायत न समझिये हमने यों ही लिख दिया है आशा है आप न्यूनाधिक पत्रकी ओर ध्यान न देंगे.

वशंवद

महावीरप्रसाद द्विवेदी

पुनश्च.

स्वप्नके विषयमें क्या लाला साहबने कुछ लिखा है जो आपने कहा "कि लाला सीतारामका उत्तर यही है कि कुछ अच्छे तरजुमा करनेवाले पैदा हों और अच्छा अनुवाद करें" शायद उनकी तरफसे आपने उत्तर दिया है.

म० प्र०

गुप्तजीका पत्र द्विवेदीजीके नाम—

Bharatmitra Office
Established 1878.
Telephone No 137.

97, Muktaram Babu's Street
Calcutta.
25-2-1900

पूज्यवर,

प्रणाम।

आज आपसे कई तरहकी बातें निवेदन करना हैं। आपका उत्तर इस बार छप ही गया है। २० के पत्रमें आपने मुझे क्षमा दी उसका धन्यवाद है।

जो चीज छापकर बेची जाती है उसपर कोई आलोचना करे तो अनुचित क्या है। खिलौना पर आपके लिखनेसे मुझे हर्ष है, दुःख नहीं। ऐसी बातोंका खयाल मुझे नहीं होता। गद्य लेख आपका चैत्रमें छपेगा। मेरे लड़केका विवाह वैशाख बदी १ का है। चैत्र बदीमें मुझे घर जाना है। मेरे पीछेसे वैसे पांच-चार लेख रहेंगे तो असिस्टन्ट

एडिटरको मदद मिलेगी। आशा है कि तब आप उसकी और भी मदद करेंगे।

आपका दिल्लगीवाला काव्य अभी नहीं पहुंचा है। आशा है कि जल्दी पहुंचेगा।

२१ फरवरीकी चिट्ठीका उत्तर सुनिये।

कानपुरसे हमें कुछ ऐसे पत्र मिले हैं जिनसे विदित होता है कि लाला सीतारामजीसे आपकी किसी विशेष बात पर नोंकचोक है। क्या यह सच है। कानपुरके एक पत्रका आगे जिकर भी करूंगा।

स्थावर, स्थान, स्नेह आदिको पद्यके आदिमें लाना हिन्दी भाषामें मैं तो गलती ही समझता हूं और मेरी समझमें उनके आनेसे वजन खराब हो जाता है। पर जब आप कहते हैं कि वह ठीक है तो ठीक ही है क्योंकि भूल वह होती है, जो भूलसे लिखी जावे। जो बात मनुष्य जानकर लिखे वह तो भूल नहीं। वह राय है।

उस स्थानको मैं उसस्थान समझता हूं। मेरी रायमें उसका वजन ऐसे ही है। थान शब्द मैंने रूप बिगाड़नेके लिये नहीं कहा, वजन दिखानेको कहा। अर्थात् स्थानका आधा स् फालतू है। आपकी कवितामें दोष दिखानेकी चेष्टा नहीं की परन्तु आज्ञा हो तो करूं? पर शर्त्त यह है कि उसमें अन्य भाव न समझा जावे। वास्तवमें तो मैं इस बातका तरफदार हूं कि किसी पर बेजा हमला न हो। जबरदस्ती किसीका दोष दिखाना मेरी आदत नहीं। मेरे महाराजपर इतनी रोक-टोक और पंडित श्रीधरजीके महाराजको कुछ नहीं!

यदि लाला शालिग्राम वह भूमिका न लिखते तो उनकी जाली चिट्ठी पर मैं धोखा न खाता। चिट्ठी निश्चय जाली थी। पर वह लिखी ऐसी थी कि मानो शालिग्रामजीके कलेजेमें घुसकर किसीने वह वाक्य निकाल लिये। सचमुच उनके योग्य वह पोथी नहीं हुई।

कल एक अंगरेजी चिट्ठी कानपुरसे लाला सीतारामजीके किसी मित्रकी हमारे पत्रके मालिक बाबू जगन्नाथदासजीके यहां आई है। लिखा है कि आपके "भारतमित्र"में प० महावीरप्रसाद दूबे लाला सीतारामजीको पुस्तकोंकी बड़ी निन्दा छपवा रहे हैं सो बन्द की जावे। मैंने उत्तर लिखवाया है कि वह भी महावीरप्रसादजीका जवाब देकर उनका मुंह बन्द क्यों नहीं कर देते। कमजोरी दिखाकर उनको शेर होनेका अवसर क्यों देते हैं। सो मालूम पड़ता है कि या तो वह लोग बाबू साहबको दबाकर आपका आक्रमण बन्द करावेंगे अथवा कुछ उत्तर देंगे। मेरी समझमें उत्तर देना अच्छा है। दबकर भींगी बिल्ली बनना ठीक नहीं, आगे जो होगा सो भी लिखूंगा।

भवदीय

दास बालमुकुन्द गुप्त *

'अनस्थिरता' विषयक आन्दोलन

"अनस्थिरता" शब्दको लेकर द्विवेदीजीके साथ गुप्तजीका जो साहित्यिक विवाद या संघर्ष चला था, वह हिन्दी साहित्य-संसारके इतिहासमें एक विशेष स्थान रखता है। द्विवेदीजीने स्व-सम्पादित 'सरस्वती' (भाग ६ संख्या ११ नवम्बर सन् १९०५) में "भाषा और व्याकरण" शीर्षक एक लम्बा लेख लिखा था, उसमें एक सर्वमान्य व्याकरण बननेकी आवश्यकता दिखाते हुए दूषित भाषाके उदाहरणोंमें उन्होंने बाबू हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, ठा० गदाधरसिंह, पं० राधाचरण गोस्वामी, बा० काशीनाथ खत्री, पं० मधुसूदन गोस्वामी

---

* नागरी प्रचारिणी सभाके द्विवेदी-संग्रहमें गुप्तजीके पत्र क्रमानुसार १९२२, १९२३, १९२४ और १०१३ सख्यक हैं। इनका उपयोग करनेकी अनुमति देनेके लिये हम सभाके कृतज्ञ हैं। लेखक.

हिन्दी-संसार के दो महारथी

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

और पं० बालकृष्ण भट्ट आदि हिन्दीके सम्मान्य प्रवर्तकों एवं उन्नायकोंके वाक्य उद्धृत किये थे और कर्त्ता, कर्म, क्रिया, लिङ्ग और विभक्ति सम्बन्धी सब दोषोंसे रहित व्याकरण सम्मत अवतरण दिये थे अंगरेजी, संस्कृत, बँगला और मराठीके। गुप्तजीको इस लेखमें अभिमानकी ध्वनिका आभास मिला और इसे उन्होंने हिन्दीके पूर्वाचार्यों की प्रतिष्ठा एवं स्वरूपके विपरीत माना। द्विवेदीजी अपने लेखमें "भाषाको अनस्थिरता प्राप्त हो गई......उसकी अनस्थिरता उसे बरबाद कर रही है"—आदि वाक्य भी लिख गये थे। अतएव उनके प्रयुक्त 'अनस्थिरता' शब्दको पकड़कर ही 'भारतमित्र' में 'भाषाकी अनस्थिरता' शीर्षक एक लेखमाला आत्मारामके नामसे आरम्भ हुई। उस लेखमालामें द्विवेदीजीके प्रयोगोंकी परिहासपूर्वक आलोचना की गई। वह लेखमाला अपनी शैलीके कारण हिन्दीमें बिलकुल नयी चीज थी, इसलिये बड़ी दिलचस्पीके साथ पढ़ी गई। इसके अतिरिक्त परिशिष्ट रूपमें आत्मारामीय टिप्पण भी 'भारतमित्र' में प्रकाशित हुए।

आत्मारामके 'भाषाकी अनस्थिरता' विषयक लेखोंने हिन्दी-क्षेत्रमें तुमुल संग्रामका-सा दृश्य उपस्थित कर दिया था। उस समय कोई विरला ही प्रमुख साहित्य-सेवी इस झगड़ेसे तटस्थ रह सका होगा। एतद्विषयक लेखोंको पढ़कर द्विवेदीजीकी गम्भीरता जाती रही थी और उनके अनुगत पक्ष-समर्थक पं० देवीप्रसाद शुक्ल एवं पण्डित गिरिजाप्रसाद वाजपेयी आदि झुँझलाहटमें आ गये थे। द्विवेदीजीने स्वयं 'कल्लू अल्हइत' के नामसे "सरगौ नरक ठेकाना नाहिं" नामक आल्हा उसी स्थितिमें लिखा था, जो जनवरी सन् १९०६ की सरस्वतीमें प्रकाशित हुआ। ब्राह्मण द्विवेदीको एक वैश्य – गुप्तने दबा लिया है;—इस विचारने पण्डितवर गोविन्दनारायणजी मिश्रको भी स्वयं अप्रकट रहकर पण्डित शिवदत्त कविरत्नके नामकी ओटमें हिन्दी बङ्गवासीमें "आत्मारामकी टें टें" शीर्षक लेखावली

प्रकाशित करानेके लिये विवश किया। द्विवेदीजीके मतकी पुष्टिमें मिश्रजीने 'अनहोनी', 'अनरीति' आदिकी भाँति 'अनस्थिरता' शब्दके प्रयोगको उचित ठहरानेका प्रयत्न किया था।

"सरस्वती" के फरवरी (सन् १९०६) के अङ्कमें आत्मारामीय लेखोंके उत्तरमें द्विवेदीजीने दूसरा सुदीर्घ लेख लिखकर, जो प्रायः २० पृष्ठोंमें पूरा हुआ था, फिर उसी 'भाषा और व्याकरण' शीर्षकसे प्रकाशित किया। उसके आरम्भमें ही अपने पहले लेखके समर्थनमें उसे 'पसन्द' कर उत्साहवर्द्धक पत्र लिखनेवाले प्रतिष्ठित लेखकोंमें पण्डित कमलाकिशोर त्रिपाठी एम० ए०, पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री, बाबू काशीप्रसाद, पं० पद्मसिंह शर्मा और पण्डित श्रीधर पाठकके पत्रोंसे प्रशंसामय अंश उद्धृत करते हुए उन्होंने अपना मत विस्तार पूर्वक व्यक्त किया और उसमें 'भाषाकी अनस्थिरता'—के लेखक अपने समालोचक आत्मारामको उसके 'प्रयुक्त उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार और उच्छेदार लतीफों' के विचारसे भारतमित्र-सम्पादक करार दे दिया तथा भारतमित्र सम्पादक पर ईर्ष्या विद्वेषके वशवर्ती होकर आलोचना करनेका खुल्लम-खुल्ला आरोप लगा दिया। उस समय उभय पक्षके लेखोंको निष्पक्ष होकर पढ़नेवाले साहित्यानुरागियोंने यह अनुभव किया कि इस प्रसङ्गमें हलकापन दिखाने और शिष्टता छोड़ देनेका जो दोषारोप गुप्तजी पर द्विवेदी-पक्षकी ओरसे किया जा रहा है, उससे द्विवेदीजी और उनके दलके लोग भी बच नहीं सके हैं।

आत्मारामीय 'भाषाकी अनस्थिरता' लेख-मालाके १० लेख प्रकाशित करनेके बाद गुप्तजीने भारतमित्रके सम्पादकीय स्तम्भमें "व्याकरण विचार" नामसे एक लेख लिखा, जिसमें हिन्दी-संसारके समक्ष उन्होंने अपनी कैफीयत पेश की। गुप्तजीका वह लेख आत्मारामीय लेखोंका भूमिका कहा जा सकता है। उसमें गुप्तजी लिखते हैं :—

"आलोचनाकी रीति अभी हिन्दीमें भली भांति जारी नहीं हुई है और न लोग उसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठीक समझते हैं। इससे बहुत लोग आलोचना देखकर घबरा जाते हैं और बहुतोंको वह बहुत ही अप्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदानमें कदम बढ़ाते हैं, अपनी आलोचना होते देखकर वही गुर्राने हो जाते हैं। इससे हिन्दीमें आलोचना करना भिड़के छत्तेको छेड़ लेना है।"

आत्मारामीय लेखके सम्बन्धमें गुप्तजीने कहा है:—

"पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी स्वयं बड़े भारी आलोचक होनेका दावा रखते हैं। आत्मारामने तो आलोचनाके केवल दस लेख ही लिखे हैं, द्विवेदीजीने बड़ी-बड़ी पोथियाँ बनाके डाल दी हैं। लाला सीतारामकी पोथियोंकी आप बहुत कुछ आलोचना कर चुके हैं और किये जाते हैं, यहां तक कि इन आलोचनाओंकी आप पोथियां तक छपवा चुके हैं। केवल इतना ही नहीं, संस्कृतके स्वर्गीय पण्डितोंकी भी आलोचना आपने की है और पोथियां रच डाली हैं। आलोचनामें केवल उनकी तारीफोंके ढोल नहीं बजाये गये हैं, वरन् उनकी भूलें दिखाई हैं, उनके साथ दिल्लगी की है, उनको टिटकारियां दी हैं। लाला सीतारामको सम्पनाका पावन्द बनाकर उनकी बहुत हँसी उड़ाई है।.....द्विवेदीजीने कालीदास तककी खबर ली है। अब गत नवम्बर मासकी 'सरस्वती' में 'भाषा और व्याकरण' का लेख लिखकर उन्होंने हिन्दीके नये पुराने लेखकोंसे जो बर्ताव किया है वह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। उस लेखसे क्या स्पष्ट होता है? क्या यह कि हिन्दी भाषामें कोई व्याकरण नहीं है और उसमें एक व्याकरण बनना चाहिये? क्या हिन्दी या हिन्दीके किसी लेखकके साथ उसमें कुछ सहानुभूति या श्रद्धा प्रगट होती है? इन बातोंमेंसे एक भी नहीं है। केवल यही स्पष्ट होता है कि हिन्दीमें गदर मच रहा है। जितने पुराने लेखक थे, सब अशुद्ध लिखते थे। नये भी अशुद्ध और बेठिकाने लिखते हैं। जितने व्याकरण हिन्दीमें हैं वह किसी कामके नहीं, शुद्ध हिन्दी लिखना कोई जानता नहीं। जो कुछ जानते हैं सो केवल उस लेखके लेखक!

यदि हिन्दीमें अच्छे व्याकरण नहीं हैं और जो द्विवेदीजीको यह अभाव मेटनेकी भगवानने शक्ति दी है तो एक अच्छा व्याकरण लिखनेसे उनको किसने रोका ? और अब कौन रोकता है ? पर व्याकरण लिखना तो शायद चाहते नहीं। चाहते हैं अपनी सर्वज्ञताका डङ्का बजाना। आत्मारामको उनके लेखसे उनकी सर्वज्ञताका सबूत नहीं मिला, इसीसे उसने उनके लेखकी आलोचना कर डाली।"

लेखकी समाप्तिमें लिखा है :—"लिखने-पढ़नेवालोंको अपना मन साफ रखना चाहिये। अपनेको एकदम ऊँचा और दूसरोंको एकदम अनभिज्ञ कभी न समझना चाहिये। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि मैं क्या कहता हूँ और दूसरा क्या कहता है ? यदि कोई सत्य बात प्रगट हो जाय, तो उसे अन्यायसे दबाना नहीं चाहिये। खाली दूसरोंपर दोष लगानेवाला ही पण्डित नहीं हो सकता और न अपनी भूल माननेवाला मूर्ख कहला सकता है। हमें इस विषयमें बोलनेकी जरूरत न थी, क्योंकि एक ओर द्विवेदीजीका लेख है; दूसरी ओर आत्मारामके लेख,—लोग पढ़कर आप फैसला कर सकते हैं, पर कुछ लोगोंने भारतमित्र-सम्पादकको ही आत्माराम समझ कर मनमें आया सो कह डाला है, इसीसे यह लेख लिखना पड़ा है कि, आप सज्जनोंको आत्मारामसे क्या मतलब है, उसके लेख हाजिर हैं!"*

यद्यपि गुप्तजीने अपनेको आत्मारामके आवरणमें गुप्त रखना चाहा था, तथापि उन्हें चौड़े आ जाना पड़ा। द्विवेदीजी और उनके दलके सज्जन ही नहीं, दूसरे लोग भी ताड़ गये थे कि आत्मारामीय लेख 'अर्जुनस्य इमे बाणाः' की भाँति गुप्तजीके ही तर्कससे निकले हुए सधे हाथके लक्ष्य-वेधक तीर हैं। अस्तु, अन्तमें भारतमित्र सम्पादककी हैसियतसे "हिन्दीमें आलोचना" शीर्षक धारावाहिक ७ लेख लिखकर गुप्तजीने द्विवेदीजीके आक्षेपोंका विस्तारपूर्वक सोदाहरण उत्तर दिया। उन्होंने कहा—"द्विवेदीजीसे विनय है कि इस बहसमें वह अपने मुकाबिलको ईर्षा-द्वेषके

* भारतमित्र सन् १९०६ और गुप्तनिबन्धावली पृष्ठ ४२७-३२।

इल्जामसे रहित करें, चाहें उसे अल्पज्ञ समझते रहें।" द्विवेदीजीके आवेशमें आ जानेको लक्ष्य करके गुप्तजीने यह भी लिखा था—

"आलोचकमें केवल दूसरोंकी आलोचना करनेका साहस ही न होना चाहिये वरञ्च अपनी आलोचना दूसरोंसे सुनने और उसकी तीव्रता सहनेकी हिम्मत भी होना चाहिये। जिस प्रकार वह समझता है कि मेरी बातोंको दूसरे ध्यानसे सुनें, उसी प्रकार उसे स्वयं भी दूसरोंकी बातें बड़ी धीरता और स्थिरतासे सुनना चाहिये।"

गुप्त-द्विवेदी-सम्बन्धित इस साहित्यिक विवादके आधारभूत "भाषा और व्याकरण" शीर्षक प्रथम लेखके विषयमें जयपुरके 'समालोचक' ने जिसके सम्पादक उन दिनों पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजी थे, लिखा था :—

"जिस प्रचण्ड पाण्डित्यसे सम्पादक महाशयने नये-पुराने सभी लेखकोंको अपने व्याकरणके आगे अनर्गल और अशुद्ध समझा है, उसपर भारतमित्र चाहे कुछ कहे, हम उस प्रौढ़ लेखकी स्तुति ही करेंगे। परन्तु क्या सम्पादक महाशय बतलावेंगे कि 'अथ शब्दानुशासनम्' यह पाणिनिका सूत्र है, यह उन्हें किसने बताया? यह पातञ्जल महाभाष्यका प्रथम वाक्य है, पाणिनिका नहीं। इस अनुशासन शब्दके उपसर्गको पृथक् करके जो विलक्षण गमक निकाला गया है कि पाणिनीने अपने समय तकके शब्दोंका ही अनुशासन किया है, वह निरर्थक है। "यथोत्तर मुनीनां प्रामाण्यम्" कौन नहीं जानता और इसी हिसाबसे द्विवेदीजीने भी अपने पहले हिन्दी आचार्योंको सम्हाल ही लिया है। परन्तु यदि 'अनु' होनेसे यह अर्थ निकाला गया तो अनुष्ठान=पीछे खड़े होना, अनुमान=पीछे नापना, अनुसार=पीछे रेंगना, अनुरोध=पीछे रोकना भी मानना चाहिये। एक बात हम और नहीं समझे। हिन्दीके पुराने लेखकोंपर तो कृपा इस वास्ते हुई कि उनने दुर्भाग्यसे भली, या बुरी वह हिन्दी लिखी थी, जिसे आज द्विवेदीजी रौनक बख्शाते हैं, परन्तु अंगरेजी, मराठी, बंगलाके, ये टुकड़े क्यों दिये गये हैं, जो निर्दोष कहे गये हैं? क्या उनके देनेमें अपनी बहुभाषाभिज्ञता दिखानेकी छाया नहीं है?" *

* समालोचक भाग ४ क्रमागत सख्या ४०-४१

सुदर्शन-सम्पादक प० माधवप्रसादजी मिश्र, यद्यपि गुप्तजीसे उन दिनों रुष्ट हो चुके थे तथापि उन्होंने भी लिखा था—"...सरस्वतीके सुयोग्य सम्पादक, श्रीवेंकटेश्वर समाचारके आक्षेप पढ़कर विचार करें कि क्या उनका यही उत्तर है, जैसा कि उन्होंने दिया है। क्या "शब्दानुशासनम्" और "हलन्त वर्ण" का यही न्याय सङ्गत उत्तर है? सत्यके स्वीकार करनेमें जिन्हें इतना सङ्कोच हो, न्यायके लिये दुहाई देना उनका काम नहीं है।" *

गुप्तजीके पक्ष-समर्थनमें जिन सज्जनोंके लेख समाचार पत्रोंमें प्रकाशित हुए थे उनमें श्री प० विष्णुदत्त शर्मा बी० ए०, प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, प० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, प० अक्षयवट मिश्र, बा० गोकुलानन्दप्रसाद वर्मा और बाबू गोपालराम गहमरी आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। प० श्रीधर पाठकजीकी स्थिति डाँवाडोल हो गई थी। द्विवेदीजी एवं गुप्तजी—दोनों उनके मित्र थे और दोनोंसे ही वे इस साहित्यिक झगड़ेको लेकर अपने व्यवहारमें भेद नहीं आने देना चाहते थे। द्विवेदीजीने, पाठकजीकी सम्मति, भी जो उनके पूर्व प्रकाशित लेखके अर्द्धानुमोदनमें थी, अपने दूसरे लेखमें छाप दी थी। इसपर पाठकजीने गुप्तजीको लिखा था—"द्विवेदीजीकी आलोचना इतनी कठोर नहीं होनी चाहिये थी। द्विवेदीजीने आत्मारामको मेरा एक चेला बखाना है—न मालूम उनका क्या प्रयोजन है। मैंने उनका इसपर ध्यान दिलाया है—मुझे शायद वह झगड़ेमें शामिल करना चाहते हैं।" गुप्तजीने पाठकजी का यह पत्रांश भी 'भाषादानीकी सनदा ?' शीर्षक आत्मारामीय विनोदपूर्ण अपने एक लेखमें प्रकाशित कर दिया था। वह लेख उनका उस वर्ष भारतमित्रके होलीके अङ्कमें प्रकाशित हुआ था।

---

* वैश्योपकारक भाग २ संख्या १२।

हिन्दी-संसारमें गुप्त-द्विवेदी-साहित्यिक विवादके परिणाममें पक्ष और विपक्षकी सङ्कीर्ण भावनाने अन्तमें रसमें विरसता ला दी और एक सर्वोपयोगी व्याकरण बननेकी महत्त्वपूर्ण बात वहीं दब गई। इस कलहयुक्त झगड़ेने "राड़का घर हँसी"—कहावतको चरितार्थ कर दिया था। गुप्तजीके जीवनकी वह अन्तिम साहित्यिक मुठभेड़ थी।

इतने लड़-झगड़ कर भी गुप्तजीने अपनी ओरसे उस साहित्यिक शास्त्रार्थको व्यक्तिगत वैमनस्यका आधार नहीं बनाया। उसी सन् १९०६ के अक्टूबरमें जब कि 'भाषा और व्याकरण' के नाम पर धधकती हुई हुई विवादकी आग शान्त हो चुकी थी, गुप्तजी ब्रज-यात्राके लिये कलकत्तेसे जाते हुए अपने स्नेहभाजन मित्र "जमाना"—सम्पादक मुन्शी दयानारायण निगमजीके आग्रहवश कानपुर ठहरे। उनकी अगुआनीके लिये स्टेशन पर निगम साहब श्रीनवाबरायजी सहित पहुँचे थे। उस समय पण्डित महावीरप्रसादजीसे मिलनेके अवसरको उन्होंने हाथसे न जाने दिया। गुप्तजी अपनी आस्तिकताके कारण ब्राह्मण विद्वानोंके प्रति पूज्य-बुद्धि रखते थे। वे अपने निजी पत्रोंमें भी उनके लिये "पूज्यवर प्रणाम" आदि लिखकर आदर प्रकट करते थे। उनके स्थान पर कोई विशिष्ट ब्राह्मण पण्डित आता या वे किसीके स्थान पर जाते तो चरण-स्पर्श पूर्वक प्रणाम करनेका उनका नियम था। द्विवेदीजीके स्थान पर पहुँचकर भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार उन्होंने चरण-छूकर प्रणाम किया। गुप्तजीके लिये इसमें कोई नवीनता न थी। द्विवेदीजी उनके मित्र थे,—कोई अज्ञात व्यक्ति न थे, किन्तु आश्चर्य है कि पं० केदारनाथ पाठकजीने "द्विवेदी अभिनन्दन ग्रन्थ" में प्रकाशित अपने लेखमें 'द्विवेदी-गुप्त-मिलन' की इस साधारण घटना को स्वकल्पित प्रश्नोत्तरात्मक एक विचित्र औपन्यासिक रूप दे दिया। यदि आदरणीय द्विवेदीजीका ध्यान इस लेखकी ओर आकर्षित होता तो

हमारा विश्वास है कि वे उक्त लेखको पढ़कर प्रसन्न नहीं होते। स्वर्गीय गुप्तजीके लिये अपने एक प्रशंसकके द्वारा प्रयुक्त अयुक्त कल्पनाप्रसूत शब्दोंको वे कदापि पसन्द नहीं करते। जैसा कि श्री० राय कृष्णदासजीने अपनी 'श्रद्धाञ्जलि'में लिखा है, गुप्तजीको द्विवेदीजी सबसे अच्छी हिन्दी लिखनेवाला लेखक मानते थे।

भारतमित्र, राजनतिक-पत्र था। गुप्तजीने उसमें नयी उमङ्ग और नये उत्साहका सञ्चार किया। राष्ट्रिय महासभा—(कांग्रेस) की स्थापनाके समय उनका पत्रकार-जीवन आरम्भ हुआ था। लार्ड डफरिन, लैन्सडाउन, एलगिन, (द्वितीय), कर्जन और मिंटो—तकके बड़े लाटोंका शासन-समय उन्होंने अपनी आंखों देखा था। देश-वासियोंकी अभाव-अभियोगमूलक कष्ट-कथाओं, मांगों और आकांक्षाओंको निर्भीकताके साथ प्रकट करनेकी निपुणतामें वे अद्वितीय थे। देश-वासियोंके स्वाभिमान एवं स्वदेशानुरागको जगाकर उनमें देश भक्तिकी भावना भरनेके महत्कार्यमें गुप्तजीकी लेखनीका चमत्कार अतुलनीय है। उस समयके लिखे उनके लेखों और कविताओंमें भारतके स्वाधीनता-प्राप्ति-आन्दोलनके प्रारम्भिक कालका इतिहास सन्निविष्ट है। यह कहा जा सकता है कि, वर्तमान युगमें भी गुप्तजीसे बढ़कर तीखी और मर्मभेदी राजनीतिक आलोचना विरले ही किसी पत्रकारने की होगी।

देश-भक्तिका निदर्शन

सन् १८९० ई० में जिन दिनों गुप्तजी हिन्दीके प्रथम और एक मात्र दैनिक पत्र 'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय विभागमें थे उन्होने "सर सैयद का बुढ़ापा" शीर्षक एक लम्बी कविता लिखी थी। पश्चिमोत्तर प्रदेशके उस समयके छोटे लाट कालविन साहबने कांग्रेसके प्रति अपना विरोध-

भाव प्रकट किया था। इसलिये सर सैयद अहमद खाँ भी समयके धनी-धोरी अंग्रेजोंको खुश करनेके लिये कांग्रेसके विरोधी बनकर 'जी हुजूरी' दलमें शामिल हो गये थे। उसी झोंकमें सैयद साहब हिन्दुओंको गाली दे बैठते थे। उस समय सर सैयदके कांग्रेस-विरोधी भाव और मन्तव्य पर देशभक्त गुप्तजीने उक्त कविता लिखी थी। वह कविता गुप्तजीके राष्ट्रिय विचारोंका दर्पण कही जा सकती है। वह एक कविता ही देश और देशवासियोंके प्रति गुप्तजीके हृदयकी अनुभूतिकी साक्षीके लिये पर्याप्त है। उसमें चाटुकार देशद्रोहियोंको धिक्कार और हृदयहीन धनिकोंको अपने गरीब—देशभाइयोंके प्रति उपेक्षा-भावके लिये खुली फटकार बतायी गयी है। इसके अतिरिक्त अन्नोत्पादक किसानोंकी दयनीय दशाके साथ गोरोंके अत्याचारका बड़ी मार्मिकताके साथ वर्णन किया गया है; जिसको पढ़कर आज भी सहृदयोंकी आँखोंसे बरबस सहानुभूतिके रूपमें दो बूँद आँसू टपक पड़ेंगे। विशेषता यह है कि गुप्तजीकी अबसे प्रायः ६० वर्ष पहलेकी वह रचना आज भी नयी मालूम देती है। गुप्तजी रचित देव-देवियोंके स्तुति-स्तोत्रादिमें भी उनकी देश-भक्तिका सम्पुट विद्यमान है।

लार्ड कर्जनकी करतूत दिखानेको गुप्तजीने शिवशंभूके चिट्ठोंके सिवाय कितने ही लेख और कविताएँ लिखीं। 'कर्जन शाही' शीर्षक अपने लेखमें उन्होंने लार्ड कर्जनके शासन-कालका सिंहावलोकन करते हुए कहा है:—

"अहंकार, आत्मश्लाघा, जिद और गाल बजाईमें लार्ड कर्जन अपने सानी आप निकले। जबसे अंगरेजी राज्य आरम्भ हुआ है, तबसे इन गुणोंमें उनकी बराबरी करनेवाला एक भी बड़ा लाट इस देशमें नहीं आया। पिछले बड़े लाटोंमें लार्ड लिटनके हाथसे इस देशके लोग बहुत तंग हुए थे। लार्ड कर्जनने लिटनकी सब बदनामी धो दी। अपनेसे पहलेके सब लाटोंको उन्होंने भला कहला दिया

उनकी कार्रवाईका आरम्भ बङ्ग-देशसे हुआ और बङ्ग-देश ही में उसका अन्त हुआ। उनका पहला काम कलकत्तेकी म्युनसिपिल्टीकी स्वाधीनता छीनना है और अन्तिम बङ्ग देशके टुकड़े कर डालना। यह अन्तिम अनिष्ट श्रीमान्ने ऐसे समयमें किया जब कि वह इस देशके निवासियोंकी आँखोंमें श्रीहत हो चुके थे। अर्थात् अपनी नोकरी चली जानेकी खबर पा चुके थे। इसीसे लोग चिल्ला उठे कि ओह! इस देशसे आपको इतना द्वेष है कि चलते-चलते भी एक और चरका दे चले।"
इसके बाद गुप्तजीने लार्ड कर्जनके भारतहित विरोधी मुख्य-मुख्य कामोंको एक-एक करके गिनाया और देशवासियोंको उनके आत्म-गौरवका ध्यान दिलाया।

* * * *

बंगालके टुकड़े हो जानेपर पूर्वी बंगालके छोटे लाट बनकर फुलर साहबने अपने कुकृत्योंको पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था। इसके सम्बन्धमें गुप्तजी लिखते हैं:—

"बन्देमातरम्" कहनेके कारण फुलर साहबने प्रान्तके स्कूलोंके बालकों पर जो कुछ अत्याचार कराये, अंगरेजी राजके इतिहासमें उसकी कोई नजीर नहीं मिलती। लड़कोंपर जुर्माना हुआ, वह पिटवाये गये, जेल भिजवाये गये, वजीफे बन्द किये गये। यहाँ तक कि वह स्कूलोंसे भी निकाले गये, जिन मास्टरोंने उनका पक्ष लिया उनको भी निकलना पड़ा और किसी-किसीको जेल-जुरमानेका भी सामना करना पड़ा। कितने ही स्कूल सरकारी अनुग्रहसे वञ्चित हुए।"

यह दशा थी उस समय बंगाल की। वंगभङ्गके दुःखसे क्षुब्ध बंगालियोंको उनके लिये शाइस्ताखांका जमाना फिर ला देनेकी सर फुलरने धमकी दी थी। उसीके जवाबमें गुप्तजीने 'शाइस्ताखांका खत सर फुलरके नाम' लिखकर अपने ऐतिहासिक ज्ञान और राजनीतिज्ञताका परिचय दिया था और परिचय दिया था अपनी निर्भीकताका।

सन् १९०५ में जापानने रूसको पराजित कर संसारको चकित कर दिया था। रूसकी यह पराजय पश्चिमी देशोंके लिये जिस प्रकार एक महान् चुनौती थी, उसी प्रकार एशियाके देशोंके लिये आशाका संदेश। उस समय कितने ही भारतवासी जापानका सहारा लेकर राजनीतिक लाभ उठानेकी कल्पना करने लगे थे। किन्तु राजनीतिज्ञ गुप्तजीने जापानसे भारतका कोई राजनीतिक उपकार होनेकी संभावना नहीं देखी और इसलिये उन्होंने भारतवासियोंको ऐसे किसी मोहमें न फँसकर अपने उद्धारका प्रयत्न अपने आप जारी रखनेके लिये सचेत किया था। गुप्तजीने इस प्रसङ्गमें लिखा था :—

"कोई पराधीन जाति अपनी चेष्टा विना, खाली दूसरेकी मददसे कभी स्वाधीन नहीं हो सकती। जापान बृटिश गवर्नमेंटका मित्र है। सो जो लोग भारतका जापानके हाथमें चले जानेका स्वप्न देख रहे हैं, उन्हें निश्चिन्त हो जाना चाहिये। हाँ, जापानियोंसे भारतवासियोंको शिल्प आदिकी शिक्षा अपेक्षाकृत सहजमें मिल सकती है और शिल्प आदि सीखकर भारतवासी अपनी आर्थिक दशा सुधार सकते हैं, इतना ही कल्याण उनका जापानसे हो सकता है।"

सन् १९०६ में कांग्रेसका महाधिवेशन कलकत्तेमें भारतीय राजनीतिके वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजीकी अध्यक्षतामें देशवासियोंके पूर्ण सहयोग एवं अभूतपूर्व उत्साहसे सम्पन्न हुआ था। फल-स्वरूप सर्वत्र जागृतिकी लहर फैल गई। अध्यक्ष महोदयके प्रमाणपूरित और युक्तसम्मत भाषण पर भारत-विरोधी एंग्लो इंडियन समाचार पत्रोंको भी विपरीत बोलनेका साहस नहीं हुआ। किन्तु विलायतका टाइम्स उस समय कांग्रेसकी सफलता और बढ़ते हुए उसके प्रभावसे बौखला उठा था। इसपर गुप्तजीने लिखा था—

"……इस बार विलायतके प्रधान पत्र 'टाइम्स' को बड़ी मिरचें लगी हैं। उसने बड़ी गीदड़भबकी दिखाई है। उसकी समझमें हिन्दुस्थानियोंको स्वाधीनता या

पड़ है। इससे पहले भी इस देशमें राजनीतिक आन्दोलन होता था, पर वह अलग अलग होता था; सब प्रान्तोंके लोग मिलकर नहीं करते थे। कांग्रेसमें सब प्रान्तोंके लोग एकत्र होने लगे और यह समारोह भी देशके सब प्रधान-प्रधान नगरोंमें पारी-पारीसे होने लगा। आरंभमें पांच छः साल तक यह बड़े उत्साहसे हुआ, पर पीछे कुछ ढीला पड़ गया। कांग्रेसका उत्सव बराबर होता था, पर बहुत कुछ उत्साहसे नहीं, एक प्रकार पुरानी रीति पूरी करदी जाती थी।

सन् १९०४ ईस्वीमें कांग्रेसका बीसवां उत्सव बम्बईमें हुआ और उसमें सर हेनरी काटन सभापति हुए। उनकी वक्तृताने दबे हुए उत्साहको फिर चमकाया और भारतवासियोंको बहुत हिम्मत दिलाई। उन्होंने यह बात बताई कि भारतवासी जो कुछ कांग्रेस द्वारा मांग रहे हैं वह बहुत उचित है और उसके पानेके योग्य यह ठीक समय है। अंगरेज सरकारको उचित है कि, बहुत जल्द उनकी बातोंकी ओर ध्यान दे। काटन साहबके इन वाक्योंसे बहुत कुछ उत्साह बढ़ा और भारतवासियोंके रगोंमें फिरसे हिम्मतका खून दौड़ा। इसके साथ ही उत्साह चमकानेके लिये दो एक कारवाइयां और भी हुईं, जिनमेंसे अधिक उस समयके बड़े लाट लार्ड कर्जनकी उठाई हुई थीं। उक्त बड़े लाटने घोर अकालमें दिल्ली दरबार किया और दूसरी कई एक ऐसी बातें कीं, जिनसे भारतवासियोंका बड़ा भारी अपमान और उनपर बड़ा भारी अन्याय हुआ। उनमेंसे एक तो यह थीं कि, अमुक विभागमें भारतवासियोंको इतने रुपयेसे अधिककी नौकरियां नहीं मिलेंगी। जब इन अविचारों पर आन्दोलन हुआ तो लार्ड कर्जनने सरकारी भेदोंको न खोलनेके लिये एक कानून बना डाला। क्योंकि आपने यह सब काम चुपके-चुपके करने चाहे थे और उनका भंडा फूट गया।

राजनीतिमें उसके जन्म-कालसे ही वे दिलचस्पी ले रहे थे। वह लेख उनका सुन्दर संस्मरण है। लेखका शीर्षक है "दो दल" और वह यों है:—

"राजनीति सम्बन्धी आन्दोलन करनेवालोंके इस समय भारतवर्षमें दो दल होगये हैं। इसमें जो नया और दूसरा दल है, वह कोई साल सवा सालहीसे उत्पन्न हुआ है, पुराना दल वही है, जो आरंभसे इस काममें लगा हुआ है। पुराने दलका नाम अगरेजीमें "माडरेट" पड़ा है और नयेका एक्स्ट्रीमिस्ट।" हिन्दीवालोंने इनका नाम नर्म और गर्म रखा है और उर्दूवालोंने मोतदिल और इन्तिहाई। पर हम इनको पुराना दल और नया दलही कहना चाहते हैं।

पुराना दल चाहता है कि, अगरेजी सरकार भारतवासियोंके साथ भी वैसा ही न्याय करे जैसा कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफरीकाकी कालोनियोंके साथ करती है। भारतवर्षसे काले गोरेका भेद हटाया जाय, हिन्दुस्थानियोंको उसी प्रकार सब पद दिये जायँ जिस प्रकार अँगरेजोंको दिये जाते हैं। भारतीय प्रजाके शिक्षित लोगोंकी सलाह मानकर सब बातें की जायँ और भारतकी प्रजाको भारतके शासनमें यथेष्ट अधिकार दिया जाय। इंडियन नेशनल कांग्रेसमें जो बातें मांगी जाती हैं, वही पुराना दल मांगता है। नया दल चाहता है कि, भारतवर्षमें भारतवासियोंहीका पूरा अधिकार हो, अँगरेजोंका इस देशसे कुछ सम्बन्ध न रहे। यदि अगरेज इस देशमें रहें तो यहांके निवासियोंके बराबर—उनपर वह बड़प्पन किसी प्रकार न जता सकें। दोनों दलोंका दावा एकही-सा है और एक बातमें दोनों खूब मिलते हैं अर्थात् स्वराज्य पुराना दल भी चाहता है और नया दल भी। पर स्वराज्य प्राप्त करनेके उपाय दोनों दलोंने अलग-अलग सोच रखे हैं। वह क्या उपाय बताते हैं, यह हम आगे बतावेंगे।

हमारी समझमें यह दोनों ही दल नये हैं। हम पहले यह दिखाना चाहते हैं कि, इनकी उत्पत्ति क्योंकर हुई। गत दिसम्बर* मासके अन्तमें कलकत्तेमें जो कांग्रेसका उत्सव हुआ, वह बाईसवां था। वह कांग्रेस ही राजनीतिक आन्दोलनकी

* दिसम्बर सन् १९०६ ई०।

स्वराज्यका नाम ही मुँहसे न निकालना चाहिये। वह इस बातसे बहुत घबराया है कि भारतवासी भी वैसी ही स्वाधीनता चाहते हैं, जैसी अंगरेजी कालोनियोंको प्राप्त है। वह डराता है कि भारतवासी ऐसी बात मुँहसे न निकालें, क्योंकि अंगरेजोंने भारतको तलवारसे लिया है और तलवार ही से उसको अपने शासनमें रखेंगे। पर हम कहते हैं कि यह सफेद झूठ है कि अंगरेजोंने भारतको तलवारसे जीता है—वरञ्च भारतवासियोंकी तलवारने स्वयं यह देश फतह करके अंगरेजोंके सुपुर्द कर दिया था। 'टाइम्स' क्लाइवके समयकी बात याद करे, उसीने भारतमें अंगरेजी राज्यकी नींव डाली है। उसकी सेना चन्दा साहब और फरांसीसियोंसे घिर गई थी और रसद निबड़ गई थी तो मालूम है, उसके हिन्दुस्थानी सिपाहियोंने क्या कहा था! यह कहा था सुनिये,—'साहब! गोरोंको भात खानेको दीजिये, हमलोग मांड पीकर गुजारा कर लेंगे।' टाइम्सको जानना चाहिये कि इस देशके वीरोंने तुम्हारे गोरोंको चावल देकर और आप उसका मांड पीकर तलवार बजाई है और यह देश तुम्हारे लिये जीत दिया है। इसी प्रकार हिन्दुस्थानियोंकी मददसे ही अंगरेजोंने इस देशमें अपना अधिकार फैलाया है। इस समय देखिये—हिन्दुस्थानी फौज तुम्हारे लिये माल्टा जाती है, मिश्र जाती है, सुमालीलैण्ड जाती है, चीन जाती है और विलायत जाकर तुम्हारी शान-शौकत बढ़ाती है। तुम्हारे लिये अफरीदियोंसे लड़ती है, चित्राल जीत देती है। तुम्हारे लिये तिब्बतका रास्ता साफ कर देती है और इतने पर भी तुम कहते हो कि यह मुल्क तलवारसे लिया गया है! कितनी बड़ी लज्जाकी बात है? जिन हिन्दुस्थानियोंने अपना खून पानीकी तरह बहा दिया है, उनकी बात सुननेसे तुम्हें घृणा होती है? कितनी बड़ी कृतघ्नता है? *

राजनीतिक क्षेत्रमें गर्म दलका जन्म गुप्तजीके जीवन-कालमें ही हो चुका था। नर्म और गर्म दलोंका पार्थक्य निरूपण करते हुए गुप्तजी भारतीय राजनीतिक आन्दोलनका इतिहास लिख गये हैं। वस्तुतः देशकी

* भारतमित्र, सन् १९०६ ई०।

राजनीतिमें उसके जन्म-कालसे ही वे दिलचस्पी ले रहे थे। वह लेख उनका सुन्दर संस्मरण है। लेखका शीर्षक है "दो दल" और वह यों है:—

"राजनीति सम्बन्धी आन्दोलन करनेवालोंके इस समय भारतवर्षमें दो दल होगये हैं। इसमें जो नया और दूसरा दल है, यह कोई साल सवा सालहीसे उत्पन्न हुआ है, पुराना दल वही है, जो आरमसे इस काममें लगा हुआ है। पुराने दलका नाम अंगरेजीमें "माडरेट" पड़ा है और नयेका एक्स्ट्रीमिस्ट।" हिन्दीवालोंने इनका नाम नर्म और गर्म रखा है और उर्दूवालोंने मोनदिल और इन्तिहाई। पर हम इनको पुराना दल और नया दलही कहना चाहते हैं।

पुराना दल चाहता है कि, अंगरेजी सरकार भारतवासियोंके साथ भी वैसा ही न्याय करे जैसा कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफरीकाकी कालोनियोंके साथ करती है। भारतवर्षसे काले गोरेका भेद हटाया जाय, हिन्दुस्थानियोंको उसी प्रकार सब पद दिये जायँ जिस प्रकार अँगरेजोंको दिये जाते हैं। भारतीय प्रजाके शिक्षित लोगोंकी सलाह मानकर सब बातें की जायँ और भारतकी प्रजाको भारतके शासनमें यथेष्ट अधिकार दिया जाय। इंडियन नेशनल कांग्रेसमें जो बातें मांगी जाती हैं, वही पुराना दल मांगता है। नया दल चाहता है कि, भारतवर्षमें भारतवासियोंहीका पूरा अधिकार हो, अँगरेजोंका इस देशसे कुछ सम्बन्ध न रहे। यदि अंगरेज इस देशमें रहें तो यहांके निवासियोंके बराबर—उनपर वह बड़प्पन किसी प्रकार न जता सकें। दोनों दलोंका दावा एकही-सा है और एक बातमें दोनों खूब मिलते हैं अर्थात् स्वराज्य पुराना दल भी चाहता है और नया दल भी। पर स्वराज्य प्राप्त करनेके उपाय दोनों दलोंने अलग-अलग सोच रखे हैं। वह क्या उपाय बताते हैं, यह हम आगे बतावेंगे।

हमारी समझमें यह दोनों ही दल नये हैं। हम पहले यह दिखाना चाहते हैं कि, इनकी उत्पत्ति क्योंकर हुई। गत दिसम्बर* मासके अन्तमें कलकत्तेमें जो कांग्रेसका उत्सव हुआ, वह बाईसवां था। वह कांग्रेस ही राजनीतिक आन्दोलनकी

* दिसम्बर सन् १९०६ ई०।

जड़ है। इससे पहले भी इस देशमें राजनीतिक आन्दोलन होता था, पर वह अलग-अलग होता था; सब प्रान्तोंके लोग मिलकर नहीं करते थे। कांग्रेसमें सब प्रान्तोंके लोग एकत्र होने लगे और यह समारोह भी देशके सब प्रधान-प्रधान नगरोंमें बारी-बारीसे होने लगा। आरंभमें पाँच छः साल तक यह बड़े उत्साहसे हुआ, पर पीछे कुछ ढीला पड़ गया। कांग्रेसका उत्सव बराबर होता था, पर बहुत उत्साहसे नहीं, एक प्रकार पुरानी रीति पूरी करदी जाती थी।

सन् १९०४ ईस्वीमें कांग्रेसका बीसवाँ उत्सव बम्बईमें हुआ और उसमें मि० काटन सभापति हुए। उनकी वक्तृताने दबे हुए उत्साहको फिर चमकाया और भारतवासियोंको बहुत हिम्मत दिलाई। उन्होंने यह बात बताई कि भारतवासी जो कुछ कांग्रेस द्वारा मांग रहे हैं वह बहुत उचित है और उसके पानेके योग्य वह इस समय हैं। अगरेज सरकारको उचित है कि, बहुत जल्द उनकी बातोंकी ओर ध्यान दे। काटन साहबके इन वाक्योंसे बहुत कुछ उत्साह बढ़ा और भारतवासियोंकी रगोंमें फिरसे हिम्मतका खून दौड़ा। इसके साथ ही उत्साह चमकानेके लिये कई एक काररवाइयां और भी हुईं, जिनमेंसे अधिक उस समयके बड़े लाट लार्ड कर्जनकी उठाई हुई थीं। उक्त बड़े लाटने घोर अकालमें दिल्ली दरबार किया और दूसरी कई एक ऐसी बातें कीं, जिनसे भारतवासियोंका बड़ा भारी अपमान और उनपर बड़ा भारी अन्याय हुआ। उनमेंसे एक तो यह थीं कि, अमुक विभागमें भारतवासियोंको इतने रुपयेसे अधिककी नौकरियाँ नहीं मिलेंगी। जब इन अविचारों पर आन्दोलन हुआ तो लार्ड कर्जनने सरकारी भेदोंको न खोलनेके लिये एक कानून बना डाला। क्योंकि, आपने यह सब काम चुपके-चुपके करने चाहे थे और उनका भंडा फूट गया।

इसके सिवा एक और बहुत बुरा काम करनेकी लार्ड कर्जन चेष्टा कर रहे थे। वह चुपके-चुपके बंगालके दो टुकड़े कर डालनेकी बात सोच रहे थे। इस बातको वह बड़े अन्यायसे छिपाते रहे, प्रजाके पूछनेपर कुछ उत्तर नहीं देते थे। काटन साहबने बम्बई-से कलकत्ते आकर टौन हालमें लार्ड कर्जनके ऐसे खराब इरादेके विरुद्ध एक व्याख्यान

दिया, जो बड़ी धूमका व्याख्यान था। पर फल कुछ न हुआ, अन्तमें स्पष्ट हो गया कि, लार्ड कर्जन बङ्गालके दो टुकड़े करना चाहते हैं।

इतने अन्यायके काम करके भी लार्ड कर्जनका मन नहीं भरा था। उन्होंने इससे भी बढ़कर अन्याय करना चाहा। अपने हाथोंसे वह भारतवासियोंकी बहुत कुछ हानि कर चुके थे। इस बार मुँहसे भी काम लिया। इस देशकी शिक्षा-पद्धतिको वह इससे पहले बिगाड़ चुके थे। अब उन्होंने यह और किया कि कलकत्ता विश्व-विद्यालय-के सिनेट हालमें कानवोकेशनका उत्सव करते हुए भारतवासियोंको झूठा और बेईमान कहा और उनके पुराने साहित्य पर बड़ी चोटें कीं। उसका फल यह हुआ कि, उस समय तक जो भारतवासी अंगरेजी सरकार और अँगरेजी अफसरोंका बड़ा अदब करते चले आते थे, वह सब उठ गया। समाचार-पत्रोंमें लार्ड कर्जनके इन अविचारोंकी बड़ी कड़ी आलोचना हुई और बङ्गालके शिक्षित लोगोंने कलकत्तेके टौन हालमें एकत्र होकर लार्ड कर्जनके कार्मोकी खूब कड़ी आलोचना की। भारतवर्षमें वह पहला दिन था कि, इस देशके एक गवर्नर जनरलको प्रजाकी ओरसे झाड़ सुननी पड़ी। इससे पहले ऐसा नहीं हुआ था। कलकत्तेकी भाँति बम्बई आदि दूसरे प्रान्तोंमें भी लार्ड कर्जनको झाड़ बताई गई थी।

इसके पीछे ७ अगस्त सन् १९०५ को बंगालके शिक्षित लोगोंने कलकत्तेके टौन हालमें एक और सभा की। यह भी भारतके अँगरेजी राज्यके इतिहासमें नई घटना थी। लोगोंने जब देखा कि विलायतमें भी कुछ सुनाई नहीं होती, लार्ड कर्जन नहीं मानते तो उन्होंने मर्माहत होकर निश्चय किया कि यदि बङ्गभङ्ग होगा तो हम अंगरेजी चीजें लेना बन्द कर देंगे। जन्द-जन्द इसके लिये और कई एक बड़े-बड़े जलसे हुए। पर फल कुछ न हुआ। बीचमें इतना भी हुआ कि लार्ड कर्जन, लार्ड किचनरसे लड़कर पद त्याग बैठे और उनका पद त्यागना स्वीकार भी हो गया। इतनी बेइज्जती पर भी उनका इतना अधिकार बाकी रह गया कि बङ्गालके दो टुकड़े करते जायँगे। उन्होंने बंगालके दो टुकड़े कर दिये। १६ अक्टूबर सन् १९०५ इस घोर अन्यायसे भरे हुए कार्यके होनेका दिन था, बङ्गालियोंकी दशा उस दिन पागलोंकी सी थी, वह

निराहार शोकमें विह्वल हुए, दिनभर घूमते रहे और वह दिन उन्होंने एक महाशोकका दिन स्थिर किया।

अब इस बातकी चेष्टा होने लगी कि बंगाली अंगरेजी चीजोंका लेना एकदम बन्द करें। बुरी हों या भली अपने देश ही की चीजें काममें लाई जायँ और अंगरेजी माल बिल्कुल न लिया जाय। बंगाली लड़कोंके झुंड 'वन्दे मातरम्' आदि जातीय गीत गाते हुए बंगदेशके सब स्थानोंमें, गली-कूचे बाजारोंमें घूमने लगे और लोगोंसे हाथ-पांव जोड़के विलायती माल खरीदनेकी आदत छुड़ाने लगे। देशी करघे जारी हुए। देशी चीजोंकी ओर लोगोंका ध्यान हुआ। अखबारोंने यह समाचार हिन्दुस्थानके और और प्रान्तोंमें भी पहुंचा दिया और वहां भी इसकी नकल होने लगी। कलकत्तेमें विदेशी मालके रोकनेवाले लड़कोंके साथ पुलिसकी मार-पीट हुई। बंगालमें अन्यत्र भी ऐसा बहुत जगह हुआ। मुकदमे होने लगे, लड़कोंको जेल जुरमानेकी सजा होने लगी। इतनेमें लार्ड कर्जन यहांसे चल दिये और मिन्टो आ गये। प्रिंस आफ वेल्स भी उस समय भारतवर्षमें ही घूम रहे थे। पूर्व बंगालमें फुलरशाही आरंभ हुई और पश्चिम बंगालमें फ्रेजर साहबकी अमलदारीमें भी कुछ-कुछ उसकी नकल होने लगी। मैदानोंमें सभाका होना बन्द किया गया, लड़कोंका झुण्ड निकलना और उनका 'वन्दे मातरम्' कहना रोका गया। स्कूलोंके लड़कोंपर अत्याचार होने लगा, वह स्कूलसे निकाले जाने लगे। यहां तक कि बरीसालकी कान्फरेंस, पुलिसने लाठीकी जोरसे बन्द की, लोगोंको मारा-पीटा और सुरेन्द्र बाबूको पकड़कर उनपर जुरमाना ठोका। यहां तक सब एक थे—एक ही दल था, दो दल नहीं हुए थे; पर इसके बीच ही में दो दल होनेकी नींव पड़ गई थी।

नये दलकी नींव डालनेवाले हम श्रीयुक्त श्यामजी कृष्ण वर्माको समझते हैं। जब सन् १९०४ की कांग्रेस बम्बईमें हुई तो मि० काटनके साथ वेडरबर्न साहब भी विलायतसे बम्बई आये थे। विलायतमें वेडरबर्न साहब ही कांग्रेस कमिटीके प्रधान हैं। उनके नाम एक छपी चिट्ठी वर्मा महोदयने जारी की थी, जिसमें लिखा था कि हिन्दुस्थानी होमरूल चाहते हैं। अर्थात् जो आयरलैंडवाले चाहते हैं, वही भारतवासी

भी चाहते हैं—यानी स्वराज्य चाहते हैं। उस समय इनका कहना एक बहुत ही लम्बी छलांग भरना समझा गया था। उनकी चिट्ठीपर कुछ ध्यान नहीं दिया गया। बहुत लोगोंने डरके मारे उस चिट्ठीकी निन्दा भी की। पर उन्होंने विलायतसे एक मासिक पत्र भी निकाला और अपनी बातको छोड़ा नहीं। यहाँ तक कि भारत वासियोंके कानोंमें उनकी आवाज कुछ-कुछ पहुंची। लाला लाजपतरायने विलायत जाकर और उनके यहां उतरकर स्वराज्य-मन्त्र सीखा और बगालमें बाबू विपिनचन्द्र पालने उसकी प्रतिध्वनि गुंजाई और पीछे मालूम हुआ कि तिलक महोदय भी स्वराज्यके पक्षपाती हैं। आरम्भमें नये दलकी आवाज बहुत ही धीमी थी पर अब उसमें बहुत बल आगया है।"*

सन् १९०७ ई० में जान मार्लेके सुधारोंकी घोषणा होनेपर गुप्तजीने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की थी—"आज नहीं कोई एक वर्षसे मार्ले साहब भारतके शासन-सुधारका राग अलाप रहे थे, पर क्या किया ? पहाड़ खोदकर जरासी चुहिया निकाली है। आपकी कुछ पेचदार बातोंका तत्त्व इतना ही है कि बड़े लाटकी तथा प्रान्तीय कौंसिलोंमें जमींदार और मुसल्मान कुछ और बढ़ाये जायँ।' जमीदार और मुसल्मान तो अब भी कौंसिलमें बैठे हैं और पहले भी बैठ चुके हैं पर यह कभी न देखा कि एकने भी किसी उचित या अनुचित सरकारी कामपर चूं भी की हो, आलोचनाकी कौन कहे ? केवल काठके पुतलोंकी भांति यह लोग बैठे रहते हैं और अफसरोंकी 'हां' में 'हां' मिलाते हैं। क्या सरकार ऐसा एक भी मेम्बर बता सकती है, जिसकी आलोचना या सलाहसे उसे कुछ लाभ पहुंचा हो ? परामर्श सभाओंकी बात लीजिये। यह सब राजकुमारोंकी सेनाकी भांति सरकारी शोभा बढ़ानेके लिये बनाई गई है। इनमें भी राजा-महाराजा, जमींदार आदि बैठेंगे। सरकार कटे-छटे प्रस्ताव उनको सुना देगी। सब गरदन झुकाके उसे सुन लेंगे और 'हां' कर देंगे। यदि किसीने नहीं की तो उसकी बक-बककी कोई खयाल न

* भारतमित्र, सन् १९०७।

करेगा, क्योंकि सरकार उनकी बात मान लेनेको बाध्य नहीं है और न इन सभाओंको किसी प्रकारका अधिकार है।" *

मुसलमानोंके सदस्य निर्वाचनकी जो एक खास व्यवस्था की गई थी, उसको गुप्तजीने हिन्दुओं और अन्य जातियोंके साथ अन्यायका बरताव बताया था।

अपने सुधारोंमें मार्ली साहबने भारतीय कौंसिलोंके अतिरिक्त अपनी कौंसिलमें भी दो हिन्दुस्थानी मेम्बर बढ़ानेका कौशल प्रकट किया था। इसपर पार्लियामेंटमें सर हेनरी काटन और मि० ओग्राडी आदिने मार्ली साहबके विचारोंकी कड़ी आलोचना की थी। ओग्राडी साहबने कहा था—"दो हिन्दुस्थानी मेम्बर बढ़ाये जायँगे, पर वे पक्के मेम्बर नहीं होंगे। स्टेट सेक्रेटरी जब चाहेंगे उन्हें निकाल देंगे। भारत-वासी भले ही इन सुधारोंसे खुश हो लें, पर मेरी रायमें तो इनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता और न सुधारकी बहुत बड़ी आशा है। मान लीजिये कि कर्मचारी दलके विरुद्ध कोई बात हिन्दुस्थानी मेम्बरोंने पेश की। पेंशन पाये हुए कर्मचारी उसी दम उसका विरोध करके प्रस्ताव खारिज करा देंगे। तब हिन्दुस्थानी मेम्बर क्या करेंगे? कुछ नहीं—काठके पुतलोंकी भाँति बैठे-बैठे सबकी सुनेंगे, पर अपनी कुछ न कह सकेंगे।"

ओग्राडी साहबकी उक्त रायका अवतरण देकर गुप्तजीने अन्तमें कहा था—"मि० ओग्राडी इस बातकी अभी चिन्ता न करें कि हिन्दुस्थानी मेम्बरोंकी बात कोई न मानेगा। मार्ली साहबने ऐसे हिन्दुस्तानी मेम्बर ही नहीं लिये जो न माननेवाली बात कहें। ऐसे मेम्बर लिये हैं, जो सदा हाथ बाँधे 'हाँ हुजूर' कहते-कहते उनके कदमोंमें जान तक दे देंगे। सिविलियन मि०

* भारतमित्र—'शासन-सुधार' शीर्षक लेख सन् १९०७।

के० जी० गुप्त और सैयद हुसेन बिलग्रामी यही दो सज्जन भारतके नेता मानकर कौंसिलमें बिठाये गये हैं, पर ऐसे नेता हैं कि जिन्हें कोई भारतमें जानता भी नहीं। के० जी० गुप्तका नियोग तो खैर, समझमें आता है कि बङ्गालमें सीनियर सिवीलियन होनेके कारण छोटे लाट बननेका उनका हक है, सरकार लाटगिरी एक "काले" को देना नहीं चाहती, इससे उन्हें विलायत भेज दिया, पर यह बिलग्रामी साहब कहांके नेता हैं और कौंसिलमें यह किस मर्जकी दवा होंगे? शासन या राजनीतिमें उनका क्या अनुभव है, यह आज तक किसीने न सुना। ऐसे ही नेता क्या भारतीय प्रजाकी वकालत करेंगे?"

भारतवासियोंकी उत्कट देशभक्तिकी बाढ़को रोकनेके लिये क्रुद्ध होकर अंगरेज सरकार, जिसको लोकमान्य तिलकने 'नौकरशाही' आख्या प्रदान की थी, दमनपर उतारू हो गई थी। उस समय उसकी क्रूर दृष्टि जन-जागृतिके आधार लोक-नायकोंके साथ ही साथ पत्रों और पत्रकारोंपर पड़ी थी। उसे सर्वत्र राजद्रोहका भूत दिखाई देने लगा था। अतएव अपने फैलाये हुए राजद्रोहके जालमें सबको फांस लेनेके लिये वह पागलसी हो रही थी। दमनके पहले दौरकी उस विकट स्थितिमें गुप्तजीने लिखा था :—

"वर्तमान युगको सिडीशनका युग कहना चाहिये। अखबारोंके सिरपर इस समय सिडीशनकी तलवार तनी हुई है। कब किस पर वार हो जाय सो भगवान ही जाने। मार्ली साहबसे पञ्जाबके एक सम्पादकको सिडीशनमें पकड़नेकी आज्ञा ली गई थी। पर एककी जगह दो की सफाई हुई। "इण्डिया" का एडिटर पिण्डीदास सिडीशनके लिये पाच सालकी जेल भेजा गया। और कहा गया कि तुमपर दयाकी जाती है। और 'हिन्दुस्तान" का सम्पादक यह कह कर फँसा दिया गया कि उसीके प्रेसमें "इण्डिया"का सिडीशन वाला नम्बर छपा था। जब इस तरहसे एक टेलेमें दो शिकार हों तो अखबार लिखनेवाले ईश्वरके सिवा और किसकी शरणमें जांय।

लाहौरमें जो दंगेका मुकद्दमा हुआ उसमें भी दो एक आदमी ऐसे फँसाये गये हैं, जो एकाध टूटे-फूटे अखबारके सम्पादक हैं या सवाददाता। कितने ही आदमी उनकी निर्दोषता सिद्ध करने आये पर किसीकी बात पर कुछ ध्यान न दिया गया और वह नाहक जेलमें भेज दिये गये। "पञ्जाबी" के मालिक और सम्पादकके हाथमें हथकड़ियाँ ठोकनेसे एकबार भारतसचिवको लज्जा आई थी। पर इस बार लाहौरमें हथकड़ियाँ भी ठोकी गई और वह सड़कों परसे पैदल निकाले गये और जो लोग दंगेके बहानेसे जेल भेजे गये हैं, उनके साथ जेल तक वही गोरा पुलिस अफसर भेजा गया, जिसके लिये दङ्गा हुआ था।

इधर बगालमें देखिये तो यहाँ भी सिडीशन बेतरह चक्कर लगा रहा है, आगे कुछ न था। सिडीशनका नाम-निशान न था। पर अब वह कलकत्तेमें घर-घर गली-गलीमें मौजूद है। "युगान्तर" सम्पादक भूपेन्द्रनाथ दत्त इस समय कडी जेल भोग रहे हैं। "साधना प्रेस" जिसमें वह छपता था, कुर्क कर लिया गया। इससे स्पष्ट होता है कि सम्पादकका ही दोष न था, उसके प्रेसका भी था। और मजा यह कि प्रेस सम्पादकका नहीं ; किसी दूसरेका। इससे समझ लेना चाहिये कि आगे सम्पादक ही जेल न जायँगे, उनके प्रेस भी एक-दो-तीन हो जायँगे।

पञ्जाबमें प्रेसका कसूर बेतरह अधिक माना गया है। 'हिन्दुस्तान' सम्पादक लाला दीनानाथ पर जो अभियोग लगाया गया है, यदि वह सत्य हो और वह वास्तवमें हिन्दुस्तान प्रेसके मैनेजर हों तो कानूनन उनकी कितनी सजा होनी चाहिये थी? केवल १०-२० या ५०-१०० रुपये जुर्माना। पर जुरमाना कैसा? वह तो पाँच सालके लिये जेलमें ढकेले गये! वहाँसे उनका जीते लौटना कठिन जान पड़ता है। और उनका १०-१२ हजारका प्रेस भी कुर्क हो गया। यह न्याय, यह बर्ताव इस समय अखबारवालोंके साथ किया जाने लगा है। युगान्तर-सम्पादकमें समझ कुछ अधिक थी, इसीसे वह अदालतसे न्यायका प्रार्थी नहीं हुआ और उसने सीधी बात कह दी कि मैं न्यायकी प्रार्थना नहीं करता, अपने देशकी भलाईके लिये जो मुझे उचित मालूम हुआ वह मैंने किया ; अब आपको जो भला लगे वह आप कीजिये। पंजाबमें

जैसा न्याय हुआ है, उससे भूपेन्द्रका विचार बिल्कुल ठीक निकला। पञ्जाबवालोंने इतने दिन मुकदमा चलाकर बहुतसा रुपया खर्च करके और बहुतसे भले आदमियोंको सफाईकी गवाहीके लिये बुलाकर क्या लिया? यदि वह भी विचारमें हाथ उठाते तो जो कुछ उनका अब हुआ है, उससे बढ़कर और क्या होता?

इन मुकद्दमोंकी पैरवीके समय हाकिमों और सरकारी वकीलोंके मुँहसे जो बातें निकली हैं वह बड़ी लज्जाजनक हैं। युगान्तरके मुकद्दमेके समय मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्डने भूपेन्द्रनाथकी जमानत दस हजारसे तोड़कर अधिक करना चाही और तानेकी हँसीसे कहा—"इनके लिये तो चन्दा होता है न? हाकिम जानते थे कि किस तरह अङ्गरेज जरा-सी बात पड़ने पर चन्दा करते हैं। अभी डेलीन्यूजके मामलेमें चन्देकी लिस्ट खुली है। तथापि हिन्दुस्थानी जब वैसा करते हैं तो इन्हें बुरा लगता है।

इसी तरह लाहौरके मुकद्दमेमें सरकारी वकील पेटर्मन साहबने अभियुक्तोंकी ओरके हर प्रतिष्ठित आदमीकी बेइज्जती करनेकी चेष्टा की है और सरकारी गवाहोंमें ऐसे लोगोंकी भी तारीफ की गई है जिनके काम निन्दाके योग्य हैं। साहबने लज्जा छोड़कर अभियुक्तोंके आर्यसमाजी गवाहोंको नाहक "रिबेल" यानी बागी कहा है। और आश्चर्यकी बात है कि अदालतने अक्षर-अक्षर उसकी बातको पूरा किया है। जो कुछ उनके मुँहसे निकल गया वही हुआ। इसी कार्रवाईसे अन्दाजा कर लेना चाहिये कि आगे किस प्रकारका न्याय होगा।"[१]

इसी 'सिडीशनी युग' के दौरानमें पंजाबमें लाला जसवंतराय जेलमें डाल दिये गये थे, लाला लाजपतरायको निर्वासित कर दिया गया था और सरदार अजीतसिंहके देश निकालेकी तैयारी हो रही थी। लाला लाजपतरायकी गिरफ्तारीपर लाहौरके मुसलमानोंने दिवाली मनाई थी। यह संवाद पाकर गुप्तजीका हृदय तिलमिला उठा था। उन्होंने भारत-मित्रमें इसपर एक लम्बा लेख लिखा था। उसी समय उनके स्नेहभाजन

[१] भारतमित्र, सन् १९०७—'सिडीशनका युग' शीर्षक लेख।

'जमाना'—सम्पादक मुन्शी दयानारायण निगम साहबने 'मीर तकी' के मरनेकी सूचना देनेके साथ ही उनकी यादगारमें एक विशेषांक निकालनेकी अनुमति चाही थी। इसपर गुप्तजीने निगम साहबको जो उत्तर लिखा वह उनके व्याकुल हृदयकी वेदनाको प्रकट करनेवाला है। पत्रके एक-एक शब्दसे उनके अन्तस्तलकी व्यथा प्रकट होती है। वे ११-५-१६०७के अपने पत्रमें निगम साहबको लिखते हैं :—

"मुल्ककी हालत बहुत तारीक होती जाती है। हमारी कौमके लाला जसवन्तराय जेलमें हैं और लाला लाजपतराय जलावतन! बेचारे रावलपिंडोके खतरी, वकील, बारिस्टर हवालातमें। जाट अजीतसिंह पर जलावतनीका वारंट!……… इधर जमालपुरमें क्या हो रहा है? सुना है, लाहौरके मुसलमानोंने लाजपतरायकी गिरफ्तारीपर खुशी जाहिर की। जसवन्तराय मुसलमानोंके लिये जेल गया, मुसलमान खुश हैं। होशमें आओ, जबांदानी और शायरीपर लानत। कवाली और ढोलकका जमाना अब नहीं है। मर्द बनो, 'जमाना' से मुल्ककी खिदमत करो। मीरके लिये ढोल-मजीरा बजानेवाले मीर पेट्ट बहुत हैं।"

* * * *

उस बार होलीके अवसरपर लाहौरसे समाचार आया कि पंजाबीके स्वामी और सम्पादक श्री जसवंतराय एवं श्रीअथावलेका कठिन कारावास और जुर्मानेकी दण्डाज्ञा सुना दी गई और वे जमानतपर छूटे हैं। भारतमित्रकी 'होली' की संख्या निकालनेकी तैयारी थी। उसी समय गुप्तजीने "फूलोंकी वर्षा" शीर्षक लेख लिखा। वह लेख उनकी देशभक्ति और सहृदयताका चित्र है। एक शुष्क घटनाको कितनी सरसताका रूप दे दिया था उन्होंने, देखिये—

"वसन्त ऋतु है, फूलोंका मौसिम है। होलीका अवसर है। हिन्दुओंके लिये यह बड़े ही आनन्द और हर्षका समय होता है। पर इस आनन्दको मिटानेके लिये पञ्जाबके

छोटे लाट रिवाज साहब एक अच्छा शगूफा छोड़े जाते हैं। पाठक अन्यत्र पढ़ेंगे कि लाहौरके "पञ्जाबी" नामक पत्रके मालिक और सम्पादकको कड़ी जेल और जुर्मानेकी सजा हुई है। इस देशके शिक्षित समाजके हृदयपर यह खबर पत्थरकी भांति गिरी है।

एक पुलिस कानिस्टबल वजीराबादमें मारा गया था, पञ्जाबीके मालिकको खबर लगी कि वह पुलिस सुपरिंटेण्टकी गोलीसे मारा गया है, क्योंकि वह साहबके कहनेसे उनके मारे हुए सूअरको नहीं उठाता था। पञ्जाबीने यह खबर लिखकर सरकारसे चाहा था कि इसकी जुडीशल तहकीकात हो, पर सरकारने इसकी जरूरत नहीं समझी। जरूरत समझी, इस बातकी कि पञ्जाबीको सजा दिलावे। उसने अपनी तरफसे नालिश की और "पञ्जाबी" पर यह इलजाम लगाया कि वह अंगरेज और हिन्दुस्थानियोंमें विरोध फैलानेके लेख लिखता है। कई महीनोंसे यह मुकद्दमा लाहौरके जिला हुजूरकी अदालतमें चलता था। गत पूर्व शुक्रवारको उसका फैसला हो गया है। पत्रके मालिक लाला जशवन्तरायको मजिस्ट्रेटने दो सालकी कड़ी जेल और १०००) जुरमानेकी सजा दी है। इससे अधिक सजा देनेका उनका अधिकार ही न था क्योंकि जिस धारासे यह मुकद्दमा चलाया गया था, उसमें इस अपराधके लिये अधिक-से-अधिक इतनी ही सजा लिखी है। सम्पादकको ६ महीने जेल और २०० जुरमानेकी सजा दी।

मजिस्टरको कुछ और भी अधिकार था, वह भी आपने दिखाया। अर्थात् एक ही जञ्जीरसे बँधी हुई हथकड़ीका एक कड़ा मालिकके हाथमें था और दूसरा सम्पादकके हाथमें पहनाया गया। ऊंचा जर्नेलिस्टोंके लिये भी इस देशकी न्यायवान सरकारके पास इस हथकड़ीसे बढ़कर और कुछ नहीं है।

यह तो मजिस्ट्रेटके अधिकारकी बात हुई। अब आगे जेलकी कैफियत सुनिये। थोड़े तीन घण्टे ही उक्त दोनों सज्जन जेलमें रहने पाये, इसके बाद वह जमानत पर छुड़ा लिये गये थे, पर इतनी ही देरमें उनपर जेलके बड़े-बड़े अधिकार भी पर कर दिखाये गये। पत्रके मालिक लाला जशवन्तरायकी आंखें कमजोर हैं, चश्मेके बिना उनको दिखाई नहीं देता। जेलमें उनके कपड़ोंके साथ उनका चश्मा भी उतरा उसे

लगा। उन्होंने जेलवालोंसे प्रार्थनाकी कि चश्मा उतार लिया जायगा तो मुझे कुछ भी नहीं दिखाई देगा। इसका उत्तर मिला कि 'चुप रहो' और चश्मा उतार लिया गया। पर यहीं तक अधिकार समाप्त नहीं हुआ। मालिक और सम्पादक दोनोंके कपड़े उतरवा लिये गये और उनको जेलके निहायत सड़े और बदबूदार कपड़े पहना दिये गये। फिर लाला जशवन्तराय जेलके एक पुराने कैदीके सुपुर्द किये गये। उसने उनको एक चक्की दिखाई और कई सेर मक्की लाकर उनके सामने रखी कि इसे खूब महीन पीसो। अच्छा न पीसोगे तो सुपरिण्टेण्डेण्ट तुम्हें सजा देगा। ओह! सभ्यताका यह कितना ऊँचा नमूना है। लार्ड मिन्टो और मि० मार्ली देखें कि भारतवर्षकी जेलोंमें उनकी यूनिवर्सिटीकी डिगरी पाये हुए एम० ए० से चक्की पिसवाई जाती है। इस विद्वान् पुरुषने किसीको मार नहीं डाला, किसी बादशाहपर बमका गोला नहीं फेंका, किसीका घर नहीं लूटा, कहीं आग नहीं लगाई, वरञ्च महाराज एडवर्डकी प्रजामेंसे एक गरीब मुसलमानके मारे जानेकी खबर सरकार तक पहुंचाई थी कि उसके मारनेका शक लोगोंको किसपर है। इसका उसे यह इनाम मिला!

इतने कष्टोंका सामना होनेपर भी अभियुक्त घबराये नहीं और न उन्होंने माफी मांगकर अपनी सचाईको धूलमें मिलाया। मजिस्ट्रेटकी दी हुई सजाको उन्होंने धन्यवादके साथ स्वीकार किया। इसीसे जो लोग वहां खड़े थे उन्होंने अभियुक्तोंके हथकडीमें फँसे हुए हाथोंसे हाथ मिलाकर उनके प्रति अपनी सहानुभूति दिखाई और साबित किया कि अच्छे कामके लिये हथकड़ी हाथमें पड़े तो भी वह इज्जतकी चीज है और दूसरे भी उसकी पैरवी करनेको तय्यार हैं। जिस समय पुलिसवाले सवारोंके पहरेके साथ अभियुक्तोंको गाड़ीमें बिठाकर ले चले तो दूरतक उनकी गाड़ीपर लोग "वन्देमातरम्" की ध्वनिके साथ फूलोंकी वर्षा करते चले गये। फिर जब वह जमानत पर जेलसे छुड़ाये गये तो लोग वहीं फूलोंकी मालाएँ और फूलोंके टोकरे लेकर पहुंचे। उनके गलेमें फूलोंकी मालाएँ पहिनाई और दूरतक उनपर फूलोंकी वर्षा करते चले गये।

यह वर्षा यहीं तक समाप्त नहीं हुई। पञ्जाबियोंकी उनके साथ यहांतक सहानुभूति है कि उसी दिन सन्ध्या समय जब मि० गोखले रेलवे स्टेशनसे स्वागत करके लाये

गये तो उनको भी मि॰ गोखलेकी गाडीमें बिठाया। कई घण्टे तक यह जुलूस लाहौरके बाजारोंमें घूमा था। इस बीचमें बराबर फूलोंकी वर्षा होती रही। छतों और खिडकियोंसे स्त्रियाँ और लडकियाँ उनपर फूल फेंकती थीं। इससे स्पष्ट हो गया कि जो उनके भारीसे भारी कष्टका दिन था, वही उनपर फूलोंकी वर्षा होनेका था। जेल आदिका कष्ट उन्होंने कोई तीन घण्टे सहा और फूलोंकी वर्षा उनपर कितने ही घंटे हुई। सज्जनों पर विपद सदा पडती आई है। घोर परीक्षामें पडकर जो पूरे उतरते थे उन्हीं वीरोंपर देवगण आकाशसे फूल बरसाते थे। बीचमें कुछ दिन ऐसे बीते कि देवगणने अप्रसन्न होकर इस देशके लोगोंपर फूलोंकी वर्षा करना छोड दी थी। पर देखते हैं कि अब फिर भारतका भाग्य सुप्रसन्न हुआ है। इस देशके लोगोंके हृदयमें देवभावका आविर्भाव हुआ है। देवगण उनके द्वारा इस देशके वीर पुरुषोंपर पुष्प-वृष्टि कराने लगे हैं। जल्द उनके स्वयं आकाशमें स्थित होकर फूल बरसानेका समय आनेवाला है। इससे पंजाबीके मालिक लाला जशवन्तराय और सम्पादक श्रीमान् अथावलेको हम वसन्तकी बधाई देते हैं। यह वसन्त मानो उन्हींके लिये है। धीर-मर्मीर उन्हींके यशका सौरभ चारों ओर फैला रहा है। कोकिल उन्हींकी कीर्तिके मीठे गीत गाती हैं।"*

सम्राट् एडवर्ड सप्तमके सहोदर ड्यूक आफ कनाट जब भारतवर्षकी सैर करने आये, तब ग्वालियर भी गये थे। वहाँ उन्होंने एक शेरकी शिकार की थी। इसके लिये ग्वालियर नरेश महाराज सर माधवराव संधियाने अपना और अपने शेरका अहोभाग्य माना। उन्होंने ड्यूक महोदयको भोजन करने अपने राजप्रासादमें बुलाया और अपनी वक्तृतामें उन्हें रिझानेके लिये अत्युक्तिपूर्ण स्तोत्र-पाठ सुनाया। इसपर गुप्तजीने लिखा :—

'एशियाई शार्दूलमें शिकारीकी बडी प्रशंसा है। शार्दूलको शिकारीकी तारीफ करनेके सिवा उपाय नहीं है।…एशियामें कविका शिकारी पसन्द भी होता है। कभी-कभी कविको वर्षों उसकी बाट देखनी पड़ती है। एक कवि कहता है :—

---

* भारतमित्र, सन् १९०७।

औ तुन्दख़ ! आजा कहीं तेगा कमरसे बांधकर,
किन मुर्दोंसे हम कफन फिरते हैं सिरसे बांधकर।

कभी-कभी कवि अपने शिकारीके तीरकी नोकका आनन्द लेता है। गालिब कहता है :—

कोई मेरे दिलसे पूछे तेरे तीरे नीमकुशको
यह खलिश कहांसे होती जो जिगरके पार होता।

अर्थात् तेरे आधे लगे तीरमें बड़ा आनन्द है। पार निकल जाता तो खटकनेका ऐसा आनन्द कहां मिलता ?

एक फारिसका कवि कहता है :—

हमा आहुआने सहरा सरे, खुद निहादह बर कफ।
बउमीद आंकि रोजे ब शिकारख़ाही आमद।

अर्थात् जङ्गलके सब हरिन अपना सिर हथेली पर लिये फिरते हैं, इस आशा पर कि एक दिन तू शिकार करने आवेगा।

इतने दिन फारिसके कविका यह शेर निकम्मा पड़ा था। अब ग्वालियरके महाराज माधवराव सेंधियाने इसे फिर जीवन दान दिया है। हैदराबादके निजाम उर्दूके बड़े कवि हैं, उनके दीवान कृष्णप्रसाद "शाद" भी कवि और उनके शागिर्द हैं। पर अभीतक हमें यह खबर न थी कि सेंधिया महाराज कवितामें बहुत ऊँचे हो गये हैं। अपने महलमें राज सहोदर ड्यूक-आफ कनाटको भोजन करानेके अवसर पर सेंधियाने अपनी वक्तृतामें कहा—"श्रीमान्‌ने जो मेरा एक शेर मारा है, उससे मुझे जितना आनन्द हुआ है, निस्सन्देह उतना ही उस मरे हुए शेरको भी हुआ होगा। इन मौसिममें शेर प्रायः एक जगह नहीं रहते और सहजमें उनका पता भी नहीं लगता। पर जो शेर ड्यूक महोदयके हाथसे मारा गया है वह निश्चय ही बड़ा भलामानस (जेंटलमैन) था। कारण भाग्यके लिखे अनुसार उसका चमड़ा किसी महापुरुषके हाथमें पहुँचेगा—यह बात वह समानसेही जानता था। इसीसे वह निज

भाग्यका फल भोगने श्रीमान् ड्यूकके सम्मुख आया था। उसने श्रीमानके हाथसे प्राण देकर उत्तम गति लाभ की।' *

अहाहा! कितनी सुन्दर कविता है। ग्वालियरके जङ्गलके शेरोंको अपना चमड़ा अपनी पीठपर भारी है। इसीसे मैंथियाका एक शेर भाग्यकी परीक्षा करने ड्यूक आफ कनाटके सामने आया और उनकी गोलीसे मरकर अपना चमड़ा उनकी भेट करके परम गतिको प्राप्त हुआ। उधर दो दिन पहले ३१ जनवरीको इन्दौर नरेशने अपने राज्यका बोझा कन्धेसे उतारकर वनका रास्ता लिया। भारतवर्षमें अब राजाओंको अपने कधोंपर राज्य भारी है और शेरोंको अपनी पीठपर अपना चमडा भारी है। राजा राजधानी छोड़कर वनको जाते हैं और शेर जङ्गल छोड़कर परमधामको!" +

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि, गुप्तजीका हृदय सची देशभक्तिकी भावनासे ओत-प्रोत था। वे अपने देशकी स्वतन्त्रताके प्रबल आकांक्षी थे। उस समय राष्ट्रिय आन्दोलनसे घबराकर अंग्रेज शासकोंकी कृपा-लाभ करनेके लिये ही सामाजिक सुधारका स्वांग भरनेवाले शिक्षित देशवासियोंको लक्ष्य करके गुप्तजीने लिखा था :—

हमारे कितनेही पढ़े-लिखे भाई, जिनकी पीठपर गोरे अखबारोंने हाथ फेर दिया है, चिल्लाते हैं कि हमें राजनीतिक आन्दोलन न करके समाज-सुधारका करना चाहिये। खूब! इनसे कोई पूछे, संसारमें कोई भी ऐसा देश है, जहांके निवासी बिना देशके अन्दर स्वतन्त्रता प्राप्त किये मर्दाने, श्रेष्ठ और उद्यमी हुए हों?'

* That His Royal Highness should have shot one of my tigers is as great a satisfaction to me as no doubt it is to the tiger. "*Stripes*" is a beast of uncertain habits at this season and is given to wandering and hard to locate but the victm of the Duke's unerring aim was evidently a gentleman. Instinct told him the august hand to whom fate had assigned his skin, and to fulfil his destiny he came forth and died.!

+ भारतमित्र सन् १९०३।

गुप्तजीने सन् १६०५ तकके अपने रचित पद्योंका संग्रह 'स्फुट-कविता' के नामसे छपाकर भारतमित्रके उपहारमें दिया था। उसकी समालोचना करते हुए भाव एवं भाषाके धनी समालोचक-सम्पादक पण्डित चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजीने लिखा था—"इसमें हिन्दीके नश्वर सामयिक पत्र साहित्यके रसांशको अमर करनेका यत्न किया गया है, जो हम आशा करते हैं, सफल और अनुकरणीय होगा। प० प्रभुदयालु पांडेकी ऐसी कविताओंका संग्रह करना भी हम उनके प्राचीन-सखा भारतमित्र-सम्पादकका ही कर्त्तव्य समझते हैं। जो कविताएँ पहले कभी राग-द्वेष या अखबारी लड़ाईके समय लिखी या पढ़ी गई थीं, इन्हें अब झगड़ेकी आग बुझ जानेपर यों पढ़नेमें एक अपूर्व भावका उदय होता है। भूमिकामें क्या चोटके वाक्य लिखे गये हैं :—'भारतमें अब कवि भी नहीं हैं, कविता भी नहीं है। कारण यह है कि कविता देश और जातिकी स्वाधीनतासे सम्बन्ध रखती है। जब यह देश देश था और यहांके लोग स्वाधीन थे, तब यहाँ कविता भी होती थी। उस समयकी जो कुछ बची-खुची कविता अब तक मिलती है, वह आदरकी वस्तु है और उसका आदर होता है। कविताके लिये अपने देशकी बात, अपने देशके भाव और अपने मनकी मौज दरकार है। हम पराधीनोंमें यह सब बातें कहाँ ? फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरुत्व क्या,इससे उसे तुकबन्दी ही कहना ठीक है। पराधीन लोगोंकी तुकबन्दीमें कुछ तो अपने दुःखका रोना होता है और कुछ अपनी गिरी दशापर पराई हँसी होती है—वही दोनों बातें इस तुकबन्दीमें है।' चाहे गुप्तजी इसे तुकबन्दी कहें और हँसी-दिल्लगीकी मात्रा अधिक होनेसे चाहे यह वैसी कहला भी सके, परन्तु "शोभा और श्रद्धा" में कहीं-कहीं कविको कविके स्वर्गीय मनोराज्यकी छटाका दर्शन हो गया है। और क्यों न हो,—

समालोचककी दृष्टिमें

न भिद्यते यद्यपि पूर्ववासना
गुणानुरागेण प्रतिमानमद्भुतम्
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिना,
सदा करोत्येव कमप्यनुग्रहम् ।

विशेष बात यह है कि यह कवि भारतवर्षका कवि है, दुखी, भूखे भारतका तुकबन्द है। दिल्लगीके दालानमें, श्रद्धा शोभाके शृङ्गारमें, या स्तुतिके सुमनो राज्यमें, वह भारतवर्षसे भागकर आकाशमें नहीं टँक जाता। यहाँ तक कि लक्ष्मी-स्तुतिमें भी वह कहता है—

गज, रथ, तुरग विहीन भये ताको डर नाहीं
चँवर छत्रको चाव नाहि हमरे उर माहीं
सिंहासन अरु राजपाटका नहीं उरहनो,
ना हम चाहत अस्त्र वस्त्र सुन्दर पट गहनो
पै हाथ जोरि हम आज यह रोय-रोय बिनती करैं
या भूखे पापी पेट कहँ मात, कहाँ कैसे भरैं ?

यही रंग सर सैयदके बुढ़ापेके पंखेवालेमें है और यही मेघागमनमें—

'तेरे बल जो दाने निकले परवत फार,
तिन तो सो हो गये जरि बरिके छार।" *

पण्डित गुलेरजीकी यह टकसाली राय है। गुप्तजीका हृदयोच्छ्वास रामस्तोत्रमें यों प्रकट हुआ है :—

जनबल नयबल बाहुबल, धौर्यबल है राम,
हमरे बल एकौ नहीं, पाहि पाहि श्रीराम।
अपने बल हम हाथकी, रोटी सकत न राख,
नाथ बहुरि कैसे भरैं, मिथ्या बल करि साख।

---

* समालोचक (जयपुर) फरवरी-मार्च १९०६ पृष्ठ ७५५-५६।

सेल गई बरछी गई, गये तीर तरवार,
घड़ी छड़ी चसमा भये, छत्रिनके हथियार।
जो लिखते अरि-हीय पै, सदा सेल्के अङ्क,
झपत नैन तिन सुतनके, कटत कलमको डङ्क।

....

ऐसे ही तप बल गयो, भये हाय श्रीहीन,
निसि दिन चिन-चिन्तित रहत, मन मलीन तन छीन,
जाति दई सद्गुण दये, खोये वरन विचार,
भयो अधम हूतें अधम, हमरो सब व्यवहार।
जहां लरै सुत बाप संग, और भ्रातसों भ्रात,
तिनके मस्तक सों हटै, कैसे परकी लात।
लरि-लरि अपनो बाहुबल, खोयो कृपानिधान,
आप मिटे तौहू नहीं, मिटी लरनकी बान।
अब जो पूछौ दाम बल, पल्लै नाहि छदाम,
पै दामहुके फेर महँ, भूले तुम्हरौ नाम।

गुप्तजी उत्तम कविताके रसज्ञ संग्राहक थे। पुराने कवियोंके लिये उनके हृदयमें बहुत ऊँचा स्थान था। साहित्याचार्य प० अम्बिकादत्त व्यासजीके 'बिहारी विहार' की आलोचना करते हुए उनको भी उन्होंने नहीं बख्शा था। व्यासजीने अपनी पुस्तकमें लल्लूलालजीकी 'लाल चन्द्रिका',

प्राचीन कवियोंके प्रति भक्ति

यह प्रयास गुप्तजीने कविवर नन्ददासजीकी दो सुन्दर रचनाओंको रक्षित कर देनेके महदुद्देश्यसे किया था। इस छोटी पुस्तिकाकी गवेषणायुक्त भूमिका इस प्रकार है :—

अबके भारतमित्रके उपहारके साथ ब्रजभाषाकी दो अति सुन्दर कविताएँ एक साथ छापकर दी जाती हैं। इनमेंसे पहलीका नाम रासपञ्चाध्यायी है और दूसरीका भँवरगीत। यह दोनों कविताएँ कविवर नन्ददासजीकी बनाई हुई हैं, जिनका समय शिवसिंहसरोजमें सम्वत् १५८५ विक्रमाब्द लिखा है। इसमें कुछ अन्तर भी हो सकता है, पर विशेष नहीं। नन्ददासजीकी गणना अष्टछापमें की जाती है। अर्थात् ब्रजभूमिके आठ प्रधान कवियोंमेंसे एक नन्ददासजी भी थे। इन आठ कवियोंके नाम इस प्रकार हैं—सूरदास, कृष्णदास, परमानन्द, कुम्भनदास चतुर्भुज, छीतस्वामी, नन्ददास और गोविन्ददास।

नन्ददासजीकी कविता इतनी सुन्दर और स्वच्छ है कि उनके लिये एक कहावत चली आती है—'सब गढ़िया नन्ददास जड़िया'। अर्थात् और सब कवि गढ़नेवाले और नन्ददास जड़नेवाले। सब जानते हैं कि गढ़नेवालोंसे जड़नेवालोंका काम बहुत सफाईका और बारीक होता है। यह भक्त कवि थे। कहा जाता है कि उन्होंने श्रीमद्भागवतको ब्रजभाषामें लिखा था। उसे जब अपने गुरुके पास ले गये तो उन्होंने देखकर आज्ञा की कि यदि तुम्हारी यह भागवत रहेगी तो फिर संस्कृतकी भागवतको कोई नहीं पढ़ेगा। यह सुनकर नन्ददासजीने अपनी भाषा-भागवत श्रीयमुनामें डुबोदी। यह भी उनकी ऊँचे दरजेकी कविताके लिये प्रशंसापत्र स्वरूप है।

नन्ददासजीकी बनाई हुई पोथियोंमेंसे पञ्चाध्यायी, भँवरगीत, दानलीला, मानलीला आदि कई एक रद्दियोंसे मिली मिलती हैं। छप गई। आदमियोंके हाथमें पड़नेसे वह इतनी अशुद्ध हो गई हैं कि बहुत जगहसे मतलब कुछ समझमें नहीं आता! इनके बनाये बहुतसे हरिपद मुंशी नवलकिशोर प्रेसके छपे हुए सूरसागरमें मिलते हैं, उनकी भी उक्त पोथियोंकीसीही दशा है। इनका बनाया हुआ एक दशमस्कन्ध

भी सुना जाता है, पर देखनेमें नहीं आया। उनकी पचाध्यायी मैंने पहले पहल "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में देखी। पर आधी देखी, उसका पूर्वार्द्ध चन्द्रिकाके किसी और अङ्कमें छपा होगा, वह देखनेमें नहीं आया। बहुत तलाशसे एक मथुराकी छपी हुई लीथोकी कापी मैंने दिल्लीसे प्राप्त की। वह संवत् १९४५ की छपी हुई है। उसे पढ़ा तो बहुत अशुद्ध पाया। शुद्ध लिपिके लिये खोज आरम्भ की। बड़ी कठिनाईसे कलकत्तेमें एक सज्जनके यहाँसे संवत् १८९४ की छपी हुई एक प्रति प्राप्त की। इससे उसको मिलाया तो बहुत अन्तर निकला। पर अशुद्ध वह दूसरी प्रति भी है। जैसे बना उसे शुद्ध किया गया पर दूसरेकी कवितामें अपनी ओरसे कुछ बनानेका अधिकार नहीं है। इससे जहाँ बिलकुल ही कुछ समझमें नहीं आया, वहाँ अब भी कुछ कुछ अशुद्धि रह गई है और शुद्ध प्रति कहींसे मिली तो दूसरी बार उससे सहायता लेनेकी चेष्टा की जायगी।

दूसरी कविता "भंवरगीत" पहले पहल नवलकिशोर प्रेसके छपे हुए सूरसागरमें देखी थी। उसकी भी संवत् १८९४ की छपी एक प्रति प्राप्त हुई। उसी प्रतिकी प्रतिलिपि छापी गई है। इसमें अशुद्धियाँ कुछ कम मिलती हैं, कारण यह कि अभीतक यह कविता बाजारी पोथियोंमें नहीं जाने पाई। यह दोनों कविताएँ व्रजभाषाकी ऊँचे दरजेकी कविताके नमूने हैं। अष्टछापके कवि बहुत ऊँचे दरजेके कवि थे और उन्हींके समयमें व्रजभाषाकी सबसे अधिक उन्नति हुई थी और उक्त भाषा खूब मंजी और स्वच्छ हुई थी। पर इस देशमें हीरे कङ्कड़का एक मोल है। यह इतनी अच्छी कविताएँ रद्दियोंमें पड़ी फिरती थीं, कोई इनकी ओर ध्यान तक नहीं देता था। आशा की जाती है कि आगे यह दशा न रहेगी। पदोंमें नन्ददासजीकी कविता और भी सरल है। एक पद है—

> राम कृष्ण कहिये निसि भोर।
> अवध ईस वे धनुष धरें वे, यह व्रजजीवन माखन चोर।
> उनके छत्र चँवर सिंहासन, भरत शत्रुहन लछमन जोर।
> इनके लकुट मुकुट पीताम्बर, गायनके संग नन्दकिशोर।

उन सागरमें सिन्धु तराई, इन राख्यो गिरि नखकी कोर।
नन्ददास प्रभु सब तजि भजिये जैसे निरतत चन्द चकोर।

इस पदके अन्तिम चरणमें भी लिपिदोषसे मतलब कुछ उलट पलट हो गया है, जिससे इसका अर्थ साफ नहीं निकलता।

उनकी बनाई नाममाला पहले बूढ़े स्त्री पुरुष प्रातःकाल पाठ किया करते थे। लड़कपनमें कई बार सुनी थी, छपी नहीं देखी। वह इतनी सुन्दर और सरल थी कि आजतक उसका आनन्द नहीं भूलता। बहुत-सी कविताएँ इसी प्रकार बूढे-बड़ोंके मुखस्थ थीं; उनमेंसे जो लिखी गईं वह बच गईं; जो नहीं लिखी गईं वह लुप्त हो गईं। बहुतसी ऐसी कविताएँ अब भी हैं जो लुप्त होनेको हैं, पर यदि चेष्टा हो तो उनकी रक्षा हो सकती है। अब हिन्दुओंका वह समय भी नहीं है कि उनके बूढे बड़े सवेरे उठकर भगवानका नाम लिया करते थे और भगवद्गुणानुवाद सम्बन्धी कविताएँ पढ़ा करते थे। इससे आज कलके समयमें जो कुछ लिखा जाय और छप जाय उसीके रक्षित होनेकी आशा करना चाहिये।

एक बार सबके सम्मुख फिरसे नई कर देने तथा कुछ और कालके लिये रक्षित कर देनेके उद्देश्यसे यह दोनों कविताएँ छापी गई हैं।

मथुराकी छपी हुई रासपञ्चाध्यायीमें कहीं-कहीं दो एक दोहे भी शीर्षककी भाँति मिलते हैं वह मैंने रहने दिये हैं, पर दूसरी प्रतियोंमें नहीं हैं।

बालमुकुन्द गुप्त *

वर्ष भरमें दो बार—होली और दुर्गापूजाके उपलक्ष्यमें भारतमित्रके द्वारा परिहासप्रिय गुप्तजीके हृदयकी खुली उमङ्गें प्रकट होती थीं। उन अवसरों पर सहयोगी साहित्यिक, शासक, राजनीतिक नेता, धर्मोपदेष्टा और समाज-सुधारक कार्यकर्त्ता—किसीको माफ नहीं किया जाता था।

होलीकी उमङ्ग

---

* भारतमित्र कार्यालय द्वारा प्रकाशित 'रासपञ्चाध्यायी' की भूमिका—कलकत्ता २ नवम्बर १९०४।

हँसने और हँसानेकी सामग्री बड़े उत्साह और लगनसे जुटाई जाती थी। त्योहारकी महिमासे परिपूर्ण रसीले लेख और टिप्पणियाँ, चुटीले टेसू एवं जोगीड़ा—इत्यादि पाठकोंके हृदयको उल्लसित कर देते थे। अपने आपपर व्यंग्य या कटाक्ष पढ़कर चेहरेपर हँसी ला देना गुप्तजीकी लेखन-कलाकी विशेषता थी। सन् १९०१ के भारतमित्रकी होलीकी संख्यासे कुछ टिप्पणियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं :—

"

भारतमित्र

शनिवार ता० २ मार्च १९०१

जिये सो खेले फाग।

पाठकोंको होलीकी बधाई!

फागको हिन्दू अपने जीवनका सुखमूल समझते आये हैं।

जीते जी आनन्दपूर्वक होली देखना हिन्दू-हृदयकी सबसे प्यारी कामना है।

इसीसे फागन लगते ही हिन्दू लोगोंका हृदय आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है और वह गा उठते हैं—"जिये सो खेले फाग।"

वसन्त-सा मौसिम और होली-सा त्योहार पृथ्वीपर और कहीं है या नहीं, विचारवान विचार सकते हैं। हिन्दुओंकी इस समय जैसी दास दशा है, उसमें पड़कर अब वह संसारकी भली-बुरी बातोंपर राय देनेके योग्य नहीं रहे। किन्तु जो गुलाम नहीं हो गये हैं और जिनके हृदयमें स्वाधीन भाव है, वह इसपर राय दें।

मुसलमानोंने इस देशको कमजोर पाकर जीत लिया था और यहाँके बादशाह बन गये थे। जब कुछ दिन बाद वह इस देशके रीति-रिवाजको जान गये तो

होली उन्हें इतनी पसन्द आई कि उसपर लट्टू हो गये। मुसलमानी दरबारोंमें होलीकी महफिलें होती थीं। हिन्दू-मुसलमान, अमीर-उमराव मिलकर होलियाँ खेलते थे। गुलालसे मुसलमानोंकी डाढ़ियाँ लाल होती थीं।

शाहे अवध वाजिदअली शाह कलकत्तेमें मटियाबुर्जमें आकर घटतीके दिन पूरे कर गये। आप होलीपर मोहित थे, लखनऊकी सारी रियासत उनके कारण होलीमय हो जाती थी। हिन्दुओंसे बढ़कर मुसलमान ही होलियाँ बनाते, गाते और आनन्द मनाते थे। वाजिदअली शाहकी बनाई कितनी ही होलियाँ अब भी गाई जाती हैं। लखनऊमें आजकल जाइये और इस गिरे समयमें भी होलीका ठाट देखिये।

हमारे हिन्दू सहयोगियोंमें कुछ ऐसे लोग हैं, जिनको होली गोलीसी लगेगी। वह इसपर कुछ निराली तान उड़ावेंगे, पर हमारा लखनवी सहयोगी 'अवधपञ्च' होलीके रंगमें डूबा हुआ निकलेगा। जबसे वह जारी है तबसे ही उसका यह ठाठ है। 'अवधपञ्च' के इस आचरणसे हमारे होलीसे घबरानेवाले भाइयोंको शिक्षा लेनी चाहिये। होली मुसलमानोंका उत्सव नहीं है, किन्तु जिस देशमें 'अवधपञ्च' का जन्म हुआ है उसका उत्सव है। इसीसे 'अवधपञ्च' उसका आदर करता है।

विदेशी शिक्षाने इस देशमें लोगोंके चित्तपर एक विचित्र भाव उत्पन्न किया है। वह यह है कि अपनी जो कुछ चीजें हैं वह सब बुरी हैं और दूसरोंकी अच्छी। इससे पराई नकल करना ही सभ्यता है। किन्तु जरा आँख खोलकर देखना चाहिये कि जिसकी नकल तुम करते हो वह भी तुम्हारी कुछ नकल करते हैं या नहीं? क्या वह भी अपने त्यौहारोंपर कुछ आनन्द नहीं मनाते? नहीं देखते कि क्रिसमसके समय कृस्तानोंको कैसा अपार आनन्द होता है? आदमी तो क्या गाड़ी-घोड़े और रेलके इञ्जनों तकपर क्रिस्मसकी खुशी छा जाती है।

सात-आठ सौ वर्षसे मुसलमान इस देशमें आये हैं। पहले वह राजा थे अब हमारी तरह प्रजा हैं। कहिये कभी वह भी हमारे हिन्दू सज्जनोंकी भाँति अपने उत्सव-त्यौहारोंकी निन्दा करते हैं? अथवा उनको देखकर कुण्ठित होते हैं। शबरात, ईद आदिको जाने दीजिये, मुहर्रम ही को यहांके मुसलमान कैसा करते हैं। कहांके वह लोग जिनका वह त्यौहार है और कहां भारतवर्ष।

भोजनमें जिस प्रकार नमक दरकार है, शरीरमें जीवन धारणके लिये जैसे रक्त दरकार है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य-जीवनके लिये हँसी-खुशी भी दरकार है। बड़ी शान्तिसे, बड़े साधु-भावसे रहनेके लिये आनन्द और चित्तकी प्रफुल्लता भी दरकार है। जो योगीजन समाधि लगाकर बैठते हैं, हृदयके आनन्दकी चाह उनको भी रहती है। प्रकृतिने जब इस देशमें छः ऋतु दी हैं तो यहांके मनुष्योंके शरीरमें भी उन सबका प्रभाव होना चाहिये। प्रचण्ड ग्रीष्मके बाद वर्षा ऋतु आती है। वर्षाके पीछे शरद् और हेमन्त शिशिर आकर वसन्त आती है। क्या इन सब ऋतुओंमें कोई एक चालपर रह सकता है?

वसन्त भारतवर्षका आनन्द है और होली भारतवासियोंके हृदयकी उमंग। आधे फागनसे आधे चैत तक इस देशमें लोग इस उत्सवमें समान आनन्द मानते आये हैं। चारों वर्णके लोग इस उत्सवमें समान भावसे आनन्द मनाकर अपनी एकताका परिचय देते हैं। इतने भारी मेल-मिलापका त्यौहार दूसरा और नहीं है। जब इस देशके लोगोंमें स्वाधीनता थी, स्वजातीय प्रेमका भाव था तभी इस होलीकी शोभा थी। आज इसमें क्या बाकी रहा है? अब भारतवासियोंमें वह चित्तकी स्वाधीनता कहां? वह आनन्दकी इच्छा कहां? जो कुछ है, पुराने आनन्दकी एक नकल है। इसे भी मिटानेसे क्या रह जावेगा? भारतवासी अब सदा रोग-शोक, क्षुधा-तृष्णा ही भोगते हैं। नाना प्रकारसे मृत्यु उनको अपना खिलौना बना रही है, ऐसी अवस्थामें जो कुछ

आनन्द है उसे भी दूर मत करो। एक बार सब दुखोंको भूलकर आनन्दमय हो जाओ। ऋतुराज तुम्हें आनन्द मनानेके लिये उत्साहित करता है।

.... ”

गुप्तजी सनातनधर्मी थे, अतएव उनके सामाजिक और धार्मिक विचार तदनुवर्ती थे। हिन्दू संस्कृतिका वे गौरव करते थे। सामाजिक सुधारके पक्षपाती होनेपर भी पश्चिमी सभ्यताके अन्धानुसरणको वे नापसन्द करते थे। उनके लेखोंमें उनके विचारोंका स्पष्ट निदर्शन है।

सामाजिक और धार्मिक विचार

सन् १६०१ में मेरठके अग्रवालोंमें एक विधवा-विवाह पहले-पहल वहांके आर्यसमाजी सज्जन बाबू प्रह्लादसिंह वकीलके प्रयत्नसे हुआ था। उसका समाचार भारतमित्रमें प्रकाशनार्थ आया। गुप्तजीने उसे पूरा प्रकाशित किया और उसपर अपनी यह टिप्पणी चढ़ाई :—

"विधवा विवाहके हम विरोधी नहीं हैं। पृथ्वीपर कृस्तान, मुसल्मान आदि कितनी ही जातियोंके लोग हैं, सबमें विधवा विवाह प्रचलित है और सब विधवा-विवाहके तरफदार हैं। केवल उच्च-जातिके हिन्दू विधवा-विवाह नहीं करते, इसका कारण यही है कि हिन्दू-धर्म विवाह संस्कारको और दृष्टिसे देखता है और दूसरी जातिके लोग दूसरी दृष्टिसे। हिन्दू-धर्मने भी यथासंभव विधवाओंको दूसरा पति ग्रहण करनेकी आज्ञा दी है। उसके अनुसार शूद्रवर्णके हिन्दू विधवा-विवाह करते हैं। परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इन तीन वर्णके लोगोंके लिये वह आज्ञा नहीं है। अन्यान्य जातिके लोग विवाहको सांसारिक सुख और इन्द्रिय-तृप्तिकी एक वस्तु समझते हैं। इसीसे उनमें विधवाको फिर पति प्राप्त करके भी सुख भोग करनेका अधिकार है, किन्तु हिन्दूके पुत्र और कन्याका विवाह-सूत्रमें बँधे पीछे कुछ और ही सम्बन्ध हो जाता है। इस बातको केवल हिन्दू ही नहीं, मुसल्मान भी समझ गये थे।"

इसके आगे मलिक मुहम्मद जायसीके पद्मावतसे कुछ अंश उद्धृत कर गुप्तजी लिखते हैं—"हिन्दुओंकी इस उच्च भावनाका इतना प्रभाव हुआ था कि भारतवर्षमें आकर उच्च-कुलके मुसलमानोंने भी विधवा विवाह बन्द कर दिया था। मुसल्मान भी जान गये थे कि हिन्दूकी लड़कीके विवाहका बाजा एक ही दफे बजता है। अब मेरठसे दूसरी बार बाजा बजनेकी खबर आई है, इससे मालूम हुआ कि विवाहके विषयमें हिन्दुओंका वैसा खयाल नहीं रहा। जिनके घर विधवा कन्या या बहू हैं, उनके माता-पिता, सास-ससुर अंगारोंपर लोटते हैं, किन्तु पुनर्विवाहका विचार उन्हें नरककी यन्त्रणाकी भाँति असह्य होता है। एक ओर कन्याका दुःख और दूसरी ओर धर्म संकट! समय अब तू हिन्दुओंको किधर ले जाना चाहता है?" *

सन् १९०४ में पण्डित श्यामविहारी मिश्र एम० ए० महोदयने अप्रसन्न होकर श्रीवेंकटेश्वर समाचारकी खरीददारी छोड़ दी थी और उसका कारण अपनी चिट्ठीमें यह बताया था कि, 'पुराना समय अब फिर नहीं बुलाया जा सकता। आप लोग हर बातमें धर्म-धर्मका शोर मचाने लगते हैं सो मेरी समझमें ठीक नहीं।... ....समाचार-पत्र ऐसे नहीं होने चाहियें कि मूर्ख लोगोंको जैसे बन पड़े, प्रसन्न किया जाय, वरन् उनकी मूर्खता छुटानेका प्रयत्न करना चाहिये।' श्रीवेंकटेश्वर-समाचारने मिश्रजीकी चिट्ठी पूरी छाप दी थी। उसको पढ़कर गुप्तजीसे चुप नहीं रहा गया—और उन्होंने अपना यह बेलाग मत प्रकट किया—

"यदि पढ़े-लिखे लोगोंको विचारोंकी स्वाधीनताका जरा भी ध्यान है तो जो हक अपने विचार स्वाधीन रखनेका प० स्यामविहारी मिश्रको है वही श्रीवेंकटेश्वर समाचारके सम्पादकको भी है। क्या मिश्रजी चाहते हैं कि दूसरोंके विचार उनके विचारोंके साथ बाँध दिये जायँ। क्या स्वाधीन विचारका यह अर्थ है कि जो मैं मानता हूँ वही सारी दुनियाँ जबरदस्ती माने। एक बात मिश्रजीने ऐसी कही है कि जिसे

* भारतमित्र, ६ जुलाई १९०१ ई०।

कहकर उन्हें लज्जित होना चाहिये, क्योंकि वह पढ़े-लिखे हैं। आपकी समझमें वेंकटेश्वर समाचारका सम्पादक जो कुछ लिखता है, स्वाधीनतासे नहीं लिखता, वरंच मूर्खोंको प्रसन्न करनेके लिये। कितनी बड़ी गाली है। अगर इसका उत्तर दें तो यों हो सकता है कि प० श्यामविहारी मिश्र जो लिखते हैं, वह चन्द विधर्मियोंको प्रसन्न करनेके लिये। पर नहीं, यदि हम ऐसा कहें तो उनके अन्तःकरणकी निन्दा करनेमें अपनी ही निन्दा होती है। यदि किसीकी राय हमारी रायसे नहीं मिलती तो हम कह सकते हैं कि वह नहीं मिलती। यह तो नहीं कहना चाहिये कि उसने बेईमानीसे राय दी है। हम जहांतक समझते हैं यदि किसीसे मत-विरोध हो तो उसका उचित रीतियोंसे खण्डन करना चाहिये।...मिश्रजी बीबी बिसेंटकी हिमायत करते हैं, और सेंट्रल हिन्दू कालिजके विरुद्ध लिखनेसे नाराज हुए हैं, पर धर्मको हिन्दू, मिश्रजीके कहनेसे नहीं छोड़ सकते। इस देशमें सात सौ वर्ष मुसलमान लोग राज्य कर गये हैं, कितना ही धर्म-विप्लव हो चुका है, धर्मपर दृढ़ रहनेवालोंके सिर पर तलवारें चल चुकी हैं, तब भी वह नहीं मिटा। इस अगरेजी (शासन) में भी अभी वह बना हुआ है और हम आशा करते हैं कि, बहुत दिन तक वह बना रहेगा। कुछ ऐसा विशेषत्व हिन्दू धर्ममें है कि जिससे यह कितनी ही विपत्तियां झेलकर भी बना रहता है। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है कि, हिन्दुओंका राज्य नहीं है, पर हिन्दू-धर्म है। संसारमें जिनका राज्य गया उनका धर्म साथ-साथ ही चला गया। हिन्दू-धर्म दो बार भिन्न धर्मियोंसे विजित होने तथा कोई एक हजार वर्ष पराधीन रहनेपर भी जीवित है, उसे क्या मिश्र महाशय एक हिन्दूके हृदयसे उसका एक अढ़ाई रुपये मालका कागज न खरीदकर मिटवा देना चाहते हैं?"*

* * *

'हिन्दुस्तानी' लखनऊके प्रसिद्ध देशभक्त बाबू गङ्गाप्रसाद वर्माजीका उर्दू पत्र था। अपने उर्दू-अखबारोंके वर्णन-क्रममें उक्त 'हिन्दुस्तानी' पत्रके गुणोंका उल्लेख करते हुए गुप्तजीने लिखा है—

* भारतमित्रमें प्रकाशित—'धर्म-धर्मका शोर' शीर्षक लेखसे १९०४।

"जो अखबार मुसलमानोंके हाथमें हैं वह मुसलमानोंकी व्यर्थ हिमायत करके हिन्दुओंको गालियां दिया करते हैं, उससे मुसलमानोंका कुछ लाभ नहीं होता। हां, हानि खूब होती है। क्योंकि उससे मुसलमानोंका हिन्दुओंकी ओरसे और हिन्दुओंका मुसलमानोंकी ओरसे जी खट्टा होता है। इसी प्रकार हिन्दुओंके कुछ पत्र मुसलमानोंके कुछ-न-कुछ विरुद्ध लिखा करते हैं। अपनी समझमें वह ऐसा करके हिन्दुओंके साथ कुछ मित्रता करते होंगे पर असलमें वह हिन्दुओंके दुश्मन हैं।"

महात्मा गांधीसे आरंभकर राजेन्द्र-नेहरू-पटेल तक — हमारे वर्तमान राष्ट्रिय कर्णधार भी यही कहते आरहे हैं।

समाज-सुधारके नामपर विदेशी भावापन्न राजनीतिक नेताओं द्वारा हिन्दू-जातिके आचार-विचारकी अन्धाधुन्ध दोषोद्भावन पूर्वक जो आलोचना होती है, उसको गुप्तजी अनुचित समझते थे। इस सम्बन्धमें वे लिख गये —

"जिस जातिका सुधार करना है, उसकी आँखोंमें आदर पाये विना कोई सुधारक सफल मनोरथ नहीं हो सकता। "हिन्दुस्तानी" में भारतके धर्म और समाजकी जिस ढंगसे आलोचना होती है, उससे ठीक यही जान पड़ता है कि उसका सम्पादक हिन्दुओंसे कुछ सहानुभूति नहीं रखता, और हिन्दुओंके धर्म और समाजके विषयमें उसका उतना ही ज्ञान है, जितना भारतमें बैठे हुए किसी युरोपियनका। सब अपने-अपने धर्मकी इज्जत करते हैं। सर सैयद अहमदखांने मुसलमान धर्मके विषयमें कितने ही खयाल जाहिर किये, पर मसजिदकी इज्जत उनके कालिजमें वैसी ही है। मुसलमान सब एक हैं और समय पर एक दूसरेकी हिमायतको तैयार हैं। अगरेजों-में कितने ही लोग कितनी ही तरहका विचार रखते हैं, पर चर्चकी इज्जतके समय सब एक हो जाते हैं।......जो लोग समाजमें साथ खड़े हो सकते हैं, वही तलवार लेकर भी साथ खड़े हो सकते हैं और वही सब जगह साथ दे सकते हैं। जो धर्म और समाजमें साथी नहीं—वह राजनीतिमें साथी होकर क्या कर सकते हैं?...जो लोग

हिन्दुओंके धर्म और समाज सम्बन्धी भावोंकी अवज्ञा करके हिन्दुओंका सुधार करना चाहते हैं, उनका श्रम कहांतक सफल हो सकता है, यह उनके विचारनेकी बात है ?"

पैसा अखबारकी नीति मुसलमानोंके अनुचित-उचितके विचार बिना उनकी हिमायत करनेकी थी—इसपर गुप्तजीने उसके सम्पादकको लक्ष्य कर लिखा—

"हम यह नहीं कह सकते कि वह मुसलमानोंकी शुभचिन्तना न करें और उनकी उन्नति न चाहें, किन्तु उनकी हिमायत करते समय न्यायको हाथसे न जाने दें। ऐसा काम न करें कि जिससे मुसलमान हिन्दुओंसे भड़कें और घृणा करें। अन्याय चाहे हिन्दूकी ओरसे हो, चाहे मुसलमानकी,—उसकी निन्दा करना चाहिये और न्यायकी सदा तरफदारी करना चाहिये। न्यायको दबाना और अन्यायको आश्रय देना शिक्षित लोगोंका काम नहीं।"

* * *

आर्यावर्त्त' आर्य समाजी सज्जनों द्वारा सञ्चालित कलकत्तेका एक पुराना साप्ताहिक पत्र था। उस समय आर्यसमाजी भाई 'हिन्दू' नामसे चिढ़ा करते थे। 'आर्यावर्त्त' जब तब भारतमित्रसे छेड़-छाड़ करता रहता था। एक बार किसी प्रसङ्गमें वह 'भारतमित्र' नामके अर्थको लेकर धर्मकी बात पूछ बैठा था। उत्तरमें 'हमारा धर्म' शीर्षक लेख लिखकर तत्काल गुप्तजीने स्व-सिद्धान्तकी घोषणा यों की थी :—

'भारतमित्र भारतवर्षका कागज है। भारतवर्ष हिन्दुओंका देश है हिन्दुओंकी इसमें प्रधानता है। हिन्दुओंने ही भारतमित्रको जन्म दिया है। जिन लोगोंने इसे चलाया है, वह हिन्दू हैं और जो इसको लिखते हैं, वह भी हिन्दू हैं, इसीसे भारतमित्र हिन्दुओंका तरफदार है और वह तरफदारी किसी मजहबवालेसे लड़ाई करके नहीं, दूसरे मजहबको अपने मजहबमें मिलानेके लिये नहीं, केवल हिन्दुओंकी मुल्की, माली और राजनीति तरफदारी है। भारतमित्र चाहता है कि हिन्दू स्वधर्ममें सावधान रहें, उनका वाणिज्य बढ़े, धन-सम्पत्ति बढ़े और सर्वत्र उनकी प्रतिष्ठा हो, सब प्रकार

स्वत्वकी रक्षा हो। 'आर्यावर्त्त' को स्मरण रखना चाहिये कि, भारतमित्र मजहबी पत्र नहीं है। राजनीतिक पत्र है। हिन्दीका प्रचार और राजनीतिक चर्चा इसके प्रधान उद्देश्य हैं। धर्मका आन्दोलन करना इसकी पालिसी नहीं है। पर जरूरत पड़ने पर उसमें शरीक होना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। यही चाल इसकी आरम्भसे अबतक है। जिसकी जो चाल है, उसीपर चलनेसे उन्नति होती है। उसके बिगड़नेसे बहुत भारी हानि होती है। यह एक अटल सिद्धान्त है। पर दुःख है कि हिन्दुओंमें कुछ लोग इस सिद्धान्तसे विचलित होकर अपनेको कमजोर बना रहे हैं। क्या मुसल्मान, क्या कृस्तान, सब अपनी-अपनी चालपर चलते हैं, अपने-अपने धर्मका आदर करते हैं अपनी-अपनी धर्म-सम्बन्धी बातोंपर दृढ़ हैं, केवल हिन्दू ही भटकते हैं। यह कैसे दुःखकी बात है? संसारमें जितने सभ्य देश हैं, वहांके अखबार अपने देश व जातिके लोगोंका पक्ष करते हैं। हिन्दुस्थानमें ही "पायनियर" और "इगलिशमैन" आदि पत्रोंको देखिये वह अगरेज जातिके किस प्रकार तरफदार हैं। पोलिटिकल रीतिसे जो कुछ तरफदारी स्वजातिकी करनी चाहिये सो वह करते हैं। कहिये हम उनको किस बातमें क्या दोष दे सकते हैं? स्वजाति प्रेम; स्वदेशानुराग मनुष्यका धर्म है। हम एक बात अपने सहयोगी 'आर्यावर्त्त' से कहते हैं। वह यह है कि यदि आपके भी कोई देश हो, आपके भी कोई जाति हो, आपके भी कोई धर्म हो और उस धर्ममें कुछ भी श्रद्धाभक्तिकी बात हो तो उसका पालन कीजिये, उसकी तरफदारी कीजिये हम उसकी प्रशंसा करेंगे और हमारे लिये भी आशीर्वाद कीजिये कि हम अपने धर्ममें सदा पक्के रहें।"*

गुप्तजीकी भारतमित्रके सम्पादन-कालकी साहित्यिक गति-विधि किंवा आठ-साढ़े आठ वर्षकी साहित्य-साधनाका यह संक्षिप्त दिग्दर्शन है।

---

* भारतमित्र सन् १९०० ई०।

[११]

रोग और महाप्रयाण

कलकत्तेके अस्वास्थ्यकर जल-वायु और अत्यधिक मानसिक परिश्रमने अन्तमे गुप्तजीके स्वस्थ और हृष्ट-पुष्ट शरीरको सदाके लिये निर्बल और रोगी बना दिया था। पहले उनकी पाचन शक्ति बिगडी, जिसके परिणाममें कब्जके लक्षण प्रकट हुए। तत्पश्चात् बवासीरकी बीमारी पैदा होगई। गुप्तजीके परिचित मित्रोंमेंसे कई एक सद्वैद्य थे, यथा—प० कन्हैयालालजी वैद्य, प० चिरंजीलालजी वैद्य आदि। सब अपनी-अपनी ओषधियोंका प्रयोग करते रहे। उन्हीं दिनों बिहारके अनुभवी विद्वान् चिकित्सक और साहित्य-सेवी प० चन्द्रशेखरधर मिश्र कलकत्ते आये हुए थे। वे भी गुप्तजीके मित्र थे, उनकी चिकित्सा आरंभ हुई, फिर कविराज ज्योतिर्मयजीकी और तदनन्तर कविराज गणनाथ सेनजीकी, किन्तु व्याधि बढी,—घटी नहीं। रक्ताल्पताके साथ दुर्बलता अत्यधिक बढ गयी। अनन्तर डाक्टरी इलाज शुरू हुआ, पर उसका भी कोई विशेष फल प्रकट नहीं हुआ, शरीर सूख गया और आखें चिलकने लगीं। उस स्थितिमे डाक्टरोंकी राय हुई कि जल-वायु बदलनेके लिये इनको पश्चिम ले जाया जाय। अपनी इस चिन्तनीय दशाका समाचार गुप्तजीने पत्र द्वारा प० दीनदयालुजीको भेजा। उनका तुरन्त उत्तर आया। वे उस समय शिमलेमे थे। उन्होंने लिखा :—

शिमला ३१ अगस्त १९०७

प्रियवर बाबू बालमुकुन्दजी,

आशीर्वाद ! आपका पत्र प्रिय नवलकिशोरका लिखा हुआ पहुंचा । सब हालात मालूम होगये । कल जन्माष्टमी व्रत था, इस वास्ते जवाब नहीं लिखा । आज आपको भगवानके जन्मोत्सवकी बधाई देता हूं । मेरे जीवनमें यह ४५ वीं जन्माष्टमी है । सब सुख है, केवल आज आपके शरीरका ही फिक्र है, उसीके लिये इस जन्मके उत्सवमें उनसे आपकी तन्दुरुस्तीके लिये प्रार्थना कर रहा हूं । यह सारा ही महीना भगवान्से आपके निमित्त गिड़गिड़ाते बीत गया तो क्या वह हमारी न सुनेंगे ? जरूर सुनेंगे । इलाजमें सुस्ती और बेपरवाही न कीजिये । कंजूसी छोड़कर इलाज कीजिये और "एक तनदुरुस्ती हजार नेमत"—इस मशहूर मसलेको अब बकीया जिन्दगीका सुख-साधन समझिये । न कोई इस जमानेमें शागिर्द है, न भाई है, न बेटा है । हैं तो सच्चे सहायक भगवान् ही हैं । उनकी ही शरण लेना उचित है । मैंने सोच-समझकर अपने मनमें यही निश्चय किया है कि इधरसे फारिग होकर मैं कलकत्ते ही आजाऊंगा और अब आपको कलकत्तेसे ले आऊंगा । रोटीके लिये अधिक इस मनुष्यदेहके असली मकसदसे महरूम रह जाना भूल है । बस, आप इलाज करके कलकत्तेसे इधर आने लायक होजायँ । प्रिय विश्वम्भरदयालको आशीर्वाद । चि० नवलकिशोर, मुरारीलाल, रघुनंदन—तीनोंको प्यार ।

आपका

दीनदयालु शर्मा

पंडितजीके उक्त पत्रको पढ़कर गुप्तजीने कलकत्तेसे बाहर जाना निश्चय कर लिया । स्वास्थ्य दिनों दिन गिरता जा रहा था । वे कलकत्तेके निकटवर्ती स्वास्थ्यप्रद स्थान वैद्यनाथ जानेको उद्यत हुए । उनकी उस समयकी शारीरिक स्थिति उन्हींके शब्दोंमें उनकी डायरीमें इस प्रकार अङ्कित है :—

"२० अगस्त सन् १९०७, मंगलवार—खाटपर पड़े-पड़े दिन जाता है, भूख है न प्यास है, न दस्त ही होता है। दिन भर पानी पड़ता रहा। तेज हवा चलती रही। किवाड़ बन्द रखने पड़ते हैं। न कुछ रुचता है न पचता है.........आज बहुत दिन पीछे डायरीके हाथ लगाया। सवेरे तबियत खराब थी। दोपहरे कुछ अच्छी।"........

इसके बाद ता० २ सितम्बर, सोमवारको लिखते हैं :—

"आज वैद्यनाथ आब-हवा बदलनेको जानेकी तय्यारी है। असबाब लाला* और छेदी मियाँ बाँध रहे हैं। सब लोगोंको उनका कर्त्तव्य समझा दिया। दशा बहुत ही थोदी होने पर भी तबियत पर कुछ फुरती है।......बहुतसे मित्र मिलने आये। ८॥ बजे रेलपर पहुँचे। लाला ज्ञानीराम और रुइयोंकी गाड़ी थी। गाड़ी (ट्रेनका डब्बा) खाली मिल गई। रामकुमार गोइनका तथा प० कन्हैयालाल वैद्य, मानमलजी रुइया सहित मिलने आये।"

दूसरे दिन गुप्तजी वैद्यनाथ धाम पहुँच गये। वहां पहुँच जानेके पश्चात् उन्होंने अपनी डायरीमें तीन दिनका हाल क्रमानुसार यों लिखा है :—

३ सितम्बर मंगलवार—

"६ बजेसे कुछ पीछे गाड़ी वैद्यनाथ जङ्कशन पहुंची। साथ एक जमादार रुइयोंका, धन्नू कहार और एक रसोइया ब्राह्मण। सवेरेसे ६ बजे तक दोनों ओर धानके खेतोंकी शोभा अच्छी थी। वैद्यनाथ स्टेशनपर उतरे तो थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी। पुल पार होकर किसी तरह धर्मशाला तक पहुँचे। वेदम हो गये। गजब यह हुआ कि ऊपरका मकान, जिसमें उतरना था रुका पाया। बैजनाथ केडिया उसमें उतर रहा था, जिसकी वेमुरव्वती प्रसिद्ध है। दिन भर वेदम पड़े रहे।

* अपने बड़े पुत्र श्रीनवलकिशोरको गुप्तजी प्यारसे 'लाला' कहकरही पुकारते थे।

एक दो पत्र लिखे। सन्ध्याको थोड़ी दूर टहलने गये। लौटते बेदम हो गये।"

× × ×

५ सितम्बर बृहस्पतिवार,—

"(वैद्यनाथ) सवेरे जंगलकी तरफ गये।......कलकत्तेकी डाक मिली। दो 'हितवादी', एक चन्दूलालका कार्ड तथा एक ज्ञानीरामजीका पत्र मिला। एक कार्ड कलकत्ते भेजा। सन्ध्याको तबीयत भारी थी। कुछ नहीं खाया।"

६ सितम्बर शुक्रवार—

"धर्मशालासे पीछेकी पहाड़ी पर जगल गये। जाते चले गये, पर आते दो जगह बैठना पड़ा। स्नान कल भी तेल लगाकर ठंडे जलसे किया था और आज भी। जीपर कुछ फुरती है। पर भूख, और अरुचि वैसी ही है। सन्ध्याको जी खराब रहा। ४ बजे बाबू रामचन्द्र पोद्दार मिलने आये। एक और सज्जन साथ थे। उनके साथ चटर्जीके बगीचे गये। रात खटमलोंके कारण विना निद्रा बड़े कष्टसे कटी।"

इसके आगे डायरीके पृष्ठ खाली हैं। मालूम होता है वक्त ६ सितम्बरका उल्लेख ही गुप्तजीकी डायरीका अन्तिम, हस्ताक्षराङ्कित पृष्ठ है। इसके बाद उन्हें डायरी लिखनेका अवसर नहीं मिला।

आरोग्य-लाभ करनेके लिये कमसे कम महीने भर वैद्यनाथ-धाम ठहरनेका विचार निश्चित कर गुप्तजी वहाँ गये थे, किन्तु उनकी तबीयत वहाँ लगी नहीं और जब स्वास्थ्यमें सुधार होनेका उन्हें कोई ढंग दिखाई नहीं दिया, तब उनका मन अपने घरकी तरफ दौड़ा और इच्छा हुई, कि देश ही चलना चाहिये। तदनुसार उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र बाबू नवलकिशोरको अपनी अभिलाषाकी सूचना दे दी, और दिल्लीके

लिये तैयार होकर आनेको लिख दिया। बैद्यनाथ जङ्क्शनसे भेजा हुआ उनका ता० ११-६-१६०७ का एक कार्ड बाबू नवलकिशोरके नाम है, जिसमें वे लिखते हैं :—

"कल २ बजे रातको तुम यहाँ पहुँचोगे, मैं तैयार प्लेट फार्मपर मिलूँगा। जहाँ तक बनेगा, यही इन्तजाम रहेगा। कुछ गड़बड़ हुई तो धन्नू मिलेगा, उतर पड़ना। और क्या लिखूं, असीस—बालमुकुन्द गुप्त"

पिताके आदेशानुसार बाबू नवलकिशोर अपने भाई मुरारीलाल एवं रघुनन्दनलाल सहित कलकत्तेसे रवाना हुए। ट्रेन बैद्यनाथ जङ्क्शन रातको दो बजे पहुँची। वहाँ गुप्तजी अपने सेवक धन्नू तथा रसोइया सहित तैयार मिले और गाड़ीमें सवार हो गये। मिलनेकी उत्सुकतासे मुन्शी दयानारायणजी निगम भी कानपुर स्टेशन पर उपस्थित थे। उन्हें सूचना दे दी गई थी। गुप्तजीके साथ हुई अपनी उस अन्तिम भेटका हाल निगम साहबने अपने संस्मरणमें बड़ी मार्मिकताके साथ लिखा है।*

दिल्ली पहुँचनेपर गुप्तजीको उनके ससुरालवालोंने गुड़ियानी नहीं जाने दिया और एक हकीम साहबसे इलाज करानेके लिये उन्हें दिल्लीमें ही रोक लिया। लाला लक्ष्मीनारायणकी धर्मशाला उस समय नयी बनकर तैयार हुई थी। उसमें ठहरनेकी व्यवस्था की गई। इलाज शुरू हुआ, किन्तु कोई लाभ दिखाई न दिया और अन्तमें भाद्रपद शुक्ला ११ बुधवार संवत् १६६४ (ता० १८ सितम्बर १६०७) को गुप्तजीका स्वर्गवास हो गया। अन्तिम समयमें उनके मध्यम भ्राता और ज्येष्ठ पुत्र आदि उपस्थित थे, थोड़ी देर पहले पण्डित दीनदयालजी शर्मा भी

* पढ़िये इसी ग्रन्थके 'संस्मरण और श्रद्धाञ्जलि' भागमें स्वर्गीय निगमजीका लेख।

पहुँच गये थे। पण्डितजीने भारतमित्रके सहायक सम्पादकको अपने पत्रमें लिखा :—

…"मैं जिस वक्त पहुँचा तो मालूम हुआ कि जबसे गुप्तजी यहाँ आये हैं, मुझको खूब याद कर रहे हैं। मेरे पहुँचनेपर उनका अन्तःकरण खुश हो गया, चरण छूकर हाथ जोड़े। कमजोरी अजदह थी और गशी शुरू थी, प्रेमसे दो-चार दफे अपने हाथ मेरे गलेमें डाले। ताकत गुफ्तार न थी, एक-दो दफे जो कहना था, कहा। गंगाजल पीनेका वक्त था, वही पिलाया गया। मैं १२ बजे उनके पास आया और पांच बजे उन्होंने हमेशाके लिये हमसे रुखसत हासिल की। रंजका अन्त नहीं है। मेरा कूवत बाजू—टूट गया। ज्यादा मैं इस वक्त कुछ नहीं लिख सकता।"………(१९।९।०७)

गुप्तजीके असामयिक महाप्रयाणका दुःखद समाचार 'भारतमित्र' ने २१ सितम्बर, १९०७ को सवेरे शोक-सूचक काला बार्डर देकर इन शब्दोंमें प्रकाशित किया था :—

"बृहस्पतिवार ता० १९ सितम्बरको १० बजे एकाएक दिल्लीसे गुप्तजीके मित्र पण्डित नानकचन्द्रजी वैद्यका भेजा हुआ तार मिला—'शोक है कल सन्ध्याके ५ बजे बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी मृत्यु हो गई।'

इस तारको पढ़कर हमलोग अवाक् हो गये। क्या कहें ? जिन्होंने हिन्दी बङ्गवासी छोड़नेके बाद भारतमित्रको चलाकर अपनी ओजस्विनी लेखनीके प्रभावसे हिन्दी समाचार पत्रोंमें सर्वोच्च आसनका अधिकारी बना दिया, जिनकी आडम्बर रहित सरल और मधुर भाषापर हिन्दीके पाठक मुग्ध थे, जिनके फड़कते हुए लेखोंने देश, समाज और भाषाका बहुत कुछ उपकार और सुधार किया, अगणित हिन्दी पाठक पैदा किये, जिनकी हँसीसे भरी हुई रायें और कविताएँ पढ़कर लोग लोटपोट हो जाते थे, जिनके उर्दू लेख अपने सामयिक पत्रोंमें छापकर धन्य होनेके

लिये उर्दूके बड़े लायक एडीटर तरसते और तकाजेपर तकाजा भेजते थे, जो तीव्र और व्यङ्ग भरी आलोचना लिखनेमें सिद्धहस्त थे, जिनको खरी कहनेमें किसीकी परवा न थी, जो साहित्य सेवा, धर्म सेवा और देश-सेवाको ही अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे, जिन्होंने अपनी अवस्थाका अधिकांश इन्हीं कामोंमें बिताया और भविष्यमें जिनसे बड़ी आशा थी, आज वही हिन्दी और उर्दू भाषाके सुकवि, सुलेखक और समालोचक बाबू बालमुकुन्द गुप्त केवल ४२ सालकी अवस्थामें इस असार संसारको छोड़ गये! हिन्दी साहित्य-रूपी वनमें सिंहकी तरह विचरण करनेवाला पुरुष अपना नश्वर शरीर त्यागकर परमात्मामें लीन होगया। गुप्तजीकी जीवनीमें बहुत कुछ सुनने, समझने और सीखनेकी बातें हैं। उनकी हास्यमयी मूर्ति आंखोंके सामने नाच रही है। उनकी गुणावली और उनका स्वभाव याद करके हृदय अधीर हो रहा है और लेखनीको आगे बढ़ने नहीं देता।"………

* * *

गुप्तजीके निधनपर केवल हिन्दी पत्रोंने ही नहीं, अंगरेजी और बँगला समाचारपत्रोंने भी शोक प्रकट किया था और अनेक नेताओं, सार्वजनिक सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक सभाओंने तार और पत्रों द्वारा समवेदना-सन्देश भेजकर गुप्तजीके शोक-संतप्त परिवारके प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की थी।

पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदीने 'सरस्वती' (भाग ८ संख्या ११) में लिखा था—

"२० सितम्बरके श्रीवेंकटेश्वर समाचारमें पढ़ा कि १८ सितम्बरको भारतमित्रके सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्तका देहलीमें शरीरान्त होगया। इस हृदयदाही समाचारको पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। बालमुकुन्दजी हिन्दीके प्रतिष्ठित लेखकोंमें थे। उनके न रहनेसे हिन्दीकी बहुत बड़ी हानि हुई।"

"स्टेट्समैन" ने लिखा था—

"गुप्तजी बड़े अनुभवी और सुयोग्य लेखक थे। गत २० वर्षसे पत्र-सम्पादन कार्य करते थे। हिन्दी भाषाकी उन्नतिके सम्बन्धमें उनकी चेष्टाएँ बहुत कुछ सफल हुई हैं।

"इण्डियन मिरर" ने लिखा था—

"कलकत्तेके बड़े बाजारके पिछड़े हुए हिन्दुस्थानी समाजका सुधार करनेके लिये गुप्तजी शक्तिभर प्रयत्न करते रहे। हिन्दीके लिये भी उन्होंने बड़ा परिश्रम किया। वे सीधी-सादी चालके आदमी थे। अपना काम चुपचाप किये जाते थे। उनके लिये धूम मचाना उन्हें पसन्द नहीं था। उनकी असमय मृत्युसे जो हानि हुई है वह कदापि पूरी नहीं हो सकती। बड़ा बाजारके मारवाड़ी और हिन्दुस्थानी समाजके, जिनके सुधार और शिक्षाका उन्हें इतना खयाल था, उनकी यादगारमें कुछ अवश्य करना चाहिये। मारवाड़ी एसोशियेसनके वह एक बड़े परिश्रमी सदस्य थे।"

महामना पं० मदनमोहनजी मालवीयने अपने 'अभ्युदय' में लिखा था :—

"इस दुःखके समाचारको लिखते हमारा हृदय विदीर्ण होता है, कि हमारे प्रिय मित्र, हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध लोकप्रिय लेखक, हिन्दी समाचारपत्रोंमें रत्न भारतमित्रके सम्मानित सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त, जिनके चोटीले और गम्भीर सरस और कठोर व्यङ्गसे भरे और प्रौढ़ लेखोंको पढ़कर हिन्दी भाषाके प्रेमी आनन्दित होते थे, १८ सितम्बरको देहलीमें थोड़ी ही अवस्थामें समाप्त हो गये। कलकत्तेके दूषित जलवायुने हमारे मित्रका स्वास्थ्य कुछ दिनोंसे खराब हो गया था। अभी पन्द्रह दिन हुए वे स्वास्थ्य-सुधारके विचारसे दिल्ली गये थे। किन्तु औषधियोंने गुण नहीं किया और वे अपने प्रिय पुत्रोंको, अपने कुटुम्बको और अनेक मित्र और प्रशंसा करनेवालोंको दुखी छोड़कर संसारसे विदा हो गये। बाबू बालमुकुन्दने जिस प्रकारसे समाचारपत्रों द्वारा अपने देशकी सेवा की है, यह बहुत लोगोंको विदित है। जहाँ तक हमें मालूम है, इस समय कुल हिन्दुस्थानमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त ही एक ऐसे पुरुष थे जो उर्दू और हिन्दी, दोनों भाषाओंमें समान योग्यताके साथ लेख लिखते

"हितवादी" (बँगला) ने लिखा—

"हिन्दी पत्र भारतमित्रके सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त महाशयके अचानक परलोक-गमनका समाचार सुनकर हमें अत्यन्त शोक हुआ। गुप्त महाशय गत तीन महीनेसे अर्श-रोगाक्रान्त थे। चिकित्सकोंके परामर्शसे वे जलवायु परिवर्तनार्थ पहले वैद्यनाथ-देवघर गये, किन्तु वहां जानेपर दुर्बलता बढ़ जानेसे दिल्ली चले गये। वहां हकीमसे इलाज कराते थे, किन्तु उससे भी फल कुछ न हुआ। गत १८ वीं सितम्बर बुधवारके सायंकाल ५ बजे उनका प्राणवायु प्रयाण कर गया। गुप्त महाशय हिन्दी और उर्दू भाषाके सुकवि, सुलेखक और सुसमालोचक थे। उनके समान सुदक्ष सम्पादक हिन्दी-साहित्य संसारमें नितान्त दुर्लभ है। उन्होंने पहले कालाकांकरके 'हिन्दोस्थान' दैनिक पत्रके सहकारी रूपसे हिन्दी-साहित्य और राजनीतिक क्षेत्रोंमें प्रवेश किया। इसके पूर्व कई एक उर्दू पत्रोंकी सम्पादकता करके यशस्वी हो चुके थे। कुछ वर्षों उन्होंने हिन्दी बङ्गवासीके सहकारी सम्पादकका कार्य भी किया था। सन् १८९९ ई० से वे भारतमित्रके सम्पादक थे। इस समयसे असाधारण रचना और निर्भीक आलोचनासे उनकी यशोराशि चारों ओर प्रसारित हुई। उनकी चेष्टासे भारतमित्रकी अभावनीय उन्नति हुई। भारतमित्रमें उनकी मधुर-हास्य-रसपूर्ण कविता, तीव्र व्यङ्गपूर्ण रचना, अपक्षपात कठोर समालोचना और गाम्भीर्यपूर्ण ओजस्विनी प्रबन्धावली पढ़कर उनके विरोधी पक्षको भी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करनी पड़ती थी। स्वदेशके प्रति उनकी प्रीति असाधारण थी। स्वदेशी आन्दोलनके वे बड़े पक्षपाती थे। स्वदेश और हिन्दी-साहित्यकी सेवामें उन्होंने जीवनका अधिकांश समय व्यतीत किया है। उनकी चेष्टासे हिन्दी परिपुष्ट और परिष्कृत हुई और हिन्दी साहित्यके प्रति बहुत लोगोंका अनुराग बढ़ा है। विनय, प्रेम, सत्यनिष्ठा, तेजस्विता प्रभृति गुणोंसे वे विभूषित थे।"*

"अमृतबाजार पत्रिका" ने गुप्तजीको हिन्दी और उर्दूका एक निडर लेखक बताते हुए लिखा था—"भारतमित्रने जो इस समय हिन्दी समाचार-पत्रोंमें सर्वोच्च पद प्राप्त किया है, यह गुप्तजीके अविरत परिश्रमका फल है।"

* मूल बङ्गलासे भाषान्तरित।

"स्टेट्समैन" ने लिखा था—

"गुप्तजी बड़े अनुभवी और सुयोग्य लेखक थे। गत २० वर्षसे पत्र-सम्पादन कार्य करते थे। हिन्दी भाषाकी उन्नतिके सम्बन्धमें उनकी चेष्टाएँ बहुत कुछ सफल हुई हैं।

"इण्डियन मिरर" ने लिखा था—

"कलकत्तेके बड़े बाजारके पिछड़े हुए हिन्दुस्थानी समाजका सुधार करनेके लिये गुप्तजी शक्तिभर प्रयत्न करते रहे। हिन्दीके लिये भी उन्होंने बड़ा परिश्रम किया। वे सीधी-सादी चालके आदमी थे। अपना काम चुपचाप किये जाते थे। उनके लिये धूम मचाना उन्हें पसन्द नहीं था। उनकी असमय मृत्युसे जो हानि हुई है वह कदापि पूरी नहीं हो सकती। बड़ा बाजारके मारवाड़ी और हिन्दुस्थानी समाजको, जिनके सुधार और शिक्षाका उन्हें इतना खयाल था, उनकी यादगारमें कुछ अवश्य करना चाहिये। मारवाड़ी एसोशियेसनके वह एक बड़े परिश्रमी सदस्य थे।"

महामना पं० मदनमोहनजी मालवीयने अपने 'अभ्युदय' में लिखा था :—

"इस दु:खके समाचारको लिखते हमारा हृदय विदीर्ण होता है, कि हमारे प्रिय मित्र, हिन्दी भाषाके प्रसिद्ध लोकप्रिय लेखक, हिन्दी समाचारपत्रोंमें रत्न भारतमित्रके सम्मानित सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त, जिनके चोटीले और गम्भीर सरस और कठोर व्यङ्गसे भरे और प्रौढ़ लेखोंको पढ़कर हिन्दी भाषाके प्रेमी आनन्दित होते थे, १८ सितम्बरको देहलीमें थोड़ी ही अवस्थामें समाप्त हो गये। कलकत्तेके दूषित जलवायुसे हमारे मित्रका स्वास्थ्य कुछ दिनोंसे खराब हो गया था। अभी पन्द्रह दिन हुए वे स्वास्थ्य-सुधारके विचारसे दिल्ली गये थे। किन्तु औषधियोंने गुण नहीं किया और वे अपने प्रिय पुत्रोंको, अपने कुटुम्बको और अनेक मित्र और प्रशंसा करनेवालोंको दुखी छोड़कर संसारसे विदा हो गये। बाबू बालमुकुन्दने जिस प्रकारसे समाचारपत्रों द्वारा अपने देशकी सेवा की है, वह बहुत लोगोंको विदित है। जहाँ तक हमें मालूम है, इस समय कुल हिन्दुस्थानमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त ही एक ऐसे पुरुष थे जो उर्दू और हिन्दी, दोनों भाषाओंमें समान योग्यताके साथ लेख लिखने

थे। पहिले वे 'अवधपंच' और 'हिन्दुस्थानी'में लेख लिखा करते थे। और अब पिछले समयमें भी उर्दूके 'मखजन' और 'जमाना' ऐसे प्रतिष्ठित रिसालोंमें उनके लेख छपा करते थे। वे उर्दूमें भी वैसी ही सरल और सरस कविता करते थे जैसी हिन्दीमें।

जबसे भारतमित्रको बाबू बालमुकुन्दने अपने हाथमें लिया तबसे उस पत्रकी दिन दिन उन्नति होती गई और अब हिन्दीके समाचार पत्रोंमें भाषाके सरल सरस और शुद्ध होनेमें कोई पत्र भारतमित्रकी बराबरी नहीं करता। गवर्नमेंटकी कारवाई पर वे बुद्धिमानी और निडरता, किन्तु सज्जनताके साथ समालोचना करते थे। मनुष्योंको गंभीरता और उपहाससे उनके दोषोंको सुझाते और उनके छोड़नेका उपदेश करते थे। अभिमानी, पाखण्डी और स्वार्थी जनोंका निर्दयताके साथ भण्ड खोलते थे और उनकी चाल और जालसे प्रजाको सचेत करते थे।

बाबू बालमुकुन्दने बड़ी सचाई, योग्यता और प्रतिष्ठाके साथ २५ वर्ष तक सम्पादकताका कार्य किया है। उनके लेखोंका एक अच्छा उदाहरण प्रसिद्ध 'शिवशम्भुका चिट्ठा' है, जिसमें उन्होंने लार्ड कर्जनके अनुशासन और सचाईकी ऐसी आलोचना की थी, जिनके प्रकाश होनेपर धूम मच गई थी—और जिसका अंगरेजीमें भी अनुवाद हुआ था। ऐसी विशिष्ट योग्यताके लेखक और सच्चे देश हितैषीका थोड़ी अवस्थामें हमलोगोंके बीचमेंसे चला जाना हिन्दी भाषा और देशका अभाग्य है। बाबू बालमुकुन्दके कुटुम्बके साथ हम बड़े दुःखके साथ सहानुभूति प्रकाश करते हैं।"

भारतमित्र, सुधानिधि और उचितवक्ता आदि पत्रोंके जन्मदाता पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्रने अपने 'मारवाड़ी-बन्धु'में लिखा था :—

"आज हमारे शोक और सन्तापकी सीमा नहीं है। हम यह प्रकट करते अत्यन्त खिन्न और विषण्ण होते हैं कि हमारे परम प्रिय वात्सल्यभाजन बालमुकुन्द गुप्त ४२ वर्षकी अवस्थामें इस असार संसारको त्यागकर सुरपुर सिधार गये। इनकी मृत्युमे

महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय

हमलोगोंको निज-परिजनकी मृत्युका-सा क्लेश प्राप्त हुआ है, उसे हम लेखनी द्वारा प्रकट करनेमें असमर्थ हैं। ये बडे ही धीर, गम्भीर, सुशील और सत्साहसी थे। बाल्यावस्था ही से इनको साहित्यानुराग था। ये उर्दू-फारसीके अच्छे पंडित थे। हिन्दी साहित्य-क्षेत्रमें आनेके पूर्व ये उर्दू लिखा करते थे। अनन्तर ये स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्रके सत्संगसे हिन्दीके प्रेमी बन गये। तदनंतर "हिन्दी-बङ्गवासी" के सहकारी सम्पादक बनकर यहाँ आये और कई वर्षों तक बड़ी योग्यतासे उक्त पत्रका सम्पादन करते रहे। यहाँ आनेके दो-चार दिन पीछे ये भूतपूर्व "हिन्दी-बङ्गवासी"—सम्पादक स्वर्गीय पं० प्रभुदयालु पाण्डेके साथ हमसे मिलने आये। यहींसे हमलोगोंके साथ इनका गाढ़ा परिचय हुआ। इनको रहनेके स्थानकी तंगी सुनकर हमलोगोंने अपने यहां बुला लिया। ये हमलोगोंके यहां अन्यान्य स्वजनोंकी भाँति रहने लग गये। हमारे यहां ये प्रायः चार वर्ष तक रहे। इनमें सबसे-बढ़कर यह गुण था कि जिस किसीको अपनाते थे, उसका साथ कभी नहीं छोड़ते थे। जब "हिन्दी-बङ्गवासी" वालोंसे पं० दीनदयालु शर्माकी खटक गई और बङ्गवासीके धर्मभवनके विषयमें मतान्तर हो गया, तब इन्होंने बङ्गवासीसे चट सम्बन्ध त्याग दिया। अनन्तर 'भारतमित्र' का सम्पादकत्व ग्रहण करके मृत्युके कुछ काल पूर्व तक बड़ी योग्यतासे सम्पादन करते रहे। इनकी भाषा बड़ी सरल, सरस और मधुर होती थी। व्यङ्ग और कटाक्षसे भरे लेख लिखनेकी इनमें अनूठी शक्ति थी। शोक है कि थोड़ी ही अवस्थामें ये चल बसे!"

'विहार बन्धु' (बांकीपुर) ने लिखा था :—

"बाबू बालमुकुन्द गुप्त इस संसारसे उठ गये, किन्तु वह अपनी ओजस्विनी लेखनीसे हिन्दी साहित्य-संसारमें अमर हैं। जबतक हिन्दीकी दुनियाँ रहेगी, जबतक हिन्दी साहित्य-सेवियोंमें शुद्ध, सरल और पक्षपातशून्य लेखोंकी भक्तिका लेशमात्र भी रहेगा, बाबू बालमुकुन्दका नाम भाषा साहित्यके इतिहासमें सदा उज्ज्वल और अमिट अक्षरोंमें लिखा रहेगा...

एक उत्तम पुस्तक हिन्दी साहित्यका इतिहास, उन्होंने लिखना आरम्भ किया था। इसके लिये वे पांच वर्षसे तैयारी कर रहे थे। पार सालसे उसका आरम्भ कर दिया था, किन्तु कालने उन्हें असमयमें ही उठा लिया और वह पुस्तक आरम्भकी हुई अधूरी पड़ी रही।

गुप्तजी बड़े तीव्र, किन्तु सरल और शुद्ध हृदयके समालोचक थे। उनकी समालोचनासे साहित्यमें अनेक गन्दगी भरनेवाले अहम्मन्य लेखक सुधरते थे और अनेक लेखक उनके उपदेश गुरुतुल्य समझ माथे चढ़ाते थे। उनकी मृत्युसे हिन्दू और हिंदी साहित्यको बड़ा धक्का लगा है।"...

कविवर पण्डित श्रीधर पाठकजीका ता० २८ सितंबरका लूकरगंज प्रयागसे लिखा निम्नांकित पत्र भारतमित्रमें प्रकाशित हुआ था—

श्रीयुक्त बालमुकुन्द गुप्तका असमय बैकुण्ठवास सुन हमारा मानस-मराल बड़ी विकलताको प्राप्त हुआ। जिस चतुर उदार जौहरीसे उसे प्रति सप्ताह भारतमित्रवर्ती सरस लेखोंके रूपमें नये-नये मोती चुगनेको मिलते थे, उसे सुजीवियोंके स्पर्धी विधाताने एक पलमें ऐहिक लीलास्थलसे सदा सर्वदाके लिये अलगा कर अपनी क्रूरताका एक और नूतन परिचय दिया। हमारे चित्तमें इस अमङ्गल समाचारसे जो भाव उत्पन्न हुए वे नितान्त दुःखमय हैं। बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी अभी भू-लोकमें बहुत जरूरत थी। यदि निष्ठुर दैव उन्हें यहाँ कुछ दिन और टिकने देता तो मनुजकुलका बहुत कुछ हित साधन होता, पर उसपर किसका बस है।

करुणाकातर
श्रीधर पाठक

* * * *

भारतमित्रमें बाबू गोपालराम गहमरीजीका यह भावुकतामय 'शोकोच्छ्वास' भी छपा था :—

"हाय! आज अभागिनी हिन्दीका साहित्य-सूत्रधार उठ गया! हरे, हरे! आज भाषाके सुनील नभमण्डलसे प्रकाशमान चन्द्र खस पड़ा। आज शुद्ध और सरल हिन्दी लेखकोंका सिरताज गिर गया। आज पुरातन ग्रन्थकार, कवि और लेखकोंकी

मानमर्य्यादाका विशाल और अटल स्तम्भ धसक गया। हाय! प्यारे बालमुकुन्द गुप्त आज कहाँ गये! हाय रत्नावलीके रत्न, स्फुट कविताके मर्मभेदी कवि, शिवशम्भुके नशीले लेखक! तुम किधर हो! हाय, सदाका वह सरल स्नेह, स्नेह-भरी भर्त्सना प्रेम भरे उपदेश और असर करनेवाले तुम्हारे चुटीले शब्द अब कहाँ मिलेंगे! तुम्हारे तीव्र किन्तु शुद्ध और हितकामनासे भरे-पूरे चिट्ठे अब इस लोकमें कहाँ नसीब होंगे। प्यारे! मेरे मान्य भाई! चलती बेर आपका दिल कैसा कठोर हो गया? जो मन घर जाते-आते सदा दर्शन देनेके लिये दिन और गाड़ियोंका समय तक कह देता था, जो कई गाड़ियोंके फेल करनेपर भी दर्शन देता था, उसने चलते-चलाते इस लोकसे विदा होते समय दर्शन देनेसे क्यों नाहीं की। हा प्रिय अभिन्न हृदय! अब यह उलहना मैं किसे दूँ? इसे कौन सुनता है। कौन इसका जवाब देगा? कौन मुझे इस समय समझावेगा? हाय भादों! तेरा नाम तो भाद्र था, तुमने क्यों ऐसा अभद्र काम किया। बुधवार! तू भी बड़ा अबुध निकला। शुक्र! तूने तो साहित्यमें बिल्कुल अँधियाला ही कर दिया। क्यों पुण्य तिथि एकादशी! क्या तुझे और कोई पुण्यात्मा उस दिन वैकुण्ठ भेजनेके लिये नहीं मिला, जो हिन्दी साहित्यके उस सिरमौरहीको तूने वरण किया। हा इन्द्रप्रस्थ! तेरा पेट क्या अशोक, युधिष्ठिर, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि पृथ्वीपालों,—ऐश्वर्यवानोंको उदरस्थ करके नहीं भरा था, जो इस साहित्य भूषणको भी अपने कवलमें रख लिया! हा तरण-तारिणी यमुने! उज्ज्वल सलिले! तू तो पृथुसे आजतक कितनेही भूपालोंको तार चुकी थी, अभागिनी हिन्दीके एक बाबू बालमुकुन्दको बख्श देती तो क्या होता? अगमनिगमके बोधक निगमबोध तीर्थ! क्या तुम्हें भी अपनी छातीपर हमारे मान्यवर बाबू बालमुकुन्दको अग्निकी आहुति देना था। हा धार्मिकवर प० दीनदयालुजी! आपका कलेजा कैसे पत्थरका हो गया! जिसको आप सदा स्नेहसे आप्यायित करते रहे, उसको कैसे अग्निको सौंपा?

—गोपाल शहर निवासी"

---

[१२]

डायरीके पृष्ठोंसे

गुप्तजीको कृत्रिमतासे आन्तरिक घृणा थी। उनका जीवनक्रम प्रकाश्य, सादा और बाहर-भीतर एक समान था। जो वेश-भूषा घरमें रखते, वही बाहर भी। पहनावा धोती, पंजाबी कुरता या लम्बा बन्द गलेका कोट, सिरपर गोल टोपी, कन्धेपर दुपट्टा और मौसिम यदि जाड़ेका हुआ तो—गरम चद्दर। चाहे घरपर—भारतमित्र कार्यालयमें देखिये, चाहे किसी सभामें या किसी मित्रके पुत्र-पुत्रीके विवाहोत्सवमें। उनका यही वेश था। उनकी दिनचर्या भी निश्चित एवं नियमित थी। प्रातःकाल सूर्योदयके पूर्व एक नैष्ठिक हिन्दूके कर्त्तव्यानुसार भगवत्स्मरण-के साथ वे शय्या-त्यागकर उठ जाते थे। उनको हुक्का-चिलम, बीड़ी-सिगरेट या तमाखू आदि सेवनका कोई व्यसन नहीं था। उठते ही शौचादिसे निवृत्त हो स्नान कर लेते थे और तदनन्तर सन्ध्यावन्दन, गीता और विष्णुसहस्रनामादिका पाठ। इसके पश्चात् आठ बजेसे पहले पहले उनका अपने कमरेमें कामपर बैठ जानेका नियम था। वह कमरा ही भारतमित्रके सम्पादकीय विभागका कार्यालय या दफ्तर था। उसमें मेज कुर्सीकी जगह, बैठक फर्शकी थी। पुस्तकोंके लिये दीवालके सहारे आलमारियाँ थीं। गुप्तजीके इर्द-गिर्द तरतीबवार समाचार-पत्र रक्खे रहते थे। उर्दू, हिन्दी, अंगरेजी, बंगला, गुजराती और मराठी—सभी भाषाओंके पत्र भारतमित्र कार्यालयमें आते थे और उनको वे गौरसे पढ़ते थे। अंगरेजी पत्रोंमें अमृतबाजार पत्रिकाके अग्रलेख और टिप्पणियाँ सर्वप्रथम पढ़नेके बाद वे स्टेटस्मैन और इंगलिशमेन इत्यादि

पत्र, उनका अभिमत जाननेके लिये अवश्य पढ़ते थे। पढ़नेके साथ-साथ उनपर निसान भी लगाते जाते थे। भोजन करनेके बाद मध्याह्नोत्तर वे फिर अपने काममें आ डटते थे। गुप्तजी केवल सम्पादक ही नहीं, भारतमित्रके सब कुछ थे। जिस दिन भारतमित्र प्रकाशित होता उससे पूर्व, रात्रिको आर्डर देनेके लिये उनको देरतक जगना पड़ता। विज्ञापन, डिस्पेच और पत्राचार आदि सभी विभागोंकी देख-रेख निजमें रखते थे। भारतमित्रको सजानेके लिये चुन-चुनकर लेख, टिप्पणियां, समाचार तैयार करते और कराते थे। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यों और सभा सोसाइटियोंमें भाग लेते थे। सायंकालको वे प्रायः ईडन-गार्डनमें घूमनेके लिये भी जाते थे। वङ्गवासीसे सम्बन्ध रखनेके दिनोंमें उनके सान्ध्य भ्रमणके साथी पण्डित प्रभुदयालजी पाण्डे रहे और भारतमित्रमें आनेके बाद पण्डित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी, बाबू रामदेवजी चोखानी, बाबू रामकुमारजी गोयनका और पण्डित शंभुरामजी पुजारी प्रभृति। रात्रिमें भोजन करनेके पश्चात् गुप्तजी देरमें सोते थे और रातको लिखा भी करते थे। उनको एकान्तमें लिखना अधिक पसन्द था। सोनेसे पहले वे अपनी डायरी लिखते थे। उनकी डायरीके कुछ पृष्ठांश इस प्रकार हैं :—

सन् १८६२

ता० २५ फरवरी

……आज पडित प्रतापनारायणजीको काव्य विषयक चिट्ठी लिखी जानी चाहिये थी सो नहीं लिखी जा सकी। सवेरे शौचादिके पीछे सूरसागर पढ़ा। रहबरका मेटर पूरा करके रवाना किया।

सन् १६००

ता० १ जनवरी

……मोहन मेला देखने गये थे। पाँच-छै सालसे यह मेला जारी है पर हमने अबके ही देखा। कुछ चीजें सजाई गई थीं। कुछ फूल-पत्ते। दो-एक जगह

नाच-तमाशा। एक रुपया टिकट होता है। पेट भरे अमीर गाड़ियोंमें बैठकर आये और कुछ देर इधर-उधर फिर गये।

ता० ३ जनवरी

......दिन भर भारतमित्रका काम किया। ७ बजे बड़ाबाजार लाइब्रेरीमें पं० दीनदयालु शर्माका व्याख्यान हुआ। बाबू रामदीनसिंह (बांकीपुर) मिले। पत्रका आर्डर रातके ३ बजे हुआ।......

ता० २४ जनवरी

......सन्ध्याको कुछ पत्र लिखे। ब्रह्म-समाजकी ठाकुर फेमिलीका वार्षिकोत्सव देखने गये।......

ता० २७ जनवरी,

......अलबर्ट हालमें मि० गांधीका व्याख्यान दक्षिण अफरीकाके विषयमें सुना। गोखले भी वहीं थे।"......

ता० १ जुलाई

......पण्डित दुर्गाप्रसादजी सहित सवेरे शिशिर बाबूसे मिलने गये।......

सन् १९०३

ता० ६ जनवरी

आज सवेरेसे लेकर दिनके ४ बजे तक भारतमित्रके लिये दिल्ली दरबारकी रिपोर्ट लिखी और भेजकर निश्चिन्त हुए।......केम्पोंकी तरफ गये। कश्मीर केम्पमें एक बहुत लम्बा आदमी देखा। टाउन हालमें सभा थी। बड़ौदा-महाराज सभापति थे। हिन्दू कालेजका इनाम दिया गया।......

ता० ८ फरवरी

......रविवारके कारण तातील थी। दिन भर प० अमृतलालसे बातें हुईं कुछ विशेष काम न हुआ। सन्ध्या समय हँसोड़ सभा थी। सभापति हुए गुरु देवकीनन्दन। चतुर्वेदी जगन्नाथप्रसाद मौजूद थे।......

ता० ९ फरवरी

......सवेरे अमृतलालजीको पचास रुपये देकर विदा किया। आज बा० रूड़मल गोयनका आये। उनसे मिले। लेख लिखे। डाक ठीक की। मनिआर्डर लिये।......

सन् १९०५

ता० २ जनवरी

......सवेरे परेड देखने किलेके मैदानमें गये। ज्ञानीरामजी साथ। दृश्य अच्छा था। भीड़ खूब थी। दोपहर बाद फैंसी फेयर देखने जूलोजिकल गार्डेन गये। मेलेका जमाव उत्तम था। खूब रौनक थी। मारवाड़ियोंका जोर था। मौसिम साफ था। .....

ता० ६ जनवरी

.....सन्ध्या समय रामदेवजी चोखानी और जौहर साहब आये थे। रातको डाक्टर लक्ष्मीप्रसाद।......

ता० २३ जनवरी

......११ बजे विद्यालय गये। सजाई खासी थी। भीड़ बेतुकी थी। कुछ देर बाद वर्षा आई। उससे बड़ी अबतरी फैली। १ बजे जयपुर-महाराज आये। एड्रेस पढ़ा गया। तसवीर सूरजमलजीकी खोली गई।......

ता० २४ जनवरी

......कलकी बूंदोंसे सड़कोंपर कीचड़ था। पर सूख रहा था। सर्दी तेज थी, जो रातको खूब बढ़ी। मौसम साफ है। पर धूप सर्दीके सबब मालूम ही नहीं होती। बाबू गोकरणसिंह बांकीपुरवाले आये, मिले। सवेरे मुन्नालाल चमड़ियाके साथ हवाखोरीको गये थे। रातको धन्नूको पढ़ाया *।......

* धन्नू कहार उनका नौकर—गुवाला था।

ता० २५ जनवरी

......कमाल सर्दी है। रातको सर्दीका ढेर हो गया। पंजाबी सर्दी याद आ गई। सवेरे तेजीसे उत्तरीय हवा चलती थी। सन्ध्या तक सर्दी रही। रातको भी रही। जमीनपर ठंडसे पांव न रखा जाता था। कलकत्तेमें यह नई सर्दी है। आर्ट स्कूल गये। ईश्वरीप्रसादको स्वा० दयानंद, प्रतापनारायण तथा सूर्यमलकी तसवीरें दीं।......

ता० ९ फरवरी

......२॥ बजे श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके डेपुटेशनमें चन्देको गये। दुलीचन्दजी भी आये। धूमका डेपुटेशन था।......सफलता अच्छी हुई। आनंद खूब रहा। लौटे कोई ६॥ बजे।......

ता० ११ जुलाई

......आज सन्ध्याको ८॥ बजे ग्रांड थियेटरमें "एक लिपि" पर प० दीनदयालुजीका व्याख्यान सफलतासे हुआ। जस्टिस सारदाचरण मित्र सभापति थे।...

ता० २२ जुलाई

......तीसरे पहर श्रीविशुद्धानन्द विद्यालयमें गये। वहाँ जस्टिस सारदाचरण मित्र आये। एक लिपि विस्तार परिषद्के लिये कोई पौन घण्टे विचार हुआ।......

ता० ३ अगस्त

......आज सन्ध्याको मारवाड़ी एसोसियेशनकी सभामें विशेषता थी। ए० चौधरी, जे० चौधरी तथा भूपेन्द्रनाथ वसु आये थे और कई बङ्गाली थे। बङ्गाल पार्टीशनके लिये सहायता चाहते थे।

ता० ६ अगस्त

......आज मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्समें जाना था। सन्ध्या समय चौबेजी

आये। बङ्गाली लीडर मारवाड़ी चेम्बरकी मीटिंगमें गये थे। मारवाड़ियोंने चलनेकी 'हाँ' की। *

ता० ७ अगस्त

……४ बजे आफिसके कई आदमियों सहित 'टाउन हाल' गये बड़ी भारी मीटिंग थी। ऊपर-नीचे 'हाल' सब भरा था। मैदानमें बड़ा जमाव था। मारवाड़ियोंकी बड़ी भीड़ थी। बड़ा जोश था। सन्ध्याको लौटे। पन्द्रह-बीस हजारका जमाव था।

ता० १५ अगस्त

……पाण्डेजी † सहित ग्राण्ड थियेटरमें जाकर विपिनचन्द्र पालका व्याख्यान सुना।……

ता० १८ अगस्त

……पण्डित दुर्गाप्रसादजी टीबर ‡ सहित आये।……

ता० १० सितम्बर

……दोपहरको कोठी गये। भूरजी और द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदीसे मिले। लौटकर आये तो पण्डित अमृतलाल मिले।……नवल, ज्ञानीरामजीके बाग गया, चौबेजी ले गये। विद्यालयमें जस्टिस मित्र मिले। 'एक लिपि' विस्तार परिषद् के नियम पढ़े गये।……

---

* बंगाल पार्टीशन (बंगभंग) का विरोध करनेके लिये कलकत्तेके टाउन हालमें ता० ७ अगस्त सोमवार सन् १९०५ को एक विराट जन-सभा करनेका आयोजन किया गया था और उस सभामें सम्मिलित होनेका अनुरोध करनेके लिये ही उस समयके उक्त प्रमुख बङ्गाली नेता मारवाड़ी एसोसिएशन एवं मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्समें स्वयं उपस्थित हुए थे। उनके अनुरोधकी रक्षा की गई थी।

† पण्डित उमापतिदत्त शर्मा—उस समयके श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके अध्यक्ष।

‡ बा० राधाकृष्ण टीबड़ेवाला,—जो आगे चलकर कृष्ण प्रेसके मालिक हुए और जिन्होंने 'मारवाड़ी' नामक पत्र प्रकाशित किया।

ता० १३ सितम्बर

........सन्ध्याको नित्य वर्षा होती है। वर्षा ७॥ बजे हो चुकी थी तब पाण्डेजीके साथ जस्टिस सारदाचरण मित्रके मकानपर गये। वहाँ 'पूर्णिया' नामकी अद्भुत सभा देखी।.......

सन् १९०६ ई०

ता० १० फरवरी

........पण्डित माधवप्रसाद मिश्रसे गणेशदास जयरामवाली कोठीमें मिले। १० बजे लौटे। 'अवधपथ' को एक चिट्ठी लिखी। शाम होगई। रातको चौबेजी पाण्डेजी आये।......

ता० १६ फरवरी

......एक लड़का मदारीपुरका ललितमोहन दास आया, जिसपर स्वदेशी आन्दोलनके लिये जुल्मसे तीन-तीन सजाएँ हुई हैं।........

ता० १९ फरवरी

........आजादकी पोथी दरबारे अकबरी समाप्त की।........

ता० १ मार्च

प्रताप चरित आरम्भ किया गया। बाकी लेख समाप्त किये गये। प्रतापका चित्र दोबारा बनवाया गया। बड़ी लागत आई, पर खासा निकल गया।

ता० ११ मार्च

........होलीकी इस साल धूम रही। दिनभर रंग उड़ा। बहुत लोग आये। सवेरेका हुल्लड़ १० बजे निबट जानेपर दिन भर हुल्लड़ था। १० बजे तक सड़कों पर रौनक थी।........

ता० १७ मार्च

........सवेरे धन्नू बाबूके यहाँ गये। शीतलाका मेला उनके मकानके पास कई दिनसे जारी है। एसोसियेशनकी सभामें ४ बजे गये। वहाँसे श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके लिये गैंडातालाव स्क्वायरकी भूमि देखने गये ....

ता० ७ एप्रिल

........एसोसियेशन गये। ईरानमें एक घाससे घी निकलता है, उसकी बात पूछी गई। अधोंकी कारीगरीका कार्ड लिया।.......

ता० १६ एप्रिल

......५ बजे जौहरजीके साथ तिरहट्टीके पासवाली लेनमें एक मुसल्मान इस्मदोस्त अमीरके यहां गये। यह लोग पटनेके हैं।.......

ता० २१ एप्रिल

........सवेरे पुजारी बालमुकुन्दजी आये थे। वह मन्दिर देखने गये, जो सूर्यमलजीके घाटपर है, जिसे पुलिस कमिश्नर उठवा देना चाहता है।.... .

ता० २० मई

......सलकियामें पण्डित माधवप्रसाद मिश्रके यहाँ गये। सन्ध्याको नावसे लौटे।......

ता० २४ जून

......मिरजापुरके केदारनाथ पाठक आये थे। सन्ध्या तक बैठे रहे कोई २ घण्टे। ७ बजे जगन्नाथ घाटपर रथ दर्शनको गये।......

ता० ११ अगस्त

......कई दिनसे आँखों पर गर्मी और बुख्वार है।... . सन्ध्या समय वासुदेव मिश्र आये। उनके साथ दुर्गाप्रसादजीके यहां गये। वहीं भोजन किया। वहांसे केदारनाथ मिर्जापुरी सहित लौटे। रातको कुछ पढ़ा।......

ता० २३ सितम्बर

......दोपहरको धन्नू बाबू सहित सावित्री-कन्या-पाठशालामें गये। उन्हींके साथ घर लौटे। उन्होंने पुरी चलनेका अनुरोध किया। छेदी मियां घर गये।......

ता० ६ अक्टूबर

......विष्णु दिगम्बरजीका गाना रुड़मलजीके यहाँ हुआ। मुरारी साथ था। प्यारी बाबू मिले। विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके प्रिंसिपल मिले। ऐसा गाना सुना कि कम सुना था।......

ता० १६ अक्टूबर

……आज मातमका दिन है। गत वर्ष इस तिथिको लार्ड कर्जनने बङ्गभङ्ग किया था। सवेरेसे मण्डलियाँ गाती निकलीं और गङ्गा स्नान करने गईं। हम भी लाला ज्ञानीरामजी सहित विष्णु दिगम्बरके यहाँ होते गङ्गा-स्नानको गये……गङ्गा स्नान करके बंगालियोंका रक्षाबन्धन देखकर महावीर, नवल सहित घर लौटे। सन्ध्याको सब 'फेडरेशन हाल' गये। बङ्गालकी सभा देखी।

ता० १७ अक्टूबर

आज दीवाली (संवत् १९६३) है। पर रोशनीकी बहार कम है। कारण आज तीसरे पहर वर्षा हुई। उससे दीवालीकी सब सजावट नष्ट हुई। तथापि कुछ भीड़-भाड़ हुई। कल ढाकाके नवाबने मुसलमानी पाड़ोंमें बंगालियोंकी जिदपर दीवाली की थी। उनके शोक पर हर्ष मनाया था ॥

ता० १९ अक्टूबर

…प० विष्णुदिगम्बरजी मिलने आये। उनको लेकर कई जगह मिलाने गये।

ता० २१ अक्टूबर

सवेरा मुकामा घाटमें हुआ था। वहाँ भीड़से कुछ न कर सके।……दिनमें एक जगह स्नान किया, फिर कुछ भोजन किया, ७१ बजे कानपुर पहुंचे। दयानारायणजी निगम, नवाबराय सहित मिले। स्टेशनके एक गोरेने उनसे बड़ा खराब बरताव किया। खराब क्या, बड़ी बेईमानी और बदनियती की।

ता० २२ अक्टूबर

(कानपुर) सवेरे स्नानादि डेरे पर किया। भोजन रामचंद्रजीके मंदिरमें सनाढ्य पुजारीके यहाँ किया। यह मन्दिर दयानारायणजीके दादा वकील शिवसहाय-जीने बनाया था। दोपहर बाद गाड़ीमें बाबू दयानारायण सहित प० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीके दर्शनको जुही गये। उनका स्थान शहरसे अलग है। सन्ध्याको मथुराको जानेवाले थे, पर पेटमें दर्द हो जानेसे जाना मुल्तवी किया।

ता० २४ अक्टूबर

सवेरे मथुरा रेलवे स्टेशनपर पहुंचे। वहां गोस्वामी लक्ष्मणाचार्य, पण्डित रामचन्द्र, मोदी बदरीदास गाड़ी सहित मिले। मालूम हुआ कि पंडित दीनदयालुजी दो दिन पहले चल दिये। हरसुखराय दुलीचन्दकी धर्मशालामें उतरे। यमुना पार शौचादि जाकर यमुना-स्नान किया। भोजन गोस्वामीजीके घरपर किया। प्रोग्राम यात्राका तय किया। नन्दलाल वर्मा और क्षेत्रपाल शर्मासे मिले। सेठ कन्हैयालाल पोद्दारसे मिले। ब्रजमण्डल क्रम देखा। गोस्वामीजीके यहां शयन किया।

ता० २८ अक्टूबर

······क्षेत्रपालजीके घर गये। वहांसे गाड़ीपर बैठकर स्टेशन पहुंचे। बरसानेको चले। साथमें स्वयं क्षेत्रपालजी, गोस्वामी ब्रजनाथजी, गोस्वामी लक्ष्मणाचार्यजी, क्षेत्रपालजीकी एक कन्या और नौकर। दस बजेसे पहले 'कोसी' और ११ बजेसे पहले नंदगांव पहुंचे। सेठोंकी बैलगाड़ी स्टेशनपर तो न मिली, नन्दगांव मिली। उसपर असबाब डालकर प्रेम-सरोवर पहुंचे। वहां सब प्रबन्ध सुन्दर था। लक्ष्मीनारायण-जीका मंदिर सुन्दर है। प्रबन्ध पोद्दारोंका खूब था। भोजनादि करके ३ बजे यात्रा देखने गये। बरसानेमें लाड़लीजीका पुराना मंदिर और जयपुरका नया मंदिर देखा। यात्रा देखकर ८ बजे प्रेम-सरोवर लौटे। प्रसाद लेकर बड़े आरामसे सोये।

ता० २३ नवम्बर

सवेरा बम्बईके निकट ही हुआ। यह भूमि विचित्र है। समुद्र तट निकट है, यह जान पड़ने लगा। हरियाली—वृक्षोंकी शोभा दिखने लगी। ८ बजे बम्बई उतरे ग्रान्ट रोड स्टेशनसे। चन्दावाड़ीमें ठहरे। यहां तैल-मर्दन, क्षौर, स्नानादि किया। भोजन दोनों समय स्थान ही पर किया। एक पहलवानसे, जो इसीमें रहते हैं, मिले। दोपहरके बाद सेठ खेमराजजीके प्रेसमें गये। उनसे बहुत बातें हुई। वहां कुछ फल खाये। पण्डित क्षेत्रपाल मिले।···

ता० २४ नवम्बर

सवेरे स्नानादिके बाद पहलवानजीसे मिले। १० बजे सेठ खेमराजजीके मकान पर चाय पी, भोजन किया।···उनका प्रेस घूम-फिरकर देखा। पं० जगन्नाथप्रसाद

शुक्रजी सम्पादकसे बातें की। शामको बाजारकी तरफ निकले।...अपोलो बंदर पर गये। समुद्र-तटकी सैर की। रातको पं० क्षेत्रपाल सहित गुजराती नाटक मंडलीमें "सौभाग्य सुन्दरी" का अभिनय देखा।

ता० २४ और २५ दिसम्बर

सवेरे शानीरामजी सहित हवड़ा गये। स्टेशन पर दादा भाई नौरोजीके लिये भीड़-भाड़ देखकर डाक देखी। एक्सप्रेस देखी। उसमें बाबू दयानारायण आदि मिले।...कुछ देर बाद प० दीनदयालुजी आये। उनको स्नानादि कराया फिर विनायकजोकी धर्मशालामें पहुंचाया। दयानारायणका असबाब घर लाये।...पं० ज्वाला-प्रसाद मुरादाबादी और कन्हैयालाल तन्त्र-वैद्यसे मिले। वहांसे पं० मदनमोहन मालवीयके यहां गये। ..प० प्यारेलाल आये हैं। गोपालराम और शहमरके कई सज्जन आये है। राहमें श्यामसुन्दरदास और सप्रे मिले। रातको दीनदयालुजी सहित प्रदर्शिनी देखने गये। बिजलीकी रोशनी बार-बार फीकी पड़ जानेसे बड़ी गड़बड़ी रही।

ता० २६ दिसम्बर

सवेरे प० दीनदयालुजी और पं० मदनमोहनजी मालवीयके यहां गये। १ बजे दयानारायण आदि सहित कांग्रेस पहुंचे। भीड़ अजीब थी, प्रबंध भी निकम्मा था। पहले स्वागत-सभाके सभापति रासबिहारी घोषकी स्पीच हुई। उत्तम थी। फिर दादा भाई उठे। कुछ कहकर अपनी स्पीच गोखले महोदयके हवाले करके बैठ गये। उनकी स्पीच गोखलेने सुनाई। चौबेजी, * निगम, हम, बराबर खड़े रहे।

ता० २८ दिसबर

सवेरे कुछ इधर उधरके काम किये। ११ बजे निगमजी सहित कांग्रेस पहुंचे। जगह मुशकिलसे मिली। भीड़ खूब थी। भट्टजी मिले+। आज विपिन बाबू और नर्म दलसे खूब छेड़-छाड़ रही। काम आरामसे निबट गया।......

* पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी।

+ पण्डित बालकृष्णजी भट्ट।

ता० २९ दिसंबर

आज कांग्रेसका चौथा दिन है।······भट्टजी (हिन्दी प्रदीप-सम्पादक) से मिले। वह हमारे स्थान तक आये। पंडित दीनदयालुजीसे शामको मिले।......

ता० ३० दिसंबर

सवेरे दयानारायण साथियों सहित बदरीदासके बगीचे गये। वहांसे सैरको निकल गये। सन्ध्याको लौटे। लाला ज्ञानीरामजीने बुटेनिकल गार्डनकी सलाह की। २ बजे उनके "हाल्लासिया बोट" से वहां गये। पंडितजी थे, ज्ञानीराम तथा अन्य १० आदमी। वहांसे ६ बजे लौटे। रातको ८॥ बजे विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयमें प० मदनमोहनजी मालवीय और प० दीनदयालुजीका व्याख्यान हुआ। १० बजे सभा विसर्जित हुई। लौटकर सोये।

ता० ३१ दिसंबर—

सवेरे क्षेत्रपाल शर्मा मिला। दयानारायणके कुछ काम कराये। दोपहरको प० दीनदयालुजीसे मिलने गये। आकर 'निगम मण्डली' को विदा किया। यह ६ बजे स्टेशन गये। लाला और चन्दूलाल साथ गये। एक्सप्रेससे केवल नवार्बराय जाने पाये। निगम भाई ११ बजे पसजरसे गये।......

सन् १९०७

ता० ११ जनवरी

......११ बजे बागबाजार प० चन्द्रशेखरधरजीके पास गये। उनसे मिले, हाथ दिखाया। प० दुर्गाप्रसादजी वहीं थे। उनके साथ लौटे।......सन्ध्याको दुर्गाप्रसाद मिश्रजी प० बदरीनारायण चौधरी सहित आये। ८ बजे जस्टिस सारदाचरणजीके यहां डेपुटेशन बड़ाबाजार लाइब्रेरीका गया—ज्ञानीरामजी, नारायणदास, फूलचंद हम। उनसे मिले। उन्होंने प्रेसिडेंट बनना स्वीकार किया।

ता० २८ जनवरी

सवेरे ८ बजे काबुलके अमीरको देखने गये। स्ट्रैन्ड रोडसे उसकी सवारी देखी। ......भीड़ खूब थी। अमीर सादा पोशाकमें थे। वहांसे लौटते दुर्गाप्रसादजीके यहां

ठहरे। चन्द्रशेखरधर और चौधरी बदरीनारायण मिले। उनके साथ कविराज गणनाथ सेनके यहां आये।......लेख गोपालरामके पास भेजा।

ता० १ फरवरी

दिन बदरीला। तबीयत ठस थी।.....रातको अभ्युदयका पहला नंबर मिला।......

ता० ६ मार्च

......सन्ध्याको रामकुमार गोयनका सहित इडन गार्डन गये। राहमें ईश्वरीप्रसादसे मिले। तसवीरोंके लिये कह आये।......लाइब्रेरीकी मीटिंगमें शामिल हुए।

ता० १० मार्च

......दुलीचंदजीके बगीचेमें "आर्किड शो" देखने गये। अच्छा सजा था।......साहब लोगोंकी बड़ी भीड़ थी।

ता० १० एप्रिल

......प० दुर्गाप्रसादजीके जाकर वैश्य सभामें गये। राजस्थान अनाथालयकी सभा थी। जेलर नौरङ्गरायजी खेतान आये थे।

ता० २१ एप्रिल

......देवीप्रसादजी उपाध्याय (रामनगर) सहित "काँठलपाड़ा" के बङ्किम उत्सवमें गये। महावीरप्रसाद, कृष्णानंद साथ थे। (१) बङ्किमका घर (१) ठाकुरबाड़ी (३) देवीभवन देखा। काँठालपाड़ा उजाड गांव है। 'कांठालपाड़ा' मेलेमें बंगाली लड़कोंका "लाठी खेला" देखा। रेलमें देउस्कर* साथ थे। ९ बजे लौटे। महावीरप्रसाद सहित सीधे ब्राह्मण सभामें गोपाल मदिरमें गये। माधवप्रसाद मिश्रके लिये शोक सभा थी।

ता० १० मई,

......लाइब्रेरीमें पांडेजीसे मिले। वहां लाला लाजपतरायकी गिरफ्तारीकी खबर मिली।......

....

---

* महाराष्ट्र पण्डित सखाराम गणेश देउस्कर हितवादी (बँगला) के सम्पादक और "देशेरकथा" के लेखक।
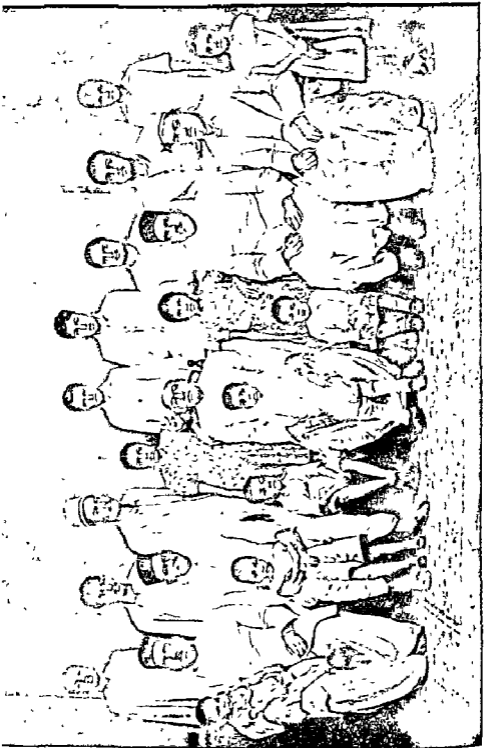
[१३]
विखरी हुई बातें

गुप्तजी, जिस प्रकार समालोचना करते समय दोषपूर्ण रचनाके लिये लेखककी त्रुटियाँ दिखानेमें नहीं हिचकते थे, उसी प्रकार किसीकी उत्कृष्ट कृतिकी प्रशंसा करनेमें सङ्कोच नहीं करते थे। गुणियोंके गुणोंका परिचय देनेमें वड़े उदार थे। यथाशक्य मित्रोंकी सहायताके लिये वे तय्यार रहते थे। जिस समय हिन्दी बङ्गवासीको गुप्तजीने छोड़ा, उनका प० अमृतलाल चक्रवर्तीजीसे वैमनस्य होगया था, किन्तु जब चक्रवर्तीजीको किसी व्यक्तिगत लेनदेनके झगड़ेमें दिवानी जेलकी सजा हो गई, तब गुप्तजी जेलमें पहुँचे और अधिकारियोंसे मिलकर उनके लिये न केवल सुख-सुविधाकी समुचित व्यवस्था करायी, प्रत्युत उनके आश्रितोंको भी सहायता देकर कष्ट सहनसे बचाया। इसके बाद बजटमें गुंजाइश न रहनेपर भी आश्रय-रहित दशामें श्रीचक्रवर्तीजीको अच्छा वेतन देकर अपने साथ भारतमित्रमें रक्खा। उस समय उन्होंने इन शब्दोंमें चक्रवर्तीजीका परिचय प्रकाशित किया था:—

"हमारे पाठक पण्डित अमृतलालजीसे अपरिचित नहीं हैं, तथापि हिंदी-रसिकों पर उनके सब गुण विदित नहीं हैं। वह बङ्गाली हैं, किंतु हिंदीके बड़े प्रेमी हैं। खाली बड़े प्रेमी ही नहीं, उन्होंने हिन्दीको बड़ी भारी सहायता पहुंचाई है। उन्होंने वह काम किया है जो किसी हिन्दुस्थानीसे भी आज तक नहीं हुआ। हिन्दी भाषामें जो आज इतने बड़े-बड़े, इतने उत्तम और सस्ते पत्र दिखाई देते हैं, यह सब उन्हींके दिखाये पथके प्रतापसे हैं। आप ही हिंदी बङ्गवासीके जन्मदाता हैं। आपहीके बुद्धि-बलसे उसका इतना प्रचार हुआ। आपहीकी चेष्टासे हिंदी अखबारोंको आज हजारों

ग्राहक मिलने लगे हैं। आपकी लेखनीके जोरने उर्दू पढ़नेवालोंको हिंदीकी ओर खेंचा। हजारों उर्दू-दास हिन्दीके चेले हुए। आज और भी लोग चाहें तो अच्छे-अच्छे अखबार निकाल सकते हैं, किन्तु दस-ग्यारह साल पहले यह बात किसीके ध्यानमें न थी कि अचानक अखबारोंकी इतनी उन्नति हो सकती है। इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि पण्डित अमृतलालजी पथ न दिखाते तो हिन्दीकी उन्नति अभी और अँधेरेमें पड़ी रहती। हिन्दीपर, हिन्दुस्थानियोंपर उनका बड़ा अहसान है। पण्डित अमृतलालजी हिन्दी, व्रजभाषा और संस्कृतके पण्डित होनेके सिवा अंगरेजीके बड़े पण्डित हैं। आप बी. ए. हैं, स्वधर्म-प्रेमी हैं। आपकी लेखनीकी स्वधर्म-प्रेमके लेख लिखनेमें धाक बँधी हुई है। हिन्दी सम्पादकोंमें ऐसे अनुभवी पुरुष बहुत कम हैं।" *

इस सदय व्यवहारके लिये चक्रवर्तीजी यावज्जीवन गुप्तजीका स्मरण कृतज्ञतापूर्वक करते रहे।

* * *

नये लेखकोंका उत्साह बढ़ानेमें गुप्तजी बड़ा आनन्दानुभव करते थे। मुस्लिम-शासन-कालके इतिहासवेत्ता मुन्शी देवीप्रसादजी मुन्सिफने "मैं और मेरी हिन्दी सेवा" शीर्षक लेखमें अपनी हिन्दी सेवाका श्रेय दो महानुभावोंको दिया है, जिनमें एक थे बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त और दूसरे काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाके बाबू श्यामसुन्दरदासजी बी० ए० गुप्तजीने मुन्शीजीसे मुसलमानी शासन-कालकी फारसी तवारीखोंसे हिन्दीमें "हुमायूं नामा", "जहाँगीर नामा", "खानखाना नामा" आदि परमोपादेय पुस्तकें तैयार कराके भारतमित्रके उपहारमें दी थीं। केवल मुन्शीजीको ही नहीं, उनके सुयोग्य पुत्र श्री पीताम्बर प्रसादको भी गुप्तजीने उनकी हिन्दी-रचनाके लिये पीठ थपथपाकर शाबासी दी थी। उन्होंने लिखा था :—

* भारतमित्र, सन् १९०३ ई०।

मुन्शी पीताम्बरप्रसाद जोधपुरी मुन्शी देवीप्रसादजीके पुत्र हैं। हिन्दीमें 'प्रीतम' और उर्दू-फारसीमें 'अखतर' आपका उपनाम है। हमने आपकी उर्दू कविता देखी है। बहुत अच्छी कविता करते हैं और उसमें विशेषता यह है कि अधिक ध्यान आपका नीतिकी ओर है। किसी मौकेसे आपकी उर्दू-फारसीकी कविताका परिचय भी दिया जायगा। यह हर्षकी बात है कि आपका ध्यान हिन्दीकी ओर भी हुआ है। आपके दादा भी एक अच्छे कवि थे, वह केवल फारसीमें कविता करते थे। फारसीमें उनकी एक मसनवी और दूसरी कई किताबें हैं और इनके पिता मुन्शी देवीप्रसादजीका तो कहना ही क्या है, वह उर्दू-फारसीके एक बड़े कवि और सुलेखक हैं। इस देशका इतिहास जाननेमें वह अपने ढंगके एक ही पुरुष हैं। आजकल उनका ध्यान हिन्दीकी ओर विशेष हुआ है। इस प्रकार मुंशी पीताम्बरप्रसाद पुश्तैनी कवि हैं। हमें भरोसा है कि वह हिन्दीमें खूब अभ्यास बढ़ावेंगे और अपने पूज्य पिताकी भांति हिन्दीमें अच्छी-अच्छी पुस्तकें लिखेंगे। आजकल जोधपुरमें वर्षा नहीं है। आपका एक सवैया उसीपर इस प्रकार है :—

"दुनियां दुख पावत नीर बिना,
तुम नेक दया दरसावत ना।
कुम्हलावत गुल्म लता तरु वेलि,
इन्हें जलतें सरसावत ना।
करते पिउ पिउ पपीहराके,
हियरा भरते हरसावत ना।
चढ़ि आवत है नित कारी घटा,
तरसावत है बरसावत ना।"

दूसरा सवैया पं॰ देवराज पचानन शास्त्रीकी समस्या पर लिखा है :—

"तज दीजिये कामरूपनो,
हरि नाम कभू बिसरावनो ना।

सन्मान करो सबको हित सों,
अभिमान कभू उर लावनो ना।
कलपावनो प्रीतम चाहो इतै,
चित कौनहु को कलपावनो ना।
शुभ काज बनै सो निसंक करौ,
मरजावनो है फिर आवनो ना।"*

* * *

हास्यरसावतार स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी गुप्तजीके घनिष्ठ मित्रोंमेंसे थे। चतुर्वेदीजी चपड़ेके व्यवसाय-क्षेत्रसे सम्बन्ध रखते थे। उनके फार्मका नाम 'श्रीमिर्जामल जगन्नाथ' था। गुप्तजीने चतुर्वेदीजीको हिन्दी-सेवामें अधिकाधिक प्रवृत्त किया। भारतमित्रके कालम चतुर्वेदीजीके लेखों और कविताओंके लिये खुले रहते थे। विद्यावारिधि प० ज्वालाप्रसादजीके कनिष्ठ सहोदर प० बलदेवप्रसाद मिश्रको भी गुप्तजीने हिन्दी सेवाके लिये उत्साहित किया था। इस प्रसङ्गमें पण्डित उमापतिदत्त शर्मा बी० ए०, पण्डित अक्षयवट मिश्र काव्यतीर्थ, बा० राधाकृष्ण टीबड़ेवाला, बा० रामकुमार गोयनका, प० कालीप्रसाद तिवारी और बाबू भगवतीप्रसाद दारूका आदि सज्जनोंके नाम स्मृतिपथमें आते हैं। इन सबके लेख भारतमित्रमें छपते थे।

श्रीसत्यनारायण, जो आगे चलकर अपनी प्रतिभाके प्रसादसे कविरत्न कहलाये, पण्डित श्रीधर पाठकके स्नेह-भाजन थे। बचपनसे ही कविरत्नजी, पाठकजीकी कविताओंको बड़े चावसे पढ़ते थे और अपनी उस समयकी रचनाओंसे उनको अवगत करते रहते थे। एक बार सत्यनारायणने एक कविता बनायी और पाठकजीने उस कविताको प्रकाशनार्थ अपने मित्र भारतमित्र-सम्पादक गुप्तजीके पास भेज दिया। गुप्तजीने कविता तो प्रकाशित कर ही दी, उसके साथ ही एक टिप्पणी

* भारतमित्र, सन् १९०६ ई०।

भी चढ़ा दी। टिप्पणीमें सत्यनारायणजीकी पीठ भी ठोकी और सलाह भी दी। उन्होंने लिखा था :—

"यह एक बालककी कविता श्रीयुक्त प० श्रीधर पाठककी मारफत हमारे पास पहुंची है। बालक तबियतदार है, यदि अभ्यास करेगा तो भविष्यमें अच्छी कविता कर सकेगा। अपनी तरफसे हम इतना ही कहते हैं कि भाषा जरा वह और साफ करे। कुछ नये ढगकी कवितामें अभ्यास बढ़ावे, क्योंकि जिस ढंगकी यह कविता है, वैसी हिन्दीमें बहुत अधिक और उत्तमसे उत्तम हो चुकी हैं।" *

इसी प्रकार गुप्तजीने कविवर पण्डित लोचनप्रसादजी पाण्डेय साहित्य-वाचस्पतिको भी उनके बाल्य-कालमें प्रोत्साहन दिया था, जिसका उल्लेख श्रीपाण्डेयजीने अपने लेखमें अन्यत्र स्वयं किया है।

* * * *

---

* स्वर्गीय कविरत्न सत्यनारायणकी वह बाल-रचना यह है, जो गुप्तजीकी टिप्पणी सहित भारतमित्रमें २५-५-१९०३ को प्रकाशित हुई थी :—

बिरथा जनम गमायो अरे मन।
रच्यो प्रपञ्च उदर पोषणको रामको नाम न गायो,
तरुणिन तरल त्रवलिको लखिके हाय फिर्यो भरमायो॥
रह्यो अचेन चेन नहि कीन्हौं सगरो समय बितायो,
माया जाल फँस्यो हा अपुने उरझि भलो बौरायो॥
पर नियको हिय देत न हिचकत नेक नहीं सरमायो,
भगवा भेष धर्यो ऊपर तें नाइक मूँड मुँडायो॥
जन मन रंजन भव भय भजन अरु प्रभुको बिसरायो,
नित प्रति रहत पापमें रत तू कबहु न पुण्य कमायो॥
मगलमयको नाम तज्यो विषयनसों लिपटायो,
सत्यनारायण हरि पदपङ्कज भजो होय मन भायो॥

—पं० सत्यनारायणकी जीवनी (श्रीबनारसीदास चतुर्वेदी)
पृष्ठ ३८-३९

गुप्तजीके भारतमित्र-सम्पादन-समयमें सहकारी बाबू महावीरप्रसाद गहमरी थे। सन् १६०० से ही वे उनकी सहकारितामें आ गये थे। बाबू महावीरप्रसाद पत्रकारितामें गुप्तजीके हाथके नीचे रहकर ही पारङ्गत हुए थे। वे प्रायः बोलकर गहमरीजीसे 'लेख' लिखाया करते थे। थोड़े समय तक प० चन्दूलाल चौधरीने भी गहमरीजीके साथ साथ भारत-मित्रमें सहायक सम्पादकत्वेन कार्य किया था। पण्डित चन्दूलाल, हिन्दी बङ्गवासी-सम्पादक बाबू हरिकृष्ण जौहरजीकी सिफारिशसे रक्खे गये थे। भारतमित्र प्रेस और पत्रके मुद्रक — एवं प्रकाशक पण्डित कृष्णानन्द शर्मा थे और मेशीनमेन थे छेदी मियां। छेदी मियां विहारके रहनेवाले एक लम्बे-चौड़े जवान थे। गुप्तजीका उनपर पूर्ण विश्वास था। वह बड़े नेक मुसलमान थे। यहाँ पण्डित रामानन्द शर्मा और बाबू नवजादिकलाल श्रीवास्तवके नाम भी उल्लेखनीय हैं। ये दोनों ही सज्जन प्रतिभा सम्पन्न थे, उन्होंने गुप्तजीके लिखे लेखोंकी कापियाँ पढ़कर इतनी योग्यता अर्जित की कि क्रमानुसार कम्पोजीटरसे प्रूफरीडर होकर पत्र सम्पादक बननेमें सफल हुए। जब सन् १६०६ में बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर एम० ए० की प्रेरणासे बाबू प्राणतोषदत्त बी० ए० के तत्त्वावधानमें "वीर भारत" नामक एक बड़े आकारका साप्ताहिक हिन्दी पत्र कलकत्ते-से प्रकाशित हुआ, तब उसके सम्पादनका भार प० रामानन्द और बाबू नवजादिकलालको ही सौंपा गया था। इसके कई वर्षों बाद पटनेसे 'पाटलिपुत्र' प्रकाशित हुआ, तो उसके सम्पादकीय विभागमें भी पण्डित

गुप्तजीकी दयालुताके एक-दो उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं :—

उनका नौकर धन्नू कहार नामका एक गुवाला था। वह भोला-भाला आदमी था। धन्नू एकबार छुट्टी लेकर घर गया हुआ था। उसने अपने पहुँचनेके दिनकी सूचना किसीसे लिखवाकर कार्ड द्वारा भेज दी थी। गुप्तजीने सोचा, वह गरीब छलछिद्ररहित आदमी है, स्टेशनके भीड़ भड़क्केमें भौंचका-सा होकर कहीं रास्ता न भूल जाय और उसे मकान तक पहुँचनेमें कष्ट होगा—वे स्वयं स्टेशन पहुँचे और अपने धन्नूको लिवा लाये। 'स्लेट बरता' मँगवाकर धन्नूको गुप्तजीने खुद 'क, ख, ग, घ, ङ' से आरम्भ कराके साक्षर बना दिया था। प्रतिदिन रातको वे उसे अपने पास बिठाकर पढ़ाया करते थे।

गुप्तजीके एक मित्र श्रीमोहनलाल मेरठसे आनेवाले थे। ३० मई सन् १९०६ की बात है। उस दिन मोहनलालजी तो नहीं आ पाये, किन्तु स्टेशन पर उन्हें एक अज्ञात कुलशील भूला-भटका लड़का मिल गया। वह रो रहा था। गुप्तजीके पीछे-पीछे चला आया। उसे दो-तीन दिन रक्खा और पीछे अपने पाससे खर्च देकर उसके घर भेजा।

गुप्तजो अपनेसे घनिष्टता रखनेवाले किसी व्यक्तिका भी दोष छिपाते नहीं थे। ऐसे ही एक मित्र कई वर्षोंके बाद एकबार मिलने आये थे। उनकी यथोचित आवभगत करदी गई। उनके लिये अपनी डायरीमें गुप्तजी लिखते हैं :—

…"सवेरे काम कर रहे थे। अचानक बाबू आत्माराम पटियालावाले आगये। अजब ठाठ है। साहबाना पोशाक, खाना-पीना सब। चोटी कट, जनेऊ नदारद। ग्रांड होटलमें ठहरे, अफसोस हुआ। मगर लाचारी। बी० ए० हैं, इंजिनीयर हैं। 'राय' हैं। ठाठ बाठ है। आप तो होटली हैं पर आपका खत्री नौकर हिन्दू-पन पर मरता है।"…

उर्दू मासिक पत्र 'जमाना'के सुयोग्य सम्पादक मुन्शी दयानारायण निगम गुप्तजीके विशेष कृपापात्र थे। किन्तु उर्दू पत्रोंका परिचयात्मक इतिहास निबन्ध रूपमें लिखनेके सिलसिलेमें 'जमाना' की खरी आलोचना करते समय उन्होंने मित्रताकी परवा नहीं की। जब निगमजीने उनको उलहना लिखा, तब उन्होंने उनके नाम अपने ३०-११-१६०४ के पत्रमें लिखा :—

"ज़मानेका रिव्यू करते मैंने जो कुछ लिखा है, उसका मतलब यही है कि, हर बातमें खूब वाज़ह और सही तौरपर लिखना चाहिये। अपने मज़हब वग़ैराकी नाहक़ तौहीन और हिक़ारत न करना चाहिये। मैं विलायत यात्राका विरोधी नहीं और न मैं छोटी उम्रके बच्चोंकी शादी पसन्द करता हूँ। हां, अँगरेजी होटलोंमें हिन्दुओंके लड़कोंको देखना पसन्द नहीं करता।"......

इसके बाद ता० ४—१२—१६०४ के पत्रमें फिर लिखा :—

"हिन्दुओंकी मआशरतमें कितनी ही बातें चाहे तकलीफदेह हो जायँ, उनका ऐब अदबसे दिखाना हिन्दूके बच्चोंका काम है, चिश्ती और चकबस्तने ऐसे वाहियात ढंगसे हमले किये हैं कि अगर उन लोगोंमें इस बातकी समझ होती तो शर्मिन्दा होते। आपको अगर चुभतीं तो आप ज़रूर बग़ैर नोट किये, कभी न छापते। आप बादमें समझेंगे कि उन्होंने कहांतक ज्यादती और लापरवाहीसे काम लिया है, बल्कि नफ़रतसे उन लोगोंने बानियाने हिन्दू धर्मकी नियत पर हमला किया है और मज़ा यह है कि खाली अपने वहमसे। हिन्दू मज़हब इन बातोंसे कोसों दूर है। ज़रूर आपको सद मज़ामीनसे इत्तिफ़ाक़ नहीं होसकता, मगर जहां कुछ बेऐतदाली हो, वहां कुछ कहना आपका काम है। ज़रूर बहस-तलब मजामीन निकलें, मगर तहज़ीबको हाथसे न जाने दिया जाय।"

निगम साहबके नाम समय समयपर भेजे हुए गुप्तजीके पत्रोंके कुछ अवतरण यहां दिये जाते हैं :—

......"उर्दू अखबारातपर जो सिलसिला मज़ामीन लिखा गया है, अभी उसके ६ नंबर निकले हैं, ४ नंबर उर्दूपर और हो सकते हैं, फिर तीन चार नंबरमें हिन्दी अखबारातका तज़करा होगा, वह भी बहुत जल्दी है। इस मज़मूनके लिखनेसे मेरा मतलब प्रेसकी इसलाह और उर्दू-हिन्दीके झगड़ेका तस्फिया है, जिसकी बहुत ज़रूरत है। यह मज़मून भारतमित्रमें निकला मगर अफसोस है कि उर्दू अखबारवाले हिन्दीसे महज़ नावाक़िफ़ हैं, इससे मुझे उसका तर्जुमा एक उर्दू अखबारमें छपवाना जरूरी है।"......

......"याद रहे यह 'जमाना' की तरक्क़ी और शोहरतके लिये बहुत खराब है (कि वह वक़्तपर न निकले)....... 'पर्चा' हर महीने न निकलनेसे उसकी इज्जत नहीं हो सकती। न उसमें कोई मज़मून ही ताज़ा रहता है।"......

......" 'जमाना' चलाना हो तो अपना ही रखिये। वर्ना लपेटकर ताक़पर रख दीजिये जिसकी शै है, उसीसे चलती है, दूसरा नहीं चला सकता।"......

......"मुन्शी सज्जाद हुसेनसे आप मिले थे, उनकी क्या हालत थी? उम्दह उर्दू लिखनेवालोंका वह बादशाह है। मैं भी अवधपंचमें लिखा करता था। जमाना हो गया। मैं उर्दू लिखना ही भूल गया। शायद कलकत्ते जाते मैं कानपुर ठहरूं और आपसे भी मिलता जाऊँ। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र कानपुरमें हिन्दीके एक लासानी लिखनेवाले थे, उनसे तआरुफ था, अब राय देवीप्रसाद साहब वकीलसे है।"......

......"'अवधपंच' से कभी बड़ी दोस्ती थी। सन् १८८४ से १८८७ तक मैं उसमें लिखा करता। मगर मुन्शी सज्जाद हुसैन साहबकी यह बेमरव्वक्ती है कि भारतमित्रसे अवधपंचका बदला बंद कर दिया। वजह यह है कि, मियाँ साहब हिन्दी नहीं पढ़ सकते।"

......"उर्दूएमोअल्लामें मैंने 'मुआमसीह' लिखना शुरू किया है। देखा होगा।"......

......"फरवरी सन् १९०५ के जमानाके नंबरमें नौबतराय साहबका छोटा-सा मज़मून दायकी निस्बत क़ाबिले तारीफ़ है। नौबतराय साहबका तर्ज़ तहरीर बड़ा पुख्ता है।"......

......"आज़ादकी किताबोंका खूब मुतालय किया है। इसकी एक मुख्तसिर 'लाइफ' निकलने दीजिये। बादमें प्रतापनारायण, हरिश्चन्द्र, सज्जाद हुसेन अवधपंच, मिर्जा महम्मद बेग आशिक़, सितम ज़रीफ़ (मेरे उस्ताद) की लाइफके लिये कोशिश करूंगा। वक्त मिला तो इरादे बहुत हैं, वर्ना मर्ज़ी भगवानकी।"

......"अगर आजादकी निस्बत मैं कुछ भी और न लिखूं तो भी मेरा मज़मून मुकम्मिल है। मगर नहीं, कमसे कम तीन चार मज़मून मुझे और लिखने होंगे। शायद दिसंबर (१९०६) तक माहवार निकलते चले जायेंगे। यह मज़मून मैंने खास 'जमाने' के लिये लिखा है। भारतमित्रमें अगर निकलेगा भी तो 'जमाने' से तर्जमा होकर।"......

..."मेरे जीमें हिन्दीका एक माहवार रिसाला निकालनेकी समाई हुई है, जिसकी बड़ी ज़रूरत है। हिन्दीमें सिर्फ एक सरस्वती है, जो ऊपरसे परी बनी हुई है। मगर अन्दरसे..."

..."पंडित दीनदयालुजीसे ज़मानाके लिये कुछ हासिल कर सकूंगा। गीताका अर्थ वह बहुत आला दर्जेका जानते हैं। वही अगर लिखदें तो कमाल हो जाय।"...

* * *

...."मुन्ना मसीह' पर दूसरा मजमून लिखना चाहता था, मगर कामयाबी नहीं हुई।"...

..."मैं मसौदा तो कभी रखता ही नहीं।"...

* * *

सन् १८९३ के आरंभसे सन् १९०७ के अर्द्ध भाग तक, गुप्तजीका कलकत्ता कार्य-क्षेत्र रहा। वे सभी समुदायों और संस्थाओंके हित-चिन्तक एवं सहायक थे। प्रारम्भमें मारवाड़ी समाजमें विद्याभिरुचि और

सार्वजनिक जीवनकी भावना उत्पन्न करनेमें गुप्तजीकी लेखनीने बड़ी सहायता पहुँचाई थी, यह कहना ही पड़ेगा। उस समयके उत्साही मारवाड़ी युवकोंकी मित्र मण्डलीने सन् १८९८ के दिसंबरमें बाबू तुलारामजी गोयनकाको सभापति, बाबू रंगलालजी पोद्दारको सेक्रेटरी और बाबू मोतीलालजी चाँदगोठियाको एसिस्टेंट सेक्रेटरी बनाकर 'मारवाड़ी एसोसियेशन' की स्थापना की थी। इस मित्र मण्डलीमें बाबू शिवनाथरायजी सेखसरिया, बाबू हरसुखरायजी चोखानी, बाबू श्रीनिवासजी गोयनका, बाबू माधोप्रसादजी हलुवासिया, बाबू मुन्नालालजी चमड़िया, बा० फूलचन्दजी हलुवासिया, बा० रामगोपालजी खेमका, बा० प्रहलादजी डालमिया, बाबू नरसिंहदासजी भिवानीवाला, बा० गंगाप्रसादजी सोनी, बा० शिवप्रसादजी गाडोदिया और बाबू जयलालजी भिवानीवाला आदि सज्जन सम्मिलित थे और उनको गुप्तजीका पूर्ण सहयोग प्राप्त था। स्वयं अग्रवाल होनेके नाते वे अपनेको मारवाड़ी समाजसे पृथक् नहीं मानते थे। उनको मारवाड़ी एसोसिएशनका आग्रह पूर्वक सदस्य बनाया गया था। मारवाड़ी एसोसिएशनके २ फरवरी १८९९ के उत्साह-पूर्ण अधिवेशनमें सर्वप्रथम तीन प्रस्ताव स्वीकृत हुए थे, जिनमें एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव था—"देशी शिल्पकी उन्नति" के विषयमें। इसपर अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए बाबू जयलालजी भिवानीवालाने कहा था "जब तक हमलोग अपने ओढ़ने-पहनने और बरतावकी चीजें अपने ही देशमें तैयार करने न लगेंगे, तब तक हमारी हालत ठीक न हो सकेगी। इस समय प्रायः सब चीजें विदेशी ही बरत रहे हैं। हमारा शरीर विदेशी चीजोंसे आच्छादित है। हमारा टका-पैसा सब विदेशी शिल्पकारोंकी जेबोंमें चला जाता है।" स्वीकृत प्रस्तावोंके हवालेसे एसोसिएशनका परिचय देते हुए गुप्तजीने २० मार्च (सन् १८९९) के भारतमित्रमें "होनहार सभा" शीर्षक एक प्रभावोत्पादक

लेख प्रकाशित किया था। ये बातें स्वदेशी-आन्दोलनयुगका आरंभ होनेसे पहले की हैं। गुप्तजी, मारवाड़ियोंमें आत्मशक्तिकी कमी और आत्मगौरवका अभाव अनुभव करते थे और इसके लिये वे बराबर उनका ध्यान आकर्षित करते रहते थे। गुप्तजीके एक लेखका कुछ अंश है :—

…"मारवाड़ियोंने कलकत्तेमें बहुत कुछ नाम पैदा किया है। उनकी दशा यहां बहुत अच्छी है। उनकी संख्या भी खूब है और नित्य बढ़ती जाती है। यहांके वाणिज्यकी कुञ्जी मानों उन्हींके हाथ में है। सब लोग उनकी उद्यमशीलताके आगे सिर नवाते हैं। यहांके मारवाड़ियोंमें लक्षाधीश दो चार नहीं, सैकड़ों हैं। करोड़पति भी दो एक नहीं है, ऐसा नहीं है। अंगरेजोंके 'हाउस' मारवाड़ी दलालोंके ही चलाये चलते हैं। वाणिज्यमें सारी पृथ्वीको जीतनेवाले अङ्गरेज तथा इस देशके जमींदार, राजा महाराजा लोग सब मारवाड़ियोंको मानते हैं। कलकत्तेका बड़ाबाजार जो कलकत्तेकी नाक तथा कलकत्तेके वाणिज्यका केन्द्रस्थल है, मारवाड़ियोंकी ही बदौलत ऐसा बना है। मारवाड़ियोंके आनेसे पहले न बड़ा बाजार ही कुछ था और न इसकी शोभा ही थी। मारवाड़ी कलकत्तेमें आकर रायबहादुर हुए, राजा हुए तथा और कितनी ही तरहके सम्मानोंसे सम्मानित हुए। मारवाड़ी एक नहीं, दो-दो चार-चार, दस-दस, बरन और भी अधिक गाड़ी-घोड़े रखते हैं। उनके कोठियां हैं, बाग-बगीचे हैं। उनके बागोंमें अच्छे-अच्छे मकान हैं। परंतु दुःखकी बात यही है कि, इतना कुछ होनेपर भी मारवाड़ियोंकी आत्मशक्ति कुछ नहीं है। मानों मारवाड़ी अनाथ हैं, संसारमें उनका कोई नहीं है। इसका कारण क्या? यही कि मारवाड़ियोंमें आत्मगौरवका खयाल नहीं, वह अपनी मान-मर्यादाकी रक्षा नहीं कर सकते।"…

हवड़ा स्टेशनके प्लेटफार्मपर मारवाड़ियोंके प्रति कुलियों और रेलवेके बाबुओंके व्यवहारको लक्ष्य करके गुप्तजीने उक्त वाक्य लिखे थे। उस समय मारवाड़ी एसोसिएशनने हवड़ाके रेलवे प्लाटफार्मपर मारवाड़ियोंके जानेमें रोक-टोक होनेकी धांधलीका अधिकारियोंसे लिखा-पढ़ी करके प्रतीकार करानेका निश्चय किया था।

सामाजिक बन्धनोंकी शिथिलता और धनके बढ़ते हुए प्रभावके कारण बदलती हुई मारवाड़ी-समाजकी दशाको देखकर गुप्तजीने लिखा था—

......मारवाड़ी-समाजका हाल अब कुछ पतला होता जाता है। उनके सामाजिक बंधन ढीले होते जाते हैं। पहले मारवाड़ी लोग खान्दान देखते थे, इज्जत देखते थे, मनुष्यत्व देखते थे, यह सब गुण होनेपर धनकी ओर भी देखते थे। परंतु अब केवल धन देखते हैं, धन ही में सब गुण देखते हैं। धनके सिवाय और कुछ नहीं देखते। जो सात पीढ़ीका सेठ था, बड़ा धर्मात्मा नेक चलन था, खानदानी इज्जतदार था, आज यदि समयके उलट-फेरसे वह निर्धन हो गया है तो मारवाड़ी उसे दो कौड़ीका समझने लग जाते हैं। कल जिसके बापने यहां आकर अदनासे अदना काम किया था और आज वह धनी हो गया है तो मारवाड़ियोंकी आंखमें उससे बढ़कर बड़ा खानदानी और कोई नहीं है। सब उसीकी ओर दौड़ते हैं, उसके दोषोंको भी गुण समझते हैं। परन्तु सदासे मारवाड़ी समाजकी यह दशा नहीं थी। यह सत्य है कि, वैश्योंको रुपया बहुत प्यारा होता है, पर सदा प्यारा होनेपर भी मारवाड़ी समाज अपने धर्मको, अपनी जातिको, अपनी इज्जतको बड़ी प्यारकी दृष्टिसे देखता था। न जाने किस पापके फलसे आज मारवाड़ियोंका वह भाव बदल चला है।"*......

कलकत्तेका श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय मारवाड़ी एसोसियेशनके ही प्रयासका फल है। इस विद्यालयके लिये गुप्तजी बड़ा परिश्रम कर गये हैं। विद्यालय-भवनमें उनका चित्र आज भी उनकी सेवाओंका स्मरण दिला रहा है।

गुप्तजीको दलबन्दीकी दल-दलमें फँसना पसन्द न था। वे सबके थे और सबको अपना मानते थे। भला,—अच्छा जनहितकारक काम करनेवाली सभी संस्थाएं उनसे सहयोग और सहायता पानेकी आशा कर सकती थीं। मारवाड़ी एसोसियेशनके बाद जब दूसरी संस्था—

* भारतमित्र १९०० ई०

वैश्यमित्र सभाके नामसे बनी, तब उसके कार्यकर्त्ताओंको भी गुप्तजीने निरन्तर प्रोत्साहन दिया। वैश्यमित्र सभाका ही नाम उसके तीसरे वार्षिकोत्सवमें 'वैश्य सभा' करके सब वैश्योंके लिये उसकी सदस्यताका द्वार खोल दिया गया था। उसके सभापति बाबू धन्नूलालजी अग्रवाल एटर्नी-एट-ला, मन्त्री बाबू रामकुमारजी गोयनका, सहकारी मन्त्री बाबू फूलचन्दजी चौधरी और कोषाध्यक्ष बाबू देवीबक्सजी सराफ बनाये गये थे। वैश्य सभाके द्वारा समाजसुधारके साथ ही बड़ाबाजार निवासियोंकी भलाईके कई काम हुए। इस सभाकी प्रकाशित रिपोर्टपर गुप्तजीने अपना निष्पक्ष मत यों प्रकट किया था :—

कलकत्तेकी वैश्य सभाकी नियमावली और रिपोर्ट देखकर हमें बहुत हर्ष हुआ। कलकत्तेके बड़े बाजारमें मारवाड़ी एसोसियेशन बननेके बाद कई संस्थाएँ बनी हैं, उनमें एक यह भी है। मारवाड़ी एसोसियेशन अब कलकत्तेके धनी मारवाड़ियोंकी सभा है और उसमें अधिक उमरके लोग शामिल हैं। यह सभा मध्यम श्रेणीके युवकोंकी है। इससे एक अच्छे लाभ भी आशा है। वह यह कि जब कभी मारवाड़ी एसोसियेशन अधिक अमीरीमें आजावेगी, तब यह सभा अपने उत्साह और अध्यवसायसे जरूरी कामोंको कर लेगी।*"

मारवाड़ी एसोसियेशनके स्तम्भ स्वरूप कार्यकर्त्ता बाबू रंगलालजी पोद्दार और बाबू रामदेवजी चोखानीकी भाँति ही वैश्यसभाके सञ्चालक बाबू रामकुमारजी गोयनका एवं बाबू फूलचंदजी चौधरी—आदि गुप्तजीके स्नेहभाजन थे।

स्थानीय सारस्वत क्षत्री विद्यालय और सावित्री कन्या पाठशाला—इन दोनों शिक्षा-संस्थाओंको भी गुप्तजीकी आन्तरिक सहानुभूति प्राप्त थी। इनकी स्थापना क्रमानुसार संवत् १९६० और १९६२ विक्रमाब्दमें हुई थी।

* * * *

* भारतमित्र १८ जून १९०४।

गुप्तजी निरन्तर प्रवासमें ही रहे। अपने कनिष्ठ सहोदरों पर उनका अटूट प्रेम और विश्वास था। भाई भी उनके अनन्य आज्ञा पालक थे। अन्य कुटुम्बियोंमें लाला मेहरचन्दजी और तेजरामजीके प्रति गुप्तजी बड़ी श्रद्धा रखते थे। पिताकी मृत्युके अनन्तर अपनी अभिभावक-विहीनताके समय घरू बातों और लेनदेनके कामोंमें गुप्तजी उन्हींकी सलाह लिया करते थे और उनका पितृतुल्य आदर करते थे। इसके अतिरिक्त लाला देवीसहायजी, जो जालन्धरमे कारोबार करते थे और लाला राधाकृष्णजी मज्जरवाले भी गुप्तजीके प्रीतिपात्र थे।

कलकत्तेमें पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्र, पं० गोविन्दनारायणजी मिश्र, पं० देवीसहायजी शर्मा और पं० लक्ष्मणदत्तजी शास्त्रीको गुप्तजी अपने गुरुजनोंमें मानते थे।

गुप्तजीके बङ्गीय मित्रोंमें थे—देशभक्त ए० चौधरी, जे० चौधरी, बा० मोतीलाल घोष, माननीय सर गुरुदास बन्द्योपाध्याय, जस्टिस सारदाचरण मित्र, बा० पाँचकौड़ी बनर्जी, प० सुरेशचन्द्र समाजपति, प० राजेन्द्रचन्द्र शास्त्री, कविराज ज्योतिर्मय सेन, डाक्टर प्यारीमोहन मुकर्जी और पं० सखाराम गणेश दउस्कर इत्यादि। श्री देउस्करजी महाराष्ट्र होते हुए भी बङ्गभाषाके प्रतिभाशाली लेखक और उस समयके बँगला साप्ताहिक पत्र "हितवादी"के सम्पादक थे।

गुप्तजीके स्थानीय हिन्दी क्षेत्रस्थ घनिष्ठ सम्पर्की मित्र—प० छोटूलालजी मिश्र, डाक्टर श्रीकृष्णजी वर्मन, बा० रूड़मलजी गोयनका, प० जगन्नाथ-प्रसादजी चतुर्वेदी, बा० ईश्वरीप्रसादजी वर्मा, प० उमापतिदत्तजी शर्मा, बी० ए०, प० अक्षयवटजी मिश्र काव्यतीर्थ, प० श्रीगोपालजी मुन्शी, प० कालीप्रसादजी तिवारी, प० सोमनाथजी झाड़खंडी, प० कन्हैयालालजी गोपालाचार्य, डा० लक्ष्मीचन्दजी, प० चिरंजीलालजी वैद्य, प० कन्हैया-लालजी वैद्य सिरसावाले, प० हरिनारायणजी—श्रीनारायणजी वैद्य

पाटनवाले, प० कृपारामजी कुष्ट-चिकित्सक, प० शम्भूरामजी पुजारी, प० सी० एल० शर्मा, प० कालीचरणजी शर्मा, प० भूरालालजी मिश्र, मुन्शी महादेवप्रसादजी कायस्थ, प० हरदेवरामजी व्यास, बा० यशोदानन्दनजी अखौरी और बाबू राधाकृष्णजी टीबड़ेवाला प्रभृति थे।

गुप्तजीके सहयोग और परामर्शसे लाभ उठानेवालोंमें मारवाड़ी एसोसियेशन, श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, मारवाड़ी चेम्बर आफ कामर्स, वैश्यसभा, सावित्री कन्या पाठशाला, श्रीकृष्ण गोशाला, एक लिपि विस्तार परिषद्, बड़ाबाजार लाईब्रेरी और हिन्दी साहित्य सभा आदि संस्थाओंके सञ्चालकोंके अतिरिक्त सेवाभावपरायण बाबू लक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया, बाबू किशनदयालजी जालान, प० शिवप्रतापजी आचार्य, और प० शिवनारायणजी व्यासके नाम उल्लेखनीय हैं। भिवानीवालोंमें बाबू माधवप्रसादजी हलुवासिया, बाबू फूलचंदजी हलुवासिया, बा० ज्ञानीरामजी हलुवासिया, बाबू जगलकिशोरजी पोद्दार बा० मुरलीधरजी बहादुरगढ़िया और बा० जयलालजी चिड़ीपाल प्रभृतिसे गुप्तजीका भाई-चारा था।

यद्यपि प० माधवप्रसादजी मिश्रसे गुप्तजीकी घनिष्ट मित्रता थी, पर पीछे भारतधर्म महामण्डलके प्रश्नको लेकर गहरा मतभेद हो गया था, फिर भी मिश्रजी या उनके कनिष्ट सहोदर प० राधाकृष्णजीके प्रति गुप्तजीने अपने घरू-व्यवहारमें रत्ती भर भी अन्तर नहीं आने दिया। उधर यही बर्ताव प० माधवप्रसादजीका रहा। मनमुटावकी स्थितिमें भी वे जब कलकत्ते आते, तब पारिवारिक कुशल-मङ्गल जाननेके लिये गुप्तजीके घरपर अवश्य पहुँचते। ऐसे ही प्रकृत प्रेमके कारण मिश्रजीके देहान्तका समाचार पाकर गुप्तजी रो पड़े थे और मिश्रजीके शोकमें विह्वल होकर उन्होंने जो लेख लिखा था, उसके द्वारा पाठकोंकी आंखोंमें भी आंसू ला दिये थे। गुप्तजीने लिखा था :—

…"भारतमित्र-सम्पादकसे उनका बड़ा प्रेम था। इतना प्रेम कि, कदाचित् ही कभी दूसरे किसीसे उतना हुआ हो। बातें करते-करते दिन बीत जाते थे, रातें टल जाती थीं, पर बातें पूरी न होती थीं। गत दो सालसे वह नाराज थे। नाराजी मिटानेकी चेष्टा भी कई बार की गई, पर न मिटी। यही खयाल था, कि कभी न कभी मिट जायगी। पर मौतने आकर वह आशा धूलमें मिला दी। इतना अवसर भी न दिया, कि एक बार उनको फिर प्रसन्न कर लेते! उनका और भारतमित्र-सम्पादकका एक ही देश है। बहुत पुराना साथ था। इससे उनके साथ ठीक स्वजनोंका सा नाता था। इस नाराजगीके दिनोंमें कभी-कभी मिला करते तो कहते—'बस, अब यही बाकी है, कि तू मर जाय तो एक बार तुझे खूब रोलें और हम मर गये तो हम जानते हैं कि पीछे तू रोवेगा।' आज पहली तो नहीं,—पिछली बात हुई! याद करते-करते आँसू निकल पड़े! अब नहीं लिखा जाता।"

व्याख्यान-वाचस्पति प० दीनदयालुजी शर्माके साथ गुप्तजीकी जो मित्रता थी, वह सर्वजन विदित है। पण्डितजीसे मित्रता निभानेमें गुप्तजीने जो त्याग दिखाया था, उसके कारण उनका नाम एक सच्चे मित्रके रूपमें लिया जाता है। पण्डितजीके सम्मानकी रक्षाके लिये न केवल गुप्तजीने बङ्गवासी कार्यालयकी अपनी छै सालकी नौकरीपर लात मार दी, प्रत्युत बड़े-बड़े प्रलोभनोंकी ओर भी उन्होंने आँख उठाकर नहीं देखा। गुप्तजीको भारत धर्म महामण्डलके, जिसका प० दीनदयालुजीने त्याग कर दिया था,—पक्षमें करनेके लिये महामण्डलके सभापति स्वर्गीय दरभंगा नरेश महाराज सर रमेश्वरसिंहजीकी ओरसे कम प्रयत्न नहीं हुआ, परन्तु गुप्तजीको उनके सिद्धान्तसे कोई डिगा नहीं सका। पण्डित माधवप्रसादजी मिश्रसे भी 'यूयं यूयं वयम् वयम्' होनेका कारण वही भारत-धर्म-महामण्डलका पचड़ा था। पण्डित दीनदयालुजी गुप्तजीकी सलाह बिना कोई काम नहीं करते थे। दोनों मित्र परस्परमें सुख-दुःखके साथी थे।

पण्डित दीनदयालुजीका नाम और प्रभाव उस समय असाधारण था। उनका जन्म झज्झर (जिला रोहतक—पंजाब) में संवत् १९२० (सन् १८६३) ज्येष्ठ कृष्णा ३ बुधवारको हुआ था और देहान्त हुआ संवत् १९९४ (सन् १९३७) आश्विन शुक्ला ९ वृहस्पतिवारको। वयस्क होते ही सनातन धर्मकी रक्षा और प्रचारका व्रत धारणकर वे कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए और इसी पवित्र कार्यमें जीवन भर लगे रहे। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी उन्हें 'भाई साहब' कहकर सम्बोधित किया करते थे। संवत १९४४ में उन्होंने श्रीभारत धर्म महामण्डलकी हरिद्वारमें नींव डाली। सन् १८८६ में सनातन धर्मान्दोलन आरंभ किया। सनातन धर्म सभा लाहौर, सनातन धर्म महासम्मेलन और सनातनधर्म-प्रतिनिधि सभा पंजाबके संस्थापक वही थे। उनके उपदेशोंके प्रभावसे श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय कलकत्ता, मारवाड़ी विद्यालय बम्बई, सनातन धर्म कालेज लाहौर, हिन्दू कालेज दिल्ली, ऋषिकुल ब्रह्मचार्याश्रम हरिद्वार आदिके अतिरिक्त कितनी ही संस्कृत तथा हिन्दी पाठशालाओंकी स्थापना हुई, देशमें सर्वत्र सैकड़ों धर्म सभाएँ और गौशालाएँ बनीं। हिन्दू विश्व-विद्यालयकी स्थापनामें पण्डितजीने अपने मित्र महामना मालवीयजीको धन संग्रहार्थ दौरोंमें साथ रहकर हार्दिक सहयोग दिया था। एक लिपि विस्तार परिषद्के कार्यमें पण्डितजी माननीय जस्टिस सारदाचरण मित्रके सहायक थे। उस समय अहिन्दी-भाषा-भाषी प्रान्तोंमें भी पण्डितजीके भाषण-समारोहोंमें श्रोताओंकी भीड़ उमड़ पड़ती थी। अखिल भारतवर्षीय हिन्दू महासभाकी स्थापना जिन महानुभावोंके प्रयाससे हुई थी, उनमें एक पण्डित दीनदयालुजी भी थे। सन् १९२१ ई० में हरिद्वारमें अर्द्धकुम्भीके मेलेके अवसरपर हिन्दू महासभाके वे सभापति बनाये गये थे। स्वदेशी आन्दोलनके युगमें पण्डितजीके उपदेशसे

व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालु शर्मा

प्रभावित होकर अपवित्र विदेशी चीनीका त्याग और स्वदेशी वस्तु-व्यवहारकी सहस्रों लोगोंने प्रतिज्ञा की थी। अपने समयके वे सनातन धर्म-जगत्के एक प्रधान नेता और अद्वितीय हिन्दी वक्ता थे। मासिक 'समालोचक' (भाग २ अंक १३—अगस्त सन १६०३) ने पण्डितजीके सम्बन्धमें लिखा था—

"भारतधर्म महामण्डलके संस्थापक पण्डित दीनदयालु शर्माके ओजस्वी और सुधामधुर व्याख्यान मद्रासमें हुए, वह दिन हिन्दीके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंसे लिखने योग्य है, जिस दिन फ्रेंच आफ इण्डियाके वक्ता पण्डितजीको मद्रासमें दाक्षिणात्योंके बीचमें आनरेबल लाला गोविन्ददासने एड्रेस दिया। यदि स्वामी दयानन्दजीकी इसलिये स्तुति की जाय कि उन्होंने हिन्दीको अपनी धर्मभाषा बनाकर उसके साहित्यकी पुष्टि कराई, की, तो पण्डित दीनदयालुजीको भी अटकसे कटक तक और कश्मीरसे कन्याकुमारी तक हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेके अत्यन्तम प्रधान उपाय व्याख्यानमें वर्तनेके लिये धन्यवाद देने चाहियें। जब उक्त पण्डितजी अमृतसर पिंजरापोलके लिये लाख रुपया इकट्ठा कर सकते हैं तो क्या वह उदार महात्मा अपने पाँच-सात व्याख्यान नागरी प्रचारिणी सभाको नहीं दे सकते, जिससे सभाका सारा दारिद्र्य मिट जाय और हिन्दीकी सर्वाङ्ग पुष्टिकी नींव दृढ़ हो जाय।"

* * * *

गुप्तजीका देहान्त होनेके पश्चात् उनकी पहली वार्षिक स्मृति सभा ता० ७ सितम्बर रविवार, सन् १६०८ को सायंकाल ७ बजे स्थानीय श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयमें कलकत्ता हाईकोर्टके माननीय न्यायाधीश श्रीसारदाचरण मित्र महोदयके सभापतित्वमें हुई थी। उस समय विद्यालय १५३ हरिसन रोड-स्थित मकानमें था। उस अवसर पर व्याख्यान-वाचस्पति पण्डित दीनदयालुजी शर्माके हाथसे गुप्तजीका

चित्रोद्घाटन कराया गया था। सभामें उपस्थिति असाधारण थी और उसमें पत्र-सम्पादकों और पत्र-प्रतिनिधियोंके अतिरिक्त बड़ाबाजारके प्रायः सभी हिन्दी-प्रेमी सज्जन तथा सार्वजनिक संस्थाओंके कार्यकर्त्ता बड़ी संख्यामें सम्मिलित थे। पण्डित अमृतलालजी चक्रवर्तीका स्वागत भाषण होनेके पश्चात् अध्यक्ष पदसे अपने भाषणमें माननीय जस्टिस मित्रने स्वर्गीय गुप्तजीकी गुणावलीका वर्णन करते हुए कहा—"मैं भारत-मित्रमें गुप्तजीके शिवशंभूके चिट्ठे बड़ी उत्सुकतासे मन लगाकर पढ़ता था। उनका भाषापर अधिकार, स्वदेशानुराग एवं हास्योद्रेकमें क्षमता आदि गुण संस्मरणीय हैं। उनके प्रति सादर मैं अपनी श्रद्धा अर्पित करता हूँ।" पश्चात् कितने ही हिन्दी-समाचार पत्रोंके जन्मदाता पण्डित दुर्गाप्रसादजी मिश्र, कमला-सम्पादक प० जीवानन्दजी शर्मा काव्यतीर्थ और गुप्तजीके अन्तरङ्ग मित्र पण्डित जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदीने गुप्तजीकी गुण-गाथा सुनाई और अन्तमें पण्डित दीनदयालुजीने गुप्तजीका चित्र उद्घाटनपूर्वक मर्मस्पर्शी वाणीमें उनके जीवनकी विशेषताएँ धर्मभाव, लेखनशक्ति, हास्यप्रियता, उदारता और तेजस्विताका बखान करते हुए कहा था—"यद्यपि गुप्तजीका स्थूल शरीर अब नहीं रहा है, किन्तु उनकी आत्मा अमर है और जब तक हिन्दी साहित्य रहेगा, तब तक उनकी कीर्त्तिकी धवल पताका फहराती रहेगी।"

उक्त महती सभामें इन पंक्तियोंका लेखक भी उपस्थित था। इसके प्रायः २४ वर्ष बाद प० बनारसीदास चतुर्वेदीजीके प्रयत्नसे सन् १६३२ में गुप्तजीकी एक स्मृति सभा महामहोपाध्याय प० सकलनारायण शर्माजी के सभापतित्वमें अनुष्ठित हुई थी और तदनन्तर गत सन् १६४८ में सम्पादकाचार्य प० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयीकी अध्यक्षतामें हिन्दी प्रेमियोंने समवेत हो गुप्तजीका गुणानुस्मरणकर अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पित कीं।

सन् १६४६ मे गुप्तजीकी ४२ वीं पुण्य तिथिके उपलक्षमे कलकत्तेकी वङ्गीय हिन्दी परिपद्‌की ओरसे उनका चित्र अनावृत करानेकी क्रिया कलकत्तेके गण्यमान्य साहित्यिकों और साहित्यानुरागियोंकी उपस्थितिमें सम्पन्न हुई। उस सुन्दर साहित्यिक समारोहमें सभापतिका आसन काशी निवासी प्रख्यात कलानुरागी एवं कलाविद् हिन्दी-सेवी श्री राय-कृष्णदासजीने सुशोभित किया था और कविवर श्रीरामधारी सिंह दिनकरजीने चित्रोद्घाटन किया था। सभापति महोदय, प्रधान अतिथि श्री दिनकरजी, पुरातत्त्ववित् डाक्टर श्रीवासुदेवशरणजी अग्रवाल, प्रो॰ ललिताप्रसादजी सुकुल, बाबू मूलचंद्रजी अग्रवाल और प० रामशंकरजी त्रिपाठी आदिके गुप्तजीकी हिन्दी-सेवापर सामयिक भापण होनेके बाद गुप्तजीका चित्र परिपद्‌के स्थानमे लगाया गया। वङ्गीय हिन्दी परिपद् हिन्दी साहित्य-सेवी विद्वानोकी कलकत्तेमे एक प्रतिष्ठित संस्था है।

उपसंहार

संवत १९५० में गुप्तजी पहले-पहल कलकत्ते आये थे, तबसे प्रायः ६ वर्ष हिन्दी बङ्गवासीमें रहे और संवत् १९५६ से १९६४ के श्रावण मास तक भारतमित्रमें। इसके पूर्व प्रायः पौने दो वर्ष उन्होंने कालाकांकरके हिन्दी दैनिक 'हिन्दोस्थान' के सम्पादकीय विभागमें कार्य किया था। उससे पहले 'अखबारे चुनार' और 'कोहेनूर' नामक उर्दू पत्रोंकी वे एडीटरी कर चुके थे। इस प्रकार जीवन भर गुप्तजीने साहित्यकी साधना की और हिन्दीके निर्माणमें यावच्छक्य—यावत् बुद्धिबलोदय सहायता पहुँचायी। उन्होंने पत्रकारिताको छोड़कर दूसरे किसी कार्यकी ओर कभी दृष्टिपात नहीं किया।

सन् १८८६ ई० ३ फरवरीको अपनी डायरीमें गुप्तजीने लिखा था:—"मनुष्यको चाहिये कि अपनी ही वस्तुपर सन्तुष्ट रहे, कभी किसीसे कुछ न मांगे और इस सिद्धान्तका दृढ़तासे पालन करे।" इस वाक्यको उन्होंने अपना 'मोटो' बना लिया था, जिसका अपने जीवन-कालमें अक्षरशः पालन किया। गुप्तजीने अपनी आवश्यकताएँ नहीं बढ़ायीं और इसीसे वे अपने आत्म-सम्मानको अक्षुण्ण रख सके, अपने घरके बादशाह बने रहे। जितना मिलता था, उसीमें उनको सन्तोष था। जब जिसपर, जो कुछ लिखा, न्याय दृष्टिसे लिखा, निर्भय होकर लिखा, सिद्धान्तके विचार एवं अन्तःकरणकी प्रेरणासे लिखा। अपने सम्पादकीय आसनको उन्होंने न्यायाधीशके पदसे कभी न्यून नहीं समझा।

गुप्तजीके हृदयमें सनातन धर्मका बड़ा गौरव था। इसका अभिप्राय यह नहीं है कि भिन्न धर्म-विश्वासोंके प्रति वे घृणा, विद्वेष या किसी

प्रकारको दुर्भावना रखते थे। बिलकुल नहीं, हरगिज नहीं। वे ब्रह्म समाज और आर्यसमाजके उत्सवोंमें भी वैसे ही उत्साह एवं आनन्दके साथ सम्मिलित होते थे; जैसे सनातनधर्मके महोत्सवोंमें। ब्रह्मसमाजके प्रवर्तक स्वर्गीय राजा राममोहनरायके गुणोंके गुप्तजी प्रशंसक थे; इसी प्रकार आर्यसमाजके संस्थापक श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीके भी। उन्होंने स्वामीजीकी जीवनी लिखकर भारतमित्रकी एकाधिक संख्याओंमें सचित्र प्रकाशित की थी।

गुप्तजीका हृदय पवित्र सात्विकभावापन्न था। वे अनुयायी थे अपने पूर्वजोंके धर्मके, जिसको वे सनातन शाश्वत सार्वभौम मानते थे एवं आग्रही थे भारतीय संस्कृतिके। गुप्तजीका घृणा थी केवल बुरे कामोंसे और विद्वेष था दुराचरणसे।

गुप्तजीके स्वभावमें मिलनसारी और व्यवहारमें शिष्टाचार था। मित्रोंसे मिलनेके लिये उनके घरपर जाकर भी वे प्रसन्न होते थे, किन्तु धनाभिमानियोंकी कृपा-लाभके लिये द्वारस्थ होना उनकी आत्माके विरुद्ध था। जिस प्रकार आडंबर और घमंडसे उन्हें घृणा थी, उसी प्रकार सरलता तथा सादगीसे प्रेम था। अपने स्थानपर समागत मित्रोंका यथोचित आदर-सत्कार करनेमें वे बड़े विनम्र और सहृदय थे।

जिस समय गुप्तजीने भारतमित्रको सँभाला, उसकी बड़ी दुरवस्था थी। भारतमित्रके स्वामी बाबू जगन्नाथदासजी उसके लिये प्रति मास घाटा देते-देते तंग आ गये थे। ग्राहकोंकी संख्या नगण्य थी। गुप्तजीने उस अवस्थाको ऐसा सँभाला कि थोड़े ही समयके बाद पत्रकी स्थिति बदल गई। हजारोंकी संख्यामें उसके ग्राहक बढ़ गये और हिन्दी पत्रोंमें उस समय वह सर्व प्रधान सुसम्पादित समाचारपत्र माना गया। भारतमित्रकी इस उन्नतिमें मुख्य कारण था गुप्तजीकी प्रवन्धदक्षता

और पत्रकार-कलाभिज्ञताके अतिरिक्त त्यागशीलता। प्रबन्धदक्षताने पत्रकी व्यवस्था सुधारी, सम्पादन-पटुताने उसको सर्वप्रिय बनाया और त्यागशीलताने उसकी धाक जमायी। गुप्तजीमें एक विशेष क्षमता यह थी कि, वे हँसी और व्यंगके लेखक होते हुए भी गम्भीर विषयके मार्मिक विवेचक थे।

गुप्तजीकी भाषा एवं शैलीके सम्बन्धमें द्विवेदी-युगके प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं :—"गुप्तजीकी भाषा बहुत चलती, सजीव, विनोदपूर्ण होती थी। किसी प्रकारका विषय हो, गुप्तजीकी लेखनी उसपर विनोदका रंग चढ़ा देती थी। वे पहले उर्दूके एक अच्छे लेखक थे, इससे उनकी हिन्दी बहुत चलती और फड़कती हुई होती थी। वे विचारोंको विनोदपूर्ण वर्णनोंके भीतर ऐसा लपेट करके रखते थे कि, उनका आभास बीच-बीचमें ही मिलता था, उनके विनोदपूर्ण वर्णनात्मक विधानके भीतर विचार और भाव लुके-छिपे-से रहते थे। यह उनकी लिखावटकी एक बड़ी विशेषता थी।" *

लखनऊ विश्वविद्यालयके प्रो० प्रेमनारायण टंडन एम० ए० साहित्य-रत्न (मोदी स्कालर) ने अपने एक लेखमें गुप्तजीकी शैलीको साधारणतः परिचयात्मक माना है और उसकी चार विशेषताएँ बतायी हैं। वे कहते हैं :—"इस शैलीकी पहली विशेषता यह है छोटे-छोटे वाक्योंका इस प्रकार संगठन करना जिससे भाषामें विशेष प्रवाह रहे और लेखकके प्रति पाठकोंकी रुचि बढ़ती जाय। उर्दूकी चुलबुलाहट इनकी शैलीकी दूसरी विशेषता है, जो पाठकोंका मनोरञ्जन करती चलती है। मुहावरोंका प्रयोग तो उर्दू जाननेवाले सब लेखक करते ही हैं। गुप्तजीने भी उनका सुन्दर उपयोग करके अपनी शैलीको सजीव बना दिया है। यह उनकी शैलीकी तीसरी विशेषता है। परिस्थितिके कारण अपनी परिचयात्मक शैलीको

* हिन्दी साहित्यका इतिहास (संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण)—पृष्ठ ६१७-१८।

ही उन्हें व्यंगपूर्ण बनाना पड़ा।......ऐसा करनेसे सम्बन्धित व्यक्ति इनका आशय समझ जाता और जन-साधारणका उससे मनोरञ्जन भी खूब होता था। यही उनकी शैलीकी चौथी विशेषता है, जिसमें इनका व्यंग्य व्यक्तिको सजग और सावधान तो अवश्य कर देता था, परन्तु क्षुब्ध, क्रुद्ध या आहत नहीं।"

जिस भारतेन्दु-युगका प्रतिनिधित्व या उत्तराधिकार-सूत्र गुप्तजीने पण्डित प्रतापनारायण मिश्रजीसे ग्रहण किया था, उस युगकी समाप्ति उनके साथ ही होगई। भारतेन्दु युगके वे एक प्रमुख प्रतिनिधि थे। जब तक जीवित रहे एक सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यशील, अनुभवी, देशभक्त पत्रकारके रूपमें जागरूक, सचेष्ट, सक्रिय रहे और हिन्दी संसारमें उनकी तूती बोली। हिन्दीके वे 'अहले जबां' कहे जाते थे। हिन्दीका उनका शब्द-भण्डार भरपूर था—अतएव भाषा या भाव-विकृति सम्बन्धी भूलोंके लिये वे साधिकार टोक देते थे। गुप्तजीके स्वर्गारोहणके पश्चात् हिन्दी साहित्य-क्षेत्र अनियन्त्रित हो उठा और उच्छृङ्खलताके साथ स्वेच्छाचारकी बाढ़-सी आ गयी। हमारे आदरणीय मित्र श्रीपण्डित विष्णुदत्तजी शर्मा बी० ए० का,—जो गुप्तजीके समयके साक्षी एक सुयोग्य तटस्थ साहित्य-समीक्षक है, कथन है कि, 'इन तीस-पैंतीस वर्षोंमें तो हिन्दी और उसके साहित्य-क्षेत्रमें लन्दनके East-End मुहल्लेकी बस्ती बस गई है। इसमें मिलेगा भी तो अधिकांश कहानियों और उपन्यासोंके रूपमें वातावरणको दूषित करनेवाला अंगरेजी बस्तीके बाहर फेंका हुआ कूड़ा-कचरा ही।' इस युगको चाहे जो कुछ नाम दिया जाय, किन्तु सही अर्थमें तो उच्छृङ्खलता और स्वेच्छाचारका युग कहना ही उपयुक्त होगा। साहित्य-क्षेत्रकी इस अनियन्त्रित और अनुशासन-विहीन स्थितिने शुद्ध सात्विक भारतीय जीवनको भी अस्वस्थ, अस्थिर और असंयत बना दिया है। गुप्तजीके समयमें और इस समयमें आकाश पातालका अन्तर है। गुप्तजी लोक-चरित्रके निर्माता थे।

उस समयका पाठक-समुदाय सम्पादकानुवर्ती था और इस समय अधिकतर पाठकानुवर्ती सम्पादक हैं। यह सखेद कहना पड़ता है कि सम्प्रति राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके उपदेशोंका इतना प्रचार होनेके वावजूद भी समाजके नैतिक स्तरका पतन ही होरहा है, उत्थान नहीं। देशवासियोंके नैतिक चरित्रके निर्माणके लिये, जो देशकी शान्ति एवं सुखका आधार है, हमारे पत्रकार बन्धुओंको अपने पूर्वाचार्योंके आदर्श पर चलना चाहिये। अस्तु, गुप्तजीका जीवन सर्वतोभावेन आदर्श था। हिन्दी-जगत्‌में जबतक अपने पत्रों और पत्रकारोंके प्रति आदर-भाव रहेगा, तबतक सम्पादकप्रवर गुप्तजीका नाम श्रद्धाके साथ स्मरण किया जायगा।

शर्मा-साहित्य-सदन, जसरापुर Via खेतड़ी [जयपुर—राजस्थान] — झाबरमल्ल शर्मा, अक्षय तृतीया, संवत् २००७ वि०

पत्रकार गुप्तजी

(बनारसीदास चतुर्वेदी)

श्री बालमुकुन्दजी गुप्तका जन्म सन् १८६५ ई० में हुआ था और स्वर्गवास सन् १९०७ ई० में। उनके साढ़े इकतालीस वर्षके अल्प-जीवनका ब्यौरा इस प्रकार है :—

१८६५ ई० से १८७४ ई० तक—बाल्यावस्था
१८७५ ई० से १८८६ ई० तक—विद्याध्ययन
१८८६ ई० से १८८९ ई० तक—उर्दू पत्रोंकी एडीटरी
१८८९ ई० से १९०७ ई० तक—हिन्दी पत्रोंका सम्पादन

इस प्रकार यदि उनकी बाल्यावस्था तथा छात्र-जीवनको छोड़ दिया जाय तो यह कहना ठीक होगा कि उनकी सम्पूर्ण आयु, लेख और कविता लिखते तथा सम्पादन करते ही बीती। उनका जीवन प्रारम्भसे लेकर अन्त तक साहित्यमय था। इस विषयमें हम स्वर्गीय पं० पद्मसिंहजी शर्माको उनका समकक्ष और समानशील पाते हैं। घर-गृहस्थी तथा धन-सञ्चयकी ओर इन दोनों ही महारथियोंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। ये गोरखधन्धे इनके लिये सर्वथा गौण ही रहे! इसके अतिरिक्त इन दोनों साहित्य-सेवियोंमें अनेक साम्य पाये जाते हैं। दोनों ही हिन्दी-उर्दूके प्रगाढ़ पण्डित थे, दोनोंकी भाषा सजीव तथा फड़कती हुई होती थी और दोनों ही में वह गुण अच्छी मात्रामें पाया जाता था, जो आज प्रायः दुर्लभ हो रहा है—यानी सहृदयता। अच्छी रचनाओंकी दाद देनेमें तथा नवीन लेखकोंको प्रोत्साहन प्रदान करनेमें दोनों ही कुशल थे। यही कारण है कि आधुनिक युगके अनेक पदलोलुप अथवा

महत्त्वाकांक्षी बहुधन्धी पत्रकारोंके जीवनकी अपेक्षा इन दोनों पत्रकारों-का व्यक्तित्व कहीं अधिक आकर्षक था।

गुप्तजीके स्वर्गवासके ४१ वर्ष बाद भी उनकी स्मृतिकी आयोजना, उनका यह साहित्यिक श्राद्ध,—इस बातका प्रबल प्रमाण है कि उनकी साहित्यिक कृतियोंमें और उनके व्यक्तित्वमें कोई ऐसी विशेषता थी, जो भुलाये नहीं भुलाई जा सकी। इस ग्रन्थका संस्मरण तथा श्रद्धाञ्जलि विभाग हमारे कथनका पूर्णतया समर्थन करता है।

हमें यहाँ यह बात लज्जापूर्वक स्वीकार करनी पड़ेगी कि हमने इससे पूर्व गुप्तजीकी रचनाओंका विधिवत् अध्ययन नहीं किया था, यद्यपि शिवशम्भुके चिट्ठे तथा पत्रोंका इतिहास हम बहुत वर्ष पहले पढ़ चुके थे, पर गुप्तजीके प्रति हमारे हृदयमें बड़ी श्रद्धा रही है। 'विशालभारत' के प्रथम वर्षमें ही—सन् १९२८ के अङ्कमें हमने स्वर्गीय मुंशी दयानारायण-जी निगमकी श्रद्धाञ्जलिका अनुवाद प्रकाशित किया था और उसके बाद तो हमने उक्त पत्रमें गुप्तजी विषयक कई संस्मरण आग्रहपूर्वक लिखाकर छपवाये थे। हम उचित अभिमानके साथ कह सकते हैं कि गुप्तजीके जितने संस्मरण 'विशाल भारत' में छपे उतने अन्य किसी पत्रमें नहीं। सम्भवतः सन् १९३२ में उनकी स्मृतिको ताज़ा करनेके लिये कलकत्तेमें एक मीटिङ्गकी भी हमने आयोजना की थी, जिसमें अनेक साहित्य-सेवियोंने भाग लिया था। पर पत्रों द्वारा प्रचार तथा साहित्यिक अध्ययन दोनों अलग-अलग चीजें हैं। पहला काम हम लस्टम-पस्टम तरीकेसे भले ही कर लें, पर द्वितीय कार्य्यके लिये जिस अनवरत साधनाकी ज़रूरत है, वह हममें है ही नहीं।

अपनी दूसरी त्रुटि हमें और भी अधिक लज्जासहित स्वीकार करनी पड़ती है, वह यह है कि हम उर्दू नाम मात्रको ही जानते हैं। गुप्तजीने

जितना हिन्दीमें लिखा था, उससे कहीं अधिक उर्दूमें लिखा होगा। अपनी हिन्दी कविताओंके संग्रह (स्फुट कविता) में उन्होंने लिखा है:—

"इससे पहले सन् १८८४ ई० से सन् १८८६ ई० तक मैंने जो कुछ तुकबन्दी की थी, वह सब उर्दू और फारसीमें है। उस समय मैं हिन्दी नहीं जानता था। वह कविता हिन्दी कवितासे अधिक है।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि हिन्दी-क्षेत्रमें आनेके पूर्व गुप्तजी उर्दू लेखक ही थे। हिन्दी उन्होंने सन् १८८६ ई० में सीखना आरम्भ किया था और केवल १६॥ वर्ष हिन्दी सेवा करनेका सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ; जब कि उर्दू वे जीवन पर्य्यन्त लिखते रहे। गुप्तजीके पत्रकार-जीवनका अध्ययन करनेके लिये उर्दूका पर्याप्त ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। हमें पता नहीं कि उर्दू पत्रोंके इतिहासमें गुप्तजीका कहीं भी जिक्र आता भी है या नहीं, पर यह हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि गुप्तजीके सर्वोत्तम संस्मरण उर्दू मासिक पत्र जमानाके एडीटर मुन्शी दयानारायणजी निगम द्वारा ही लिखे गये थे। आशा है कि आगे चलकर देवनागरी लिपिमें गुप्तजीके उर्दू निबन्धों तथा कविताओंको भी एक संग्रहमें प्रकाशित कर दिया जायगा।

आजके युगमें जब पत्रकारोंकी स्वाधीनतापर पूँजीवादका प्रहार हो रहा है जब कि पत्रकारिता मिशनके बजाय एक पेशा अथवा व्यापारमात्र बनती जा रही है, गुप्तजीके स्वाधीनता-

स्वाधीनता प्रेम

प्रेमके उदाहरण हमारे लिये पथ-प्रदर्शक तथा उत्साह-प्रद सिद्ध होंगे। अपने इस स्वाधीनता-प्रेमके कारण ही उनकी 'हिन्दोस्थान'की नौकरी छूट गई थी। सौभाग्यसे ४८ वर्ष पुराना वह पत्र गुप्तजीके वंशजोंके पास सुरक्षित रह गया है, जो इस महत्त्वपूर्ण घटनापर प्रकाश डालता है, पत्रको हम ज्योंका त्यों यहाँ उद्धृत करते हैं :—

हिन्दोस्थान आफिस
कालाकांकर
सिराथू स्टेशन द्वारा
२ फरवरी १८९१

प्रिय मित्र,

धन्य है उस परमेश्वरके मायाको कि नाना प्रकारके रङ्ग देखनेमें आता है। कहाँ मैं पत्र लिखनेमें आनन्दित होता था तहाँ आज दुःख होता है। कल्ह तिथि १ के मध्यान कालमें राजा साहबने आज्ञा पत्र मँगाके लिख दिया कि आज मुं० जीको आना चाहिये था सो अपने नियत समय पर नहीं आये इसलिये और हमारे चले जाने पर हिन्दोस्थानमें उनका लेख जाने योग्य न होगा, कारण गवर्नमेंटके विरुद्ध बहुत कड़ा लिखते हैं, अतएव इस स्थानके योग्य नहीं हैं, च्युत कर दिये जायँ। अधिक कारण तिथि पर न आये। और पंडित शीतलप्रसाद उपाध्यायको मासिक ३०) से ५०) किये और बी. ए. मास्टर राधारमण इटावेसे आये थे उनको ५०) से ७०) किया है। ये दोनों महाशय म्याटर लिखकर टेम्पलको सुना दिया करें, उनकी अनुमति हो छपे। यह समाचार सुनकर मैंने कल्ह आपको तार दे दिया था कि आनेकी जल्दी नाहक करके खर्चेका भार सिरपर लदाना अच्छा नहीं। मुझे तो साथ छूटनेका बड़ा कष्ट हुआ परन्तु जगदीशकी इच्छाको क्या किया जाय।

रामलाल मिश्र

हिन्दी पत्रकार-कलाके इतिहासमें यह शायद पहला ही मौका था जब कि 'गवर्नमेंटके विरुद्ध बहुत कड़ा लेख' लिखनेके कारण किसी पत्रकारको 'च्युत' किया गया हो। इस कारण हम उक्त पत्रको ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस घटनाके १६ वर्ष बाद यानी सन् १९०७ में स्वर्गीय पं० बालकृष्णजी भट्टको गवर्मेण्ट विरोधी एक भाषणके कारण अपनी नौकरीसे हाथ धोना पड़ा था। उसका संक्षिप्त

विवरण अप्रासङ्गिक न होगा। श्री० पं० सुन्दरलालजीने विशालभारतके प्रथम अङ्क (जनवरी सन् १९२८) मे लिखा था :—

"लोकमान्यके कारावासके विरोधमें प्रयागमें एक सभा की गई थी। मुख्य वक्ता या इन पंक्तियोंका लेखक और सभापति थे पण्डित बालकृष्ण भट्ट। श्रोताओंकी संख्या लगभग सौ के रही होगी, जिसमें आधे स्कूलों या मुहल्लोंके लड़के थे और आधेमें थोड़ेसे हिम्मतवाले बड़ी उम्रके लोग और शेष पुलिसवाले। वक्ताने लोकमान्यकी जीवनी पर व्याख्यान दिया और अन्तमें उनके कारावास पर दुःख प्रकट करते हुए अपना स्थान लिया। भट्टजी उठे। वह सदा अपनी सामान्य भाषामें ही बोला करते थे। अत्यन्त सरल स्वभाव किन्तु भरे हुए हृदयसे पूर्व वक्ताकी बातको एक प्रकार काटते हुए भट्टजी कहने लगे :—

'का तिलक तिलक करत है! अपने देशके लिये गये हैं। फिर आय जइ हैं। हमको दुःख उन लोगनका है जो फिर कभी हमसे आय कर न मिली हैं। जो बिन खिले ही मुर्झाय गये! हमको दुःख खुदीराम बोसका है.........' लेखक खुदीराम बोसका नाम सुनते ही कुछ डरा। उसने पीछेसे बूढ़े भट्टजीको सावधान करनेके लिये हलकेसे उनका पग खींचा। भट्टजी तुरन्त पीछेको लौट पड़े और चिल्लाकर बोले 'हमरा पग काहे खींचत हो? सच तो कहित है।' फिर श्रोताओंकी ओर मुह करके कहने लगे 'हमरा पग खींचत हैं, हमसे कहत हैं, न कहो! कही काहे न! हिये मे तो लगी आग, कही काहे न?'

भट्टजीके भाषणकी रिपोर्ट अधिकारियों तक पहुँची। शिक्षा विभागके डाइरेक्टरने उन्हें आगाह करनेके लिये बुला भेजा। अभी डाइरेक्टरके कमरेमें कुर्सी पर बैठ कुछ मिनट ही हुए थे और डाइरेक्टर साहबने असली विषयकी ओर रुख ही किया था कि भट्टजी फौरन 'राम, राम, राम राम! हमका अस नौकरी न चाही!' कहते हुए उठ खड़े हुए और बिना इजाजत लिये उठकर बाहर निकल आए। फिर डाइरेक्टर साहबकी ओर रुख न किया। इस स्पष्ट वक्तृत्वके मूलमें भट्टजीके

कायस्थ पाठशालाकी प्रोफेसरीसे हाथ धो डालने पड़े। उनके जीवनके अन्तिम छः वर्ष बड़े ही ज़बरदस्त आर्थिक कष्टके साथ बीते..."

हिन्दी-पत्रजगत्‌में आगे चलकर ऐसे और भी कई उदाहरण पाये जाते हैं, जिनमें स्वर्गीय भट्टजी तथा गुप्तजीकी परम्पराको कायम रक्खा गया था। अपने विचारोंकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिये स्व० द्विवेदीजी तथा उनके शिष्य अमर शहीद गणेशजीने क्या क्या कष्ट नहीं सहे? स्व० कृष्णकान्तजी मालवीय, प० माखनलालजी चतुर्वेदी, प० श्रीरामजी शर्मा तथा श्रीकृष्णदत्त पालीवालजी भी उसी पथके पथिक रहे हैं।* वर्तमान आर्थिक संघर्षके कारण अथवा पत्रकार-कलामें व्यापारिकताके प्रवेशकी वजहसे वह आदर्शवाद अब 'ओल्ड फैशण्ड' अथवा दकियानूसी माना जाने लगा है!

गुप्तजीकी प्रगतिशीलता

गुप्तजीकी रचनाओंमें जो शक्ति तथा ताजगी अब भी बनी हुई है उसके मुख्य कारण दो हैं, एक तो यह कि राजनीतिक दृष्टिकोणसे वे सच्चे अर्थोंमें प्रगतिशील थे और दूसरा यह कि उनकी भाषामें किसी भी प्रकारकी कृत्रिमता नहीं थी। यहाँ पर हम गुप्तजीकी एक कविता, जो उन्होंने अपने अन्तिम दिनोंमें लिखी थी, उद्धृत करते हैं। यह उस समय की है जब लाला लाजपतराय, सरदार अजितसिंह आदि पकड़े गये थे और पंजाबके प्रमुख लोग अपनी राजभक्तिका प्रमाण देनेके लिये अंग्रेज प्रभुओंकी जीहुजूरी कर रहे थे :—

---

* यहाँ पर हमें अपने अन्य सहयोगियोंके नाम स्थानाभावके कारण छोड़ देने पड़े हैं। उनसे हम क्षमा प्रार्थी हैं।

पंजाबमें लायल्टी

सबके सब पंजाबी अब हैं, लायल्टीमें चकनाचूर,
सारा ही पंजाब देश बन जानेको है लायलपूर।
लायल हैं सब सिक्ख, अरोड़े, खत्री भी सब लायल हैं,
मेढ़, रहतिये, बनिये, धुनिये, लायल्टीके कायल हैं।
धर्म समाजी पक्के लायल लायल है, अखबारे-आम,
दयानन्दियोंका तो है लायल्टी ही से काम तमाम।
लायल लाला हंसराज हैं, लायल लाला रोशनलाल,
लायल्टी ही जिनका सुर है, लायल्टी ही जिनकी ताल।
पोथी लेकर इन्हें पड़ी अपनी लायल्टी दिखलाना,
लार्ड इवटसन देंगे उनको लायल्टीका परवाना।
मुसलमान साहब तो इससे कभी नहीं थे छुट्टीमें,
पैदा होते ही पीते हैं, वह लायल्टी घुट्टीमें।
'वतन' सदा से लायल ही था और अब है 'पैसा अखबार'
लायल्टीने मारे ही हैं, अब वह जीनेसे बेजार।
लायल सब वकील बारिस्टर जमींदार और लाला हैं,
म्युनिसिपाल्टी वाले तो लायल्टीका परनाला हैं।
खान बहादुर, राय बहादुर, कितने ही सरदार नवाब,
सब मिल जुलकर लूट रहे हैं लायल्टीका खूब शबाब।
ऐरा गैरा नत्थू खैरा सब पर इसकी मस्ती है,
लायल्टी लाहौरमें अब भूसेसे भी कुछ सस्ती है।
केवल दो हिम लायल थे याँ, एक लाजपत एक अजीत,
दोनों गये निकाले उनसे नहीं किसीको है कुछ प्रीत।
हाँ, कुछ हिम लायल थे रावलपिण्डीके पण्डित वाले,
वह सब पकड़ दिये फाटकमें बाहर लगा दिये ताले।

फिर एक और मिला था, डिस लायलका बच्चा पिंडीदास,
सोते उसे उठा कर घरसे फाटकमें करवाया वास।
और दिखाई दिया एक डिस-लायल लाला दीनानाथ,
उसको भी एक जुर्म लगा कर पिंडीके करवाया साथ।
इन सबसे लाला लोगोंका कुछ भी नहीं इलाका है,
लायल लोगोंके घर में डिस-लायलटीका फाका है।
पेट बन गये हैं इन सबके लायलटीके गुब्बारे'
चला नहीं जाता है, थककर हाँफ रहे हैं बेचारे।
बहुत फूल जानेसे डर है फट न पड़ें यह इनके पेट,
इसी पेटके लिये लगी है लायल्टीकी इन्हें चपेट।
सुनते पञ्जाब देश सीधा सुरपुरको जावेगा,
डिस-लायल भारतमें रहकर इज्जत नहीं गँवावेगा।
—भारतमित्र, १९०७ ई०।

पंजाबकी तत्कालीन परिस्थिति पर कैसा करारा व्यङ्ग है! इसी प्रकार "छोड़ चले शाइस्ताखानी" नामक कविता भी मजेकी है।

'सर सैयदका बुढ़ापा' नामक कवितामें किसानोंकी हालतका जो चित्र खींचा गया है, वह आज ५६ वर्ष बाद भी सजीव विद्यमान है। 'उर्दूको उत्तर' नामक कविता २८ मई सन् १६०० को प्रकाशित हुई थी। 'उर्दूकी अपील' के साथ वह भी पढ़नेकी एक चीज़ है।

हिन्दी उर्दूके झगड़ेके बारेमें गुप्तजीके विचार निस्सन्देह अत्यन्त सामयिक हैं। जहाँ वे हिन्दीवालोंको उर्दू पढ़नेके लिये उत्साहित करते थे, वहाँ उर्दूवालोंके अनुदार दृष्टिकोण—तंगनज़रीकी कठोरसे कठोर आलोचना भी करते थे। भले ही कोई कट्टर हिन्दी प्रेमी गुप्तजीके इस कथन पर नाक भौं सिकोड़े कि "मेरे विचारमें

हिन्दी उर्दूके विषयमें गुप्तजीके विचार

सम्प्रति दो तीन पीढ़ियों तक (एक शताब्दी तक) हिन्दी हितैषी लोग उर्दूके विना हिन्दीकी उचित उन्नति नहीं कर सकते। इसीलिये हिन्दुओंमें उर्दूके अच्छे अच्छे ज्ञाता होने आवश्यक हैं।"*

पर हमारी समझमें वास्तविकता और सत्यका एक अच्छा अंश उसमें विद्यमान है। गुप्तनिबन्धावलीमें उर्दू अखबारोंका वृत्तान्त देते हुए १९०४ में उन्होंने लिखा था :—

'ऊपरसे देखिये तो उर्दू और हिन्दीमें इस समय बड़ी अनबन है। उर्दूके तरफदार हिन्दीवालोंको और हिन्दीके पक्षवाले उर्दूवालोंको कुछ-कुछ टेढ़ी दृष्टिसे देखते हैं पर वास्तवमें उर्दू हिन्दीका बड़ा मेल है। यहाँ तक कि दोनों एक ही वस्तु कहलानेके योग्य हैं। केवल फारसी जामा पहननेसे एक उर्दू कहलाती है और देवनागरी वस्त्र धारण करनेसे दूसरी हिन्दी।"

यही बात और करीब करीब इन्हीं शब्दोंमें फरवरी सन १८८५ के हिन्दी प्रदीपमें स्व० प० बालकृष्णजी भट्टने लिखी थी। उनके शब्द ये थे :—

यह कौन कहता है कि उर्दू कोई दूसरी वस्तु है? सच पूछो तो उर्दू भी इसी हिन्दीका रूपान्तर है। जब हम हिन्दुओंने इसका अनादर करके इसे त्याग दिया तब मुसलमानोंने इसकी दीनतापर दयाकर इसे अपने मुल्कके लिबास और जेवरोंसे आभूषित कर इसका दूसरा नाम उर्दू रक्खा। तात्पर्य यह कि इस नारीका कुल और गोत्र सदा एक ही रहा। समय समय इसका रंग रूप और भेख अलबत्ता पलटता गया।"

इसके ४७ वर्ष बाद स्व० प० पद्मसिंहजी शर्माने अपने 'हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी' नामक भाषणमें कहा था :—

'हिन्दी उर्दूका भण्डार दोनों जातियोंके परिश्रमका फल है। अपनी अपनी जगह भाषाकी इन दोनों शाखाओंका विशेष महत्त्व है। दोनों हीने अपने अपने

* देखिये मुन्शी दयानारायण निगमजीका संस्मरण लेख।

तौरपर यथेष्ट उन्नति की है। दोनोंकि ही साहित्य-भण्डारमें बहुमूल्य रत्न सचित हो गये हैं और हो रहे हैं। हिन्दीवाले उर्दू साहित्यसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। इसी तरह उर्दूवाले हिन्दीके खजानेसे फायदा उठा सकते हैं। यदि दोनों पक्ष एक दूसरेके निकट पहुँच जायँ और भेद बुद्धिको छोड़कर भाई भाईकी तरह आपसमें मिल जायँ तो वह गलत फहमियाँ अपने आप ही दूर हो जायँ, जो एकसे दूसरेको दूर किये हैं। ऐसा होना कोई मुश्किल बात नहीं है। सिर्फ मजबूत इरादे और हिम्मतकी जरूरत है, पक्षपात और हठधर्मीको छोड़नेकी आवश्यकता है। बिना एकताके भाषा और जातिका कल्याण नहीं।...यदि हिन्दी उर्दू दोनों संयुक्त परिवारकी दशामें आ जायँ तो इसकी साहित्य-सम्पत्तिका ससारकी कोई भाषा मुकाबिला न कर सके।"

अपनी हिन्दी-भाषा नामक पुस्तककी भूमिकामें गुप्तजीने लिखा था :—

"यद्यपि बँगला मराठी आदि भारतकी अन्य कई भाषाओंमें हिन्दी अभी पीछे है तथापि समस्त भारतवर्षमें यह विचार फैलता जाता है कि इस देशकी प्रधान भाषा हिन्दी ही है और वही यहाँकी राष्ट्रभाषा होनेके योग्य है। साथ-साथ लोग यह भी मानते जाते हैं कि सारे भारतवर्षमें देवनागरी अक्षरोंका प्रचार होना उचित है...... इस समय हिन्दीके दो रूप हैं। एक उर्दू और दूसरा हिन्दी। दोनोंमें केवल शब्दोंका ही भेद नहीं, लिपि भेद बड़ा भारी पड़ा हुआ है। यदि यह भेद न होता तो दोनों रूप मिल कर एक हो जाता। यदि आदिसे फारसी लिपिके स्थानमें देवनागरी लिपि रहती तो यह भेद ही न होता। अब भी लिपि एक होनेसे भेद मिट सकता है। पर जल्द ऐसा होनेकी आशा कम है। अभी दोनों रूप कुछ कालतक अलग-अलग अपनी अपनी चमक-दमक दिखानेकी चेष्टा करेंगे। आगे समय जो करावेगा वही होगा। बड़ी कठिनाई यह है कि दोनों एक दूसरेको न पहचानते हैं न पहचाननेकी चेष्टा करते हैं। इससे बड़ा भारी अन्तर हो जाता है।"

यह भूमिका सम्भवतः सन् १९०६ के आसपासकी लिखी हुई है और तबसे ४३ वर्ष बाद भी वह ज्योंकी त्यों ताज़ा है। हिन्दीके दोनों

रूप अपनी चमक दमक दिखा चुके हैं—जिसे इस कथनमें कुछ शक हो वह भारतीय विधानके तीन अलग अलग अनुवादोंको देखले! पर यह नीति हिन्दी भाषाके लिये विघातक हो रही है। उर्दूवालोंको अपनी लिपिका मोह छोड़ देना चाहिये, तभी वे ज़बानको क़ायम कर सकते हैं और हम हिन्दीवालोंको भी यह समझ लेना चाहिये कि नज़ीर, हाली और अकबर हमारे ही कुटुम्बके हैं। हमारा अब भी यह दृढ़ विश्वास है कि जानदार हिन्दी लिखनेके लिये हिन्दीके ही दूसरे रूप उर्दूका जानना निहायत ज़रूरी है। चूँकि भाषाका प्रश्न आज भी हमारे लिये एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बना हुआ है, इसलिये इसपर हमने विस्तार-पूर्वक लिखना आवश्यक समझा।

जहाँ हम गुप्तजीकी राजनीतिक प्रगतिशीलताकी प्रशंसा करते हैं, वहाँ हमें ईमानदारीके साथ यह भी लिखना पड़ेगा कि सामाजिक विचारोंमें वे उदार नहीं थे। पर उनकी अनुदारताकी आलोचना करनेके पहले हमें यह भी समझ लेना चाहिये कि तत्कालीन समाज-सुधारकोंमें उच्छृङ्खलताकी जो भावना आ गई थी वह प्राचीन परम्पराओंके उपासक गुप्तजीकी दृष्टिमें सर्वथा अक्षम्य थी। गुप्तजी सनातनधर्मानुयायी थे और उनसे यह आशा नहीं की जा सकती थी कि ब्राह्म समाजी अथवा आर्य्य समाजी दृष्टिकोणको वे ठीक तरहसे समझ सकें। कभी कभी राजनीतिक प्रगतिशीलताके साथ साथ सामा-जिक प्रतिक्रियावादिताका विचित्र सम्मिश्रण एक ही व्यक्तिमें पाया जाता है। सुधारकोंके मतानुसार लोकमान्य तिलक भी अनुदार ही कहे जायँगे।

दूसरी बात जो हमें खटकती है वह गुप्तजीकी विवादशैलीके विषय-में है। आगे चलकर इसी शैलीको स्व० प० पद्मसिंहजी शर्माने ग्रहण किया था और उसे चोटी पर पहुँचा भी दिया था। यद्यपि हम शर्माजी-

को साहित्य-क्षेत्रमें अपने पितृतुल्य पूज्य मानते रहे हैं, तथापि उनके जीवनमें ही हमने अपना मतभेद विशाल भारत द्वारा प्रकट कर दिया था। हमारे शब्द ये थे :—

"हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि ज्यों-ज्यों हिन्दी गद्यका विकास होता जायगा, त्यों-त्यों कठोर लेखन शैलीकी लोकप्रियता घटती जायगी; प्रति पक्षीको चनानेके ढंगकी समालोचना समझदार पाठकोंको अधिकाधिक अखरने लगेगी। शर्माजीको यह बात न भूलनी चाहिये कि उनके लेख अपनी अनुपम लेखन-शैलीके कारण आजसे सौ सवा सौ वर्ष बाद भी पढ़े जायँगे। क्या यह बात वांछनीय है कि आजसे सौ सवासौ वर्ष बादका पाठक उन तमाम व्यंगमयी कठोर बातोंको पढ़कर कहे बात सम्भवतः ठीक होगी, पर यह कितनी कठोरतापूर्वक कही गई है!"

आज भी हमारा यही मत है और उसे हम इस अवसर पर दुहराये देते हैं। वह शैली अब समयसे काफी पिछड़ चुकी है और अब उसका केवल ऐतिहासिक मूल्य ही रह गया है। जो आलोचक इस विषयमें स्व० गुप्तजी या स्व० शर्माजीका अनुकरण करेंगे, वे वस्तुतः भूल करेंगे। 'दोषावाच्या गुरोरपि' इस नीति वाक्यका आश्रय लेकर हमने विनम्रता पूर्वक उपर्युक्त वाक्य लिखना उचित समझा है। पर गुप्तजीके कितनेही कार्य ऐसे थे जिनका हमलोग (आजके हिन्दी पत्रकार) अनुकरण कर सकते हैं। अनेक अवसरोंपर उन्होंने सम्पादकीय शिष्टाचारकी रक्षा की थी। जब लेडी कर्जन बीमार थीं, उस समय उन्होंने लार्ड कर्जनके नाम शिवशम्भुके चिट्ठे लिखना स्थगित कर दिया था। इस प्रकार उन्होंने भारतीय संस्कृतिका ही अनुगमन किया था, जिसके अनुसार विपक्षीकी विषम परिस्थितिमें उदारतापूर्ण व्यवहारका ही आदेश दिया गया है।

यद्यपि पूज्य द्विवेदीजीसे गुप्तजीका बहुत दिनोंतक वाद-विवाद चला था तथापि गुप्तजीने द्विवेदीजीके यहाँ पहुँचकर जिस नम्रतापूर्ण

ढङ्गसे उनका अभिवादन किया था, उससे उनकी शिष्टता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। पाठक देख चुके हैं कि गुप्तजी किस प्रकार अपने स्वाधीन विचारोंके कारण 'हिन्दोस्थान' से निकाले गये थे। तत्पश्चात् उनको अपने शेष वेतनके मिलनेमें भी बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा था, पर गुप्तजी जब हिन्दी पत्रोंका इतिहास लिखने बैठे तो उन्होंने 'हिन्दोस्थान' तथा कालाकांकर और उसके नरेशके प्रति सर्वथा न्याय ही किया। उनके लिखे हुए कालाकांकर-निवासके संस्मरणोंमें बड़ा माधुर्य्य है। उस स्थानके प्रति कृतज्ञताके भाव निम्नलिखित पंक्तियोंमें कितनी खूबीके साथ प्रकट हुए हैं :—

…"बड़ा ही शान्तिमय एकान्त स्थान है। सीधी-सादी रीतिसे जीवन बितानेके लिये उससे अच्छा कोई स्थान नहीं हो सकता। कभी वह गंगाके किनारे-किनारे पंडित प्रतापनारायणजी और दूसरे सज्जनोंके साथ धीरे-धीरे टहलना, कभी मालवीयजीके साथ चाँदनीमें रेती पर फिरना और कितनी ही तरहकी अच्छी बातें करना स्मरण आता है। कालाकांकर भूलनेकी वस्तु नहीं है। वह छोटासा स्थान सचमुच स्वर्गका टुकड़ा था। उसमें रहनेका समय भूस्वर्गमें रहनेके समयकी भाँति था। चिन्ता बहुत कम थी, वासनाएं भी इतनी न थीं, विचार भी सीमाबद्ध स्थानमें विचरण करता था। पर हाय, उस समय उस स्थानका हृदयमें इतना आदर न था। स्वर्गमें रहकर कोई स्वर्गका आदर ठीक नहीं कर सकता है। कालाकांकरमें रहकर कालाकांकरकी ठीक कदर आदमी नहीं कर सकता। आज कलकत्तेमें वह सब बातें एक-एक करके याद आती हैं। पर क्या वह सब फिर मिल सकती हैं? सब कुछ मिले तो वह बेफिकरी कहाँ? एक स्वप्न था जो जागते-जागते देखा था—

अफसानये शबाब खुदारा न पूछिये।
देखा है जागते जिसे यह वह खाब था।"

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शिक्षाएँ जो हमलोग गुप्तजीके चरित्रसे ग्रहण कर सकते हैं वह है, उनकी अपरिग्रहशीलता और मितव्ययता। इन दोनों गुणोंके बिना वे अपनी ईमानदारीको कायम नहीं रख सकते थे। गुप्तजीके सुपुत्र श्रीनवलकिशोरजीने इस विषयकी दो घटनाएँ हमें सुनाई थीं। यहाँ उन्हें उद्धृत करना अप्रासङ्गिक न होगा :—

"एक बार मैं दो कमीज अपने दो छोटे भाइयोंके लिये गुड़ियानी ले जानेको ४) रु० में सेन कम्पनीके यहाँसे लाया, छेदी मियाँ मेरे साथ थे। जिस समय मैं आया, मारवाड़ी एसोसियेशनके कार्यकर्त्तालोग जो किसी आवश्यक विषयमें सम्मति लेनेके लिये आये हुए थे, पिताजीके पास बैठे थे। मैंने आते ही कहा – बापूजी ये दो कमीज मुरारी और रघुनन्दनके लिये ४) रु० में लाया हूँ। पिताजीने यह सुनते ही उन लोगोंसे बातें करना तो छोड़ दिया और मुझपर बहुत नाराज होकर बोले—'मालूम होता है, तू जरूर हमारा किसीके सामने हाथ पसरवायेगा ४) रु० में एक मलमलका थान आता जिसमें घर भरके कपड़े बन जाते।' उनकी नाराजी देखकर मैं सन्न हो गया। अन्तमें बाबू रामदेवजी चोखानी जो उस समय उपस्थित थे, मुझे अपनी घोड़ा-गाड़ीमें साथ बिठाकर लेगये और सेन कम्पनीकी दुकानमें कमीजें वापस करवाके आये।

दूसरी एक घटना मुझे याद है,—उन दिनों कलकत्तेमें एक मामला चल रहा था। झगड़ा दो धनी मानी-प्रभावशाली व्यक्तियोंमें था। मुकदमा फौजदारी था। उस मामलेकी अदालती कार्रवाईकी रिपोर्ट प्रतिदिन अँगरेजी अखबारोंमें निकलती रहती थी। इस मुकदमेसे सम्बन्ध रखनेवाले एक सज्जनकी ओरसे, जिसका पक्ष न्यायकी दृष्टिसे कमजोर था, एक दिन एक पिताजीके मित्र पाँच हजार रुपयेके नोट लेकर भारतमित्र कार्यालयमें आये और धीरेसे कहने लगे—अमुक

बाबूने पाँच हज़ार रुपये भेजे हैं सो लीजिये और अंगरेजी पत्रोंमें आपने देखा होगा कि, इनका मामला चल रहा है। आप अपने पत्रमें इनके पक्ष समर्थनका थोड़ा खयाल रखियेगा। आपकी इतनी कृपा चाहते हैं। रुपयेका नाम सुनते ही पिताजीका चेहरा गुस्सेसे लाल हो गया और उन्होंने कहा—क्या कहूँ आपको, मैं वैश्य हूँ और आप मेरे आदरणीय मित्र हैं। यदि आपकी जगह और कोई होता तो मैं उसको जरूर जमादारसे निकलवा देता।"

एकबार ऐसी ही धृष्टतापूर्ण बात किसी अनुभवहीन युवकने सम्पादकाचार्य सी० पी० स्काटके सामने कही थी। उसका अभिप्राय यह था—"विज्ञापन दाताओंके दबावके सामने झुके विना अमुक लेख मालाका निकालना कठिन होगा" इसपर टिप्पणी करते हुए स्काटने अपने एक सहयोगीसे कहा—"मुझे ऐसा लगा कि ठोकर मारकर उस युवकको जीनेके नीचे ढकेल दूँ!"

स्वर्गीय साहित्यिकोंको श्रद्धाञ्जलि

गुप्तजीने अपने सम्पादन-कालमें स्वर्गीय साहित्य-सेवियोंकी कीर्ति-रक्षाके लिये निरन्तर प्रयत्न किया था। भारतमित्रमें गुप्तजीने स्व० पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पं० गौरीदत्त, पं० देवकीनन्दन तिवारी, साहित्याचार्य्य पं० अम्बिकादत्त व्यास, पं० देवीसहाय, पाण्डे प्रभुदयालजी तथा पं० माधवप्रसाद मिश्र प्रभृतिको अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी। इनमें एकाध नाम तो ऐसे है, जिन्हें हिन्दी-जगत् बिल्कुल भूल चुका है! अगर गुप्तजीने उनके विषयमें कुछ न लिखा होता तो शायद वे विस्मृतिके गर्भमें विलीन हो गये होते। पण्डित देवकीनन्दनजीके बारेमें सन् १९०५ में उन्होंने लिखा था: "हिन्दीके एक सुयोग्य लेखकको भाग्यने तो कंगालीमें रखा, पर हिन्दीके प्रेमी भी

उसे गुमनामीके हवाले करते हैं, यह बड़ी ही आक्षेपकी बात है।" आज चवालीस वर्ष बाद भी वह आक्षेपयोग्य परम्परा ज्योंकी-त्यों कायम है!

प्रतापनारायणजी मिश्र-विषयक अपने लेखमें गुप्तजीने इस बातपर खेद प्रकट किया था कि मिश्रजीके प्रिय शिष्य पं० प्रभुदयालजी पाण्डेके स्वर्गवासी हो जानेके कारण उनकी जीवनी बिना लिखी रह गई! इससे भी अधिक दुर्घटनाकी बात यह हुई कि एकत्रित किया हुआ समस्त मसाला भी नष्ट हो गया! कौन कह सकता है कि आज भी हम उसी अपराधके अपराधी नहीं हैं? दर असल—"वही रफ्तार बेढङ्गी जो पहले थी सो अब भी है।"

पत्रोंका इतिहास

गुप्तजीकी रचनाओंमें सबसे अधिक महत्त्व तथा स्थायित्व किस रचनामें है यह प्रश्न विवादग्रस्त हो सकता है, पर इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता कि पत्रोंके इतिहासके विषय पर वे हमलोगोंके एकमात्र पथ-प्रदर्शक रहे हैं। उनके पूर्व सिर्फ एक छोटी-सी पुस्तिका स्वर्गीय बाबू राधाकृष्णदासजीने लिखी थी, पर वह बिल्कुल अधूरी थी। आजसे बत्तीस वर्ष पूर्व इन पंक्तियोंके लेखकने जब स्वर्गीय पं० रुद्रदत्तजी सम्पादकाचार्य्यसे अपने पत्रकार-कला सम्बन्धी अनुभवोंको लिपिबद्ध करनेकी प्रार्थना की थी, तब उन्हें भी गुप्तजीकी पुस्तकका आश्रय लेना पड़ा था। खेद है कि सम्पादकाचार्य्यजी भी अपने ग्रन्थको बिलकुल अपूर्ण ही छोड़ गये और इससे भी अधिक दुःखकी बात यह है कि हमलोगोंमेंसे किसीने भी हिन्दी पत्रकार-कलाका साङ्गोपाङ्ग इतिहास लिखनेका प्रयत्न नहीं किया!

हमें पता नहीं कि आजके हिन्दी-पत्रकार गुप्तजीकी उस ऐतिहासिक पद्धतिको कि हिन्दी-उर्दू पत्रोंके इतिहास साथ-साथ लिखे जावें पसन्द

करेंगे या नहीं, पर हमारी क्षुद्र सम्मतिमें तो यह परम्परा कायम रखने लायक है। कम-से-कम पत्रकारोंकी बिरादरीमें तो किसी प्रकारका भेद-भाव होना ही न चाहिये।

गुप्तजी अपनी मातृ-भाषाके जबरदस्त समर्थक थे और उसके गौरव-की रक्षा करनेके लिये सदैव जाग्रत रहते थे। बँगला, उर्दू इत्यादि भाषाओंके पत्रोंमें जब कभी हिन्दीपर कोई अनुचित आक्षेप उन्हें दीख पड़ता, वे तुरन्त उसका उत्तर देते, पर उनके दृष्टिकोणमें किसी प्रकारकी साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता नहीं थी। उदाहरणके लिये उन्होंने 'गुलशने हिन्द' नामक उर्दू पुस्तककी जिसकी भूमिका मौलवी अब्दुलहक़ साहबने लिखी थी, बड़ी प्रशंसा की थी। अपनी आलोचनाके अन्तमें गुप्तजीने एक वाक्य लिखा था :—"इस समय हिन्दीने जो कुछ उन्नति की है, आप ही की है। किसीकी सहायता इसे कुछ भी न मिली। युक्त-प्रदेशमें इसे केवल इतनी सहायता मिली थी कि यह भी उर्दूके साथ किसी मौकेपर सरकारी दफ्तरोंमें रहे। उतने ही में मुसलमान बिगड़ गये। इससे स्पष्ट है कि आगे भी हिन्दी जो कुछ करेगी स्वयं करेगी। किसीकी सहायता-वहायता इसे न मिलेगी।"

निष्पक्ष और व्यापक दृष्टिकोण

यह वाक्य सन् १९०७ में लिखा गया था और पिछले बयालीस वर्षका हिन्दीका इतिहास गुप्तजीकी इस भविष्यवाणीका साक्षी है।

स्वर्गीय गुप्तजी और द्विवेदीजीमें व्याकरण सम्बन्धी जो वाद-विवाद चला था, उसके बारेमें सम्मति प्रकट करना हमारे लिये धृष्टताकी बात होगी। उसके दो कारण हैं, एक तो यह कि व्याकरण हमारी रुचिका विषय नहीं और उसके विषयमें हमारा ज्ञान नगण्य है और दूसरा यह कि दोनों पक्षोंके लेखोंको भली भाँति पढ़े बिना हम किसी निर्णयपर

नहीं पहुँच सकते। इकतर्फा डिग्री देना एक साहित्यिक अपराध है और इस जुर्मके मुजरिम हम नहीं बनना चाहते। वैसे ऊपरसे देखनेपर इतना अवश्य प्रतीत होता है कि जहाँ तक जानदार भाषा लिखनेका सवाल था गुप्तजी किसी भी हालतमें द्विवेदीजीसे १९ नहीं बैठते थे। पर यह भी अपनी-अपनी रुचिका प्रश्न है और इसका अन्तिम फैसला समय ही करेगा।

हाँ, गुप्तजीकी आलोचनाओंको पढ़कर प्रत्येक निष्पक्ष पाठक इस परिणाम पर अवश्य पहुँचेगा कि उन आलोचनाओंके मूलमें सद्भावना ही थी। किसी व्यक्तिगत विद्वेषसे अथवा अहंभावसे प्रेरित होकर गुप्तजीने अपनी लेखनी नहीं उठाई थी। जब एक बार गुप्तजीको विश्वास हो जाता कि अमुक लेखककी रचना त्रुटिपूर्ण है तो फिर वे बिना किसी रियायतके और निर्भयतापूर्वक खरीसे खरी आलोचना कर देते थे। अन्यत्र इसी संग्रहमें प्रकाशित आलोचनाएँ हमारे इसी कथनके प्रबल प्रमाण हैं।

गुप्तजी साहित्यमें सुरुचिके कितने कायल थे यह बात उनकी 'तारा' (उपन्यास) नामक पुस्तककी आलोचनासे प्रकट होती है। यह उपन्यास स्वर्गीय पं० किशोरीलालजी गोस्वामी द्वारा लिखा गया था। 'समालोचक पर सरस्वती' शीर्षक नोटमें उन्होंने बाबू श्यामसुन्दरदासजीकी आलोचना पर जो कुछ लिखा था उससे प्रकट होता है कि वे सम्पादकीय शिष्टाचारकी रक्षा करना कितना आवश्यक मानते थे और उसकी सीमाका उल्लंघन उन्हें कितना खटकता था। हां, सालमें एक बार होलीके मौके पर उक्त सीमाको तोड़ डालना एक ऐसा अपराध था, जो उनकी दृष्टिमें क्षम्य था! उनका लिखा हुआ २२ मार्च सन् १८९७ का 'जोगीड़ा' उदाहरणके रूपमें पेश किया जा सकता है।

अपने सम्पादन-कालमें गुप्तजीने सहस्रों ही पत्र अपने सहयोगियों तथा मित्रोंको लिखे होंगे। पर वे प्रायः सभी नष्ट हो चुके हैं। स्वयं गुप्तजीके पास जो पत्र आये थे उनका शतांश

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार भी सुरक्षित नहीं रहा। सौभाग्यसे जो पत्र सुरक्षित रह गये हैं उनसे गुप्तजी तथा उनके मित्रोंकी मनोवृत्ति, चरित्र तथा तत्कालीन साहित्यिक स्थिति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। यहाँपर हम गुप्तजीका वह पत्र उद्धृत करते हैं जो उन्होंने २ नवम्बर सन् १९०० को स्वर्गीय पण्डित श्रीधरजी पाठकके नाम भेजा था :—

The Bharatmitra Office
Established 1878
Telephone No. 137

97, Muktaram Babu's Street,
Calcutta, 26-11-1900

पूज्यवर प्रणाम।

मेरी मालाना खासी मुझे फिर तग कर रही है, इसीसे आपके १५ नवम्बरके कार्डका उत्तर झटपट न दे सका। इसके सिवाय उत्तरके देनेमें कुछ दुःख होता है, इससे भी देर की।

विना मूल्य और मूल्यकी कुछ बात नहीं है। वह सब आपकी इच्छा पर ही है। आपने मूल्य भेजा था, हमने वापिस भी नहीं किया। सुनिये—आप पत्र (भारतमित्र) न पढ़ेंगे, तो इसमें आपकी कुछ हानि नहीं है, परन्तु लाभ भी नहीं है। इसी प्रकार 'भारतमित्र' की हानि नहीं, पर लाभ भी नहीं। परन्तु बालमुकुन्द गुप्तकी हानि है, सो सुनिये—

मैं समझता हूँ कि आपमें एक उत्तम कविता-शक्ति है, और वह ऐसी है कि जिसमें आगेको हमारी कविताका कुछ भला हो सकता है। इसीसे पुत्तनलाल पढ़नेवाला जब आपकी कविताको अलङ्कृत कर रहा था, तो मुझे उसकी खबर लेनी पड़ी, तथा आपको भी सूचना देनी पड़ी। उसका फल यह हुआ कि आपने कई एक कविताएँ अच्छी लिख डालीं, जिनमें से 'घन-विनय' एक विचित्र ही कविता है।

दुःख यही है कि बीच-ही-बीचमें लिखा-पढ़ी आ पड़ी, उससे आपका जी मुझसे नाराज हो गया। उसीका यह फल है कि आप 'भारतमित्र' से नाता तोड़ते हैं, क्या ही अच्छा होता, यदि आप केवल कविता लिखते और आलोचना करनेवालोंकी बातका बुरा-भला न मानते! आपको उत्तर देनेकी क्या जरूरत है, जब कि आपकी उत्तम कविता आप-से-आप लोगोंको मोहित कर लेती है।

आप कभी-कभी इचे जाते हैं कि आपकी कविताका वह मूल्य नहीं, जो विलायत आदिमें अच्छे-अच्छे कवियोंकी कविताका है। परन्तु इस देशकी गिरी दशाको तो देखिये, कि कोई खाली भी आपसे कविता लिखनेको नहीं कहता। एक मैं ही हूँ कि आपसे कविता लिखनेका अनुरोध करता हूँ। आप निश्चय जानिये कि इसमें मेरा एक मासा भी स्वार्थ नहीं है। मैं तो यही चाहता हूँ कि भगवानने आप-जैसी तबियतका एक कवि उत्पन्न किया है, तो उसकी कविताका कुछ विकास भी हो, यों ही न कुम्हिला जावे। यदि आप कुछ लिख जावेंगे, तो सौ-दो-सौ वर्ष बाद शायद आपके नामकी पूजा तक हो सकती है।

एक 'भारतमित्र' के नातेसे आपसे पत्र-व्यवहार चलता है। यह नाता आप तोड़ते हैं, भगवान जाने अबकी टूटी फिर कब जुड़े। कोई आठ साल बाद आपसे फिर पत्र-व्यवहार चला था, अब बन्द होकर न-जाने कब खुले! मैं नहीं जानता, कि अब आप पत्र-व्यवहार करेंगे या नहीं। इससे कुछ विनय करता हूँ।

(१) हर बातमें शंकित और उदास मत हुआ कीजिये।

(२) कोई कुछ आलोचना करे, तो उसकी परवाह मत कीजिये।

(३) आलोचकोंकी फिजूल बातोंके उत्तरकी जरूरत नहीं है।

(४) चित्तको हर मामलेमें प्रसन्न रखिये—बात-बातमें नाराजी और चिढ़ भली नहीं।

(५) आपका काम सुन्दर कविता बनाना है—छेड़-छाड़का उत्तर देना नहीं।

(६) दासों और मित्रोंपर विश्वास रखना।

(७) जब तक जीवन है, जीना पड़ेगा। सो प्रसन्नतासे जीना चाहिये। उदासी क्यों?

दास

बालमुकुन्द गुप्त

यहाँ पर एक अन्य पत्र भी उद्धृत किया जाता है, जो मुंशी समर्थदानजी (सम्पादक राजस्थान-समाचार) का है। सन् १८६१ का अबसे प्रायः ५८ वर्ष पूर्वका यह पत्र हिन्दीपत्र-जगत्की एक झलक दिखलानेमें समर्थ है। इस पत्रसे प्रकट होता है कि स्वतंत्र पत्रकारका जीवन उन दिनों भी कण्टकाकीर्ण था। 'हिन्दोस्थान'से अलग किये जानेके बाद गुप्तजीके लिये राजस्थान-समाचारसे दस रुपये महीना पारिश्रमिक पाना भी अत्यन्त कठिन था।

राजस्थान स० सम्पादक
कार्यालय
अजमेर
ता० २४-१०-९१

लाला बालमुकुन्दजी गुप्त योग्य

महाशय,

आपका पत्र सख्या ५५० आया. आपको ज्ञात ही है कि रा० स० का सम्पादक मैं आप ही हूं.

इसको आप दृढ़ समझें या अदृढ़. परन्तु हां मुझे समय न्यून मिलता है. 'हिन्दोस्थान'के लीडर मैं प्रायः देखता रहा हूं. कई मुझे पसन्द कई नापसन्द रहे हैं. दश रुपये मासिक व्यय करनेकी शक्ति तो नहीं है परन्तु आपके उत्तम लेख आवेंगे तो एक भाव आप रा० स० के कालमका ठहरा लें सो जितने कालम आवेंगे उतनेका दिया जा सकेगा. जो लेख नापसन्द होनेसे न छापा जायगा वह चाहेंगे तो

लौटा दिया जायगा और नहीं तो पड़ा रहेगा परन्तु दाम उसके न दिये जा सकेंगे, लेख २॥ कालमसे ४ कालम तक होना चाहिये, परन्तु ये सब कार्यालयमें ही रहनेसे ठीक हों जहां सब सामग्री है। आपके पास कौनसे अंग्रेजी बड़े पत्र आते हैं जिनके आधारसे आप लिखेंगे। आपको ज्ञान रहे कि राजपूताने और दूसरे देशोंमें बड़ा भेद है। यहांके प्रायः ढग पृथक हैं और बराबर पढ़नेसे आपको ज्ञान हो सकेगा।

आप लेख भी भेजें एक देखनेके लिये और कालमका भाव भी लिखें आपको पक्का ऐसा करनेको मैं वचन नहीं देता परन्तु लेख और भाव लिखा आनेसे मैं विचार करूंगा,

आपका हितैषी
समर्थदान
सम्पादक रा० स०

पुनः

आप लिखें कि आपने अगरेजी और संस्कृतका कितना अध्ययन किया है और आप वहां क्या कार्य करते हैं ?

स० रा०

तीव्र जिज्ञासा :—

गुप्तजीकी ज्ञान-पिपासा और परिश्रमशीलताको देखकर आश्चर्य होता है। उनका वह रजिस्टर अब भी मौजूद है, जिसमें वे बाहिर जाने वाली चिट्ठियोंके नाम और पते दर्ज किया करते थे। जिस तारीखसे उन्होंने उर्दूके बजाय हिन्दीमें पत्र लिखना प्रारम्भ किया था, वह उसमें दोनों लिपियोंके बीच सीमा खींचती हुई स्पष्ट दीख पड़ती है। पर गुप्तजी संकीर्ण विचारोंके व्यक्ति नहीं थे। उर्दूमें वे बराबर और जीवन पर्यन्त लेख लिखते रहे और आगे चलकर स्वर्गीय प्रेमचन्दजीने उन्हींके मार्गका अनुसरण किया।

महामना मालवीयजीने जहाँ देशके लिये अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये, वहाँ एक उर्दू पत्रकारको हिन्दी-सेवामें प्रवृत्त करनेका श्रेय भी उन्हींको है। यही नहीं मालवीयजीने ही गुप्तजीको संस्कृत पढ़नेके लिये प्रेरित किया था। अपने आषाढ़ वदी ८ सम्वत् १६४६ के पत्रमें उन्होंने गुप्तजीको लिखा था :—

"आपने बंगाली सीखी अच्छा किया, संस्कृत भी पढ़ लीजिये तो अधिक सुख और लाभ होगा, अंगरेजी भी अवश्य पढ़ियेगा, देशका हित साधन करनेके लिये अंगरेजी और संस्कृत दोनोंका ज्ञान आवश्यक है, बंकिमकी नावेल मंगाकर भेजूंगा, लेख आपने क्यों बन्द कर दिया?"

गुप्तजी पण्डित श्रीधर पाठकजीसे पत्रों द्वारा अंग्रेजी पढ़ा करते थे। सौभाग्यसे पाठकजीके दिये हुए कई सबक अब भी मौजूद हैं।

पूज्य पाठकजीने अपने ७-३-६१ के पत्रमें लिखा था :—"बड़ी अच्छी बात है कि आप अंग्रेजीका अभ्यास करते हैं। इस विषयमें आपको साहाय्य देनेके लिये मैं प्रतिक्षण प्रस्तुत हूं। जो बात आप पत्र द्वारा पूछियेगा यथाशक्ति शीघ्र उत्तर दूँगा।"

इस प्रकार पाठकजीने पत्रों द्वारा गुप्तजीको अंग्रेजीका अभ्यास कराया! तत्पश्चात् कलकत्ते पहुँचने पर उन्होंने स्व० पं० अमृतलालजी चक्रवर्ती और स्व० पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्रकी सहायतासे अपना अंग्रेजी भाषाका ज्ञान बढ़ाया। आज हिन्दी जगत्में कितने पत्रकार और कवि ऐसे हैं, जो अपने छुट भइयोंको इस प्रकार उत्साहित करें। और गुप्तजी जैसी ज्ञानपिपासा तथा शिष्यत्वकी भावना भी आज दुर्लभ होगई है। किसी उर्दू वालेके लिये बँगला, संस्कृत तथा अंग्रेजीका अभ्यास करना आज भी मुश्किल है, उन दिनों तो वह और भी कठिन रहा होगा! गुप्तजी इस विषयमें निस्सन्देह सौभाग्यशाली थे कि उन्हें ऐसे सर्वोत्तम शिक्षक मिले।

हिन्दी पत्रकार-कलाका प्रारम्भ सन् १८२६ में हुआ था और दो वर्ष बाद वह सवासौ वर्षकी होजायगी। यदि कोई सहृदय व्यक्ति इन सवासौ वर्षोंके इतिहासका विधिवत् अन्वेषण करे तो उसे हमारे पूर्वज पत्रकारोंके कितने जीवन-संघर्षोंका पता लगेगा! अभी तक हमारे देशके जो इतिहास लिखे गये हैं, वे प्रायः शुष्क ही रहे हैं। उनमें व्यक्तित्वको प्रायः तिलाञ्जलि देकर केवल सन् सम्बतों और घटनाओंको ही महत्त्व दिया गया है। और जहाँ व्यक्तित्वका वर्णन है भी, वहाँ केवल राजनीतिक दृष्टिसे असाधारण महानुभावोंका ही ज़िक्र किया गया है। जहाँ पहले इतिहास लेखक केवल बादशाहों, वजीरों, राजा-महाराजाओंको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते थे, आज उनके वंशज राजनीतिक लीडरोंको अपनी भेंट चढ़ाके सन्तुष्ट होजाते हैं! हमारी स्वाधीनताके इतिहासोंमें पत्रकारोंकी प्रायः उपेक्षा ही की गई है और फिर हिन्दी पत्रकारोंको तो पूछता ही कौन है? पर इतिहास लिखनेकी यह प्रणाली बिलकुल निकम्मी और दकियानूसी सिद्ध होचुकी है। साधारण जनता अब भी देशी-भाषाओंके पत्रोंको ही पढ़ती है और उसकी वास्तविक दशाका वर्णन हमें हिन्दी, मराठी, बंगला, गुजराती इत्यादिके पत्रोंमें ही मिल सकता है। यदि हमारे शासकोंमें कुछ भी कल्पना शक्ति होती तो एक केन्द्रीय पुस्तकालय स्थापित करके उसमें वे भारतीय भाषाओंके पत्रोंकी पुरानी फाइलोंको सुरक्षित कर लेते। बहुत कुछ उपयोगी सामग्री तो नष्ट होचुकी है। जो बच रही है, वह भी नष्ट होती जा रही है!

तब और अब

यदि गुप्तजीके समयके समस्त हिन्दी उर्दू पत्रोंकी फाइलें सुरक्षित होतीं तो हिन्दी पत्रकार-कलाके इतिहासके लिये वे कितनी सहायक सिद्ध होतीं? निस्सन्देह हम लोग भाई नवलकिशोरजी गुप्तके अत्यन्त आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने जहाँ अपने पूज्य पिताजीका साहित्यिक

श्राद्ध किया है, वहाँ उस नष्ट होती हुई बहुमूल्य ऐतिहासिक सम्पत्तिके एक अंशकी रक्षा भी करली है।

अभी हिन्दी पत्रकार-कलाने अपनी शैशवावस्थाको पार ही किया है। विदेशी पत्रोंके प्रभावके मुक़ाबले हिन्दी पत्र काफी पिछड़े हुए हैं, पर यह दशा बहुत दिनों तक नहीं रहेगी। भारतवर्ष आज एशियामें महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रहा है, कल उसकी गणना अखिल संसारके मुख्य राष्ट्रोंमें होने लगेगी। वह युग शीघ्र ही आनेवाला है, जब हिन्दी पत्रोंकी ग्राहक संख्या लाखों तक पहुँच जायगी और उनका महत्त्व इस देशके अंग्रेजी पत्रोंसे कहीं अधिक बढ़ जायगा। उस समय संसारके समस्त देशोंकी राजधानियोंमें और उनके बड़े-बड़े नगरोंमें हमारे संवाददाता होंगे और समाचार समितियाँ हिन्दी पत्रकारोंकी सम्मतियोंको विदेशोंको भेजनेमें अपना गौरव समझेंगी।

हाँ, उस युगके आनेमें पन्द्रह-बीस वर्षसे अधिककी देर नहीं है। कृतज्ञताका तकाजा है कि ऐसे शुभ अवसरपर हम पूर्वजोंका स्मरण करें और बिना किसी भेद भावके उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें। उस समयके वाद-विवाद अब इतिहासकी सामग्री बन चुके हैं और वे हमारी शुद्ध श्राद्धभावनामें किसी प्रकारका अन्तर नहीं डाल सकते।

निस्सन्देह बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तकी गणना हिन्दी पत्रकार-कलाके निर्माताओं तथा उसके भावी युगके प्रवर्तकोंमें की जायगी। उनकी स्वर्गीय आत्माको सतशः प्रणाम।

संस्मरण और श्रद्धाञ्जलियाँ

ॐ

श्रद्धा-समर्पण

(श्री प० रूपनारायण पाण्डेय, 'माधुरी'-सम्पादक)

हिंद जननीके भाल सुन्दर सुहागबिंदी, हिन्दी है हमारी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा भी।
भूले रहे इसको अनेक दिन दुर्दिनमें, कैसा महामोह यह, और था तमाशा भी।
जनमें सपूत कुछ ऐसे देशभक्त यहाँ, जिनमें विवेक था, समुन्नतिकी आशा भी।
उन्हींके प्रयाससे हजारों हिन्दीभक्त हुए, पूरी हुईं उनकी अमर अभिलाषा भी॥

ऐसे महापुरुषोंमें महामति, बालमुकुन्दजी गुप्त प्रधान थे;
टेकसे नेक टले न कभी, नई सूझमें आपही आप-समान थे।
पक्ष लिया बस न्यायका हीं, असहायके साथी सहाय सुजान थे;
लेख लिखे, सदा ली चुटकी, नर-सिंह, नवोदित नीति-निधान थे॥

आपके लेख तो आज भी देखके, आपको सामने ही हम पाते;
आपकी वाणी वही सब लेख, सुनाते हमें, वही भाव जगाते।
आपके हैं हमलोग कृतज्ञ, कहें किस भाँति, नहीं कह पाते,
श्रद्धा-समेत सभी हम श्राद्धमें आपको सादर सीस नवाते!

परम विनोदी, ज्ञान-निधि, भारत-मित्र प्रसिद्ध;
पथ-दर्शक साहित्यके, सुकवि, लेखनी-सिद्ध।
जिनके नव उद्योगसे विमल हुई मति कुन्द;
धन्य-धन्य स्वर्गीय वह श्रीयुत बालमुकुन्द

··· स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त भारतमित्र-सम्पादक मेरे बन्धु थे। उन्होंने हिन्दीके उत्थानके समय भारतमित्र द्वारा उसकी प्रशंसनीय सेवा की है, यह मैं सगर्व कह सकता हूँ।

सदावर्त्ती

आजमगढ़, ७-४-४५

—*हरि औध*

(कवि-सम्राट स्वर्गीय पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय)

*　　*　　*

विद्याविनोद रसपूरित वाग्विलासः
सम्पादन-प्रथित भारतमित्र कीर्त्तिः।
स्मृत्वा परां हितमयीं शिवशम्भुवार्त्तां
विस्मर्यतां किमिव बालमुकुन्द गुप्तः॥

(साहित्यवाचस्पति नवरत्न श्रीगिरिधर शर्मा)

संस्मरण और श्रद्धाञ्जलियाँ

१

बहुतसी खूबियाँ थीं मरनेवालेमें

[स्वर्गीय मुन्शी दयानारायणजी निगम बी० ए०, 'ज़माना'-सम्पादक]

"जहाँ बर आब निहादस्त व ज़िन्दगी बरबाद"*

संसार कैसा नश्वर है, मनुष्य-जीवन एक सुखहीन स्वप्नके समान है—उस स्वप्नके, जिसकी व्याख्या तो बहुत कुछ हो, पर वास्तविकता कुछ भी नहीं। सचमुच मनुष्य पानीका बुलबुला है, जो बात-की-बातमें उठता और बात-की-बातमें बैठ जाता है—नदीमें लीन हो जाता है। हम सबकी एक-सी ही अवस्था है, परन्तु मृग-मरीचिका बड़ी विकट है। नित्य-प्रतिकी दौड़-धूप और अपनी धुनमें हम सब अपनी और संसारकी वास्तविकता भूल जाते हैं।

'नसीम ग़फलतकी चल रही है, उमँड रही हैं बला की नींदें'

संसार चक्रमें पड़कर हमें याद नहीं रहता कि प्रत्येक श्वास अन्तिम श्वास हो सकता है। वस्तुतः जीवन एक धरोहर है, माँगी हुई वस्तु है। एक दिन सबको उस परम शान्ति-धामकी ओर प्रयाण करना ही पड़ेगा, जहाँ सबेरेके भूले-भटके पथिकको सन्ध्या तक, किसी-न-किसी प्रकार ठिकाने पर पहुँचना आवश्यक है। इस नश्वर जगत्‌में क्षणभरके लिये लोग ठहर लें, पारस्परिक प्रेमका आनन्द लूट लें, अपने हृदयोंकी स्वच्छतासे दूसरोंको प्रभावित और प्रकाशित कर दें तथा भावी सन्तानके लिये—'स्थिर आवास' को उपयोगी बनानेका प्रश्न कर जायँ। मृत्यु प्रत्येक समय घात लगाये बैठी है, परन्तु सामान्य दृष्टियोंसे वह इस प्रकार तिरोहित हो रही है कि यही ज्ञात होता कि वह कब और किस

* दुनियां पानीपर और ज़िन्दगी हवा अर्थात् साँसपर कायम है।

पर आक्रमण कर दे। इस अभागिनी जाति पर तो सैकड़ों आघात हो चुके हैं, इससे अधिक और क्या दुर्भाग्य हो सकता है कि आये दिन अनेक उपयोगी आदमी उठे चले जा रहे हैं। एक घाव भरने नहीं पाता, कि दूसरा तैय्यार हो जाता है। एक शोक भूलने नहीं पाता, कि नया रोना सामने आ जाता है।

"हमेशा ग़म पै है ग़म, जाने नातवाँके लिये"

कभी स्वप्नमें भी यह कल्पना न हो सकती कि 'ज़माना' के प्रसिद्ध लेखक और शुभचिन्तक, हिन्दीके प्रौढ़ पण्डित तथा 'भारतमित्र' के लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त इतनी शीघ्रतापूर्वक इस नश्वर जगत्से प्रयाण कर स्वर्गवासी हो जायँगे तथा अपने असंख्य मित्रों और भक्तोंको समयसे पूर्व ही, सदाके लिये अपने वियोगमें बिलबिलाता छोड़ जायँगे। गुप्तजीके पार्थिव शरीरने इन्द्रप्रस्थमें पंचत्व प्राप्त किया। आप कलकत्तासे दिल्ली आये और १८ सितम्बर १६०७ ई० को ठीक सन्ध्याके समय परलोक सिधारे।

'खुदा बख़्शे बहुत-सी ख़ूबियाँ थीं मरनेवाले में'

ऐसे प्रौढ़ लेखक और स्वतन्त्र तथा कुशल सम्पादककी मृत्यु एक ऐसी भयङ्कर शोक-सूचना है, जिसके सुननेके लिये हम और उनके अन्य अनेक परिचित तथा मित्र क्या, देशका कोई भी व्यक्ति तैयार न था। इस बुधवारसे पूर्व, शुक्रवारको गुप्तजीके अन्तिम दर्शन, इन पंक्तियोंके लेखकके भाग्यमें थे। वह रोगी और उदास अपनी जन्म-भूमि गुड़ियानी (रोहतक) जा रहे थे। मुझे कानपुर स्टेशनपर, विशेष रूपसे मिलनेके लिये बुलाया। बीमारीकी सूचना पहलेसे मिल चुकी थी। जो अवस्था पत्रोंके पढ़नेसे विदित हुई थी, उससे गुप्तजीसे भेंट करनेकी इच्छा और बलवती हो रही थी, क्योंकि हमारा उनका हार्दिक सम्बन्ध तथा अकृत्रिम अनुराग था, साहित्यिक मित्रता और हार्दिक सहानुभूतिका

जाता था। मिलते समय जो दशा देखनेमें आई, उसकी कभी कल्पना भी न की जा सकती थी। लगातार बीमारीने उन्हें इस अवस्थाको पहुँचा दिया था। उस समय किसे ज्ञात था कि यह अन्तिम भेंट है और क्रूर-मृत्यु लौटते समय, कानपुरमें अधिक दिनों तक निवास करनेका वचन पूरा न होने देगी। वह हार्दिक उत्साहकी उमंग और वास्तविक प्रेम कभी विस्मृत नहीं किये जा सकते। कैसा सच्चा भाव था कि शारीरिक कष्टकी कठोरतामें भी वह कानपुर ठहरने और अपने सत्संगसे हमें लाभान्वित करनेके लिये अधीरसे प्रतीत होते थे।

इस चलते-फिरते मिलापसे दोनोंमेंसे किसीको सन्तोष न हुआ। मेरी अधीरता और निराशा देखकर गुप्तजी कहने लगे—"मेरा ढांचा देख लो, शरीर अच्छा हुआ तो फिर मिलेंगे और जी-भरकर बातें करेंगे। अब इस समय तो उठा भी नहीं जाता, नहीं तो दो-तीन दिन तो अवश्य ही ठहरते। अस्तु, जो भगवानकी इच्छा।" गुप्तजी सहृदय थे। हमें अपनी हार्दिक इच्छा प्रकट करनेकी आवश्यकता ही न हुई, क्योंकि उन्हें अस्वीकृत करनेका कष्ट देना अभी हमें अभीष्ट न था, परन्तु गुप्तजी अपने हृदयकी अपेक्षा मित्रोंका मन प्रसन्न करनेका अधिक खयाल रखते थे। इस अल्प-कालमें भी 'जमाना' सम्बन्धी बातें पूछते रहे। एक तस्वीर जो उनकी मार्फत बनवाई गई थी और गलतीसे तादादमें ज़रूरतसे कम आ गई थी, उसके सम्बन्धमें कहते रहे कि किसी तरह काम निकाल लो। उन्हें अपनी आवश्यकताकी अपेक्षा मित्रोंकी आवश्यकताका बड़ा ध्यान रहता था। अपने पत्रके सम्बन्धमें कहने लगे कि जब तक शक्ति रही 'भारतमित्र' का साथ दिया, अब परमात्मा रक्षक है। रेलमें गरमी मालूम हो रही थी, मैंने उनके बड़े पुत्रसे पंखा मांगा, वे स्वयं हवा करने लगे। मैंने फिर पंखा मांगा, उन्हें उसे देनेमें संकोच हुआ। इसपर गुप्तजीने कहा—"दे दो, इनसे क्या तकल्लुफ है,

अगर ये प्रेमसे प्रेरित होकर मेरे लिये कुछ करना चाहते हैं, तो करने दो।"

कैसा विशुद्ध व्यवहार था। आह! इस दुरंगी दुनियामें जहाँ झूठ, बनावट और आडम्बरकी इतनी अधिक भरमार है, एक सच्चे भावसे कैसी हार्दिक प्रसन्नता और आत्मिक शान्ति प्राप्त होती है।

सत्य-प्रियता और आडम्बर-शून्यता स्वर्गीय गुप्तजीके विशेष गुण थे, इन्हें परमात्माने पवित्र और सरल हृदय दिया था। वे मन, वचन, दोनोंमें एक-से थे। यह नहीं कि हृदयमें कुछ और रक्खें और वाणीसे कुछ दूसरी बात बोलें। गत राष्ट्रिय महासभाके अवसर पर कुछ मित्रोंके साथ मेरा आठ दिन तक कलकत्तेमें उनके यहाँ रहना हुआ। बैठने-उठने और बोल-चालसे लेकर खाने-पीने तक सबमें सर्वथा सादगी और सचाई झलकती थी। जिसे देखते ही परायापन दूर होकर हार्दिक प्रेम उत्पन्न हो जाता था। सम्भव है कि ठाठपसन्द लोग ऐसी बातोंमें शिष्टाचारकी कमी अनुभव करें, परन्तु जिनके भाव उच्च और हृदय तत्त्व-ग्राही हैं, वे सरलता पर मुग्ध हो जाते हैं :—

"बनावट भी, इक शै है, जो जानता हो
तेरी सादगी, कुछ हमीं जानते हैं"

इस प्रकार महीनों रहने पर भी गुप्तजीके यहाँ तकल्लुफ न दिखाई दे सकता था। उस समय मालूम होता था, मानो अपने घरमें बैठे हैं। सब लोग अपने अभ्यासके अनुसार खाते-पीते और सोते-जागते थे। जहाँ कहीं गुप्तजी अपने अन्य आत्मीयोंकी ओरसे तकल्लुफ देखते, स्वयं हमलोगोंसे पहले उन्हें टोक देते। वे बड़े ही सरल प्रकृति और आडम्बरशून्य थे। किन्तु सिद्धान्त-पालनमें कभी शिथिलता न आने देते थे। वे स्वतन्त्र-विचारक और स्पष्टवादी थे, खुशामदसे बढ़कर उन्हें और कोई बात बुरी न मालूम होती थी।

हम कह सकते हैं कि हिन्दी क्या, देशकी अन्य अनेक भाषाओंके पत्रकारोंमें भी ऐसे उदारचेता और नि स्वार्थ सम्पादक बहुत कम मिलेंगे। बहुधा बडे-बडे धनी आपको अपने यहाँ बुलानेके लिये निमन्त्रण देते और मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करनेकी इच्छा प्रकट करते थे। परन्तु गुप्तजीने अपनी विद्वत्ता और लेखनीका धन द्वारा खरीदा जाना सदैव घृणाकी दृष्टिसे देखा, और हमेशा ऐसे धनियोसे अलग रहे। कलकत्तेके मारवाडी कहा करते हैं कि हमने सबको अपना बना लिया, किसीको खुशामदसे, किसीको रुपयेसे, किसीको नीति-निपुणतासे, परन्तु हमारा जादू नहीं चला तो एक बालमुकुन्द गुप्तजी पर।

गुप्तजी आखिरी दम तक मारवाडी जातिके दोषो और त्रुटियोंके विरुद्ध बडी स्वतन्त्रता और निर्भयतासे लेख लिखते रहे, और प्रत्येक अवसर पर उनकी विद्या-सम्बन्धी अरुचिकी हँसी उडाते रहे। गुप्तजीकी सदैव यह इच्छा रहती थी कि किसी प्रकार मारवाडियोंका ध्यान विद्याध्ययनकी ओर आकृष्ट हो। इस सम्बन्धमे उनका अनवरत श्रम व्यर्थ भी नहीं गया। अन्ततोगत्वा मारवाडियोंको एक विद्यालय खोलना ही पडा।

गत वर्ष "श्रीवेंकटेश्वर समाचार"के सुप्रसिद्ध सेठ खेमराजजीने इन्हें बडे आदरसे बुलाया और 'भारतमित्र' से दूना वेतन देकर अपने पत्रका सम्पादक बनाना चाहा, परन्तु गुप्तजीने उसे स्वीकार नहीं किया। 'भारत-मित्र' की इतनी उन्नति इन्हींकी लेखनी और प्रयत्नसे हुई थी। गुप्तजी 'भारतमित्र' को अपना खास पत्र समझकर प्यार करते थे। 'भारतमित्र' के स्वामीने इन्हें सब बातोंमे पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी। वह इनकी किसी बातमे किसी प्रकारका हस्तक्षेप न करते थे। सचमुच समाचार पत्र इसी प्रकार अच्छी तरह चल सकते हैं। जब या तो स्वामी और सम्पादक दोनों एकही व्यक्ति हों, अथवा स्वामीको स्वामित्वके अतिरिक्त और किसी प्रकारके हस्तक्षेपका अधिकार ही न दिया जाय। गुप्तजीको

धनकी कभी विशेष परवा नहीं रही और यही उनकी साहित्य-सम्बन्धी सफलताका मुख्य कारण था, क्योंकि सम्पादकके लिये निर्लोभ होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वर्गीय गुप्तजीको 'टुटप्पी पालिसी' से बड़ी घृणा थी, जो समाचार पत्र हवाको देखकर उसके साथ हो लेते हैं, उन्हें वे घोर घृणाकी दृष्टिसे देखते थे, अर्थात् वे 'जैसी बहै बयारि पीठि तब तैसी दीजे,—इस नीतिके माननेवाले न थे। जब कभी ऐसे समाचार-पत्रोंकी चर्चा होने लगती थी, तो उनकी बड़ी हँसी उड़ाई जाती थी। उर्दूमें इसी प्रकारके कुछ अखबार हैं, जिनपर 'भारतमित्र' बहुधा चुटकियाँ लिया करता था। सत्य बातके कहनेमें गुप्तजीको कभी संकोच न होता था। निरर्थक विवादोंको वे कभी न बढ़ने देते थे।

उर्दू-हिन्दीके सम्बन्धमें आपने अनेक बार मुसलमान सहयोगियोंका भ्रम मिटाना चाहा। हँसी-मज़ाक, युक्ति और विनती सब प्रकारसे वास्तविक वस्तु-स्थिति उनके हृदयंगम करानेमें अपनी ओरसे कोई प्रयत्न उठा न रक्खा, और स्वयं अपने उदाहरणसे सिद्ध कर दिया कि हिन्दू लोग उर्दूके विरोधी नहीं, प्रत्युत हिन्दी उर्दू दोनोंके शुभचिन्तक हैं, क्योंकि दोनों भाषाएँ वस्तुतः एकसी ही हैं। इन्हें एक करनेका प्रयत्न करना चाहिये। लिपिका प्रश्न दूसरा है। उर्दूके समर्थक वर्तमान लिपिको छोड़ें, परन्तु यह कहना कि नागरी अक्षर फारसी लिपिसे अधिक सरल, नियमित और वैज्ञानिक नहीं है, वस्तुस्थितिका गला घोंटना और विद्वत्तापूर्ण अन्वेषणों पर धूल डालना है। ऐसी बातोंसे व्यर्थ विवाद बढ़नेके अतिरिक्त लाभ कुछ भी नहीं होता। न्यायालयोंमें नागरी लिपिमें लिखे हुए प्रार्थना-पत्रोंके प्रस्तुत कर सकनेकी आज्ञा मिल जाना केवल न्यायकी बात थी, इससे उर्दूको कोई हानि नहीं पहुँच सकती। मुसलमानोंको इस पर आक्षेप करने और आन्दोलन उठानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह और बात है कि 'पैसा अखबार' जैसे

पत्र अब भी जान-बूझकर यही कहते रहे कि साधारणत. हिन्दू लोग उर्दूके शत्रु हैं। खेद है कि संसारमे बहुधा आँखें मूँदकर सम्मतियाँ स्थिर करली जाती है। कितनेही दैनिक साप्ताहिक उर्दू अखबार और मासिक-पत्र हिन्दुओंकी अध्यक्षता और उन्हींके सम्पादकत्वमें प्रकाशित होते हैं, परन्तु मुसलमान भाइयोंकी ओरसे हिन्दू-लेखकोंको अधिक प्रोत्साहन नहीं मिलता, कभी-कभी तो उनके विरुद्ध स्पष्ट रूपसे पक्षपात-पूर्ण व्यवहार किया जाता है।

गुप्तजीका अन्त करण शुद्ध और निष्कपट था, और यही मनुष्यके लिये गौरवकी बात होसकती है। वे पक्षपात, विशेषकर साहित्यिक पक्षपातसे सवथा शून्य थे। आप हिन्दीके मुसलमान कवियोंकी कविताएँ बड़े प्रेमसे पढ़कर सुनाते और उनपर मुग्ध हो जाते थे। आप विद्याको किसी जाति विशेषकी बपौती नहीं समझते थे। हिन्दीमे भी जो लोग यह समझते हैं कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी जातिमें साहित्य-निपुणता हो ही नहीं सकती, उनका मान मर्दन करनेमें गुप्तजीने कभी कमजोरी नहीं दिखाई। कई बार आपने अपनी लेखनीके बलसे अपने प्रतियोगियोंके दाँत खट्टे किये। आपके लेख 'सौ सुनारकी तो एक लुहारकी' इस लोकोक्तिको चरिताथ करते थे। इनके कारण विरोधियोंके छक्के छूट जाते थे। सच तो यह है कि साहित्य-संग्राममे आपकी कलम-कृपाण कभी कृतकार्य हुए बिना न रहती थी। कुछ दिन हुए हिन्दीकी मासिक-पत्रिका 'सरस्वती' और आपके मध्य खूब नोंक-झोंक हुई। गुप्तजीको दूसरोंके—विशेषकर स्वर्गीय पुरुषोंके प्रति कृतघ्नता सह्य न थी, लेख-युद्ध छिड़ जाने पर कभी-कभी तो हिन्दीके बहुतसे समाचार पत्र एक तरफ और आप अकेले एक तरफ हो जाते थे, परन्तु विरोधियोंके दस पृष्ठ आपके एक वाक्यके बराबर होते थे, और वह वाक्य भी आमोद-प्रमोदका साक्षात् दिग्दर्शन बन जाता था।

लेखन-शैली कैसी सुन्दर थी, मानो किसी शिल्पीने एक टेढ़े तिरछे विरूप पत्थरके टुकड़ेको लेकर उसकी सुन्दर और सुहावनी प्रतिमा निर्माण कर दी है। साहित्य-संग्राममें इनकी लेखनीके आक्रमणोंके कारण विरोधी लोग त्राहि! त्राहि!! करने लगते थे।

गुप्तजीका हृदय विशुद्ध और निर्मल नदीके नीरकी तरह कुत्सा एवं पक्षपातके कूड़े-कर्कटसे सर्वथा मुक्त और—

कुफ़्र अस्त दर तरीक़ते माकीनः दाश्तन
आईने मास्त सीना चु आईना दाश्तन'

अर्थात् हमारे धर्ममें किसीसे दुश्मनी रखना पाप है, हमारा तरीका हृदयको दर्पणकी भांति स्वच्छ रखना है'—इसके अनुसार था।

कानपुर आकर आपने कहा—"द्विवेदीजी (सरस्वती-सम्पादक) से अवश्य मिलेंगे। मैं भी मिलनेको उत्सुक था, उनके साथ हो लिया। अपनी सनातन रीतिके अनुसार गुप्तजीने द्विवेदीजीके चरण स्पर्श किये। द्विवेदीजीने आशीर्वाद देकर पासमें बिठलाया। विविध प्रसंगोंपर चर्चा चली। 'भारतमित्र'का हाल पूछा, तो आपने उसकी ग्राहक-संख्या साफ-साफ बतला दी। देखा जाता है कि कुछ अखबारवाले इस छोटी-सी बातके लिये भी झूठ बोल देनेमें अपना गौरव समझते हैं। एक सज्जनका जिक्र है कि देहली दरबारके अवसरपर उन्होंने अपने एक सहयोगीको अपने पत्रकी प्रकाशन संख्या २५ हजार बतलाई, इसके पूर्व उनके एक कार्यकर्त्ताने एक दूसरे सज्जनको यह संख्या दश हजार बतलाई थी और बादमें यह पता चला कि साधारणतः वह पत्र पाँच हजारसे अधिक नहीं छपता था। सच है, दुनिया एक अन्धेर नगरी है।

धर्ममें गुप्तजी कट्टर हिन्दू थे, परन्तु स्वामी दयानन्द आदि सुधारकोंको बड़े आदरकी दृष्टिसे देखते थे, यद्यपि उनसे कई बातोंमें मतभेद भी रखते थे। हाल ही में इन पंक्तियोंके लेखकने गुप्तजीसे उन सनातनी

हिन्दुओंकी शिकायत की, जिन्होंने पिछले आन्दोलनमें आर्यसमाजके विरुद्ध वैयक्तिक ईर्ष्या प्रकट करनेका अवसर ढूँढ़ा था। आपने उत्तरमें लिखा कि ऐसे लोग हिन्दू नहीं हो सकते, इनको जातिद्वेषी और जघन्य कहना चाहिये। सभी उदार हृदय सज्जन वफादार होते हैं और स्वर्गीय गुप्तजी भी उसी श्रेणीके थे। गुप्तजी कानपुरके हिन्दी कवि-शिरोमणि और सुप्रसिद्ध गद्य-लेखक स्वर्गीय पं० प्रतापनारायण मिश्रकी प्रशंसा करते-करते न थकते थे। मिश्रजीके नामसे गुप्तजीको बड़ा प्रेम था, क्योंकि हिन्दीके प्रति प्रेम और उसका अभ्यास उन्हें मिश्रजीकी कृपासे ही प्राप्त हुआ था। मृत्युके समय गुप्तजीकी अवस्था ४१ साल और कुछ महीनोंकी थी, परन्तु इस अल्पकालमें ही उन्हें सम्पादन-कलाका इतना अनुभव हो गया था, जितना आजकलके बहुत कम सम्पादकोंको होगा। इसका कारण यह था कि छोटी उम्रमें ही वे इस ओर प्रवृत्त हो गये थे। उनके एक गुरुजन लिखते हैं कि प्रारम्भसे ही इनमें असाधारण बुद्धि विद्यमान थी, जिन पुस्तकोंको दूसरे लोग वर्षोंमें समाप्त कर पाते हैं, उन्हें ये महीनोंमें पढ़ डालते थे। अखबारी दुनियासे इनका सम्बन्ध बड़े अच्छे ढंगसे हुआ। ये प्रारम्भसे ही बड़े विनोदी थे, इसलिये बहुत दिनों तक लखनऊके प्रसिद्ध और अनूठे अखबार 'अवध-पञ्च' में लेख लिखते रहे। उस समय ये उस पत्रके प्रतिष्ठित लेखकोंमें समझे जाते थे, यह उनके लिये बड़े गौरवकी बात थी। प्रारम्भमें गुप्तजी 'अखबारे चुनार' पत्रके सम्पादक हुए, फिर 'कोहेनूर' में काम किया, और भी कई समाचार पत्रोंके सम्पादक रहे। इन दिनों आप कविता भी किया करते थे। और इस सम्बन्धमें मिर्जा सितम जरीफको अपना उस्ताद मानते थे। मिर्जा साहब जराफत (हास्यरस) में निस्सन्देह यथानाम तथा गुण थे। आश्चर्य नहीं कि इनके सत्सङ्गने स्वर्गीय गुप्तजीकी स्वाभाविक हास्यपूर्ण लेखन-शैलीमें 'सोनेमें सुहागे' का काम किया हो।

'हिन्दोस्थान' अखबारमें गुप्तजीने कई ऐसे लेख लिखे कि जिनके कारण हिन्दी-जगत्‌में आपकी खूब प्रसिद्धि होगई। इन्हीं दिनों कलकत्तेसे 'हिन्दी-बङ्गवासी' निकला, जिसके लिये गुप्तजीने एक लेख लिखकर भेजा। सम्पादक महाशयने उसे बहुत पसन्द किया और गुप्तजीको अपने पास बुलाया। 'बङ्गवासी' में कई वर्ष रहनेके पश्चात् १८६६ ई० में 'भारतमित्र' का कार्यभार गुप्तजीने अपने हाथमें लिया और अब उनको अपनी प्रबन्ध-पटुता और लेखन-कुशलता दिखानेका पूरा अवसर प्राप्त हुआ। थोड़े ही दिनोंमें उदारतापूर्ण लेखों, निर्भय टीका-टिप्पणियों और चुटीली चुटकियोंने हिन्दी जगत्‌में गुप्तजीको प्रसिद्ध कर दिया। 'भारतमित्र' में उन्होंने बड़ा परिश्रम किया और उसके साथ प्रेम भी उनको ऐसा हो गया कि अन्त समय तक उससे अलग न हुए। यद्यपि वे अच्छी तरह जानते थे कि पत्रके प्रबन्ध तथा उसकी पूर्ण सेवाके भारसे उनकी शारीरिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है।

हिन्दी-उर्दू-फारसीके अतिरिक्त वह बङ्गला भी अच्छी तरह जानते थे, जिससे साहित्यमें सदैव उनकी दृष्टि उच्च और व्यापक रहती थी। उर्दूके पत्रकारोंमें सबसे बड़ा दोष यह है कि उनमेंसे बहुत कम लोग हिन्दी जानते हैं, इससे उर्दूकी अधिक उन्नति नहीं हो सकती। परिणाम यह होता है कि ऐसे पत्रकार दूसरी भाषाओंके सम्बन्धमें हास्यास्पद बातें लिख मारते हैं। वे नहीं जानते कि दूसरे लोग उन्नतिके मैदानमें कितने आगे निकल गये। गुप्तजीने एक बार इस ओर उर्दू जाननेवाली जनताका ध्यान आकृष्ट किया था, परन्तु वे उल्टे डाँटे गये! दुबारा फिर दूसरे ढंगसे उन्होंने मुसलमान भाइयोंकी रुचि हिन्दी-साहित्यकी ओर पैदा करनी चाही। परन्तु अबकी बार व्यक्तिगत आक्रमणके स्थानमें, सारी जातिको ही धर घसीटा गया! उनकी यह प्रेमयुक्त

शिकायत 'हिन्दुओंकी कृतघ्नता' ठहराई गई। गुप्तजी चुप हो गये कि जहाँ हितकी बात कहना भी अहित समझा जा सकता हो, वहाँ मौन धारण कर मूर्ख बना रहना ही अच्छा है। इन पंक्तियोंके लेखकसे, इस विषयपर, गुप्तजीसे बहुत लिखा पढ़ी हुई। गुप्तजीने मुझे लिखा था—

"आप उर्दूके सम्बन्धमें शान्तिप्रद नीतिका अनुसरण करते हैं, परन्तु लड़ाई कौन लड़ता है? स्वयम् उर्दूवाले हेकड़ी करते हैं। इनमें भी 'पैसा अखबार' विशेषकर हिन्दी न जाननेपर भी, हिन्दीके विरोधमें, सर कटवानेको तैयार है। हिन्दीवाले कब कहते हैं कि उर्दू उन्नति न करे, अवश्य करे। मेरे विचारमें सम्प्रति दो-तीन पीढ़ियों तक (एक शताब्दी तक) हिन्दी-हितैषी लोग, उर्दूके बिना हिन्दीकी उचित उन्नति नहीं कर सकते। इसलिये हिन्दुओंमें उर्दूसे भी अच्छे-अच्छे ज्ञाता होने आवश्यक हैं। मुझे प्रसन्नता है कि 'ज़माना'को आपने सम्हाला। परमात्मा करे कि वह उर्दूमें अनूठा पत्र हो।"

आह! इस वाक्यपर जब 'ज़माना' के साथ स्वर्गीय गुप्तजीके असीम स्नेहकी याद आती है, तो हृदय हाथमें नहीं रहता। खेद है कि 'ज़माना' का इतना बड़ा सहायक इतनी शीघ्र इस असार संसारसे चल बसा। प्रारम्भमें गुप्तजीने स्वयम् अपनी ओरसे ही 'ज़माना' पर प्रेम प्रदर्शित किया था। आपने मुझे लिखा था—

"मैं एक पुराने विचारोंका लेखक हूँ, परन्तु 'ज़माना'को पसन्द करता हूँ और अगर सम्पादक महाशय अनुमति देंगे, तो उसके लिये कुछ लिखना भी रहूँगा।"

इसके पश्चात् गुप्तजी कानपुर पधारे। दो दिनके सत्संगने प्रगाढ परिचय और स्थायी प्रेम पैदा कर दिया। अगर कोई स्वच्छ हृदयता और सद्भावसे मिले, तो घड़ी भरमें वर्षोंका परिचय प्राप्त हो जाता है, नहीं तो वर्षों पास बैठनेपर भी दिल नहीं मिलते। 'ज़माना' के साथ इन्हें बड़ा प्रेम था, 'ज़माना' उनकी इस परम कृपाका सदा कृतज्ञ रहेगा। कार्यमें व्यग्र तथा चिन्ताओंसे चिन्तित रहनेपर भी, वह 'ज़माना' के

लिये किस उत्साहसे लेख लिखते थे, यह सब बातें सुख-स्वप्नहो गईं, कोरी कहानी बन गईं। तीन साल पूर्व भेजे हुए एक पत्रमें गुप्तजी लिखते हैं कि "काम इतना है कि दिन-रातमें समाप्त नहीं होता, आपके लिये रातको जाग-जागकर लेख लिखे हैं।" एक विशेष लेखके न पहुंचनेकी शिकायत करनेपर आपने मुझे लिखा—"आपका क्रोधपूर्ण कृपापत्र मिला, लेखके सात पृष्ठ कलसे तैयार हैं। रातको सो गया था, नहीं तो आज ही रवाना कर देता........।" 'ज़माना' की प्रतिष्ठाको देखकर वे बड़े प्रसन्न होते। कई पत्रोंमें उन्होंने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। एक पत्रमें लिखा—"ज़मानाकी प्रतिष्ठा सदा बनाये रखनेका प्रयत्न करना, सत्यके मार्गपर चलना ही प्रतिष्ठाकी रक्षाका एकमात्र उपाय है।" एक दूसरे पत्रमें लिखा—"ज़मानाके साथ लोग अब गुत्थमगुत्था ईर्ष्या करेंगे। अच्छा है वह ज़माना जल्द आये।" 'ज़माना' की आर्थिक हानिपर उन्हें आन्तरिक दुःख रहता था और अब मालूम हुआ कि प्रायः मित्रोंसे वे सहानुभूतिके साथ उसकी चर्चा किया करते थे।

यह तो अब एक प्रकट रहस्य है कि, 'शिवशम्भुके चिट्ठे' स्वर्गीय गुप्तजीकी ही लेखनी तथा उन्हींकी प्रतिभाके परिणाम थे। प्रारम्भमें उनके गुप्त रखनेकी विशेष आवश्यकता थी, इसीलिये 'ज़माना' में भी गुप्तजीके इच्छानुसार यह भेद गुप्त ही रक्खा गया। यह चिट्ठे अंगरेज़ीमें अनुवादित होकर लार्ड कर्जनकी भेंट किये जानेवाले थे। इसके सम्बन्धमें लिखा भी था कि अनुवाद आप प्रारम्भ कर दें, तो एक बढ़िया अंगरेज़ी पुस्तक छपवाकर बड़े लाट साहबकी भेंट कर दी जाय। पीछे एक और मित्रने अनुवाद करके यह पुस्तक प्रकाशित की और अंगरेज़ीमें भी इन चिट्ठोंको बड़ी रुचिसे पढ़ा गया। बहुतसे अंगरेजोंने तो कई-कई कापियां एक साथ खरीदीं। 'ज़माना' के लिये यह बड़े गौरवकी बात है कि शिवशम्भुके कुछ लेख पहले 'ज़माना' में छपे और फिर हिन्दीमें

'भारतमित्र' के लिये लिखे गये। किन्तु भारतमित्र साप्ताहिक है और 'जमाना' का प्रकाशन प्रायः विलम्बसे ही होता था इसलिये भारतमित्रमे पहले छप जाते थे। एक बार दूसरे लोगोंने जमानासे पहले ही उनके लेखोंके भद्दे उर्दू अनुवाद अपने पत्रोंमे छाप दिये, किन्तु 'जमाना' पर आपकी विशेष कृपा थी और इसके लिये मौलिक रूपमे ही आपके लेख मिलते थे। प्रायः लेखोंके लिखनेसे पूर्व परामर्श कर लेते थे। अधिकतर लेख हमारे अनुरोधपर ही लिखकर भेजते थे। गुप्तजीके अभी हालके एक पत्रका अंश बहुत दिलचस्प है। इन पंक्तियोंके लेखकके पत्रके उत्तरमे उन्होंने लिखा था :—

"शिवशम्भुको भारतमित्रके बाद अगर किसीसे प्रेम है तो 'जमाना'से। इसमें लिखना वह अपना कर्त्तव्य और और इसमे भी कुछ बढ़कर समझता है। लीजिये शिवशम्भु अब लेख लिखना आरम्भ करता है। आप पिछले अंक शीघ्र निकाल दीजिये।"

एक बार इन पंक्तियोंके लेखकने छेड़नेके विचारसे गुप्तजीको लिखा था कि शिवशम्भुका सम्बन्ध अब 'जमाने' के साथ ऐसा हो गया है, जैसे लार्ड कर्जन भारतसे प्रेम तो जताते थे, परन्तु उसके लिये करते कुछ न थे। ओहदे बराबर अंगरेजोंको ही दिये जाते थे। इसके उत्तरमे गुप्तजीने जो कुछ लिखा, उसका अवतरण नीचे दिया जाता है।

"शिवशम्भु 'जमाने'की सदा शुभचिन्तना करता है, उसे लार्ड कर्जन बननेकी प्रतिष्ठा नहीं चाहिये। लार्ड कर्जन एक पद भी भारतवासियोंको न देता और हृदयसे इस देशका अशुभचिन्तक न होता तो कोई बुराईकी बात न थी, 'ज़माने'के लिये ही बेचारे शिवशम्भुने बुढापेमे फिर उर्दू लिखना सीखा है।"

शोक है कि मृत्युने सब आशा-लताओंको झुलसा दिया, अब इन प्रेमपूर्ण नोक-झोक और उपालम्भोका अवसर ही जाता रहा। शम्स-उल्-उलमा आज़ादकी जीवनीका क्रम भी अधूरा रह गया। पहले अंकके

याद ही बीमारीका ऐसा सिलसिला शुरू हुआ कि दूसरा अंक मई सन् १९०७ से पहले न छप सका। इसके प्रकाशनके लिये पाठक बहुत बेचैन थे, सब शिकायतें मैंने उनके कान तक पहुँचा दी थी और इस बार लगातार लिखकर उसको शीघ्र पूर्ण कर देनेका उनका दृढ़ निश्चय था, किन्तु—"वही होता है जो मंजूरे खुदा होता है।" हालमें एक बार लिखा कि "इस बार हर महीने लिखकर 'आजाद' को पूरा करना चाहता था, मगर अब तबियत सम्हलने तक कुछ न हो सकेगा।"

राजभक्तिकी घोषणामें एक विशेष लेख मांगने पर गुप्तजीने लिखा था—"अभी शिवशम्भु 'लायलटी' पर कोई लेख न लिख सकेगा, क्योंकि वह रोग-शय्यापर पड़ा है। लेख तो बढ़िया-बढ़िया सूझ रहे हैं, परन्तु लिखे कैसे जायँ। भगवानसे प्रार्थना कीजिये कि जल्द आराम हो। मैं जीवनसे तंग हूं।"

अपनी अन्तिम बीमारीका हाल वर्णन करते हुए गुप्तजी लिखते हैं:—

"बैठ नहीं सकता, दिनभर पड़ा रहता हूं, 'भारतमित्र' में इन दो महीनोंमें कुछ नहीं लिख सका, पड़े-पड़े कभी कुछ बोल देता हूं, खाना कुछ नहीं खाया जाता और दस्तोंकी तकलीफ तो क्या लिखूं, सारा शरीर काला हो गया है। मेरे भाग्यमें बीमारी ही लिखी है। ऐसा जी चाहता है कि कानपुरमें महीने दो महीने आपके पास रहूं। देखिये, कोई अवसर मिले तो, मेरी नीरोगताके लिये प्रार्थना कीजिये। आप ही बतलाइये कि ऐसी दशामें आपके पत्रोंका क्या उत्तर दे सकता हूं।"

गुप्तजीका यह पहला पत्र था, जिसमें निराशाके चिह्न पाये गये हैं, नहीं तो किसी बातसे घबराते, या निराश होते उन्हें कभी नहीं देखा गया।

स्वर्गीय गुप्तजीका हृदय बड़ा, विशाल और उच्च था। ऊपर लिखा जा चुका है कि कड़ेसे-कड़े साहित्यिक विवादमें भी इनका मन मैला न होता था। विरोधी लोग प्रायः व्यक्तिगत आक्षेप कर बैठते थे, परन्तु इनके हृदयमें कोई विकार न आने पाता और न कभी इस प्रकारके

लेखोंकी ओर उन्होंने ध्यान दिया। गुप्तजीके सौजन्यका एक उदाहरण लीजिये। जिन दिनों लार्ड कर्जनके नाम शिवशम्भुके चिट्ठोंका क्रम चल रहा था, इन पंक्तियोंके लेखकने आपसे विशेष रूपसे एक चिट्ठा लिखनेका अनुरोध किया। लार्ड कर्जनके दुबारा वापिस आनेका समय था. सब सामग्री तैयार हो चुकी थी कि इतनेहीमें लेडी कर्जन बीमार होगईं। वह भी लिखनेके लिये सर्वथा तैयार थे, परन्तु लेडी कर्जनके स्वास्थ्य लाभ करने तक चिट्ठा लिखनेका विचार स्थगित कर दिया। २० अक्टूबर सन् १६०४ ई० के पत्रमें गुप्तजी लिखते हैं:—

"इस लेखकी लेडी कर्जनकी बीमारीने मिट्टी खराब कर दी। जब तक वह अच्छी न हो जायँ, लिखनेका आनन्द नहीं है। कुछ कड़ी बातें लिखनी हैं, अतएव श्रीमती-जीका स्वस्थ होना आवश्यक है। परमात्मा करे, यदि लेडी साहबा न बचीं (जरूर बचेंगी), तो चिट्ठा दूसरे ढगसे लिखना पड़ेगा। इसलिये आप अङ्कको न रोकें।"

घोर विरोध होने पर भी उदारतापूर्ण शिष्टाचारका कैसा स्वच्छ उदाहरण है! लाट साहबके कष्टमे मलिन मनोवृत्ति-पूर्वक लाभ उठाने और उनपर चोट करनेके कार्यसे गुप्तजीने अपनेको किस प्रकार बचाया!

बुरे विचारोंसे विशेषकर साहित्यमें गन्दे लेखोंसे गुप्तजीको बड़ी घृणा थी। एक बार राजा रविवर्मा द्वारा अंकित एक चित्रपर किसी हिन्दी कविने इस प्रकार कविता लिखी थी, जैसे मानो कोई व्यक्ति किसी बाजारू स्त्रीको देखकर आपेसे बाहर हो गया हो। इस कविताको पढ़ते समय इन पंक्तियोंका लेखक भी मौजूद था। कविता पढ़ते-पढ़ते क्रोधसे गुप्तजीके मुख-मण्डलकी जो आकृति होगई, वह इन पंक्तियोंके लेखकको कभी न भूलेगी। चित्रको देख-देखकर कहते थे कि सचमुच चित्रकारने सुन्दरता और सतीत्वका चित्र खींच कर रख दिया है। देखनेवालोंको पवित्र भावोंसे प्रेरित होकर विधाताकी विचित्र शक्ति-मत्ताका गुण-गान करना चाहिये।

जिन दिनों देशमें गुप्तजीके चिट्ठोंकी चारों ओर चर्चा चल रही थी, उन दिनों पञ्जाबी समाचार पत्रोंने शिवशम्भुके नामसे 'नक़ली' चिट्ठे गढ़ने शुरू कर दिये। कुछ पत्रोंने बिना नाम और हवालेके असली चिट्ठे बनाकर छाप दिये। लाहौरके अखबार 'हिन्दुस्तान' में भी किसी प्रकार कुछ ऐसी ही अनियमताएँ होगई थीं। 'हिन्दुस्तान' जैसे प्रतिष्ठित पत्रको भी इस अनियमताका आश्रय लेते देख गुप्तजीको बड़ा खेद हुआ। और यह सच भी है कि एक प्रसिद्ध और सर्वप्रिय साहित्यिक नामकी चोरी उचित नहीं कही जा सकती और इस प्रकारकी घटनाओंसे देशका बौद्धिक-पतन सिद्ध होता है। इसके बारेमें आपने मुझको बड़े दुःखसे लिखा—"हिन्दुस्ताननें नया ढग निकाला है। पहले तो उसने कई चिट्ठे नकल किये, अब वह स्वयं शिवशम्भुके नामसे दो चिट्ठे गढ़कर 'शहीद' बन बैठा है। कैसी बुरी तृष्णा है, आप भी नोट करें………।"

परन्तु जब 'हिन्दुस्तान' पर संकटका समय आया तो गुप्तजी इस पुरानी बातको भूल गये और उनका हृदय सहानुभूतिसे भर गया। इस समय वह पत्र मौजूद नहीं है, नहीं तो उसके उद्धरणोंसे उनके वेदनापूर्ण हृदयका अनुमान हो सकता और यह मालूम होता कि हृदयकी स्वच्छता स्वदेश-प्रेम और एकताका क्या अर्थ होता है। लाहौरसे निकलनेवाले 'पंजाबी' नामक समाचार पत्रके अभियोगके पश्चात् 'हिन्दुस्तान' में आपने सर चार्ल्स रिवाजकी बिदाई शीर्षक चिट्ठा बड़े ढंगसे लिखा। 'अलीगढ़ कालेजकी शोरिश' के दिनोंमें आपने एक पत्र सर सय्यदके प्रति भी 'नैयर-ए-आजम' में छपवाया।……

गुप्तजी निष्पक्ष साहित्य-सेवियोंकी तन मनसे प्रतिष्ठा करते थे, 'अवध-पंच' के सम्पादक महाशयका नाम बड़े सत्कारसे लेते थे, अच्छी उर्दूका उन्हें बादशाह कहते थे। और आज़ादके लिये तो कदाचित् इनके हृदयमें इतना अधिक गौरव था कि किसी दूसरे उर्दू साहित्य-सेवी

का न होगा। कहते थे कि वे उर्दूके महाकवि हैं, हर मुलाकातमें उनका कुछ-न-कुछ ज़िक्र आ जाता था। वह कोहेनूरमें थे और मौलाना आज़ाद लाहौर कालेजमें। आज़ाद साहब 'कोहेनूर' में पधारते और स्वर्गीय गुप्तजीसे घंटों प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया करते थे। भारत-धर्म-महामण्डलके प्रसिद्ध वक्ता पं० दीनदयालुजीसे गुप्तजीको बड़ा प्रेम था। दैवयोगसे पं० दीनदयालुजी, गुप्तजीके अन्तिम समयमें हरि-कीर्तन द्वारा उनको आत्मिक शान्ति-प्रदान करनेके लिये मौजूद थे। कलकत्तेमें जस्टिस शारदाचरण मित्र और सर गुरुदास बनर्जी भी इनके गुण-ग्राहकोंमेंसे थे। गुप्तजी कलकत्तेके चौधरी परिवारकी बड़ी बड़ाई किया करते थे। वह लोकमान्य तिलककी सरलता और त्यागके भक्त तथा बा० सुरेन्द्रनाथ बनर्जीकी कार्य-तत्परताके अत्यन्त प्रशंसक थे। गुप्तजी किसीके सम्बन्धमें समझदार समालोचकोंकी भाँति बड़ी जाँच-पड़तालके बाद अपनी सम्मति स्थिर किया करते थे। इसीसे उनकी की हुई प्रशंसा साधारण प्रशंसा न होती थी। उनकी सम्मति स्थिर और सुदृढ़ होती थी, क्योंकि प्रकृतिने इनको विवेचन शक्ति प्रचुर मात्रामें प्रदान की थी। दूसरोंके उचित परामर्शपर, घमण्डियोंकी भाँति अप्रसन्न न होकर गुप्तजी बहुधा उसे मान लिया करते थे। इन पंक्तियोंके लेखकको यह बात कृतज्ञतापूर्वक सदैव याद रहेगी कि स्वर्गीय गुप्तजीको इसकी सम्मतिके अनुसार लेखादिके परिवर्तन करनेमें कभी संकोच नहीं हुआ। एक बार चिट्ठेके साथ एक शेर था, जो छपानेके लिये अनुचित समझकर निकाल दिया गया और इसकी सूचना भी गुप्तजी-को दे दी गई। जिसके उत्तरमें आपने लिखा कि 'वह शेर इसलिये है कि '[illegible]' है। खैर, उसे निकाल डालिये। वह शेर जमानेके [illegible] करनेके लिये सूचित करता है, तथापि उसे निकाल दीजिये।'

इसका एक लेख कहीं खो गया, उसके सम्बन्धमें आपने लिखा—

'जो लेख खो गया है, उसकी चिन्ता न कीजिये, पाण्डुलिपि (मसौदा) तो मैं कभी रखता ही नहीं।' एक चिट्ठेकी प्रेमपूर्ण समालोचना करनेपर आपने मुझे लिखा—'निस्सन्देह विनोदशीलताकी वायु गम्भीरताको उड़ा ले गई, क्षमा करें, चित्तकी व्यग्रता अथवा असावधानीसे ऐसा हुआ।'

जिन दिनों आप उर्दू अखबारों पर लगातार लेख लिख रहे थे, उन दिनों इन पंक्तियोंके लेखकसे लम्बा-चौड़ा पत्र-व्यवहार भी चल रहा था। उस समय आपके अनुरोधसे कुछ नोट भी तय्यार करके आपकी सेवामें भेजे गये थे। जिनके सम्बन्धमें आपने लिखा—"आपने जो कुछ लिखा, इससे मुझे बहुत सहायता मिली। 'ज़माना'पर पहले ही लिख लिया था·········इसमें कुछ गाली भी आपको दी गई है। अब शायद एक अंककी और आवश्यकता होगी। आपके विस्तृत पत्रने यह जरूरत पैदा करदी है।"

गुप्तजी कभी दूसरे पत्रों और लेखोंकी बड़ी विनोद-पूर्ण समालोचना किया करते थे। एक अप्रकाशित पुस्तकका किसी पत्रमें उद्धरण पढ़कर आपने लिखा—'क्या लकड़तोड़ उर्दू है, छप गई तो पढ़ेगा कौन? और पढ़ेगा तो समझेगा क्या? एक तो विषय लकड़तोड़, दूसरे भाषा और भी जटिल, आप जरा कहना, परन्तु नमस्ते। यह तो हुई गद्यकी बात, पद्यके विषयमें कुछ कहना व्यर्थ है। अजब जमाना है। सच बात कही और लड़ाई हुई।'

गुप्तजी अपने लिये पुराने ढर्रेके विचारों वाला आदमी कहा करते थे। देशसे उन्हें बड़ा प्रेम था। जिन दिनों 'जमाना'में समाज-संशोधनके सम्बन्धमें धुआंधार लेख निकल रहे थे, उन दिनों उन्होंने उनकी अपने पत्रमें बड़ी तीखी आलोचना की थी, इस पर मेरे और उनके बीच बहुत दिनों तक पत्र-व्यवहार हुआ, जिसमें सब विवादास्पद विषय आ गये। अपने लेखोंके बारेमें आपने लिखा :—"प्रत्येक बात बहुत शुद्ध और स्पष्ट लिखनी चाहिये। अपने देश और धर्मका अका-

रण ही अपमान करना उचित नहीं है। इस पर मौखिक वाद-विवाद भी हुआ, परन्तु गुप्तजीके आक्षेपोंकी जड कुछ और ही थी। देशके गौरव और ऐतिहासिक सम्मानका उन्हें बडा ध्यान रहता था। अन्तत वहसमे उत्तेजित होकर आप कहने लगे—"अब इस स्वाभिमानके अतिरिक्त हमारे पास और क्या रह गया है? इस दरिद्रावस्थामें भी पूर्वजोंकी बडाईका विचार हमें मस्त किये रहता है तम इस खुशीको भी छीन लेना चाहते हो।" लेखक गुप्तजीकी इन युक्तियोसे तो सहमत न हुआ परन्तु इस लम्बे वार्त्तालापके पश्चात् वह उनकी स्वजाति-हितैपिता और स्वदेशप्रियताका सदाके लिये भक्त अवश्य बन गया। कुछ बातोंको छोडकर, गुप्तजी समाज-संशोधन कार्यमे बहुतसे लोगोंसे बढकर थे। विविध जातियोके आन्तरिक भेद-भाव मिटाने और उनमे सद्भाव स्थापित करनेके लिये, उन्होंने हिन्दीमे कई प्रभावपूर्ण लेख लिखे। गुप्तजीकी प्रकृति सर्वसाधारणसे भिन्न थी। सासारिक एषणा उनमे बिलकुल न थी।

हिन्दीका इतिहास लिखनेके लिये वे बडी सामग्री एकत्र कर रहे थे और इधर रात-दिन इसी चिन्तामें रहते थे। अगर यह पुस्तक पूरी हो जाती, तो हिन्दीके लिये एक अमूल्य वस्तु होती। इस पुस्तककी सूचना 'जमाना' मे निकल चुकी थी। गुप्तजीका विचार था कि इस ग्रन्थमे वैदिक युगसे लेकर मुसलमानी शासन तक हिन्दुस्थानकी भाषाकी हालत, परिवर्तन और हेरफेर दिखलाकर ब्रजभाषा और हिन्दीका इतिहास लिखा जाय। उर्दू-हिन्दीकी भावी दशापर भी वे इस किताबमे विचार करनेवाले थे। शोक है कि अब यह कार्य अपूर्ण रह गया। आपका विचार उर्दूमे भी किताबें लिखनेका था, और भी बहुतसे इरादे थे, जिनका अब उल्लेख करना भी व्यर्थ है। सब आशाएँ मिट्टीमे मिल गईं। स्वर्गीय बाल-मुकुन्दजीका हँसोड स्वभाव और उनकी विनोदशीलप्रकृति किसको

भूल सकती है? थोड़ीसी देरमें सैकड़ों हँसने-हँसानेवाली बातें हो जाया करती थीं। आपकी चिट्ठियोंका भी यही हाल था, मानो पास बैठे बात कर रहे हैं। कोई भी चिट्ठी विनोदसे शून्य न होती थी और न कोई शब्द व्यर्थ लिखा जाता था। लेखन-शैली शुद्ध और सरल सबकी समझमें आने लायक थी। आधुनिक हिन्दीकी आधारशिला वस्तुतः इन्हीं दो-चार आदमियों द्वारा रक्खी गई है। गुप्तजीको हिन्दीमें संस्कृत और उर्दूमें अरबी-फारसीके कठिन शब्दोंकी भरमारसे सख्त नफरत थी। वास्तवमें हिन्दी समाचारपत्र,—'भारतमित्र'की शुद्ध और सरल लेखन-शैलीके कारण ही सुधरे। उनकी लेखनशैली सदैव अनूठी होती थी, साधारण बात भी इस ढंगसे कहते थे कि लोग उसे सुनकर प्रसन्न हो जाते थे। गुप्तजीको बात बहुत जल्द सूझ जाती थी, उनकी 'हाजिर जवाबी देखकर लोग दंग रह जाते थे। बातको वे इस मजेसे कहते थे कि कड़ीसे कड़ी बहसमें भी कटुता नामको भी न आने पाती थी। क्या-क्या हंसीकी बातें उनकी जबान पर रहती थीं। इधर शब्द मुंहसे निकला नहीं, कि उधर विनोदके सांचेमें नया वाक्य ढल गया!

एक बार 'अमृत बाजार पत्रिका' के 'स्प्रिचुअल मेगेजीन' में प्रकाशित उसके आश्चर्यजनक लेखों और प्रेतात्माओंकी चर्चा चल रही थी, गुप्तजी बोले कि भाई! अब भूत सिर्फ दो जगह ही रह गये हैं। एक तो अमेरिकामें, दूसरे 'अमृत बाजार पत्रिका' के दफ्तरमें। आपने सब समाचार पत्रोंके विनोदात्मक नाम रख छोड़े थे। देशके बड़े-बड़े लोग भी आपकी इस विनोदपूर्ण कृपासे न बचे थे, स्वयं भारतमित्र को आपने 'भारत-मेहतर' का पद दिया था। बीमारीकी दशामें चारपाई पर पड़े पड़े भी बहुधा ऐसी बातें कह देते थे कि सुनने-वालोंके पेटमें हँसते-हँसते बल पड़ जाता था।

सचमुच अब ये सब बातें सुख स्वप्न होगईं। इस खिले हुए फूलपर इतनी जल्दी तुषार-पात हो गया। हमारा हँसता हुआ गुलाब ठीक दोपहरीमें मुरझा गया।

अब मित्रोंको कौन हँसावेगा ? कौन अपनी चिन्ताओंको भूलकर दूसरोंको प्रसन्नता प्रदान करेगा ? कौन हमारे दु:ख-सुखकी सुनेगा, और कौन हमसे अपना दर्द दिल कहेगा ? किसके पत्र संकटपूर्ण समयमें हमारे हृदयके घावोंको भरनेके लिये मरहमका काम देंगे ? सचमुच वह मृदुल मूर्ति चिरकालीन दुखोंको मिनटोंमें मिटा देनेका हँसोड़ स्वभाव रखती थी। परन्तु अब तो हमें इस ईश्वरीय आज्ञाके आगे नतमस्तक होनेके अतिरिक्त और कोई चारा ही नहीं रहा। यद्यपि इस समय हमारे मित्र गुप्तजी संसारमें नहीं हैं, परन्तु उनकी पवित्र आत्मा अब भी हमारे अन्दर काम कर रही है और आगे भी करती रहेगी, वह सम्पादन-कलाके क्षेत्रमें पथ-भ्रष्ट पथिकोंके लिये पथ-प्रदर्शनका काम करेगी और उन्हें सचेत होनेका अवसर देगी।

'हक़ मग़फ़िरत करे अजब आज़ाद मर्द था।'*

'जमाना'—अक्टूबर-नवम्बर, १९०७

* अनुवादक—पं० हरिशङ्कर शर्मा, ('विशालभारत' सितम्बर १९२८)

२

तेजस्वी गुप्तजी

[स्वर्गीय पण्डित अमृतलालजी चक्रवर्ती]

लेखकोंकी सच्ची जीवनी उनके लेख ही हैं। उन्हींमें उनके मन-प्राण-हृदय या चरित्रकी सच्ची छवि अङ्कित रहती है। उन लेखोंके पढ़नेवालोंको बताना नहीं पड़ता कि वह पुरुष किस प्रकारका मनुष्य था। दूसरे मनुष्योंके कार्य जिस प्रकार उनके मन, प्राण आदिके द्योतक हैं, उसी प्रकार लेखकोंके लेख उनके सम्पूर्ण जीवनके उज्ज्वल चित्र बनकर पाठकोंके समीप उपस्थित रहते हैं। लेखक जीवन-भरमें जो कार्य करते हैं, वे केवल लेखोंके द्वारा प्रकटित चित्रके विकास हैं।

बाबू बालमुकुन्द गुप्तके समयवाले 'हिन्दी बङ्गवासी'में उनके चरित्रका चित्र सुनहरे अक्षरोंमें चित्रित है। उस ६ वर्षके समयमें जितनी भावराशियाँ उनके उस समयके जीवनको सूचित करती थीं, वे सब 'हिन्दी बङ्गवासी'की उन प्रतियोंमें मुद्रित हैं और आगे उनके चरित्रका जैसा विकास होता गया, वह 'भारतमित्र'के अङ्कमें सुशोभित हुआ। बाबू बालमुकुन्द गुप्तके समयके 'हिन्दी बङ्गवासी' और 'भारतमित्र'के पढ़नेवाले उनकी तेजस्विता, मित्रोंके साथ निष्कपट मित्रता, शत्रु-शासनकी निर्म्मम-राजसिकता और सर्वसाधारणपर हार्दिक करुणा तथा सबसे बढ़कर अटल धर्म-प्राणताका सजीव चित्र-दर्शन उनकी लिखी हुई प्रत्येक पंक्तिमें होता है। यही गुणावली बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी सच्ची जीवनी है और उन लेखोंका चित्र जितने दिनों लोगोंके हृदयमें खिंचा रहेगा, उतने दिनों इन गुणोंके सबसे अधिक स्थूल विकासरूपी शरीरका अन्तर्द्धान

हो जानेपर भी बा० बालमुकुन्द गुप्त अपने सच्चे स्वरूपमें उन लेखोंके पढ़नेवालोंके मानस-क्षेत्रमें जीवित रहेंगे।

गुप्तजीकी तेजस्वी प्रकृतिके अनेकानेक कार्य मेरे सामने आचरित होनेपर भी मैं केवल दोहीका उल्लेख करूंगा। उनमेंसे एक 'हिन्दी बङ्गवासी'के कार्यमें नियुक्त होनेके समयका है और दूसरा उनके उस कार्यसे विदा लेनेके समयका। उन दिनों 'हिन्दी बङ्गवासी'की प्रति संख्यामें एक चित्र छपा करता था। बार-बार चित्र बनवानेकी कठिनाईसे पार पानेके लिये बङ्गवासी आफिसके पहलेके बने हुए चित्र परिचयसूचक लेखके साथ समय-समयपर प्रकाशित किये जाते थे। 'मडेल भगिनी' नामक बंगला पुस्तकमें जो १५-१६ चित्र हैं, वे उन दिनों क्रमानुसार प्रकाशित होने लगे थे और उस बृहत् पुस्तककी बड़ी कहानीको उन चित्रोंकी परिचय रूपी छोटी-छोटी लेखावलीमें कह डालनेका प्रयत्न किया जाता था। उन दिनों मेरे सर्वथा अपरिचित बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी एक चिट्ठी उन चित्रोंसे सम्बन्धित लेखोंकी आलोचनामें आई। उसमें गुप्तजीने उन लेखोंका ऐसा कठोर खंडन किया था कि इतने दिन बीतने पर भी उनकी उस तेजस्विनी भाषाकी एक पंक्ति मुझे स्मरण है। उन्होंने लिखा था :—

"साहित्यकी मर्यादा बिगाड़नेवाला वह कौन मनुष्य है, जो 'मडेल भगिनी' उपन्यासकी मिट्टी खराब कर रहा है?"

लेखकने मेरी ही कृति पर अपनी पैनी लेखनी चलाई थी। जो हो, चारों ओरकी लगातार सुख्यातियोंसे ऊबा हुआ हृदय एक निर्भीक लेखककी सत्य बातसे प्रसन्न हुआ। आश्चर्यका विषय यह था कि हिन्दी-भूमिके एक पंजाबी लेखकने ठेठ बंगभाषाके रसोपभोगका आभास दिया था। पत्रोत्तरमें लिखा गया कि जब बंगभाषासे आपके परिचित होनेका पता मिला है, तब उस पुस्तकके एक अध्यायका अनुवाद कर भेजें तो

कृपा होगी। अनुवाद आया। केवल बङ्गभाषाको समझनेकी ही नहीं, पर सरस, मधुर हिन्दी लिखनेकी भी इतनी शक्ति लेखकमें पायी गयी कि उनके साथ गाढ़ा सम्बन्ध स्थापित करनेका लोभ उमड़ आया। तदनन्तर उनके साथ 'हिन्दी बंगवासी' में एकत्र काम करनेका आनन्द प्राप्त हुआ। 'हिन्दी बंगवासी' की भाषा अच्छी नहीं होती थी। मैं था कोरा बंगाली। बारह वर्षकी अवस्थामें गाजीपुर रहकर जो भाषा मैंने सुनी थी, उसका संस्कार तब तकको साहित्यिक भाषाका यथाशक्ति अध्ययन करने पर भी मेरी छातीसे दूर नहीं हुआ था। "रउँआ कहा जात बानी ? हेने आई, हेने आई" ऐसी ही भोजपुरी भाषाकी भनक तब तक मेरे हृदयसे उठती थी। मैं इलाहाबाद और उसके कुछ ही पश्चिम कालाकांकर तक ही गया था। पण्डित प्रभुदयालजी कालाकांकरसे अलीगढ़ तककी भाषाके अभिज्ञ थे। वे आगरे जिलेके पिनाहट ग्रामके निवासी थे, और कानपुरमें मार्मिक भाषाविद् कविवर पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्रके विद्यार्थी थे। श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त फारसी भाषाके विद्वान् और उर्दूके सुलेखक थे। इसलिये मानो सम्पूर्ण हिन्दी-भूमिकी भाषाके प्रतिनिधि-स्वरूप हम तीनों 'हिन्दी बंगवासी' का सम्पादन करने लगे। 'हिन्दी बंगवासी' में पूर्व भाषाकी काया पलट होगई थी। उस समयके व्यक्तियोंको भाषाके प्रतिनिधि इसलिये मानना पड़ता है कि तब तक हिन्दीके आधुनिक साहित्यका साँचा प्रायः उन दिनोंके लेखकोंके मस्तिष्कमें ही था। 'हिन्दी बंगवासी'का आर्डर देनेके दिनको हम तीनों साथ रहकर 'कतलकी रात' बनाते थे। भाषा-निर्णयके लिये हमारी लड़ाई ऐसी गहरी होती थी कि किसी-किसी दिन सारी रात बीत जाती थी। किस प्रान्तके किस शब्दको कहाँ जोड़नेसे भाषाका समुचित लालित्य होगा, इसपर बड़ी जोरदार बहस होती थी। स्वर्गीय भारतेन्दुजी काशी-केन्द्रकी भाषाको ही, प्रान्तीयताके दोषसे यथासम्भव बचाकर अपनी मधुवर्षी

लेखनीसे बरसा गये थे। उनको अपना आदर्श मानकर भी हम किसी भी प्रान्तके भावद्योतक शब्दका अनादर नहीं करते थे। केवल शब्द ही नहीं, नाना प्रान्तोंके भावपूर्ण मुहावरे भी हम भाषामें समाविष्ट कर लेते थे। इसके उपरान्त बँगला, अंगरेजी, संस्कृत और फारसीके भी कितने ही मुहावरोंका रुचिर अनुवाद लगातार बरतते-बरतते आधुनिक हिन्दी साहित्यका वह अविच्छिन्न अंग बन गया। आजकलके हिन्दी लेखकोंको हमारी उन चोरियों और डाकेजनियोंका पता तक नहीं, और वे इन सबको खालिस हिन्दी जानकर अब बेधड़क अपने काममें ला रहे हैं। यदि कोई नीर-क्षीर परीक्षा-निपुण भाषा-शास्त्री कभी भाषाके पूर्व पश्चात् रूपोंको जाँचनेका कष्ट उठावे, तो उससे लोग जान सकेंगे कि 'हिन्दी-बंगवासी' में आधुनिक साहित्यका रूप ढालनेके लिये क्या-क्या किया गया था? पण्डित बदरीनारायण चौधरी 'हिन्दी-बंगवासी'को 'भाषा गढ़नेकी टकसाल' बतलाते थे। उस टकसालका कोई सिक्का बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी छापके बिना नहीं निकलता था।

गुप्तजीकी तेजस्विताके कार्यका दूसरा परिचय उनके 'हिन्दी बंगवासी' से अलग होनेमें है। उन दिनों सुप्रसिद्ध हिन्दी वक्ताशिरोमणि पंडित दीनदयालुजीसे कुछ अनबन हो जानेसे 'हिन्दी बंगवासी' में उनका विरोध करना निश्चय हुआ था, उस समय बाबू बालमुकुन्दको 'हिन्दी बंगवासी' से जो आर्थिक सहायता दी जाती थी, वह हिन्दी पत्रोंकी उस प्रारंभिक दशामें अल्प ही हिन्दी लेखकोंको मिलती होगी। बाबू बालमुकुन्दके परिवार-पालनके लिये उस धनकी बड़ी भारी आवश्यकता रहनेपर भी उन्होंने उसकी कुछ भी परवा नहीं की और स्पष्टतया कह दिया कि पण्डितजीसे मेरी मित्रता बड़ी घनी है, 'हिन्दी बंगवासी' में उनकी विरुद्धता होनेसे मुझे उसकी सेवासे अलग होना पड़ेगा। उस तेजस्वी पुरुषने ऐसा ही किया। 'हिन्दी बंगवासी' में पण्डितजीके

विरोधमें लेख लिखे जानेके दिन ही 'बंगवासी' के कार्यकर्ताओंको चकित करके 'हिन्दी बंगवासी' के कार्यसे वे अलग होगये। अपने सिद्धान्तको स्थिर रखनेके लिये उन्होंने प्रति मासकी आवश्यकीय आय पर सानन्द पदाघात किया। 'हिन्दी बंगवासी' के साथ छः वर्षके उतने गाढ़े सम्बन्धका परित्याग करनेमें तनिक भी आनाकानी नहीं की।

गुप्तजी मेरे साथ एक ही मकानमें रहते थे और अपनी रोटी स्वयं बनाते थे। उस समय मैं उनके कमरेमें जा बैठता और तब उनका अंगरेजी-अभ्यास चलता था। कार्यालयसे सीधे डेरे न लौटकर हम तीनों प्रतिदिन घण्टों नगरके दर्शनीय दृश्योंको देखते फिरते थे। हाईकोर्टके समीप गंगाजीके तटका एक पक्का चबूतरा हमारा विश्राम-स्थान था। एकत्र-वास, विचरण और विश्रामका आनन्द सम्मुखकी जल-तरंगकी भाँति हममें हृदयकी अविच्छिन्न एकता लाता था। कार्यालयसे बंगभाषाके तीन पत्र निकलते थे—दैनिक, साप्ताहिक और मासिक। सम्पादक एक दर्जनसे अधिक थे, जिनसे मेरा भी तब तक प्रायः कोई स्नेह-सम्बन्ध नहीं स्थापित हुआ था, जब तक कि मेरे बँगला लेख समादृत नहीं हुए। मित्रताका समादर करनेवालोंके आगे हृदयका कुसुमासन.बिछा देना जैसा गुप्तजीका स्वभाव था, मित्रताका निरादर करनेवालोंसे मुँहको मोड़े रहनेका अभिनय भी उनसे वैसा ही अच्छा बनता था। यदि वे बंगीय सम्पादक अपने साहित्यकी गौरव-वृद्धिसे फूले न समाते थे, तो अपने साहित्यकी गौरव-वृद्धि गुप्तजीमें भी न्यून नहीं थी। किन्तु अपने साहित्यका गौरव-बोध यदि अन्य साहित्यकी महिमाको न समझने दे और उसके सेवकोंपर श्रद्धाकी कृपणता लाये तो वह भाव निश्चय ही आदरणीय नहीं। अपने स्वाभाविक हँसमुखसे उस भावकी अवहेलना प्रकट करनेमें गुप्तजी पूर्ण निपुण थे।

'हिन्दी-बंगवासी'से अलग हो जानेके अनंतर बाबू बालमुकुन्द गुप्तको क्षतिग्रस्त न होना पड़ा। 'भारतमित्र' के नवीन स्वामी बाबू जगन्नाथ दास अपने पत्रको अव्यवस्थित दशासे मुक्त करनेके लिये उन सरीखे सुलेखक सम्पादककी तलाशमें ही थे। उन्होंने गुप्तजीको निमंत्रण दिया। उनके निमन्त्रणको स्वीकार कर गुप्तजीने अपनी कार्य कुशलता, परिश्रम और प्रतिभासे 'भारतमित्र' की दशा ऐसी समुन्नत बनायी, जैसी पहले कभी न थी। उन्होने 'हिन्दी-बंगवासी' के विरुद्ध बड़े प्रबल लेख लिखे थे।

मित्रता निबाहनेके लिये स्वार्थको तिलाञ्जलि देना ही मित्रताका लक्षण है। बाबू बालमुकुन्द गुप्तके उस गुणकी उज्ज्वल छवि पण्डित दीनदयालु-सम्बन्धी उक्त बर्तावमें प्रकट होनेके उपरान्त मुझे भी उनकी उस मधुर प्रकृतिका निर्मल-रस अनेक बार आस्वादन करनेका अवसर मिला। जिस समय में उनके मित्रके विरोधी 'हिन्दी-बंगवासी' के कार्यमें नियुक्त रहकर उनके निर्मम राजसिक आघातका निशाना बन रहा था, उस समय मुझे एकाएक 'हिन्दी-बंगवासी' से अलग होकर परिवार-पालनके लिये अन्धकार देखना पड़ा था। मेरे उस दुर्दिनमें स्वकीय उदार प्रेरणासे मेरी जीविकाका यथाशक्ति प्रबन्ध कर बाबू बालमुकुन्दने विपद्ग्रस्त मित्रको गले लगा लेनेकी अपनी निष्कपट मित्रता-पूर्ण अनुपम प्रकृतिका परिचय दिया और पारस्परिक कठोर आक्रमणसे जिन पण्डित माधवप्रसाद मिश्रसे बाबू बालमुकुन्दको पूर्व मित्रता स्वाहा हो जानेका अनुभव 'भारतमित्र' के पाठकोंको प्रायः प्रति संख्यामें ही मैं हो रहा था, उनके देहान्तका संवाद पाते ही मित्रता-मन्दाकिनीकी अमृत धारा शत्रुताके विशाल हिमालयका पाषाण-अङ्ग भेदकर प्रवाहित हुई। बालमुकुन्द रोये, हृदय खोलकर रोये और वे अनुतापके अङ्गारसे जलकर हृदयके अन्तस्तलसे उठती हुई अबाध अश्रु-धारासे भींग गये।

उनकी उस करुणामयी प्रकृतिके अमृत फलरूपी स्वच्छ अश्रुजलका प्रत्यक्ष चित्र एकबार मेरे साथके बर्तावमें भी अङ्कित हुआ था। कितने ही दिन बीत गये हैं। किन्तु अबतक भी उनकी वह अश्रुजलमयी करुणा-पूर्ण मूर्ति मेरे हृदयमें जमी हुई है। मुझे एकबार एक स्वजनका जामिन बनकर उनके कर्ज अदा करनेमें असमर्थ होनेसे दीवानी जेल जाना पड़ा था। जिनके कर्जके लिये मेरी यह दुर्गति हुई थी उनके समर्थ सहोदरों-को मैंने हताश होकर जो अन्तिम चिट्ठी लिखी थी उसमें किसी मार्मिक कविका निम्नलिखित श्लोक था—

दरिद्राय नमस्तुभ्यं सिद्धोऽहं यत् प्रसादतः
जगत् पश्यामि येनाहं मां नपश्यन्ति केचन।

किन्तु किसीका न देखना पीछे सत्य नहीं निकला। जिसने देखा वह वही मेरा विपन्मित्र वैश्यकुमार बालमुकुन्द था। हृदयकी वेदना लेकर वह जेलखानेके दरवाजे पर पहुंचा और हृदयके मर्मस्थलसे निकलते हुए अश्रुजलसे भींगता हुआ अधूरी बातोंमें कहने लगा—

"आपकी यह दशा सही नहीं जाती।" बस गला रुक गया। कण्ठकी बात कण्ठहीमें रह गयी। निरवच्छिन्न आंसुओंसे मेरी उस दशा पर बाबू बालमुकुन्दने जिस करुणामयी प्रकृतिका सजीव, स्वर्गीय उदा-हरण दिखाया, मुझे फिर कभी उसके देखनेका सौभाग्य नहीं हुआ। केवल उस अश्रुजलसे ही बाबू बालमुकुन्दका मुझपर वह करुणा वेग समाप्त नहीं हुआ, उनके प्रबन्धसे न उस कारागारमें मुझे भोजन शयनादिका कोई क्लेश रहा और न मेरे परिवारके लोगोंकोही अन्न-कष्ट भोगना पड़ा।

गुप्तजी जैसे सहृदय तथा उदार सज्जन ही आदर्श साहित्य रचना कर सकते हैं।
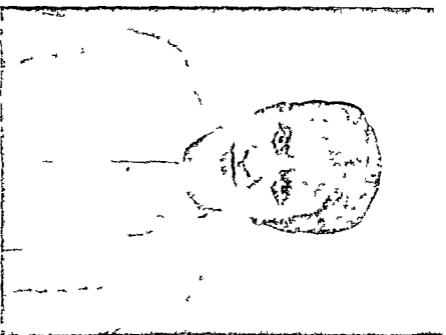
स्वर्गीय पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती

स्वर्गीय पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

३
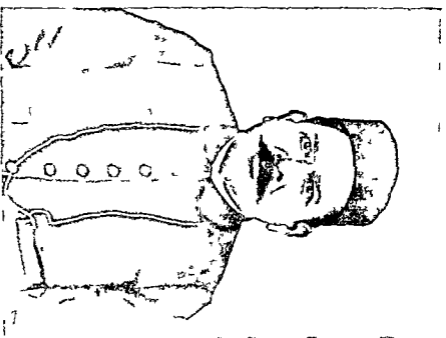
मित्रवर गुप्तजी

[स्वर्गीय प० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी]

हिन्दी-प्रेमियोंमे ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे जो स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तको न जानते हों। आप हिन्दी भाषाके एक अप्रतिम सुलेखक और समालोचक थे। आप सरल और चटकीली भाषा लिखनेमें अद्वितीय थे। आपकी कविताएँ सुन्दर और मर्मभेदी होती थीं। आप हिन्दी-भाषाकी उन्नतिके लिये सदा चेष्टा करते थे, पर शोक है कि कुटिलकालसे हिन्दीकी उन्नति देखी नहीं गई। भाद्रपद शुक्लैकादशी संवत् १९६४ को दिल्लीमे आपका स्वर्गवास हो गया।

'भारतमित्र' में आकर ही गुप्तजी प्रकट हुए। गुप्तजीने 'भारत-मित्र' की बहुत कुछ उन्नति की। इस विषयमें स्वयं 'भारतमित्र' लिखता है—"जिस समय गुप्तजीने 'भारतमित्र' को अपने हाथमे लिया, उस समय इसकी अवस्था शोचनीय थी। गुप्तजीने अपने अदम्य उत्साह, अपरिमेय साहस, अकथनीय उद्योग, अनमोल परिश्रम, अक्लान्त चेष्टा और अपूर्व तेजस्वितासे काम करके 'भारतमित्र' की वह उन्नति की जो उनसे पहले उसको प्राप्त नहीं हुई थी। उन्होंने 'भारतमित्र' का नाम किया और 'भारतमित्र' ने उनका।"

गुप्तजीका स्वभाव बड़ा सरल था। वह आडम्बर शून्य और सत्यप्रिय थे : सनातन धर्मके पक्के अनुयायी और धर्मभीरु थे। पुरानी चाल बहुत पसन्द करते थे। प्राचीन लोगोंके बड़े भक्त थे। उनकी निन्दा सह नहीं सकते थे। जो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये

चलनेका अनुरोध किया। बोले—"जाइये, मैं पीछे आऊँगा।" मैंने मलेपुर पहुँच, आनेके लिये फिर लिखा, तो उन्होंने जवाबमें लिख भेजा—

"कहाँका मलेपुर कहाँकी जमुई।
मैं तो आता नहीं आजा तुई।"

जमुई मलेपुरका रेलवे स्टेशन है।

गुप्तजी मित्रोंको अप्रसन्न करना नहीं जानते थे। जब कभी कोई मित्र अप्रसन्न हो जाय, तो वह तुरत उसके घर जा उसे मना लाते थे। एकबार वह योंही कई रोज़ तक मेरे घर नहीं आये। मैं भी उनसे न मिल सका। मैंने उन्हें बुलानेके विचारसे अपनी झूठी नाराजीका हाल कहला दिया। सुनते ही मेरे घर चले आये। मैं भी मुँह बनाकर बैठ गया। वह क्षमा-प्रार्थना करने लगे, तो मैंने हँसकर सारा भेद खोल दिया, फिर वह भी हँसने लगे।

काशीके भारत-जीवन प्रेससे 'अश्रुमती', और 'चित्तौड़-चातकी' नामकी दो पुस्तकें बँगलासे अनुवादित होकर निकलीं थीं। इनमें उदयपुरके राणाओं पर व्यर्थके मिथ्या आक्षेप थे, जिनसे सिसौदिया-कुल पर कलंक लगता था। गुप्तजीसे यह सहा न गया। उनकी लेखनी चल पड़ी। नतीजा यह हुआ कि 'भारत-जीवन'वालोंको दोनों पुस्तकोंकी सब प्रतियाँ गंगाजीके प्रबल प्रवाहमें समर्पित करनी पड़ीं।

गुप्तजी ब्रजभाषा और खड़ी बोली, दोनोंमें ही कविता करते थे और अच्छी करते थे, पर भक्त ब्रजभाषाके ही थे। वह सदा इसकी हिमायत किया करते थे।*

---

* 'विशाल भारत' अक्टूबर, १९२८ ई०।

४

गुप्तजीका शुभानुस्मरण

[स्वर्गीय बाबू गोपालरामजी गहमरी]

बाबू बालमुकुन्द गुप्त रोहतक-जिलेके गुड़ियानीके रहनेवाले अग्रवाल वैश्य थे। आप उर्दू-फारसीके अच्छे जानकार और आस्तिक हिन्दू थे। नई रोशनीवालोंकी धांधली पर बहुत चिढ़ते थे। पहले लाहौरसे निकलने वाले द्विदैनिक 'कोहेनूर' के सम्पादक थे। पीछेसे उसका उन्होंने दैनिक भी कर दिया था। लेकिन हिन्दी लिखनेकी रुचि उनको बहुत थी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जब वे हिन्दी-साहित्यमें आ गये, तब उन्होंने उर्दूमें लेख लिखना ही छोड़ दिया था* उर्दूमे 'कोहेनूर' का सम्पादन करते समय भी लखनऊके 'अवध-पञ्च' में 'मिस्टर हिन्दी' के नामसे वे बड़े चुटीले लेख लिखा करते थे। वे उर्दूके 'फिसाने-ए-आजाद' की खूब प्रशंसा करते थे। उसके लेखक पं० रतननाथ 'शरसार' की बड़ाईमें बात करते समय बहुत कुछ बतलाते थे। यह भी कहा करते थे कि हिन्दीमें ऐसे लेखक हों, तब बड़ा मजा आवे।

गुप्तजी हिन्दीकी दुनियामें जब आये, तब पहले-पहल कालाकाकरके दैनिक 'हिन्दोस्थान' के ही सम्पादक हुए। उससे पहले उन्होंने 'रत्नावली नाटिका' का भाषान्तर किया था।‡ कालाकाकरमें आनेपर

* किन्तु गुप्तजीकी डायरीसे यह सिद्ध है कि उर्दू-मासिक-पत्रोंके लिये वे समय-समयपर लेख लिखते रहते थे।—सम्पादक।

‡ रत्नावली नाटिकाका अनुवाद गुप्तजीने सन् १९९८ ई० में किया था। उस समय उनका सम्बन्ध 'हिन्दी-बंगवासी'से था।—सम्पादक

उनकी ओजस्विनी लेखनीका जौहर हिन्दीके पाठकोंका देखनेका अच्छा अवसर मिला।

जिस समय वे 'हिन्दोस्थान' के सम्पादक होकर आये, सम्पादन-विभागसे पंडित मदनमोहन मालवीय विदा हो रहे थे। राजा साहबसे स्नेह होनेके कारण मालवीयजी कभी-कभी कालाकांकर पधारते थे, लेकिन 'हिन्दोस्थान' का सम्पादन-कार्य बाबू बालमुकुन्द गुप्तके हाथमें जा चुका था। गुप्तजीके सम्पादकत्वमें 'हिन्दोस्थान' अच्छा चमका। राजा रामपाल सिंह भी उनके प्रभावशाली लेखोंसे बहुत प्रसन्न रहते थे।

गुप्तजी सम्पादकीय सिद्धान्तोंमें बड़े पक्के थे। किसीकी सिफारिससे किसीकी प्रशंसा करना या किसीकी निन्दा छापना उनके स्वभावमें नहीं था। वे कहा करते थे कि 'जिसको सरसों-भर बुद्धि है, उसका सरसों-भर तक अभिमान क्षन्तव्य है। लेकिन जो सरसों-भर बुद्धि लेकर मटर-भर घमण्ड रखता है, वह जब तक सर्वसाधारणमें अपना घमण्ड प्रकट न करे, तभी तक क्षमाके योग्य है। अगर उसने ऐसा घमण्ड सर्वसाधारणमें जाहिर किया, तो अपना परिचित होनेपर भी जरूर उसका प्रतिवाद करके मुखमर्दन करना चाहिये।'

गुप्तजी अच्छे अखबारनवीस थे। सम्पादकके कर्त्तव्य-पालनमें उनमें हमने कभी कचाई नहीं देखी। जब वे 'हिन्दोस्थान'के सम्पादक थे, उस समय वहाँ पंडित प्रतापनारायण मिश्र, चौबे राधारमण बी० ए०, चौबे गुलाबचन्द और मैं भी सहायकोंमें था। मिश्रजी अच्छे प्रभावशाली कवि थे। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके समकक्ष-कवियोंमें उनकी गणना थी। 'हिन्दोस्थान'में वे अक्सर कविता लिखा करते थे। 'तृप्यन्ताम्' नामकी एक कविता उन्होंने एक साल पितृपक्षमें वहीं लिखी थी। फसलपर गुप्तजी उनसे लेख भी लिया करते थे।

गुप्तजीको एक बार हमने व्यक्तिगत आक्षेपका लेख 'हिन्दोस्थान'में लिखते देखा था।* बात यह हुई कि साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास उन दिनों भागलपुरकी हाईस्कूलमें हेड पंडित थे। वहींसे उन्होंने 'पीयूष प्रवाह' नामका एक मासिकपत्र हिन्दीमें निकाला था। राजा रामपालसिंह सुधारकोंमें अग्रगण्य थे। हिन्दी-प्रचार, विधवा-विवाह और गो-रक्षा आदि विषयोंपर लेख 'हिन्दोस्थान'में बहुत छपा करते थे। गुप्तजीमें यह गुण था कि सुधारकोंकी उचित बातका विरोध कभी नहीं करते थे। 'पीयूष प्रवाह'में पंडित अम्बिकादत्त व्यासने 'काजीजी दुबले क्यों ?' नामका एक लेख छापा, जिसमें राजा रामपालसिंहपर यह आक्षेप था कि अत्रभवान् तो चाहते हैं कि सारा भारत इंग्लैंड हो जाय लेकिन जो आबादी दस-दस सालपर पाँच-पाँच करोड़ बढ़ रही है, उसीसे यहाँके लोगोंको दोनों जून भर-पेट खानेको नहीं मिलता और अब यदि अत्रभवान्के सिद्धान्तानुसार विधवा-विवाहका अण्डा फूटेगा, तो भारतकी मेदिनी और भूखों मरने लगेगी।

वह लेख राजा साहबके सामने आया। उन्होंने कहा कि कोई इसका मुँहतोड़ उत्तर नहीं दे सकता। गुप्तजीने उसी दम कहा—कल मैं इसका उत्तर 'हिन्दोस्थान'में निकाल दूँगा।

उसी अवसरपर गुप्तजीने 'हिन्दोस्थान'में एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था—'मैं सुकवि हूँ'। पंडित अम्बिकादत्तजी व्यास अपनी कवितामें अपना उपनाम 'सुकवि' लिखा करते थे। उस लेखमें सुकविजी की खूब खबर ली गई थी। कालाकांकरसे स्वतंत्र स्वभावके कारण गुप्तजीकी नौकरी छूटी थी।

---

* सम्भवतः इस कथनमें कुछ भ्रम है। गुप्तजीके कटाक्षोंकी सीमा साहित्यिक व्यक्तित्व तक ही सीमित थी।—सम्पादक।

राजा साहबसे उनका साधारण-सा व्यवहार था। उनका मन वहाँ नहीं लगता था। वे वैष्णव थे। रोज स्नान करके माथेपर श्री लगाते थे। आचरणके बड़े शुद्ध और सात्त्विक थे। जो आदमी खान-पानमें अखाद्य-भाजी होता, उससे उनकी नहीं पटती थी। नहीं पटनेका केवल इतना ही मतलब कि हृदयका मिलान न होता था। राजा साहब खान-पानमें बड़े स्वतंत्र थे। वे अपने खाने-पीनेके मामलेमें स्वास्थ्य या भारतीय रिवाजकी कुछ भी परवा नहीं करते थे। इस कारण राजा साहबके यहाँ बिना बुलाये वे कभी नहीं जाते थे। जब बुलानेपर जाते, तब जितना समय वहाँ बारादरीमें उनका बीतता, उसको वे भार समझते थे—बल्कि कहा करते थे कि वह समय किसी अर्थमें नहीं लगा।

गुप्तजी समय-समयपर साधारण बातचीतमें भी दिल्लगी किया करते थे। एक बार अपने मकान गुड़ियानी (ज़िला रोहतक) से लौटकर सिराथू स्टेशन होते हुए जब धूपके दिनोंमें कालाकांकर पहुँचे, मैंने राजा रामपालसिंहके नये प्राइवेट सेक्रेटरी ठाकुर रामप्रसादसिंहको उनसे मिलाकर परिचय कराया। उस अवसरपर मैंने कहा—"भाई साहब, यह बाबू साहब छत्री हैं।" उन्होंने तुरन्त जवाब दिया—"तब तो आज रास्तेमें साथ होते, तो मेरी बड़ी रक्षा करते।" वहाँ कालाकांकरके पोस्ट-मास्टर, नगरके एक महाजन और एक मुसलमान तालुकेदार बैठे थे। सबमें ठहाका पड़ गया।

बाबू बालमुकुन्दमें हाज़िर-जवाबी खूब थी, लेकिन कभी-कभी लिहाजमें आकर रुक जाते थे। समाचार-पत्रोंमें निर्भीक होकर लिखते थे, तो भी सामने बात करनेमें कभी-कभी संकोच कर जाते थे। एकबार कालाकांकरमें एक मुसलमान भाई मछली खाकर डकारते हुए हमलोगोंकी

मण्डलीमें आकर बैठे। बैठते ही एक और डकार लेकर उन्होंने कहा—"आज तो भाई आप लोगोंका एक अवतार खाकर आये हैं।"

बाबू बालमुकुन्दने जवाब देनेके लिये मुँह खोला, लेकिन संकोचसे रुक गये। प० प्रतापनारायणजीने चट उत्तरमें कहा—"क्यों वराह तो नहीं मिल गया था?" सब लोग ठठाकर हँस पड़े।

बाबू बालमुकुन्दने मुसलमान भाईके चले जानेपर पं० प्रतापनारायण से कहा—"आप तो पण्डितजी कभी-कभी बड़ी बेतुकी कह देते हैं।" पंडितजीने कहा—"नहीं, बालमुकुन्द, जैसा मुँह वैसा थपेड़ देनेसे तुम चाहे रुक जाओ, ईजानिबका इतना लिहाज़ करनेका मुहावरा नहीं है। खुदा दारम चे ग़म दारम।"

पं० प्रतापनारायण मिश्र गुप्तजीको बेलमकन्द (बालमुकुन्दका अंग्रेजी उच्चारण) कहा करते थे और 'खुदा दारम चे ग़म दारम' तो उनकी तकिया-सखुन थी।

श्रद्धेय गुप्तजीने कई समाचार-पत्रों और हिन्दी-लेखकोंके नाम भी बेढंगे तौरसे बदल कर रखे थे।

साफ कहनेमें वह "शत्रोरपिगुणावाच्या दोषावाच्या गुरोरपि" का मोटो सामने रखा करते थे।

जो आचरण स्वयं न करके पर उपदेशमें ही कुशल थे, ऐसे वक्ताओंसे बहुत चिढ़ते थे। सादगी बहुत पसन्द करते थे। बड़े आस्तिक, बड़े मिलनसार, बड़े सुहृद्, बड़े उपकारी तथा सच्चे हिन्दी-सेवक थे।

लेख स्वयं लिखनेके बजाय डिक्टेट कराना अधिक पसन्द करते थे। अंगरेजी अखबारोंको देखकर उनका स्वाद ले लेनेकी योग्यता उनमें काफी थी। किसी दूसरी भाषासे हिन्दीमें लेकर कुछ बात लिखते थे, तो केवल फैक्ट लेकर अपनी ओरसे मौलिककी तरह लिखा करते थे। किसीकी लकुटिया लेकर टेकते चलना अर्थात् शब्दानुवाद करना उनको

नहीं भाता था। विलायती रहन-सहन और सभ्यताको बिलकुल नापसन्द करते थे। आर्य्य-समाजमें घास-पार्टी और मांस-पार्टी उस समय हुई थी, जब जोधपुर-महाराजाने विज्ञापन देकर वेदोंसे मांसाहार सिद्ध करनेका प्रयास किया था। पंडित भीमसेन शर्माने बड़े निःशङ्क भावसे उस कार्यका विरोध किया और पंडित भास्करानन्द सरस्वती (काशीके प्रसिद्ध महात्मा भास्करानन्द नहीं) ने वेदोंसे मांसाहार विधेय बतलानेका बीड़ा उठाया था। उस समय गुप्तजीने कहा कि आर्य्य-समाज अब पतनोन्मुख हुआ है। आर्य-सिद्धान्तका युग समाप्त करके जब पंडित भीमसेन शर्माने 'ब्राह्मण सर्वस्व' का मार्गावलम्बन किया, तब गुप्तजीने लिखा था कि पंडितजीने अच्छा किया कि सवेरेके भूले हुए सन्ध्याको घर आ गये। लेकिन इस तरह उजरत पर सिद्धान्त बदलना वज़न नहीं रखता।

गुप्तजी अंगरेजी-बँगला दोनोंके अखबार पढ़ा करते थे, लेकिन उर्दूके अखबारोंको बड़े चावसे पढ़ते थे। 'कोहेनूर', 'शमशुल अखबार', अमृत-सरका, 'सद्धर्म-प्रचारक' केवल उनकी लतरानियोंका जवाब देनेके लिये पढ़ा करते थे। 'पायनियर', 'मार्निङ्ग पोस्ट' और 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' में खबरें न पढ़कर अग्रलेख और स्फुट सम्मतियोंको बड़े ध्यानसे पढ़कर उनका उत्तर 'हिन्दोस्थान' में और कलकत्तेके प्रवास-कालमें 'भारतमित्र' में दिया करते थे। लखनऊके बाबू गङ्गाप्रसाद वर्मा द्वारा सम्पादित उर्दूका साप्ताहिक 'हिन्दुस्तानी' बड़ी श्रद्धासे पढ़ा करते थे।

जब गुप्तजी हिन्दी बङ्गवासीसे अलग हुए कलकत्तेके सदुद्योगी बाबू जगन्नाथदासने उसी समय 'भारतमित्र' का सम्पादन-भार गुप्तजीको सौंपना चाहा। लेकिन गुप्तजीने इस तरह एक हिन्दी सप्ताहिकको छोड़कर दूसरेको हाथमें लेना अपनी मार्यादाके बाहर

समझकर अनुचित वतलाया और कहा कि घर जाते हैं, वहाँसे आपकी बुलाहट होगी, तो आ जायँगे। वही बात हुई। घर पहुँचते ही गुप्तजीको, भारतमित्र'के मालिकोंकी बुलाहट गई। गुप्तजी 'भारतमित्र' का सम्पादन-भार लेकर फिर कलकत्ते लौटे।

गुप्तजीने 'भारतमित्र' को ऐसा उन्नत और लोकप्रिय किया, जैसा वह अपनी चालीस वर्षकी ज़िन्दगीमें कभी नहीं हुआ था। उनके 'भारतमित्र'में आनेसे पहले पंडित रुद्रदत्त शर्मा 'भारतमित्र'के सम्पादक थे। उनके लेखोंसे 'भारतमित्र'के सनातन धर्मी पाठक बहुत घट गये थे। गुप्तजीकी निर्भीक और निष्पक्ष लेखनीसे सब प्रसन्न हो गये और 'भारतमित्र'का प्रचार खूब बढ़ा। गुप्तजी हमारे ऊपर बड़ी कृपा रखते थे। वे अपने पुत्र नवलकिशोरकी शादीमें जब घर गये, तब 'भारतमित्र'का सम्पादन-भार कुछ महीनोंके लिये हमको ही देकर गये थे। हमारे ऊपर उनका जैसा स्नेह था, वैसा ही विश्वास भी करते थे।

गुप्तजी हँसोड़ इतने थे कि बात-बातमें दिल्लगी किया करते थे। वे उर्दू लिखावटकी बड़ी खिल्ली उड़ाया करते थे। जब 'अभ्युदय' निकला तब उन्होंने कहा था कि उर्दूमें वह लिखा जाय, तो 'ओबेहूदे' पढ़ा जायगा। उन दिनों 'भारतमित्र' आफिसमें अच्छे-अच्छे सुलेखकोंका जमाव होता था। 'उचितवक्ता'के सम्पादक पंडित दुर्गाप्रसादजी मिश्र सारस्वत हिन्दी लेखकोंके सिरताज तथा सबके श्रद्धाभाजन थे, वे भी वहाँ पधारकर दो घड़ीकी मौज दे देते थे। गुप्तजीमें और पंडित जगन्नाथ-प्रसाद चतुर्वेदीजीमें बड़ी आवाज़कशी होती थी। चतुर्वेदीजी हास्य-परिहासके प्रेमी थे। गुप्तजी भी उसी भाँति परिहास-प्रिय थे।

गुप्तजी कभी-कभी ऐसी गहरी दिल्लगी करते थे कि आसानीसे उसका मतलब समझमें नहीं आता था। तब उनको स्पष्ट कहकर समझाना पड़ता था। हमसे कई बार ऐसा हुआ था। गुप्तजी होलीमें

दिल खोलकर अखबारोंसे दिल्लगी करते थे और दशहरेके अवसरपर भी 'टेसू' लिखकर खिल्ली उड़ाया करते थे। उनके पहले किसीने कभी हिन्दी पत्रोंमें टेसूपर दिल्लगी नहीं की थी। दशहरा और होलीके समय वे समालोचना भी बड़ी बेढब लिखते थे।

गुप्तजीकी दिल्लगी व्यक्तिगत होकर भी ऐसी श्लेषभरी होती थी कि व्यक्तिगत नहीं रहती थी। जिसके ऊपर बोली बोलते और जिसका मज़ाक करते, वह भी हँसने लगता था। वस्तुतः दिल्लगीका अर्थ यही है कि जिससे दिल्लगी की जाय, उसको भी हँसी आवे। ऐसी दिल्लगी—जिससे हँसनेके स्थानमें रुलाई आवे या अदालतमें मानहानिकी नौबत पहुँचे, दिल्लगी काहे की, वह तो राह चलते भले मानसकी पगड़ी उतारनेके समान होती है।

गुप्तजीकी लेखनीमें बड़ा बल था। जिस विषयको लेते थे, उसको जिस तेज़ीसे आरम्भ करते थे, अन्त तक उसी ओजसे ले जाते थे। कलकत्तेके ठाकुर-घरानेकी धनी, शिक्षित और शिष्टजनोंमें बड़ी मान-मर्यादा है। एक माननीय ठाकुरने 'अश्रुमती' नामका एक नाटक लिखा था, जिसमें राजपूत महिलाओंके सम्मानपर गर्हित आक्षेप था। उसका अनुवाद भारतजीवनके बाबू रामकृष्ण वर्माने छापा। उसको देखकर गुप्तजी बहुत बिगड़े और उसकी बड़ी कड़ी आलोचना की। अन्तमें बाबू रामकृष्ण वर्माको उस पुस्तकका गङ्गा-प्रवाह करके प्रायश्चित्त करना पड़ा। ऐसी घटना हिन्दी-साहित्यमें इसके सिवा कभी सुननेमें नहीं आई। भूल सबसे होती है, लेकिन भूल कबूल करके प्रायश्चित्त करना बहुत बड़े हृदयका काम है। और वस्तुतः भूलका दण्ड भी यही है कि भूल कबूल कर ली जाय। बाबू रामकृष्ण वर्माने उस भूलको कबूल करके उचित सफाई दी थी।

जो नेता लोग दिखौआ ठाठ रखते और नाम पैदा करनेके लोभमें ही देशहितके कार्योंकी ओर मन नहीं देते थे, उनपर आप अपने पत्रमें समय-समयपर चुटकी लिया करते थे। धर्मके नामपर ढोंग करनेवालोंकी चाल वे खूब समझते थे और उनपर दशहरे और होलीके अवसरपर गद्य और पद्यमें व्यङ्ग्य लिखा करते थे।

गुप्तजी हरियानेके रहनेवाले थे। वहांकी गायोंकी दुर्दशा देखकर वे दुःखके साथ कहा करते थे कि हम अपने कल्याणका कुछ भी ध्यान रखते, तो मैया-रूपिणी गैया इस तरह दीन दशामें दिन न बिताती।

अफसोस ! गुप्तजी बहुत जल्दी अकालमें ही संसारसे उठ गये ! *

* 'बिहारबन्धु' और 'सरस्वती' से सङ्कलित।

५

सहकारीका अनुभव

[स्वर्गीय बाबू महावीरप्रसादजी गहमरी]

गुप्तजीके देहावसानके ४ वर्ष बाद मैंने 'बिहारबन्धु'में उनके सम्बन्धकी कुछ बातें लिखीं थीं, परन्तु मेरे जैसे घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेवालेके लिये वे काफी नहीं समझी जा सकतीं, इससे आज मुझे अपने लेखमें (पुनः) कुछ लिखनेकी इच्छा हुई है।

गुप्तजी हिन्दी-भाषाके जबरदस्त सुधारक थे और इसके अधिकारी भी थे। एक तो दिल्ली-प्रान्तके रहनेवाले, दूसरे उर्दूके विद्वान्, तीसरे 'अवधपंच'—जैसे अखबारके लेखक। हिन्दी भाषा पर उनका अधिकार न होता तो और किसका होता? इस अधिकार और योग्यतासे उन्होंने हिन्दीको बहुत लाभ पहुँचाया। शब्दोंकी लिखावटमें बहुत कुछ आगे 'ने' चिन्ह नहीं लगाया जाता था। मुझे जहांतक याद आता है, जनना और जाननाकी भूतकालिक क्रियामें कर्त्ताके आगे 'ने' चिन्ह लगाना गुप्तजीने शुरू किया और तबसे यह रिवाज चल पड़ा। गुप्तजी-के समयमें 'भारतमित्र' में व्याकरण या मुहावरेकी कोई भूल हो जाना लेखकोंके लिये बड़े आश्चर्यकी बात होती थी। 'भारतमित्र' में एकबार 'चालचलन' स्त्रीलिङ्गमें छप गया था। इस पर पंडित अयोध्यासिंह उपाध्यायने आश्चर्य प्रकट किया कि 'भारतमित्र' में ऐसा कैसे छपा? गुप्तजीने उत्तर दिया कि सभी चीजें सम्पादककी लिखी नहीं रहतीं और सबका प्रूफ सदा सम्पादक ही नहीं देखता और न देख सकता है, इससे कभी एक-आध ऐसी भूल हो जाना असंभव नहीं है। वस्तुतः उनके न

जाननेमें यह ग़लती इन पंक्तियोंके लेखकसे हुई थी। फिर भी गुप्तजी हमेशा सावधान रहते थे कि 'भारतमित्र' में व्याकरणकी अशुद्धि न होने पावे।

बालमुकुन्दजी गुप्त 'भारतमित्र' में आनेसे पहले हिन्दी-संसारमें एक प्रकारसे गुप्त ही थे। यद्यपि महामना पं० मदनमोहन मालवीयके सम्पादन-कालमें 'हिन्दोस्थान' पर मालवीयजीके नामके नीचे यह छपता था कि 'जिनके (मालवीयजीके) स्थानमें बाबू बालमुकुन्द गुप्त काम करते हैं;' तथापि उनकी उतनी प्रसिद्धि नहीं हुई थी। सन् १८९९ ई० में 'भारतमित्र' का भार मिलने पर उन्होंने भाषाकी एकता सम्पादित की, फालतू अक्षरोंको निकाला और व्याकरण पर तो पूरा ध्यान रक्खा। इसके लिये वे नामी-नामी लिक्खाड़ोंसे भिड गये। फलस्वरूप दोनों पक्षोंमें ऐसा विवाद चला कि कटुता आ गई। गुप्तजी यह सब बरदाश्त कर सकते थे। हिन्दीकी उस पहरेदारीसे ही गुप्तजीको हिन्दी-अख़बारोंकी सेवा करनेका सुअवसर प्राप्त हुआ। और इसीसे हिन्दी-लेखकोंमे उनका नाम हुआ तथा उनकी धाक जमी। उनके पीछे वैसी धाक हिन्दीमें और किसीकी नहीं जमी,—नहीं जमी। गुप्तजीके समयमे और उनसे पहले कितने ही नामी-नामी लेखक 'करैंगे' 'आवैंगे' आदि लिखते थे। गुप्तजीके चुटकी लेनेपर वे 'करेंगे,' 'आवेंगे' आदि लिखने लगे। उन दिनों लोग मुकद्दमा, दल्लाल, बज़्ज़ाज, खरीददार लिखते थे। जनना और जानना उन सात सकर्मक क्रियाओंमेंसे थीं, जिनके भूतकालमे दूसरी सकर्मक क्रियाओंके समान कर्त्ताने स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जौहर दिखानेका अवसर पाया। उन्होंने अपने लेखोंके बलसे 'भारतमित्र' को खूब ही चमकाया। हिन्दीके नामी-नामी लेखक 'भारतमित्र' मे लिखनेमे अपनी शोभा समझने लगे। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० श्रीधर पाठक, प० गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री, मिश्रबन्धु,

डा० महेन्द्रलाल गर्ग-जैसे सुप्रसिद्ध लेखकों और कवियोंके लेख और कविताएँ उसमें छपने लगीं। उस समय 'भारतमित्र' के पाठक भी समझदार श्रेणीके थे। इसका पता एकही बातसे लग सकता है। एक विज्ञापनदाताने (ठीक याद नहीं आता दवाका या घड़ीका) कुछ दिन 'भारतमित्र' में और कलकत्तेके एक दूसरे हिन्दी अखबारमें अपना भड़कीला विज्ञापन छपवाया। बादको 'भारतमित्र' में तो उसका छपवाना बन्द कर दिया गया, मगर दूसरे अखबारमें वह जारी रहा। चर्चा चली, तो उसने इसका कारण बतलाया कि 'भारतमित्र' के द्वारा बहुत कम आर्डर आये और दूसरे अखबारसे ज्यादा आये। इसके कारणमें उसको कबूल करना पड़ा कि 'भारतमित्र' के पाठक अधिक समझदार जान पड़ते हैं। वे विज्ञापनकी लच्छेदार बातोंमें जल्द फँसनेवाले नहीं मालूम होते।

गुप्तजीने 'भारतमित्र' को शोचनीय दशासे उबारकर उन्नत किया था। उनको 'भारतमित्र' के मालिक श्री जगन्नाथ दासने जिस समय बड़े आग्रहके साथ बुलाया, उस समय उस पत्रके ग्राहक बहुत थोड़े थे, जगन्नाथदासजी खर्च देते-देते आजिस से हो रहे थे। वे चाहते थे कि कोई 'भारतमित्र' को अपने पैरोंपर खड़ा कर दे। जगन्नाथदासजी 'भारतमित्र' से धन नहीं कमाना चाहते थे। ईश्वरकी कृपासे उनका रोज़गार खूब चलता था। उन्होंने 'भारतमित्र' को बन्द होनेसे बचानेके लिये अपने हाथमें लिया था और इस मनसूबेके साथ कि ज़रूरत पड़ने पर मैं खुद सम्पादन करूँगा, कम्पोज़ करूँगा और छाप भी लूँगा। और उस समय वे ऐसा करनेमें समर्थ भी थे, क्योंकि धुनके पक्के थे और जिस काममें हाथ लगाते थे, उसको कर गुज़रते थे। परन्तु उनका रोज़गार तथा दूसरे काम इतने अधिक थे कि 'भारतमित्र' की ओर पूरा ध्यान देना उनके लिये असम्भव था। इससे वे किसी मनस्वी पुरुषको

ढूढ़ते थे। बाबू बालमुकुन्दजीको पाकर उनको 'भारतमित्र' का सारा भार सौंप दिया। बालमुकुन्दजीने क़िफ़ायतसे काम लेकर और सम्पादक तथा मैनेजरका अधिकांश काम स्वयं करके 'भारतमित्र' को न केवल अपने पैरोंपर खड़ा कर दिया, बल्कि हिन्दी-संसारमें उसको एक मशहूर अखबार बना दिया।

गुप्तजी मित्रता और कृतज्ञताको सदा स्मरण रखते और उसके लिये स्वयं हानि तथा कष्ट उठानेसे भी विचलित नहीं होते थे। पंडित दीनदयालु शर्माकी मित्रताके कारण उन्होंने 'हिन्दी बंगवासी' की नौकरी बेधड़क छोड़ दी! इसके तीन या चार वर्ष बाद जब 'भारतमित्र, की दशा सुधर रही थी, पंडित अमृतलालजी चक्रवर्तीका 'हिन्दीबंगवासी' से सम्बन्ध विच्छेद हो गया। चक्रवर्तीजी आर्थिक कठिनाईमें पड़कर गुप्तजीके यहाँ आये। 'भारतमित्र' में अधिक आदमीकी गुञ्जायश न रहने पर गुप्तजीने उनको रख लिया। एक तो उनका खर्च बढ़ गया, दूसरे उन्हीं दिनों 'भारतमित्र' के ग्राहकोंको १) में समूचा हिन्दी भागवत उपहार देनेकी योजना की गई थी। एक हजार पृष्ठसे ऊपर (ठीक पृष्ठ-संख्या याद नहीं) का भागवत सिर्फ १) में देनेका बीड़ा उठाया गया था। इतने सस्ते दाममें इतनी बड़ी पुस्तक देना सहज नहीं था। इस दोहरे खर्चके बढ़ जानेसे 'भारतमित्र' के सामने धुंध-सी छाने लगी। पूरा भागवत एकबार देना असम्भव जानकर दो बारमें उसे ग्राहकोंको पहुँचाया। बहुत कठिनाई आ पड़ने पर भी गुप्तजीने ग्राहकोंके प्रति की हुई प्रतिज्ञा-को पूरा किया। भागवतका पूरा उपहार दिया और साथ ही चक्रवर्ती-जीको तबतक अपने यहाँ रक्खा, जबतक चक्रवर्तीजी स्वयं इस कठिनाईका अनुभव कर 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' में न चले गये।

गुप्तजीमें तेजस्विता थी। वे खुशामद करना या खुशामद कराना नहीं जानते थे। इसका एक उदाहरण यहाँ देता हूँ :—

पूज्य भाई गोपालरामजीने किसी जासूसी उपन्यासका बँगलासे, बंगाली लेखकसे बिना अनुमति लिये हिन्दीमें अनुवाद किया था। उक्त लेखकसे परिचय करनेके लिये उन्होंने अनुवादित पुस्तककी प्रति उनके पास भेजी। इसपर बंगाली लेखकने भाई साहबको वकीलका नोटिस दिया कि आपने बिना पूछे अनुवाद कर लिया, कुछ दीजिये; नहीं तो अदालती कार्रवाई की जायगी। भाई साहबने गुप्तजीको लिख भेजा। गुप्तजी बंगाली लेखकके पास गये, जो एक नामी अखबारके सहकारी सम्पादक थे। गुप्तजीने उनसे कहा—"आपने यह क्या नोटिस भेजा है? बिना पूछे अनुवाद कर लिया, तो आपका क्या बड़ा नुकसान कर दिया? हिन्दीमें पढ़नेवाले ही कितने हैं, जो आपको भी कुछ दिया जाय? किसी तरह काम चलाया जाता है। आप-जैसे लोग इस तरह हिन्दी लेखकोंको धमकाकर क्या लेंगे? आपने भी तो अनुवाद ही किया है? (शायद उस पुस्तकका अंगरेजीसे बँगलामें अनुवाद हुआ था)।" उक्त लेखक और उनके प्रधान गुप्तजीका धड़ल्लेका उत्तर सुनकर हक्का-बक्का-से रह गये। प्रधान सम्पादकने कहा कि कुछ तय कर लीजिये। गुप्तजीने जवाब दिया, यहाँ रक्खा ही क्या है कि तय कर लें! यह कह कर गुप्तजी चले आये। फिर तो नोटिस कहाँ गया, मालूम नहीं। अदालती कार्रवाई करनेमें बंगाली लेखक महाशय चुप्पी ही मार गये! एक बार लखनऊके मशहूर पत्रकार मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा उनसे मिलने आये और कहा कि आप तो बड़े धड़ल्लेके साथ लिखते हैं।

गुप्तजीका मसखरापन और हाज़िर-जवाबी तो मशहूर ही हैं। एक दिन आपने मुझे भी झेंपा दिया। पूछा सेठ खेमराजजी ('श्रीवेंकटेश्वर' के स्वर्गवासी मालिक) का चेहरा कैसा है? गोरा है? मैंने कहा—उतना गोरा तो नहीं। उन्होंने पूछा—आपके-ऐसा? मैंने कहा—हो सकता है। दम-भरमें गुप्तजीने चुटकी ली—अच्छा, तो आप भी अपनेको गोरा समझते हैं? मैं सिटपिटा गया।

गुप्तजीका एक नौकर दूधमेंसे मलाई निकालकर चुपकेसे खा जाता था और पूछनेपर कहता था कि मलाई बहुत कम पड़ती है! एक दिन गुप्तजीने उसे मलाई निकालते पकड़ लिया। उन्होंने उसको डाँटनेके बदले सब मलाई खिला दी और दूध भी पिला दिया। गुप्तजीके निर्लोभपन, सरलता, निष्कपटता, स्पष्टवादिता, उदारता, सादगी, संयम आदि गुणोंके सम्बन्धमें भी कितनी ही बातें याद आ रही हैं, परन्तु इन सबके उल्लेखसे लेख बहुत बढ़ जायगा, इसलिये अब यहीं समाप्त करता हूँ। *

६

कतिपय अनुकरणीय गुण

[*स्वर्गीय बाबू यशोदानन्दनजी अखौरी*]

परलोकवासी बाबू केशवचन्द्र सेनने एक जगह लिखा है कि प्रत्येक मनुष्यका जीवन ही एक प्रकारका खासा वेद है। वेदका प्रयोजन प्रत्येक व्यक्तिको ज्ञानोपदेश देना है। मनुष्यकी जीवन-चर्याओंसे भी ज्ञानोपदेशका प्रयोजन सिद्ध होता है, इससे सेन महोदयके उक्त कथनमें कोई अनौचित्य नहीं। अदनासे अदना मनुष्य क्यों न हो, पर उसकी जीवनचर्यासे कुछ-न-कुछ उपदेश मिलता ही है। तब किसी उच्चपदस्थ अथवा दायित्वपूर्ण कार्यके प्रतिपादक और संचालक व्यक्तियोंकी जीवन-चर्यासे बहुत-सी बातोंकी शिक्षा मिलना आश्चर्यजनक नहीं है। इसी सिद्धान्तको सामने रखकर हम आज स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तके कतिपय गुणोंका दिग्दर्शन करेंगे।

* 'भारत' (प्रयाग), ७ और १० जुलाई, १९३१ ई०।

हमें जहाँ तक पता है, बाबू बालमुकुन्द गुप्त पहले-पहल कलकत्तेमें यहाँके 'हिन्दी बंगवासी' नामक साप्ताहिक पत्रके सहकारी-सम्पादक हो कर आये थे। उस समय 'हिन्दी-बंगवासी' ही एक ऐसा पत्र था, जिसकी पहुँच और प्रतिष्ठा हिन्दी-भाषी प्रान्तों और व्यक्तियोंमें यथेष्ट रूपसे थी। पण्डित प्रभुदयाल पांडे इसके प्रधान सम्पादक थे, और पंडित *अमृतलाल चक्रवर्ती और बाबू बालमुकुन्द गुप्त उनके सहकारी* थे *। दैवयोगसे हिन्दीके धुरन्धर विद्वानोंकी जोड़ी ही नहीं, बल्कि तिकड़ी जुटी थी। तीनोंकी विद्वत्ता, तीनोंकी बुद्धिमत्ता और तीनोंकी लेखन-शक्ति त्रिवेणीकी तरह साथ होकर प्रवाहित होती हुई हिन्दी-संसारको ज्ञान-वारिसे प्लावित कर रही थी।

'हिन्दी बंगवासी' छोड़नेके समय गुप्तजी कलकत्तेमें विशेष प्रसिद्ध और सर्वपरिचित नहीं थे। यहाँके लिये बिलकुल नये थे। कलकत्ते-जैसे नगरमें एक अपरिचित और नये व्यक्तिके लिये एकाएक लगी नौकरी पर लात मारना कोई हँसी-खेल नहीं था, किन्तु गुप्तजीने इसकी कोई परवा न की। हमने यह भी सुना था कि पण्डित दीनदयालुजीने 'हिन्दी बंगवासी' से अलग होनेमें उन्हें मना भी किया था, किन्तु गुप्तजीने यह कहकर उन्हें समझा दिया कि मैं सब कष्ट सह लूँगा, आप इसकी चिन्ता न करें। गुप्तजीका यह त्याग अनुकरणीय था।

गुप्तजी विश्वम्भर भगवानके अवलम्बन पर 'हिन्दी बंगवासी' से अलग हुए, पर भगवानने इस धार्मिक दृढ़ताका फल उन्हें हाथों हाथ दिया। 'हिन्दी बंगवासी' से निकलते ही वे 'भारतमित्र' के प्रसिद्ध सम्पादक बनाये गये। उस समय 'भारतमित्र' कोई प्रधान पत्र न था।

* यहाँ श्री० अघोरीजीको भ्रम हुआ है। 'हिन्दी बंगवासी' के जन्मदाता—सम्पादक पण्डित अमृतलालजी चक्रवर्ती थे। पांडेजी और गुप्तजी दोनों ही उनके सहकारी होकर आये थे—सम्पादक।

केवल साप्ताहिक निकलता था, और सो भी साधारण और नगण्य रूपमे ही। गुप्तजीके आते ही धर्म-भवनको लेकर 'हिन्दी बंगवासी' के साथ इसकी चखचख शुरू होगई। उधर पण्डित प्रभुदयाल पाडे और पण्डित अमृतलाल चक्रवर्ती थे, और इधर केवल गुप्तजी। दोनों ओरसे लेखोंके दनादन वार होने लगे। इतना होने पर भी न तो गुप्तजीने कभी पाडेजी और चक्रवर्तीजीके व्यक्तित्व पर एक शब्द कहा और न उन्हीं लोगोंने इनके व्यक्तित्व पर आक्रमण किया। धीर गम्भीर योद्धाकी तरह दोनों ओरसे लक्ष्य पर ही चोट की जाती थी। गुप्तजी पांडेजीको बडे प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखते थे। चक्रवर्तीजीके साथ भी उनका सदा ऐसा ही सद्व्यवहार रहा। पाडेजीके सम्बन्धमें गुप्तजीके हार्दिक भावका प्रमाण इतनेसे ही मिल सकता है कि कई वर्ष बाद जब पांडेजी-का परलोकवास हो गया, तब गुप्तजीने 'भारतमित्र' मे बडी ही मार्मिक समवेदनाके साथ विषाद प्रकट किया था। गुप्तजीकी जीवनीसे दूसरा उपदेश हमलोगोंको यह मिलता है कि सार्वजनिक झगडेमें किसी सम्पादकको अपने सहयोगी सम्पादकके साथ व्यक्तिगत रूपसे ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये, जिसमे परस्परकी मैत्रीमे बट्टा न लगे। जहाँ लोग आज-कल सार्वजनिक विषयोंकी लिखा-पढी और झगड़ेके मौकेपर परस्पर व्यक्तित्व पर आक्रमण करनेसे बाज़ नहीं आते, वहाँ गुप्तजीकी उस सुहृता और हृदयकी शुद्धता हमलोगोके लिये निस्सन्देह सराहनीय और अनुकरणीय है।

जिस समय गुप्तजी 'भारतमित्र' में आये, उस समय बडाबाजारको हिन्दी-भाषी-जनतामे और विशेषकर यहाँके मारवाडी-समाजमें वैसी जागृति और प्रगतिका एक प्रकारसे अभाव था। न तो कोई जोरदार पत्र था, और न कोई समझदार पथ-प्रदर्शक। पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्रका 'उचितवक्ता' बन्द हो चुका था, और पण्डितजी एक प्रकारसे

कार्यक्षेत्रसे विरत हो चुके थे। 'हिन्दी-बंगवासी' की तरफ बड़ाबाजार वालोंका न तो झुकाव था और न उसीमें इधर झुकनेकी प्रवृत्ति थी, वह तो अपने बाहरी ग्राहकोंकी सन्तुष्टिमें ही मस्त था। रहा, केवल 'भारत-मित्र,' सो वह भी समझदार और योग्य-सम्पादकके अभावसे बिल्कुल निर्बल और नगण्य हो रहा था। गुप्तजीके आते ही उनकी लेखन-शक्तिकी बदौलत 'भारतमित्र' में जान आगई। देखते-देखते उसका रंग पलट गया। बड़ाबाजारका वह प्रमुख पत्र हो गया। यहाँकी हिन्दी जनताने खासकर खत्री और मारवाड़ी-समाजने—इसे अपनाया, और इसने भी उनका पथ-प्रदर्शन करना प्रारम्भ किया। गुप्तजीके साहचर्यसे पण्डित दीनदयालुजी शर्माके सत्परामर्शका स्वाद भी यहाँ वालोंको मिलने लगा। जहाँ पहले शायद एक भी सार्वजनिक संस्था न थी, वहाँ अनेक सँस्थाएँ स्थापित हुईं। मारवाड़ी एसोसियेशन, श्रीविशुद्धा नन्द-सरस्वती-विद्यालय, बड़ावाजार-लाइब्रेरी, पिंजरापोल* आदि कई संस्थाओंका जन्म हुआ। धीरे-धीरे बड़ा-बाजारकी हिन्दी-भाषी जनतामें जागृति, स्फूर्ति और प्रगतिके चिन्ह दिखाई देने लगे। थोड़े ही दिनोंमें बड़ाबाजार साहित्यिक और अन्यान्य क्षेत्रोंकी उन्नतिकी दृष्टिसे और-का और हो गया। जहाँ पहले हमारे बंगाली भाई इन्हें 'मेड़ो, खोट्टा' आदि कहकर उनकी खिल्ली उड़ाते थे, वहाँ वे ही अब इनकी नव-स्थापित संस्थाओंमें सहर्ष सहायता पहुँचाने लगे। इस उन्नतिका अधिकांश श्रेय यदि हम परलोकवासी गुप्तजीको दें, तो कोई अनुचित बात न होगी। इसलिये मारवाड़ी-समाजके सुधारके इतिहासमें गुप्तजी का नाम स्वर्णाक्षरोंसे लिखे जाने योग्य है। हमारी तो यहाँतक धारणा हैकि कलकत्तेके मारवाड़ी-समाजकी इन सामाजिक संस्थाओंके अनुकर-णीय आदर्श पर ही अन्यत्रकी संस्थाएँ खड़ी होती गईं। यदि बाहरकी

* कलकत्ता पिंजरापोलकी स्थापना पहले होचुकी थी। —सम्पादक।

इन संस्थाओंके इतिहासकी छान-बीनकी जाय, तो पता चलेगा कि उनमेंसे अनेक कलकत्तेकी ही उक्त संस्थाओंकी छाया-मात्र हैं। इस प्रकार भारतवर्ष-भरके मारवाड़ी-समाजकी वर्तमान प्रगतिके मूलमें गुप्तजीकी ही कृति सिद्ध हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

प्रत्येक नेताका या पथ-प्रदर्शकका यह आवश्यक गुण होना चाहिये कि वह अपने अनुसर्त्ताओंके दोष और दुर्गुणोंको दूर करनेमें निर्दयी जर्राहका काम करे। जिस तरह जर्राह घावका नश्तर देनेमें रोगीके कराहने और छटपटाने पर भी निर्दयीकी तरह व्यवहार करता है, उसी तरह सच्चा नेता भी अनुसर्त्ताके दुर्गुणों और दोषोंको दूर करनेमें उनके बुरा माननेकी परवा नहीं करता। गुप्तजीमें यह गुण विशेष था। इन सार्वजनिक संस्थाओंके किसी सदस्यमें अथवा यहाँके मारवाड़ी या अन्य हिन्दी-भाषी-समाजमें जहाँ कोई ऐसा दोष उन्हें देख पड़ता जिसके बुरे प्रभावसे उस संस्थाकी बदनामी या हानि होनेकी संभावना होती, तो वह उसकी कड़ीसे-कड़ी आलोचना करनेमें जरा भी संकोच नहीं करते थे। किन्तु यह आलोचना सुहृत्ता और शुद्ध-हृदयता से सनी हुई होती थी,—इससे किसीको बुरा नहीं मालूम होता था। गुप्तजी उन्हें अपना समझ कर ही खरी-खोटी सुनाते थे, और वे भी गुप्तजीको अपना जानकर ही जीसे बुरा नहीं मानते थे।

गुप्तजीकी जन्मभूमि गुड़ियानी मारवाड़-प्रदेशके बिलकुल पास है, इससे हम अगर उन्हें मारवाड़ी कहें. तो कह सकते हैं। किन्तु जहाँ आजकल जगह-जगह इस समाजमें प्रायः प्रान्तीयता और जातीयताका संकुचित भाव दृष्टिगोचर हो रहा है, वहाँ गुप्तजीमें इस दुर्गुणका नाम-निशान भी न था। वे सब प्रान्त और जातिके लोगोंको अपना ही समझते थे। किसीकी भलाई या प्रशंसा करनेमें अथवा बुरी-भली आलोचना करनेमें गुप्तजीने कभी प्रान्तीय पक्षपातको पास फटकने

नहीं दिया। यह भी उनमें एक खूबी थी। इससे केवल मारवाड़ी-समाज ही नहीं, बल्कि बड़ाबाजारके 'हिन्दुस्थानी' व्यक्ति-मात्र उन्हें अपना हितैषी समझते थे। वे सबके थे, और सब उनके थे। उनका यह गुण भी आजकलके संकुचित वायु-मण्डलके विकासके लिये अनुकरणीय है।*

७

अपने श्रद्धेयका स्मरण †

(स्वर्गीय रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी)

इस असार संसारमें लाखों जीव आते और चले जाते हैं, सहस्रों मनुष्य यह नश्वर शरीर धारण करते और त्याग देते हैं; परन्तु उनमें कितने ऐसे हैं, जिनके चले जानेपर साल-दो-सालमें दस पाँच मनुष्य इकट्ठे हो उनके गुणोंका वर्णन कर अपनी आत्मा पवित्र करते और जीवन सुधारते हैं तथा उनके लिये प्रेमसे दो बूँद आँसू टपकाते हैं? कविकी यह उक्ति बहुत ठीक है कि—

जन्म लेत सो मरत रीति जगकी चलि आई,
धन्य जन्म है तासु करत जो जाति भलाई।

---

* 'विशाल भारत' अक्टूबर १९२९ ई०।

† इस संस्मरणके लेखक स्वर्गीय रामेश्वरप्रसाद चतुर्वेदी, गुप्तजीके परम मित्र स्वर्गीय पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीजीके भागिनेय थे। वे कलकत्तेके सिटी कालेजमें बी. ए. पढ़ रहे थे कि, आषाढ़ शुक्ला ६ संवत् १९७० को असामयिक देहान्त हो गया। उनका जन्म संवत् १९४८ वैशाख कृष्णा १३ को हुआ था।

सचमुच स्वदेश, स्वजाति और स्वभाषाकी सेवा करना प्रत्येक पुरुषका कर्त्तव्य है। जो ऐसा न कर केवल स्वार्थ-चिन्तामें ही सारा समय बिताते हैं, वे कभी श्रद्धाकी दृष्टिसे नहीं देखे जा सकते। वे कुबेरकी सम्पत्तिके स्वामी ही क्यों न हो जायँ, यह बिलकुल सत्य है कि उनकी पूछ न इस लोकमें हो सकती है और न उस लोकमें। वे ख्यातिके लिये सदा लालायित रहते हैं, पर उन्हें वह कभी प्राप्त नहीं होती। परन्तु जो व्यक्ति देश और जातिकी सेवा करता है, वह न केवल इस लोकमें ही श्रद्धापात्र समझा जाता है, प्रत्युत उस लोकमें भी अवश्य सद्गति पाता है। आज जिन पुरुष-रत्नका स्मरण हम यहाँ करते हैं, उन्होंने उल्लिखित कथनका मर्म भली-भाँति समझा था। उनके जीवनका उद्देश्य ही वह था, और उसकी पूर्तिके लिये उन्होंने प्राणपणसे प्रयत्न भी किया।

सुना है, स्वजनोंसे नाता तोड और मित्रोंसे मुँह मोड संवत् १६६४ की भाद्र शुक्ला एकादशीको वे भगवती यमुनाके तटस्थ इन्द्रप्रस्थ नगरमें स्वर्ग सिधारे। किन्तु न-जाने क्यों हृदयको विश्वास नहीं होता। जान पडता है, मानो वह सौम्यमूर्ति नयनोंके सम्मुख आ खडी हुई है और बडे स्नेह-सहित इस बालकको गोदमें उठाकर उमंग-भरे शब्दोंमें कह रही है—

आ मेरे मन्ना[1] आ मेरे लाल,
गोदमें आकर करो निहाल।

गुरुजीकी याद आते ही उनकी एक-एक बात मनमें दौड जाती है और उनका मनोहर चित्र आँखोंके सामने खिंच जाता है। मालूम होता है, वे मरे नहीं, जीवित ही हैं। कहा भी है—"कीर्त्तिर्यस्य स जीवति।" गुरुजी अपना नाम अमर कर गये हैं। स्वदेश, स्वजाति,

१ लेखकका प्यारका नाम 'मन्ना' था और गुरुजी इसी नामसे उन्हें पुकारते थे।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

स्वधर्म और स्वभाषाके लिये वे जो परिश्रम कर गये हैं, वह इतिहासके पृष्ठोंपर सुवर्णके अक्षरोंमें लिखा सदा जगमगाता रहेगा।

कालाकांकर छोड़नेके बाद गुप्तजीने अपना जीवन कलकत्तेमें ही बिताया। यहींके 'हिन्दी बङ्गवासी' और 'भारतमित्र'की सेवामें ही गुप्तजीकी देश-सेवा छिपी है।

गुप्तजी सीधे स्वभावके थे। उनका हृदय बड़ा सरल था। सत्यके पक्के अनुरागी थे। सच्ची बातें कहनेसे कभी नहीं हिचकते थे। मित्रोंसे बहुत प्रेमसे मिलते थे और किसी बातका दुराव नहीं करते थे। कई बार देखा गया कि यदि कोई स्नेही उनसे असन्तुष्ट हो जाता, तो अपना तिल-मात्र दोष न रहनेपर भी वे उसके घर दौड़ जाते, उसे समझाते-बुझाते और आवश्यकता पड़नेपर उससे क्षमा भी मांग लेते थे। पर इसका यह मतलब नहीं कि वे हृदय-भीरु थे। वे बड़े ही निर्भीक थे। जो उचित समझते, उसे करनेमें कदापि न हिचकते थे।

गुप्तजी बड़े हास्य-प्रेमी थे। दिन-रात हँसते-हँसाते रहते थे। उनकी बातोंको सुन मुहर्रमी स्वभाववालोंके पेटमें भी बल पड़ जाते थे। वे आडम्बरसे घृणा करते थे और खुशामदकी बात सुनकर उनका जी जल उठता था। कहते हैं कि एक दिन गुप्तजी अपनी माताके परलोक-वासका समाचार सुन कार्यालयमें उदास-मन बैठे थे। 'भारतमित्र'के एक लाला साहबने उनसे दिखावटी समवेदना प्रकट करनी चाही। लालाजीने यों इर्शाद किया—"हुजूर, यह क्या आफ़तकी बात सुन रहा हूँ, यह कैसी कयामत........"

लालाजीकी बातें मुँहकी मुँह हीमें रहीं। गुप्तजी बोल उठे—"बस, बस, माफ कीजिये, आफिसमें जाकर काम कीजिये।" बेचारे लालाजी अपना-सा मुँह लिये वापस लौट आये। इससे यह न समझना चाहिये कि अधीनस्थ कर्मचारियोंके साथ उनका व्यवहार कड़ा या खराब था।

वे उनके साथ बड़ी सज्जनताका बर्त्ताव करते थे। उन्हें डाँटते-फटकारते बहुत कम थे। उनके सद्व्यवहारसे सब उनसे अतीव प्रसन्न रहते थे। एक बार तो गुप्तजीने अपने एक सहकारीको यहाँ तक लिख दिया था कि "आप शीघ्र आवें, अन्यथा आपकी अनुपस्थितिमें मुझे बहुत हानि सहनी पड़ेगी। आशा है, आप समयपर आ मेरी सहायता करेंगे।" यह बात बाबू महावीर प्रसाद अच्छी तरह जानते हैं। जो अधीनस्थ लोगोंकी प्रतिष्ठा करनेमें अपना अपमान समझते हैं, उन्हें इससे शिक्षा लेनी चाहिये।

गुप्तजी न धन-लोलुप थे और न नामके भूखे। 'भारतमित्र'की नियुक्तिके समय 'श्रीवेंकटेश्वर-समाचार'से भी उनके लिये बुलावा आया था। वहाँ अधिकार और वेतन दोनों ही अधिक थे, पर वे वहाँ न गये। कलकत्ते आना ही उन्होंने पसन्द किया।

कहते हैं, गुप्तजीके सम्पादन-कालमें 'भारतमित्र'में 'मौलिक लेखोंका अभाव और वस्तु-वर्णनका आधिक्य' देखकर बम्बईसे एक सज्जनने गुप्तजीको एक पत्र भेजा और अपना नाम न दे, 'आपको पूज्य समझने-वाला' लिखा। यह पत्र बाबू महावीरप्रसादने लिखा था। उनके बड़े भाई बाबू गोपालराम 'भारतमित्र'में ही काम करते थे। उनके द्वारा पत्र-लेखकका परिचय गुप्तजीको ज्ञात हुआ। उन्होंने बाबू महावीरप्रसादको धन्यवाद-सूचक पत्र भेजा। थोड़े दिनोंके बाद सन् १६०० ई० में बाबू महावीरप्रसाद 'भारतमित्र'में बुला लिये गये।

गुप्तजी शुद्ध, सरल और फड़कती हुई भाषा लिखनेमें अद्वितीय थे। शब्दोंका समुचित व्यवहार करनेमें वे सिद्धहस्त थे। उनकी शैली बहुत ही प्रभावशालिनी थी। व्यंग्यमयी आलोचना करनेमें वे अपना सानी नहीं रखते थे। 'आत्माराम'के लेख और 'शिवशम्भुके चिट्ठे' इसके प्रमाण हैं। गुप्तजीकी कविताएँ सरस और सुन्दर हैं। उनमें भी

हास्य-रसकी ही प्रधानता है। गुप्तजीमें रचनाओंको चित्ताकर्षक बनानेकी अद्भुत शक्ति थी। यही कारण है कि उनकी सब रचनाएँ चटकीली और भावपूर्ण हैं।

भाषा पर तो उनका असाधारण अधिकार था। उन दिनों उनकी-सी सरल और मुहावरेदार भाषा लिखनेवाला दूसरा नहीं था। वे ज्यादातर बोलचालकी भाषा लिखना ही पसन्द करते थे। समयानुसार शैली भी बदलती रहती थी। लड़कोंके लिये बनाई एक कविताकी निम्न चार पंक्तियाँ इस बातको स्पष्ट कर देंगी :—

आजा री निंदिया तू आ क्यों न जा।
मेरे बालेकी आँखोंमें घुलमिल जा॥
हाट-बाटमें गली-गलीमें नींद करे चक फेरे।
रातको आवे लाल सुलावे उठ जा बड़े सवेरे॥

इस कवितामें संयुक्त अक्षरोंका सर्वथा अभाव है।

गुप्तजी भाषाकी शुद्धता पर अधिक ध्यान देते थे। वे कहते थे कि सारे संसारके गूढ़ विचारोंसे परिपूर्ण रहने पर भी यदि लेखकी भाषा शुद्ध नहीं, तो वह लेख कौड़ी कामका नहीं। नहीं जानता, गुप्तजी-जैसे विचारवाले और कोई हैं या नहीं ? ('विशालभारत' जून, १९३१ ई०)

८

गुप्तजीकी स्मृतिमें

[साहित्यवाचस्पति प० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी]

बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी समाचारपत्रोंके एक नामी सम्पादक हो गये हैं। उनको दिवङ्गत हुए प्रायः ४३ वर्ष व्यतीत हो चुके. इसलिये यदि उन्हें हिन्दी पत्र-सम्पादकोंकी वर्तमान पीढ़ी न जाने तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि इनमें तो बहुतोंका उस समय जन्म भी न हुआ होगा। उन्हें देखने और जाननेवाले तो उंगलियोंपर ही गिने जा सकते हैं। मेरे सहकर्मी व्यवसाय-बन्धुओंमें उनके नामसे परिचित कुछ हो सकते हैं, पर उन्हें जाननेवालोंका इस समय अभाव ही समझना चाहिये। परन्तु इससे उनके कार्य और उनकी सेवाका अस्तित्व नहीं मिट सकता।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त पहले उर्दू पत्रोंमें काम करते थे और वहांसे हिन्दीमें आये थे। वे अंग्रेजी कम पढ़े थे, पर अंग्रेजी समाचारपत्र पढ़कर उसका भाव अच्छी तरह समझ लेते थे। एक बार बाबू यशोदा-नन्दन अखौरीने एक समाचार अंग्रेजीमें पढ़ा, पर उसका मतलब उनसे हल न हुआ। जब उन्होंने उसे गुप्तजीको सुनाया, तब इन्होंने झट उसका भाव उन्हें समझा दिया। उनकी भाव-ग्राहक-शक्तिकी यह चर्चा अखौरीजीने मुझे सुनायी थी।

हिन्दीके जिस पत्रमें पहले पहल गुप्तजीने काम किया, वह काला-काकरका 'हिन्दोस्थान' था। तदनन्तर उनका 'हिन्दी बङ्गवासी'से सम्बन्ध हुआ।

'हिन्दी-वङ्गवासी' में शायद 'मडेल भगिनी' नामके एक बँगला उपन्यासका हिन्दी भाषान्तर निकलने लगा। भाषान्तरकार वङ्गवासी के सम्पादक पं० अमृतलाल चक्रवर्तीजी ही थे। चक्रवर्तीजी युक्तप्रदेशमें बहुत रहे थे। यहीं उनकी अधिकांश शिक्षा भी हुई थी। परन्तु भाषाविदोंसे उनका सम्पर्क बहुत कम हुआ था। इसके सिवा वे गाजीपुर-में रहे थे, जहाँ भाषाके धनियोंका अभाव-सा था। इसपर बंगाली होना और बंगलाका हिन्दी उल्था करना, इन अनेक कारणोंसे मडेल भागिनीका उल्था अत्यन्त दोषपूर्ण होता था। गुप्तजी भाषा मर्मज्ञोंमें अपना बहुतसा समय बिता चुके थे, इसलिये चक्रवर्तीजीकी त्रुटियाँ दिखानेमें समर्थ हुए।

मडेल भगिनीकी भाषाकी त्रुटियाँ गुप्तजीने पत्र द्वारा उन्हें लिख भेजीं। उसका वङ्गवासीके संचालकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। फलतः भाषाविद् समझकर उन्होंने गुप्तजीको हिन्दी वङ्गवासीमें बुला लिया। यहाँ गुप्तजीने साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यासके 'बिहारी विहार' की कड़ी आलोचना की। व्यासजीने बिहारी सतसईके दोहोंपर कुंडलियां रची थीं, पर इनमें बिहारीके भावका अभाव ही था। दोहेके आधार कुंडलियाँ थीं। इसके साथ लालचन्द्रिकाके—जो लल्लूलालकी टीका है, उसमें दोष दिखाये थे।

गुप्तजीमें एक बड़ा गुण यह था कि पुराने साहित्यिकोंकी वे बड़ी कद्र करते थे, उनकी त्रुटियोंकी उपेक्षा ही नहीं करते थे, प्रत्युत जो कोई उनकी आलोचना करता था, उससे भिड़ जाते थे। यही कारण था, उन्होंने व्यासजीकी खूब खबर ली थी। व्यासजीने अपना पक्ष पुष्ट करनेके लिये कोई विशेष यत्न नहीं किया। और करते भी कैसे? उनका मामला बहुत कमजोर था।

उस समय आर्य समाजका खासा जोर था, इसलिये कुछ लोग उसकी मान्यताओंका खण्डन करने खड़े हुए। सत्यार्थ प्रकाशकी आलोचना दो दिशाओंसे हुई एक जैनोंकी ओरसे और दूसरी सनातनियोंकी ओरसे। जैनोके नेता जैनी जियालाल थे और सनातनियोका पक्ष-समर्थन 'महताव दिवाकर' के रचयिताने अपने ग्रन्थमे किया। यह बडा पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ था। यदि कहा जाय कि इसीके सहारे प० ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादीने 'दयानन्द तिमिर भास्कर' लिखा तो अनुचित न होगा। अस्तु, सनातनी-पक्ष पुष्ट करनेके लिये भारतधर्म महामण्डल नामकी एक संस्था खड़ी हुई, जिसके प्रधान मन्त्री वाग्मीवर पण्डित दीनदयालु शर्मा थे। ये हमारे गुप्तजीके परम मित्र थे।

हिन्दी बङ्गवासीवालोंने राजपूतानेके नरेशोंसे धर्मके नामपर रुपये वसूलकर कलकत्तेमें धर्मभवन बनानेका संकल्प किया था। इसमे उन्हें कुछ सफलता भी प्राप्त हुई थी—अर्थात् १७०००) मिल भी गये थे। इससे उन्होंने भवानीचरण दत्त लेनमे जमीन लेकर मकान बनाया था, जो 'धर्मभवन'के बदले 'बङ्गवासी भवन' हुआ ; क्योंकि धर्मभवनका कुछ भी काम वहाँ कभी नहीं हुआ, बङ्गवासी और इसके साथी पत्रोंके दफ्तर ही इसमें रहे। और अब तो वह भवन भी नहीं रहा। जमीन किसी औरको बेंच दी गयी। कलकत्तेके मारवाडी समाजको भी बङ्ग-वासीवालोंके धर्म प्रोपगेंडाने आकृष्ट किया था। कई हजार रुपये धर्मभवन वा बङ्गवासी भवनमें जानेवाले ही थे कि पण्डितजीने इसमे बाधा डाली।

प० दीनदयालु शर्मा सनातन धर्मके अपने समयके अद्वितीय वक्ता समझे जाते थे। मारवाड़ी वैश्योंमें उनका बड़ा सम्मान था। उन्होंने बङ्गवासीमे मारवाडियोंके रुपये नहीं जाने दिये। फलतः हिन्दी बङ्गवासीमें उनके विरुद्ध लेखादि निकालनेका आयोजन हुआ। गुप्तजी

भला इस काममें कैसे सहयोग कर सकते थे ? परिणाममें उन्हें हिन्दी-बङ्गवासीसे अलग होना पड़ा। उन्होंने बङ्गवासी छोड़ दिया पर मित्रद्रोह नहीं किया और न मित्रके विरोधीका ही साथ दिया। ऐसा तेजस्वी लेखक क्या बेकार रह सकता था ? तुरत उन्हें भारतमित्र सम्पादकका पद प्राप्त हुआ।

भारतमित्रमें पहुँचकर गुप्तजी बहुत चमके। यहाँ किसी प्रकारका बन्धन नहीं था। स्वत्वाधिकारीका इतना ही स्वार्थ था कि पत्र किसीके दबावमें न रहे और उससे किसीका स्वार्थ साधन न हो। वे यह भी चाहते थे कि पत्र घाटेसे न चले। गुप्तजीका भी इन सिद्धान्तोंसे विरोध न था। फल यह हुआ कि वे इसे अपना निजी पत्र समझकर चलाने लगे। प० दीनदयालुजीके प्रस्ताव और गुप्तजी—प्रत्यक्षतः भारतमित्रके समर्थनसे यह निश्चय हुआ कि, संचित धनसे एक स्कूल हिन्दी भाषी छात्रोंके लिये स्थापित किया जाय और उसका नाम श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय रखा जाय। कलकत्तेमें इसके पहले ऐसा कोई स्कूल न था जिसमें हिन्दी भाषाके द्वारा अंगरेजी शिक्षा दी जाती हो, परमेश्वरकी कृपासे आज तो पाँच छः स्कूल तथा अनेक पुस्तकालय हैं।

बाबू बालमुकुन्द गुप्तने भारतमित्रको भी बहुत चमकाया। आज भी जो कोई शिवशम्भुके चिट्ठे और शाइस्ता खांके खत पढ़ता है, वह उनकी सूझ-बूझका कायल हुए बिना नहीं रहता। भारतमित्रके इतिहासमें उत्थान और पतनके अनेक युग पाये जाते हैं। गुप्तजीके पहुँचनेके पहले भारतमित्र कुछ गिर गया था, परन्तु इन्होंने उसे फिर उठाया। लोगोंपर भारतमित्रकी धाक जम गयी।

यह पहले बताया जा चुका है कि, पुराने साहित्य-सेवियोंकी आलोचना गुप्तजी नहीं सह सकते थे। इसीलिये वे हिन्दी बङ्गवासीमें व्यासजीसे और भारतमित्रमें द्विवेदीजीसे भिड़ गये थे।

बात यह थी कि, प० महावीर प्रसाद द्विवेदीजीने भूप कवि लाला सीतारामकी बड़ी तीक्ष्ण समालोचना करके उनका मुँह बन्द कर दिया था। इससे उनका बड़ा नाम हो गया था। सरस्वतीके नवम्बर सन् १६०५ के अंकमें उन्होंने "भाषा और व्याकरण" शीर्षक लेख लिखा था। इसे लिखनेमें जितनी सावधानीका प्रयोजन था उतनी नहीं रखी। इसलिये लेखमें कुछ ऐसी बातें भी लिख गये जो उनके जैसे पण्डितके लिये अशोभन थीं। उस लेखमें मुझे जो बात खटकी थी, वह उनका यह कथन था कि "पाली और प्राकृत ग्रामीण और असभ्य देशोंकी भाषाएँ थीं।" पाली और प्राकृतसे अनभिज्ञके सिवा इस तरहकी बात कोई नहीं कह सकता था। परन्तु मैं नया रंगरूट था, इसलिये चुप्पी साध गया। गुप्तजीको उस लेखमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका अपमान दिखाई दिया, क्योंकि उसमें भारतेन्दुकी भाषाकी ऐसी भूलें दिखाई गई थीं जो व्याकरणसे सर्वथा अनभिज्ञ ही कर सकता है। इस लेखमें गुप्तजीको संस्कृत व्याकरण विरुद्ध एक शब्द 'अनस्थिरता' भी मिल गया। इसलिये 'भाषाकी अनस्थिरता' शीर्षक देकर गुप्तजीने नौ दस लेख 'आत्माराम' नामसे लिखे और कहा कि इसे सिद्ध कीजिये, यह सारी लिखा पढ़ीकी जड़ है।

द्विवेदीजीको यह आशा न थी कि कोई उनके विरुद्ध लिखेगा, इस-लिये पहले ही लेखसे वे सन्नाटेमें आ गये। प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीजीने भी कुछ लिखा। दो अंक तक तो द्विवेदीजी चुप रहे। बाद 'सरस्वती'के तीसरे अंकमें 'कल्लू अल्हइत'के नामसे एक आल्हा छापा, जिसका शीर्षक 'सगौं नरक ठिकाना नाहिं।' उसमे चतुर्वेदीजी इसलिये कृतघ्न बताये गये थे कि जब द्विवेदीजीसे मिलकर वे लौट रहे थे, तब उनके इक्केमें आग लग गई थी, जिसे बाबू सीतारामने बुझाया था। इसके बाद पण्डित गोविन्दनारायण मिश्रने हिन्दीसे 'अनस्थिरता' शब्द

सिद्ध कर दिया। इससे द्विवेदीजीको बड़ा सहारा मिला। इस लिखा-पढ़ीमें द्विवेदीजी और गुप्तजीके सिवा भारतके अनेक हिन्दी पत्रों और लेखकोंने भाग लिया था।

गुप्तजी देशभक्त तो थे ही, सच्चे पत्रकार भी थे। भारतमित्रमें एकाधिक बार उन्होंने लिखा था कि भारतमित्र राजनीतिक पत्र है, धार्मिक नहीं ; यद्यपि कभी-कभी इसमें धर्मकी चर्चा भी हो जाया करती है। सच पूछा जाय तो राजनीतिक पत्रके सिवा और किसी प्रकार सामयिक पत्र बड़ी कठिनाईसे चलता है। पाश्चात्य देशोंमें भी राजनीतिसे भिन्न व्यवसाय वाणिज्यके दैनिक पत्र बहुधा नहीं चलते। यहां भी धर्म या समाज सुधारके पत्र कभी दैनिक नहीं हुए। इन विषयोंके जो दैनिक निकले वे भी कुछ ही दिनोंमें बन्द हो गये।

गुप्तजो देशभक्त और राष्ट्रवादी थे। स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलनसे उनका बड़ा अनुराग था। शुद्ध भाषाके वे बड़े प्रेमी थे और अशुद्ध या बे-मुहावरे भाषा उन्हें नापसन्द थी। आजकलके दैनिक पत्रोंकी भाषा यदि वे देखते, तो न जाने क्या कहते। गुप्तजी मिलनसार और खुश मिजाज थे। उनमें बात कहनेका एक बड़ा गुण यह था कि हँसी की बात जब कहते थे, तो आप नहीं हँसते थे, दूसरोंको हँसनेका अवसर देते थे। यही विशेषता स्व० प० पद्मसिंह शर्मामें भी थी।

गुप्तजीके गोलोकवासको ४२ वर्ष हो गये। उनके बहुतसे मित्रोंने भी उन्हींका रास्ता पकड़ा। उनको जानने और समझनेवाले नहीं रहे। ऐसी अवस्थामें उनकी स्मृति-रक्षाके लिये जिन लोगोंने यह आयोजन किया है वे स्तुत्य हैं।

६

परिहासप्रिय गुप्तजी

[महामहोपाध्याय प० सकलनारायणजी शर्मा]

एक कविने कहा है कि गुणियोंकी गणनाके समय जिसका नाम शीघ्र याद नहीं पडता, उससे कोई जननी पुत्रवती कहलाये तो बाँझ स्त्री कैसी होगी ? खड़ीसे पट्टीपर नाम-स्मरणके प्रसङ्गमें जो शीघ्र स्मृति-पथमें आता है, वह जगत्‌का बड़ा मनुष्य है, वह समाजका आदर्श है।

"गुणिगण गणनारंभे न पतति कठिनी सुसंभ्रमाद्यस्य
तेनाम्वा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति।"

जो महापुरुष दृष्टिगोचर होता है, अथवा जिसकी चर्चा होती है, दोनो प्रकारसे वह जीव स्मृति-पात्र होता है। गुप्तजी अपनी परिहास प्रियता तथा यथार्थवादिताके कारण कभी भुलाये नहीं जा सकते। उनके लड़कपनकी एक परिहास-घटना वड़ी मनोरंजक है। वे चंचल चतुर थे। मदरसेमें सबसे पहले पहुँच जाते थे और बातकी बातमे पठनीय विषय कण्ठस्थ कर मौलवी साहबको सुना देते थे। इससे वे शिक्षकके प्रेमपात्र रहते थे। मदरसा मैदानमें था। वहाँ एक चौखटा मकान पक्का था। उसकी छत सुन्दर दृढ़ थी। उस पर चढ़नेके लिये कोई सीढ़ी न थी। एक दिन कोई एक ऊँट पासके पेड़मे बाँध गया। उसका मालिक कार्यवश प्रातःकाल बाहर गया था। गुप्तजी आये और लड़कोंसे बोले कि थोड़ी दूर पर बाजरेकी पूलियोंका ढेर पड़ा है, उसे उठा लाओ और छत तक ढालू बनाकर रख दो। वैसा हो जानेपर लड़कोंने ऊटको छतपर चढ़ा दिया और पूलियोंको जहाँसे ले आये थे वहीं रख

आये। ऊँटके मालिकने आकर ऊँटको गायब देखा। वह अपने भाग्यको ठोकता हुआ तलाशमें दौड़ गया। इतनेमें ऊँट छत पर घबराया और बलबलाने लगा। राह चलनेवाले समझ नहीं सके कि ऊँट छतपर कैसे पहुँच गया। कोई हँसता था, कोई ताली पीटता था। लंबरदार, चौकीदार बुलाये गये। ऊँटका मालिक चिंतित था कि, ऊँटको कैसे नीचे उतारा जाय। दिनभर बीत गया। कोई उपाय नहीं सूझा। मदरसा बन्द हो गया। लड़के पढ़नेमें ध्यान नहीं देते थे। गुप्तजीने मौलवी साहबसे कहा कि टालसे बाजरेकी पूलियाँ मँगाकर सीढी बनादी जाय, उससे ऊँट उतर जायगा। ऊँट इस तरकीबसे उतर आया और इसकी खुशीमें ऊँटके मालिकने मिठाई मँगाकर मदरसेके लड़कोंको दी।

मदरसेके छात्र मौलवी साहबकी मार-पीटसे रुष्ट रहते थे तथा उनके बिछौनेमें आलपीन गड़ाकर उनके पैर क्षत-विक्षत कर देते थे। गुप्तजीने अपने साथियोंको उक्त कार्यसे रोका और मुसलमान विद्यार्थियोंसे कहा कि आज मैं आपलोगोंको शर्बत पिलाऊँगा। मौलवी साहबने बड़े बदनेमें दिवाली पर आये बताशे रखकर कपड़ेसे उसका मुँह बन्द कर दिया और खाम लगा दी कि रमजानमें काम आवेंगे। गुप्तजीने बदनेकी टोंटीके रास्तेसे पानी घुसाया और शर्बत बन गया। उसे लड़कोंने प्रेमसे पीया। बदना खाली हो गया और खाम ज्यों-की-त्यों रह गयी। रमजानके समय गुप्तजी मदरसासे छुट्टी लेकर घर बैठ गये।

गुप्तजी पं० प्रतापनारायणजी मिश्रको अपना गुरु मानते थे। गुप्तजीको खड्गविलास प्रेसवालोंने मिश्रजीकी भाषान्तर की हुई एक पुस्तक अलोचनाके लिये दी। उन्होंने लिखा कि यह मिश्रजीकी अनुवाद की हुई नहीं, इसकी भाषा मिश्रजीकी भाषासे नहीं मिलती। जब खड्गविलास प्रेसवालोंने पुस्तककी पाण्डुलिपि दिखलायी तब आपने पत्रमें संशोधन किया कि, मिश्रजी कई प्रकारकी हिन्दी लिखते हैं, यह

नहीं मालूम था। मिश्रजीने भिन्न-भिन्न ढंगकी हिन्दी भाषामें पुस्तकें गङ्गाविलास प्रेसके लिये लिखी हैं।

गुप्तजीके सम्पादन-कालमें 'भारतमित्र' का बड़ा गौरव था। उसमें किसीकी झूठी प्रशंसा नहीं छपती थी। सच्ची आलोचना व्यापारी, हाकिम, वकील, राजा तथा नेताओंकी होती थी। जिसके विरुद्ध चर्चा होती थी, उससे लोकमत बदल जाता था।

'भारतमित्र' की हिन्दी टकसाली तथा मुहावरेदार होती थी। छोटे-छोटे वाक्योंसे गम्भीर अर्थ निकलते थे। यदि भूलसे उसमें कुछ अशुद्ध छप जाता था तो उसका संशोधन दूसरे अंकोंमें किया जाता था। उसकी रोकटोकके भयसे सामयिकपत्र संयत और शुद्ध भाषामें प्रकाशित होते थे। मैं एक बार उनसे मिलने गया। उन्होंने मुझे अपनी लिखी हरिदासकी जीवनी दी और कहा कि इसे 'शेष' शब्दके समान आन्दोलनका विषय न बनाइयेगा। यह मेरी पुरानी रचना है। 'श्रीवेङ्कटेश्वर' समाचारमें 'शेष' शब्द 'बाकी' अर्थमें छपा था। 'भारतमित्र' ने उसका अर्थ 'अन्त' किया। मैंने इस विवादमें 'श्रीवेङ्कटेश्वर' का पक्ष लिया। इसी बातकी ओर संकेत था।

उनकी लिखी हुई कविताओंमें सर सैयद अहमद पर जो चोट की गयी है, वडी मार्मिक और गम्भीर है। उनके लिखे 'जोगीड़ा' हिन्दी साहित्यके रत्न हैं। 'भाषाकी अनस्थिरता' नामक लेख मालाके पढ़नेमें आज भी वड़ा आनन्द प्राप्त होता है। पढ़नेवालोंके मनमें यह धारणा हो जाती है कि गुप्तजीका पक्ष प्रबल और पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी का निर्बल है। इस लेखमालाने 'भारतमित्र' की ख्यातिको बढ़ाया था।

पं० गोविन्दनारायण मिश्रसे उनका साम्यभाव कम था। पर वे उनका आदर करते थे। वे पं० प्रभुदयालजी पाण्डेय तथा अम्बिकादत्त व्यासकी प्रशंसा करते थे और कहा करते थे कि व्यासजी तथा पाडेजीका

अल्पायु होना हिन्दीके लिये अत्यन्त हानिकर हुआ। यदि वे जीवित रहते तो हिन्दीमें नया जीवन आ जाता।

गुप्तजीको यह चिन्ता कभी नहीं हुई कि मैंने पैतृक-व्यवसाय नहीं किया। उन्होंने निश्चिन्ततापूर्वक पत्र-सम्पादन-कार्य द्वारा हिन्दी-साहित्यकी सेवा की। वे अपने पूर्ववर्त्ती साहित्य-सेवियोंके परम भक्त थे।

१०

लेखनीका प्रभाव

[महामहोपाध्याय पण्डित गिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी]

जिन दिनों मैं छात्रावस्थामें था, समाचारपत्र पढ़नेकी कुछ रुचि होने लगी थी, उन दिनों प्रथमतः स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीकी लेखनीने ही चित्तपर विशेष प्रभाव डाला था। यह भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि श्रीगुप्तजीकी लेखनीने ही समाचार-पत्र और हिन्दीके सामयिक निबन्ध पढ़नेकी प्रवृत्तिको उत्साह दिया। इसीसे मैं अनुमान करता हूँ कि मेरी भाँति शतशः, सहस्रशः विद्याप्रेमी उनके कारण हिन्दीके अनुरागी बने होंगे—इसमें कोई संदेह नहीं। उस समय—जबकि उर्दू, उत्तर भारत भरमें अपना सिंहासन जमाये बैठी थी और अंग्रेजी अपने साम्राज्यसे अन्य भाषाओंका निष्कासन कर देनेपर तुली हुई थी,—श्रीमान् गुप्तजी जैसे सज्जनोंने अपनी लेखनीका महास्त्र उठाकर हिन्दी-रक्षामें जो अपूर्व पुरुषार्थ किया, उसे हिन्दी साहित्यका इतिहास कभी भुला नहीं सकता। चाहे आजके महारथी इसे धृष्टता समझें—किन्तु मुझे तो यह कहनेमें कुछ भी संकोच नहीं कि वैसी रोचक गम्भीर और सरल हिन्दी लिखनेवाले आज इस हिन्दी की उन्नतिके मध्याह्न कालमें भी नहीं हैं। आपके संपादित भारत-

मित्रके 'टेसू' और 'होली' पढ़नेकी महीनों पहलेसे उत्कण्ठा लगी रहती थी। फिर विशेषता यह कि इसी उपहास और रोचकताके भीतर प्रेमी राजनैतिक चुटकियाँ रहती थीं, जिनसे मार्मिकोंको लोट-पोट हो जाना पड़ता था। उनके बङ्ग-भङ्ग आन्दोलनके समयके 'टेसू'का बहुत सा अंश मुझे आज भी याद है, जिसे मैं कई बार प्रसङ्ग-प्रसङ्ग पर मित्रोंको सुनाया करता हूं। इन सब बातोंके साथ महत्त्वकी बात जो मेरी बुद्धिके अनुसार सबसे बड़ी है, यह थी कि वे सनातन धर्मके दृढ़ पक्षपोषक थे। उनके लेखोंमें सुधारके नामपर धर्मविप्लव करनेवालोंके लिये भी खूब मीठी फटकार रहती थी।

मुझे उनके साक्षात्कारका सौभाग्य कभी प्राप्त नहीं हुआ। हां, श्री द्विवेदीजीके साथ चले हुए 'अनस्थिरता'के आन्दोलनके समय कुछ पत्र-व्यवहार हुआ था। मैंने भी उन दिनों 'भारतमित्र' के पक्षमें कुछ लिखनेकी धृष्टता की थी, जिससे स्वर्गीय श्रीद्विवेदीजी जीवन पर्यन्त मुझसे रुष्ट रहे। 'कालिदासकी निरङ्कुशता'के आन्दोलनके समय भी कुछ छेड़-छाड़ हुई थी। अस्तु, देशके दुर्भाग्यसे श्रीगुप्तजीने आयु बहुत अल्प पायी। वे अपने परिश्रमके फलस्वरूप हिन्दीकी क्रमिक उन्नति भी देख न सके। साथ ही साहित्य-संबन्धी रोचक आन्दोलनका उनके साथ ही एक प्रकार अन्त ही हो गया। इसीका परिणाम आज स्पष्ट है कि वर्तमान हिन्दी साहित्य प्राचीन हिन्दु संस्कृतिके विरोधी भावों-से ही अधिकांशमें पूर्ण हो रहा है। हिन्दीकी शैली पर भी आज बहुत कुछ विवाद और वितण्डावाद हो रहा है, किन्तु बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीकी शैलीका प्रचार होता तो इन सबका अवसर ही न आता। उनके स्मारक स्वरूप इस प्रकाशनको मैं बहुत महत्त्वका मानता हूं।

११

गौरवान्वित गुप्तजी

(साहित्यवाचस्पति सेठ कन्हैयालालजी पोद्दार)

बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखक और गौरवान्वित पत्रकार थे। आपसे साक्षात् परिचयका सुअवसर तो बहुत समयके बाद उपलब्ध हो सका, पर इसके पूर्व पत्रकारके रूपमें मैं उनके नामसे बहुत पहलेसे परिचित था। सबसे प्रथम गुप्तजीको कालाकांकरके दैनिक "हिन्दोस्थान" के सम्पादकीय विभागमें स्वर्गीय श्री० महामना मालवीयजी और श्री पण्डित प्रतापनारायणजी मिश्र आदिका, जो हिन्दी भाषाको परिष्कृत करनेवाले मुख्य विद्वान थे, सहयोग उपलब्ध हुआ। उस समय सम्भवतः हिन्दीका दैनिक पत्र एक हिन्दोस्थान ही था। उसमें स्वर्गीय आचार्य श्री० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी एवं इन पंक्तियोंके लेखककी कविता और लेख भी छपते थे। उसके पश्चात गुप्तजी कलकत्तेके हिन्दी-बंगवासी साप्ताहिक पत्रके सम्पादकीय-विभागमें आ गये थे। हिन्दी-बंगवासीके सम्पादनमें गुप्तजीकी लेखनीका सहयोग होते हुए भी सहकारी सम्पादक होनेके कारण उनकी प्रसिद्धि तदनुरूप वहाँ न हो पायी। किन्तु जब उन्होंने भारतमित्रके सम्पादनका भार अपने ऊपर लिया, तभी उनकी अप्रतिम प्रतिभाका चमत्कार हिन्दी संसारको ज्ञात हुआ। गुप्तजीने भारतमित्रको और भारतमित्रने गुप्तजीको चमका दिया। भारतमित्रमें राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आदि सभी विषयों पर सम्पादकीय लेख-गुप्तजीकी लेखनीसे बड़े ओजपूर्ण

और आकर्षक निकलते थे। गुप्तजीका हिन्दी भाषापर यथेष्ट अधिकार था। आपकी भाषा सरल और शुद्ध हिन्दी होती थी। समालोचना-क्षेत्रमें आपका एक विशेष स्थान था। आपके द्वारा की गयी आलोचना निर्भीक और तीव्र होनेपर भी राग-द्वेष-रहित और विनोद-गर्भित होती थी। आप हास्यप्रिय थे, अतएव भारतमित्रमें "शिवशम्भुका चिट्ठा" शीर्षक एक लेख-माला निकाला करते थे, उसके सभी लेख व्यंग्यपूर्ण एवं चटकीले होते थे। उसमें गुप्तजी अनेक विषयोंपर आलोचना करते थे, विशेषतः देशकी राजनीति और मारवाड़ी समाजपर आपका लक्ष्य रहता था और उसका मारवाड़ी-समाजपर पर्याप्त प्रभाव भी पड़ता था। यद्यपि गुप्तजीका कलकत्तेके सभी प्रतिष्ठित मारवाड़ी सज्जनोंसे परिचय ही नहीं, घनिष्ठ-प्रेम-सम्बन्ध भी था, पर सच्ची कहनेमें आप कभी संकोच नहीं करते थे। उस समय मारवाड़ी-समाजमें विलासिताका प्रवेश होना प्रारम्भ हो गया था। अब तो उस रोगसे मारवाड़ी समाज पूर्णरूपेण आक्रान्त है। उसपर आप व्यंग्य-गर्भित मार्मिक चुटकी लेते थे।

गुप्तजीकी लेखन-शैली पर मुग्ध होकर इन पंक्तियोंका लेखक साक्षात् करनेके लिये बड़ा उत्सुक था। एकवार साहित्यिक-यात्राके निमित्त गुप्तजीका मथुरा आगमन हुआ था। मथुरामें जो विद्वान् आते रहते हैं, उनका साक्षात् होनेका सौभाग्य हमें प्रायः उपलब्ध हो ही जाता है। फिर गुप्तजी तो हमारे नामसे साहित्य-सेवी होनेके नाते परिचित थे और उनकी इच्छा भी हमसे मिलनेकी बहुत दिनोंसे थी; जिस प्रकार हमारी इच्छा उनसे मिलनेकी थी। गुप्तजी अपने परिचित बाबू बदरीदास मोदीके साथ, जो हमारे यहाँ सदैव आते रहते थे,—आये। उनसे मिलकर जो हर्ष एवं आनन्द हुआ, वह अपूर्व था। गुप्तजी आडम्बर-प्रिय न थे, उनका वेश-विन्यास, सौम्याकृति, सादगी

एवं सरलता देखकर कोई नहीं कह सकता था कि 'भारतमित्र' को हिन्दी-संसारमें चमत्कृत करनेवाले और अपनी लेखन-शैलीसे विद्वानोंको मुग्ध करनेवाले यही यशस्वी बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त हैं। गुप्तजीने हमारे आग्रहसे आतिथ्य भी स्वीकार किया था, पर मथुरामें आप अधिक न ठहर सके थे। उसके कुछ समय पश्चात् हमें अपने सम्बन्धी बाबू रूड़मलजी गोइन्दकाकी मातुश्रीके स्वर्गवासके अवसर पर बम्बईसे कलकत्ते जाना पड़ा था। बाबू रूड़मलजी स्वयं विद्वान् और साहित्य-रसिक थे। वे विद्वानोंका बड़ा आदर करते थे। उनके यहाँ कलकत्तेके विद्वानोंका ही नहीं, बाहरके आये हुए विद्वानोंका भी केन्द्र था। बाबू बालमुकुन्दजीका तो उनके साथ प्रगाढ़ प्रेम था। गोइन्दकाजीके स्थान पर ही गुप्तजीका फिर सहवास प्राप्त हुआ और साहित्य-चर्चाका बड़ा आनन्द मिला। इसके पूर्व हमारा साहित्य-विषय पर "अलङ्कार प्रकाश" नामक ग्रन्थ निकल चुका था, उसकी प्रतियाँ समालोचनार्थ प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्वानों और पत्र-पत्रिकाओंको प्रेषित की गयी थीं। गुप्तजीने उसकी आलोचना अपने स्वभावानुसार विनोदपूर्ण ढंगसे करते हुए बड़ी प्रशंसा की थी। उसी प्रसंगमें हमने उनका धन्यवाद किया तो आप कहने लगे,—"मैं किसीको प्रसन्न करनेके लिये प्रशंसायुक्त आलोचना या किसीके साथ अपना वैमनस्य निकालनेके लिये किसी पुस्तककी दुरालोचना नहीं करता, परन्तु सद्आलोचना करता हूँ। आपका ग्रन्थ वस्तुतः प्रशंसनीय है और उसकी वह आलोचना मेरी लिखी हुई नहीं थी, किन्तु पं० विप्रचन्द्रजीने मेरे अनुरोध पर लिख दी थी, जो साहित्यके प्रगाढ़ विद्वान् हैं। हाँ, उस आलोचनाके प्रारम्भमें कुछ विनोदात्मक वाक्य मैंने अवश्य जोड़ दिये थे।" उनके इस कथनसे प्रकट होता है कि वे कितने सत्य-प्रिय सज्जन थे, पर खेद है कि आपको प्रौढ़ावस्थामें ही कराल कालने ग्रस लिया और हिन्दीकी सेवाके लिये जो उनके मनारथ

थे, वे उनके हृदयमें ही रह गये। निस्सन्देह गुप्तजीके सुपुत्र बाबू नवलकिशोरजीने प्रस्तुत गुप्त-स्मारक ग्रन्थके प्रकाशनका आयोजन करके हमलोगोंका जो कर्त्तव्य था उसकी पूर्ति की है, अतः हम उनको हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

१२
पहली भेंट, दिल्लीमें

(साहित्यवाचस्पति पण्डित द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी)

सन् १९०१ की बात है। महारानी विक्टोरियाका देहावसान हो चुका था। लार्ड कर्जन तत्कालीन भारतके गवर्नर जनरल थे। लार्ड कर्जन-जैसा प्रतिभाशाली तथा कुटिल नीतिविशारद वायसराय भारतवर्षमें दूसरा नहीं आया। कर्जनकी योजनाके अनुसार महारानी विक्टोरियाके उत्तराधिकारी नये सम्राट्के तिलकोत्सवके दरबारकी दिल्लीमें तैयारी क्या थी, मानो भारतवर्षके प्राचीन वैभवका एक विराट् प्रदर्शन किया गया था। भारतके सुदूरवर्ती प्रान्तोंके लोग दिल्लीमें उपस्थित थे। प्रत्येक रजवाड़ेके 'कैम्प' की छटा देखते ही बन आती थी। भारतके समस्त नृपतिगण अपनी शान-शौकत दिखानेके लिये जितना ठाठ-बाठ अपेक्षित था, उससे कहीं अधिक तैयारी करके आये थे। काश्मीरके महाराजके तम्बूकी बड़ी शोहरत थी। लार्ड कर्जन उसे देखनेके लिये काश्मीर-नरेशसे मिलनेके बहाने उनके कैम्पमें गये थे।

दिल्ली दरबारके उस स्मरणीय और दर्शनीय महोत्सवके अवसरपर हिन्दू कालेजके परीक्षोत्तीर्ण छात्रोंको पारितोषिक देनेके लिये एक बड़ी

सभा बुलाई गई थी। सभाके सभापति बड़ोदाके महाराज गायकवाड़ थे। इस सभाके उद्योगियोंमें उक्त कालेजके प्रतिष्ठाता और सहायक व्याख्यान-वाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा, लाला श्रीकृष्णदास गुड़वाले और महामहोपाध्याय पं० हरिनारायण शास्त्री आदि सज्जन थे। सभामें कालेजकी सहायताके लिये धनकी अपील होनेपर, चन्देमें बड़ी-बड़ी रकमें बोली गयीं। लखनऊके एक बहुत बड़े प्रेसाध्यक्षने, जो वहाँ उपस्थित थे अपनी ओरसे एक लाख रुपये चन्देमें देनेकी घोषणा करायी, जिसपर तालियोंकी गड़गड़ाहटसे सभास्थान गूँज उठा। उसी समय सन्मुख बैठे हुए ब्रह्मपदलीन पण्डित रामचन्द्र वेदान्तीने दो लाख रुपयेका दान अपनी ओरसे विघोषित करनेकी सूचना दिलाई। इसपर भारतमित्र-सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त और सुदर्शन-सम्पादक प० माघवप्रसादजी मिश्रमें जो पास-पास बैठे हुए थे, कुछ काना-फूँसी हुई। थोड़ी देर बाद गुप्तजीने वेदान्तीजीसे पूछा—"आप तो एक त्यागी संन्यासी—'कौपीनवन्तः खलुभाग्यवन्तः' हैं, आपने जो दो लाख रुपये देनेकी घोषणा की है, वह कबतक कार्यमें परिणत हो सकेगी? उत्तरमें वेदान्तजीने कहा—'हमसे पहले प्रेसाध्यक्ष महाशयका नंबर है, जब उनका वचन कार्यरूपमें परिणत हो जायगा, तब हम भी अपनी रकम जमा करा देंगे।' यह सुनकर लोग हँस पड़े और वह चर्चा वहीं समाप्त होगई। इस प्रश्नोत्तरको सुन हमें प्रश्नकर्त्ता सज्जनका परिचय जाननेकी उत्कण्ठा हुई। तब हमारे पूछनेपर मिश्रजीने हमें गुप्तजीसे मिलाया। तत्पश्चात् हमारा निरंतर सम्बन्ध बना रहा। गुप्तजी विचारशील, मितभाषी, गम्भीर और मार्मिक समालोचक थे। उनके समयका 'भारतमित्र' और द्विवेदीजीके समयकी 'सरस्वती'—दोनों मनोरंजनकी अच्छी सामग्री थी। सरस्वतीके ऊपर गुप्तजी सदैव कुछ-न-कुछ लिखते ही रहते थे।

हम जब विद्यार्थी थे, तबसे भारतमित्रको बराबर पढ़ा करते थे, बल्कि बहुत दिनोंतक इटावेसे हम उसके संवाददाता भी रहे। अत. हम अधिकार पूर्वक कह सकते है कि, जो बात भारतमित्रमें गुप्तजीके सम्पादन-कालमें थी, वह न तो उनके सम्पादन-समयके पूर्व देखी गई और न पश्चात् ही। भारतमित्रके अध्यक्ष बाबू जगन्नाथदासका गुप्तजी पर पूर्ण विश्वास था। गुप्तजीके समयमे वे नाम मात्रके स्वामी थे। प्रेस और पत्रका समस्त कार्य-संचालन गुप्तजीकी अनुभूतिसे ही होता था।

गुप्तजी जैसे हिन्दीके सुलेखक होना कठिन है। उनकी हिन्दी मजी हुई मुहावरेदार और बडी चुटीली होती थी। वह अंग्रेजोंका जमाना था, भारतमित्रमे उस समय सब प्रकारके विषयो पर सामयिक आलो-चना—प्रत्यालोचना तथा टिप्पणियाँ प्रकाशित होतीं थीं और सभी पढ़ने योग्य होती थीं। हम अपने व्यक्तिगत अनुभवसे कह सकते हैं कि, उस समय भारतमित्र पढ़नेके लिये कई लोगोंने हिन्दी पढ़ी थी। मित्रगोष्ठीमें गुप्तजी बोलते कम थे, किन्तु जितना बोलते थे, उतना ही मनोरंजनके लिये पर्याप्त होता था।

गुप्तजीमे एक बडी विशेषता थी, जो आजकल कम देखनेमे आती है। वह विशेषता यह थी कि, यदि वे किसी व्यक्तिके सम्बन्धमें कोई कटु बात लिखते तो भी उसका यह अर्थ नहीं था कि वह पारस्परिक शत्रुताका कारण बन जाय। सामने आनेपर उनके बर्तावसे उनके लेख-का कुछ भी प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता।

गुप्तजीके विषयमे बहुत कुछ लिखा जा सकता है। उनके चरित्रसे आधुनिक लेखकों और सार्वजनिक क्षेत्रमे काम करनेवालोंको अच्छी शिक्षा मिल सकती है। परन्तु दुर्भाग्यकी बात है कि, इस ओर लोगोंका ध्यान नहीं जाता। फिर भी, हम आशावादी है और अतएव आशा करते हैं कि, निकट भविष्यमे एक समय आवेगा, जब गुप्तजी जैसे अपनी मातृ-भाषाकी सेवा कर जानेवाले मनीषियोंके नामकी पूजा होगी।

१३

मधुर-संस्मरण

[साहित्यवाचस्पति प० जगन्नाथप्रसादजी शुक्ल वैद्य]

बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त उन पुरुषरत्नों में से थे जो स्वतंत्र उद्भावनी शक्ति रखते हैं, अपने संसारकी रचनाकी कल्पना स्वयं ही करते हैं और स्वयं ही उसका मार्ग निर्धारित कर उसका ताना-बाना बुनते और उसको सुसज्जित करते हैं। मस्तिष्कको उधेड़ बुन,—उसकी मानसिक चिन्ता ही ईमारतकी नींव होती हैं, स्वावलंबन-भित्तिकी दृढ़ता पर इमारतका बोझा रहता है, दृढ़ संकल्पकी धरण—और मैत्री-सहयोग-सहानुभूतिके पाटन द्वारा उसकी पूर्ति होती है। उद्योग और अध्यवसायके सामने ऐसे लोग असंभव समझी जाने-वाली परिस्थितिको भी संभवमें परिणत कर देते हैं। उत्साह, साहस और परिश्रमके सहारे स्वयं क्यासे क्या हो जाते हैं और अपने समयके संसारको अपने आदर्श और मार्ग प्रदर्शनसे घुमा-फिराकर इच्छानुसार परिवर्तित कर देते हैं और देखते-देखते उसे भी क्यासे क्या बना देते हैं। वे अपने समयके द्रष्टा और नियंता होते हैं। वे अपने निरंतर अध्यवसायके आदर्शसे अपने आसपासके लोगोंको भी अध्यवसायी और परिश्रमी बना देते हैं।

कौन कह सकता था कि एक दिन मियांजीकी चटशालमें फारसी—उर्दू सीखनेवाले बालक बालमुकुन्दका ऐसा परिवर्तन होगा कि, वह हिन्दीका सर्वश्रेष्ठ लेखक समझा जायगा !

आरम्भमें गुप्तजी उर्दूके ही लेखक थे। किन्तु आप समयके पारखी थे। आपने अपनी ऊँची कल्पना-शक्तिसे देख लिया कि जमाना पलटनेवाला है, हिन्दी मैदानमे आ रही है और वह पडाव मार लेगी। आपने हिन्दीका अभ्यास बढ़ाया। कालाकाकरके राजा रामपालसिंहके निकाले हुए हिन्दीके दैनिक पत्र "हिन्दुस्थान" के सम्पादकीय विभागमे आप प्रविष्ट हुए। वहाँ माननीय पं० मदनमोहन मालवीय और पं० प्रताप नारायण मिश्रके सत्सङ्गका आपने लाभ उठाया। उन दिनों प० अमृतलाल चक्रवर्तीकी फडकती हुई लेखनीके कारण "हिन्दी वङ्गवासी" का अच्छा नाम हो रहा था। वह हिन्दीका प्रभावशाली साप्ताहिक पत्र था। अतएव आप कलकत्ते जाकर "हिन्दी वङ्गवासी" मे सम्मिलित हुए, किन्तु आपकी कमनीय कीर्त्ति और सफलताका सूर्य "भारतमित्र" में पहुँचने पर ही चमका। बाबू बालमुकुन्द गुप्त स्वावलंबी होनेके साथ ही स्वाभिमानी पुरुष भी थे। आपको किसीकी खुशामद पसन्द नहीं थी। वङ्गवासी वालोंने चन्दा इकट्ठाकर 'धर्म-भवन'के नामपर अपना आफिस बनानेकी योजना आरभ की। गुप्तजीने इस सम्बन्धमे लेख लिखना नापसन्द किया और अस्वीकार किया अपने अभिन्न मित्र व्याख्यान-वाचस्पति प० दीनदयालु शर्माजीके विरुद्ध लेखनी उठाना।

वङ्गवासीसे मुक्त होकर आप "भारतमित्र" मे पहुँचे। भारतमित्र उस समयका शायद सबसे पुराना पत्र था, किन्तु अच्छी अवस्थामे नहीं था। आपके पहुँचते ही वह चमक उठा। हिन्दी-ससारने देखा कि बातकी बातमे भारतमित्र मैदान मारता और हिन्दी प्रेमियोंके हृदय पर अपना कब्जा जमाता जारहा है। गुप्तजीने भारतमित्रको ऐसा अपनाया कि वह उन्हींका पत्र समझा जाने लगा। भारतमित्रकी यथेष्ट उन्नति हुई और गुप्तजीकी कीर्त्ति-कौमुदी भी वहीं खूब विकसित

—खूब फली फूली। अन्ततक भारतमित्रसे आपका अटूट सम्बन्ध ।। गुप्तजीकी लिखावट कुछ उर्दू लहजेके साथ चुलबुलापन लिये ी थी। उनकी शैली उस समय एक आदर्श हो रही थी और वह की अपनी ही समझी जाती थी। विनोद-प्रियताका पुट होनेसे वह कसी हुईसी मालूम पड़ती थी। व्यंग्य और कटाक्षसे युक्त होनेके ण वह हृदयपटपर चोट भी करती और अपना स्थायी असर छोड़ ती थी। गुप्तजी संगठन करना जानते थे। आपने साहित्यिकोंका ह और संगठन प्रभावशाली रूपमें किया था। मित्र मण्डलीमें हित्यिक गति-विधिका निरीक्षणकर किस विषयमें किसे कैसा खना चाहिये, इसका निर्धारण होता था। तदनुसार भारतमित्रमें । लिखे जाते थे। वेही लेख हिन्दी-संसारमें तहलका मचा देते थे, आन्दोलनका स्वरूप बन जाते थे। इस प्रकार हिन्दीकी प्रगतिका ि साफ होता रहता था। गुप्तजी लिखते ही न थे बल्कि लिखनेवाले । भी करते थे और प्रतिभाशालियोंको उत्साह और बढ़ावा देकर मने लाते थे। पण्डित श्रीधर पाठक और प० महावीरप्रसाद द्विवेदी- भी गौरवान्वित करनेमें भारतमित्रका हाथ था। आप लोगोंकी वेताएं भारतमित्रमें छपा करती थी। पण्डित जगन्नाथ प्रसाद र्वेदीके कीर्त्तिविस्तारमें तो गुप्तजी ही प्रमुख कारण थे।

इतना होते हुए भी आप अनुचित बात अपने मित्रोंकी भी पसन्द ों करते थे और समय पर उसका तीव्र विरोध करनेमें भी नहीं कते थे। बङ्गवासीसे भारतमित्रमें आनेपर आपने धर्मभवनकी ळ खोलनी शुरू की। यद्यपि धर्मभवन बना, किन्तु आपके लेखोंके रण उसमें अड़चन भी आयी और उसके स्वरूप में भी धर्मभवनत्व यम रहा—वह पूरा आफिस नहीं हो सका। इस सम्बन्धमें आपने रतमित्रमें एक व्यङ्गय चित्र प्रकाशित किया था, जिसमें दिखलाया

गया था कि किस प्रकार धर्मभवनके लिये बड़े लोगोंको खुशामदसे वहकाकर पैसा लिया जा रहा है। एक राजाके पैरोंमें तेल मलते हुए अपील की जा रही थी—"तेला लगाऊँ फुलेला लगाऊं, अपने राजाकी मैं वलि-वलि जाऊँ।" नागरी-प्रचारिणी सभाने एक वार तय किया कि, पञ्चम वर्णका संयोग न कर विन्दी लगाकर ही काम निकाला जाय। यह वात आपको खटकी और आपने तुरन्त एक व्यंग्य चित्र निकाला, जिसमें हिन्दी वहुत ऊँचे पर वैठी थी और सभावाले सीढ़ी लगाकर और उसपर चढ़कर हिन्दीके माथेपर विन्दी लगा रहे थे। चित्रका हेडिंग था—हिन्दीमें विन्दी।"

वम्बईका "श्रीवेंकटेश्वर समाचार" सन् १९९६ में निकला था। और अच्छी उन्नति करता जा रहा था। पहले सम्पादक वा० रामदास वर्मा थे। उनके वाद महता प० लज्जाराम शर्मा सम्पादन कर रहे थे। मालिक मारवाड़ी और सम्पादक भी बूंदीके राजस्थानी थे। श्रीवेंकटेश्वर समाचारके किसी लेखसे विगड़कर गुप्तजीने भारतमित्रमें लेख लिखकर मज़ाक किया—"चीठी पाछी देणाजी"। यद्यपि पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजीसे आपकी मित्रता थी और आप उनकी काफी इज्जत करते थे, तथापि अनुचित वात द्विवेदीजीकी भी गुप्तजीको सहन नहीं हुई। द्विवेदीजीके 'अनस्थिरता' सम्वन्धी प्रयोगको लेकर भारतमित्रमें आलोचनात्मक लेखमाला आरम्भ हुई। दोनों ओरसे खूब लिखा-पढ़ी हुई। साहित्य-जगत्में अच्छी चहल-पहल रही। द्विवेदीजीके किसी लेखमें एक वाक्य था "सारीकी सारी"...., गुप्तजीने चट "सारीकी सारी" पर चोट करते हुए लिखा,—"नहीं, नहीं, वैसवारेका लहँगा।" काफी दिल्लगी रही। द्विवेदीजी वहुत अप्रसन्न हुए और 'कल्लू अल्हैत' की कवितामें उन्होंने क्रोधका उफान निकाला।

सरस्वतीके सम्पादकत्वसे जब बाबू श्यामसुन्दरदास हटे और द्विवेदीजी सम्पादक हुए, तब सरस्वतीमें बाबू श्यामसुन्दरदासका चित्र छापा गया और उसके नीचे लिखा गया—"मातृभाषाके प्रचारक विमल बी० ए० पास। सौम्यशील निधान बाबू श्यामसुन्दरदास" इसपर भारतमित्रमें पण्डित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीके नामपर गुप्तजीने विनोद छापा—पितृ भाषाके बिगाड़क, समल एफ-ए-फिस्स। जगन्नाथ-प्रसाद वेदी बीस कम चौबिस्स।" चतुर्वेदीजीके पिता व्रजके थे और चतुर्वेदीजी विहारमें ननिहालमें रहते थे, इसलिये पितृभाषाके बिगाड़क होनेका विनोद ठीक भी था और ऊपरी कविताका तुर्की-बतुर्की जवाब भी। एक बार ग्राहकोंकी शिकायत करते हुए सरस्वतीमें निकला "यद्यपि वेश सदैव मनोमोहक धरती हूँ। वचनोंकी बहु भाँति रुचिर रचना करती हूँ। उदर हेतु तिसपर न अलं पाती हूँ। हाय हाय आजन्म दुःख सहती आती हूँ।" सरस्वतीके नामपर ऐसे शब्द प्रयोग गुप्तजीको बहुत खटके। उन्होंने तुरन्त लिखा—'हाय हाय सरस्वतीको बाजारू औरत बना दिया।'

गुप्तजीमें ऐसी उद्भावनी शक्ति थी कि वे पत्रको प्रभावशाली और मनोरम बनानेके उपाय निरन्तर करते रहते थे। दशहरेके समय पत्रका विशेषाङ्क निकालकर शक्तिपूजा आदिपर प्रभावशाली लेख लिखते थे और साँझी और टेसूके नामसे कविता देकर आधे वर्षकी घटनाओंकी विनोदात्मक आलोचना करते थे। साहित्यिक और राजनैतिक पुरुषों-के कार्योंकी विनोदात्मक ही देखभाल होती थी। ऐसे अङ्ककी खूब धूम मच जाती थी, इसके बाद होलीमें फिर नम्बर आता था। खूब कस-कस कर विनोदात्मक पिचकारीकी चोटेंकी जाती थी। विविध प्रकारकी आवाजकशीकर गुलाली कुम-कुमे चलाये जाते थे। सारा पत्र होलीके रङ्गसे शराबोर निकलता था। यहाँ तक कि समाचार भी

वैसे ही होते थे, जैसे—बाबू गोपालरामकी डबल बीवी निकल गयी आदि। भारतमित्र ही नहीं, उनदिनों सभी पत्रोमे नवरात्र और होलीके समय लेखोंकी ऐसी ही चहल-पहल रहती थी। आजकल तो लेखकोंकी गंभीरता समझिये या असमर्थता,—परन्तु वह झलक दुर्लभ होगयी है।

'गुप्तजी मनुष्य है'—यह वाक्य स्वर्गीय पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीका है। गुप्तजी मित्रता निभाना जानते थे। प० दीनदयालुजी शर्मासे उनकी मित्रता आजन्म खूब निभी। पण्डित माधवप्रसाद मिश्रसे भी उनकी मित्रता थी। मिश्रजी यों तो बहुत दयालु और कोमल प्रकृतिके सहृदय मनुष्य थे, किन्तु क्रोधयुक्त होने पर बहुत उग्र और कठोर हो जाते थे। मेरी सहनशीलता और क्षमाशीलता देख वे बिगड उठते और कहते कि शुक्लजी आप उन द्रोणाचार्यकी सन्तान है, जो 'शापादपि शरादपि'से प्रतिद्वन्दीको परास्त करनेकी शक्ति रखते थे। वह ब्राह्मण कैसा, जो अपने आशीर्वादसे निहाल न करदे और क्रोधसे परशुरामके समान संहारलीला न मचादे। अपनी इस प्रकृतिके कारण मिश्रजी भीतर ही भीतर गुप्तजीसे बीचमे कुछ नाराज होगये थे। टेसूका समय था। मिश्रजी बम्बई आये हुए थे। उन्होने टेसू सम्बन्धी एक कविता श्रीवेंकटेश्वरमे छपनेको दी। उसमे देशके अन्य व्यक्तियोंके सम्बन्धमे व्यङ्ग्य करते हुए एक चोट बाबू बालमुकुन्द पर भी की गयी थी। गुप्तजी गुडियानीके निवासी थे। उस कविताका एक अंश था। "गुडियानीके गुडके आगे। चलती मिश्री सीस नवाके।" मुझे तो उनकी नोंकझोंकका मालूम था। किन्तु उन दिनो श्रीवेंकटेश्वरमे प० अमृतलाल चक्रवर्ती भी आगये थे। सेठ खेमराजजीको कविता सुनकर कुछ खटका तो हुआ किन्तु कविता छपगयी। चक्रवर्तीजी पहले कुछ समझ न सके। जब पीछे बात समझमे आयी, तब उद्विग्न होकर कहने लगे ... "शुक्लजी!—गुप्तजी मनुष्य है।" बात यह थी कि यद्यपि बा० बाल-

मुकुन्द गुप्त बङ्गवासीसे नाराज होकर चले आये थे और साधारणतः यह समझा जा सकता था, कि वे प० अमृतलाल चक्रवर्तीजीसे अप्रसन्न होंगे किन्तु जब प० अमृतलालजीका बङ्गवासीसे सम्बन्ध टूटा और बहु परिवारवाले होनेके कारण चक्रवर्तीजी आर्थिक कष्टसे दुखी हुए तब गुप्तजीने उन्हें भारतमित्रमें बुला लिया। एकवार पं० अमृतलाल चक्रवर्तीको कर्जके कारण जेल जाना पड़ा था। उस समय भी गुप्तजीने ही उनकी सहायता की थी। चक्रवर्तीजीके कोमल और भावुक हृदय पर इतना गहरा और अमिट प्रभाव गुप्तजीके वर्त्तावका पड़ा कि वे गुप्तजीके लिये कहते कि "गुप्तजी मनुष्य हैं।"

जब मैं श्रीवेङ्कटेश्वरका सम्पादक था, तब एकबार खाली रहनेके कारण पण्डित अमृतलाल चक्रवर्तीजी भी बुला लिये गये थे। श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस, पुस्तकालय और पत्र-विभागकी चिट्ठियाँ एक साथ आती थीं। सेठजीके मैनेजर या प्राइवेट सेक्रेटरी एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे उन्हें चिट्ठियाँ सुनाते और उनपर उत्तर या आज्ञा नोट करते जाते थे। पत्र-विभागकी चिट्ठियाँ तो प्रायः यों ही आ जाती थीं। किन्तु एकवार कहींसे कोई छपनेके लिये पत्र आया। उसपर नोट चढ़ाया गया— "आज्ञा श्रीमान्,—छापो।" मुझे यह खटका और मैंने पत्र चक्रवर्तीजी को भी दिखलाया। वे भी उत्तेजित हो उठे। अन्तमें उसपर यह नोट चढ़ाकर पत्र प्रेस-विभागमें वापस कर दिया गया, कि "आज्ञा होनेके कारण सम्पादकीय स्वातन्त्र्यपर आघात होता है, अतएव यह नहीं छापा जायगा।" इस बातको लेकर बड़ा तूमार बँधा। तरह-तरहकी चर्चा छिड़ने लगी और सेठजीको भड़काया जाने लगा। फल यह हुआ कि हम दोनोंने कह दिया कि, "जब तक भविष्यमें आज्ञा न देनेका वचन नहीं दिया जायगा, तब तक हमलोग काम नहीं करेंगे।" चक्रवर्तीजीपर प्रेसका कुछ कर्ज था, उसे पटाये विना वे घर नहीं जा सकते थे।

श्री प० सखाराम गणेश देउस्करकी बंगला पुस्तक "देशेर कथा" का हिन्दी अनुवाद प० माधवप्रसादजी मिश्र करना चाहते थे और श्रीवेंकटेश्वर प्रेसमें सेठजीने उसे छापना स्वीकार भी कर लिया था। मिश्रजीने उसे आरम्भ कर कुछ ही पृष्ठ लिखे थे। चक्रवर्तीजीने चाहा आगे हम करें किन्तु वे भी कर न सके। अन्तमें मैंने पुस्तकका पूरा अनुवाद किया। किन्तु चक्रवर्तीजीको ऋणमुक्त करनेके लिये कहा गया कि, इसका अनुवाद इन्होंने किया है। इस प्रकार चक्रवर्तीजी तो ऋणमुक्त होकर घर चले गये। मैं कामकी खोजमें वहीं रहा। अन्तमें सेठजीने कोई उपाय न देख यह वचन दे दिया कि अब हम आज्ञा नहीं देंगे। यद्यपि मामला निपट गया तो भी सेठजीको यह बात लग गई। उन्होंने लिखा-पढ़ी करके बा० बालमुकुन्द गुप्तको बुलाया। गुप्तजी बम्बई आये और कई दिनों तक वहाँ रहकर सेठजीसे बात-चीत करते रहे। सेठजीसे उनकी क्या बात हुई, यह तो मालूम नहीं, किन्तु मुझसे उन्होंने कहा—"गरियार बैल घुसाकर जोता जाता है।" सम्पादकका गौरव और उसकी स्वतन्त्रताका मूल्य न तो सेठजीके सलाहकार समझ सकते हैं और न सेठजी ही सीधे रूपमें इसे मान सकते हैं। अतएव कौशलसे काम लेते हुए इस कहावतपर ध्यान रखना चाहिये। गुप्तजी यह पसन्द नहीं कर सकते थे कि अपने एक सहयोगीकी प्रतिद्वन्द्विताामें, सो भी उसके अधिकार-रक्षणके विवादमें हम आड़े आवें। यह गुप्तजीकी महानुभावता थी।

गुप्तजी आजीवन अपने स्वतन्त्र विचार, उच्चाभिलाप, आदर्श सम्पादकीय धर्म और कर्तव्यनिष्ठापर आरूढ़ रहे। उनके विशाल हृदयका प्रभाव उनके मिलनेवालोंपर तुरन्त पड़ता था। वे अपने समयके एक सूक्ष्म-द्रष्टा और नियन्ता थे। सम्पादकीय इतिहासमें उनका नाम अमर कीर्त्तिके साथ लिखा रहेगा।

१४

मर्दे मैदाँ गुप्तजी

[श्री० पण्डित ज्वालादत्तजी शर्मा]

मुझको है मुल्कसे न ज़रो मालसे ग़रज़
रखता नहीं मैं दुनिया के जजाल से ग़रज़
है इल्तजा यही कि अगर तू करम करे
वह बात दे ज़ुबां में कि दिल पर असर करे

गुप्तजीका जीवन इन पद्योंके अनुरूप था। वे विशुद्ध साहित्यिक थे। साहित्यको लेकर ही उनका सारा कारोबार था, उसीके वे स्वप्न देखते थे और उसीमें वे खुद शराबोर रहते थे और जब चाहते थ अपनी सुन्दर कल्पनाओं, चुभते वाक्यों और रसपूर्ण युक्तियोंसे दूसरोंको शराबोर कर देते थे। उनका नाम आते ही ग़ालिब-का यह शेर स्मरण हो आता है :—

ज़ुबाँ पै बारे खुदाया य' किसका नाम आया
कि मेरे नुत्क़[1] ने बोसे मेरी ज़ुबाँ के लिये

उन्हींकी मृत्युके लिये मानो कोई कवि पहले हीसे कह गया था :—

इक मग फरत करे अजब आज़ाद मर्द था

उनकी मर्दानगीके वे सब क़ायल हैं, जिन्होंने उनको बर्ता था या जिन्हें उनके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी जैसी चमकती और उज्ज्वल-प्रतिभा उस समय भी किसीमें दिखाई नहीं देती थी और उनके बाद अबतक भी किसीमें दिखाई नहीं दी, मानों हालीके शब्दोंमें ग़ालिबके मिससे उन्हींका चित्र खींचा गया है और इसके प्रमाण वे

१ वक्तृत्व-शक्ति।

सहृदय व्यक्ति हैं, जिन्होंने गुप्तजीके लेखोंको मनोयोगसे पढ़ा है अथवा जिन्हें उनके साथ रहनेका सुयोग प्राप्त हुआ है :—

बुल बुले हिन्द मर गया है हात[1]
जिसकी थी बात बातमें इक बात
नुक्तादा[2] नुक्ता सज नुक्ता शनास
पाक दिल पाक ज़ात पाक सिफ़ात[3]
लाख मजमूँ और उसका एक ठठोल
सौ तकल्लुफ और उसकी सीधी बात
एक रोशन दिमाग था न रहा
शहरमें इक चिराग था न रहा
नक़दे मानी[4] का गजदाँ[5] न रहा
ख़ाने मज़मूँ[6] का मेज़बाँ[7] न रहा
कोई वैसा नज़र नहीं आता
वो ज़मी औ' वो आस्मा न रहा
साथ उसके गई बहारे सखुन[8]
अब कुछ अन्देशए—खिज़ाँ[9] न रहा
खाकसारों[10] से खाक सारी थी
सर बुलन्दों[11] से इक सार[12] न था
था बिसाते सखुन[13]में शातिर[14] एक
हमको चालें बतायेगा अब कौन
अब न दुनियामें आयेंगे ये लोग
कहीं ढूँढे न पायेंगे ये लोग

---

१ शोक। २ मर्मज्ञ। ३ गुण। ४ अर्थकोश। ५ स्वामी। ६ साहित्य स्थाली। ७ आतिथेय। ८ साहित्यश्री। ९ पतझड़का भय। १० विनम्र। ११ अभिमानी। १२ दीनता। १३ शब्दोंकी शतरज। १४ चतुर खिलाड़ी।

उठ गया था जो मायेदार-सखुन१
किसको ठहराये अब मदारे-सखुन२
मज़हरे शान३ हुस्ने फ़ितरत४ था
मानिये लफ़्ज़ आदमीयत५ था

ग़ालिबके बाद यदि किसी एक व्यक्तिमें हालीकी कविताके ये पद्य चरितार्थ होते हैं तो निस्सन्देह गुप्तजीमें। भारतमित्र-सम्पादनके समय महानगरी कलकत्तामें वे वर्षों रहे और बड़े-बड़े धनिक और स्वार्थी सेठ उनसे मिलने और उन्हें अपने मकान पर बुलानेके लिये बहुत लालायित रहे, किन्तु साहित्यके शैदा और भाषाके धनी गुप्तजीको उनसे मिलनेकी भी फ़ुर्सत या इच्छा नहीं थी, उनके घर जानेकी तो कौन कहे। किन्तु अपने दफ्तरके चपरासीके साथ उनका वह सहृदयतापूर्ण व्यवहार रहता था जो आजकलके स्वार्थी-युगमें पूँजीपति वृकोदरोंका अपने रिश्तेदारोंके साथ भी नहीं रहता। जब कि आजकलका साहित्यिक धनीवर्गके इशारे पर नाचता ही नहीं, बल्कि उस वर्गके पीछे-पीछे फिरनेमें ही अपना परम सौभाग्य समझता है। वे लोग बाज़ारकी शाक-भाजीकी तरह साहित्यकोंको अपना मतलब निकालनेके लिये जब चाहें ज़रासे इशारे पर खरीद लेते हैं। इसका यह मतलब नहीं है कि आजकल कोई भी मनस्वी साहित्यिक नहीं है, होंगे किन्तु अपवादरूप और आदर-सत्कार पाने पर उसके मूलमें जो छिपा हुआ काँटा है, उसे टटोलनेवाले साहित्यिक और भी कम हैं। उस आदरको प्राप्त करनेकी चेष्टामें पागल हुए साहित्यिकोंकी आज कमी नहीं। कोई फ़िल्मी सेठोंके चक्करमें है तो कोई काला-बाजारी-सेठोंका गुर्गा है और कोई स्वार्थ-सिद्धिके लिये

१ साहित्यका धनी। २ साहित्यमें अग्रणी। ३, ४ प्रकृति सौन्दर्यका निदर्शक। ५ मनुष्यता शब्दका अर्थ था।

शासक-वर्गकी चापलूसीकी नई-नई कल्पनाएं सोच रहा है, किन्तु हमारे गुप्तजी ऐसे मर्दे मैदाँ थे कि उन्होंने कभी धनी-वर्गको मुँह नहीं लगाया। धनके लिये उनके जी में कोई आकर्षण नहीं था। गुप्तजी पर हाफ़िज़का यह मशहूर शेर खूब फबता है :—

बिरौ ईंदाम बर मुर्गे दिगर नेह
कि अन्क़ारा बुलन्दस्त आशियाना

इसका यह आशय है—अन्क़ा नामका गरुड़की तरह माना हुआ शक्तिशाली पक्षी चिड़िया पकड़नेवाले बहेलियेसे कहता है कि तू अपना जाल चिड़ियोंके लिये ही फैला मेरी ओर ध्यान मत दे, मैं बहुत ऊँचा उड़नेवाला पक्षी हूँ, तेरा जाल वहाँतक नहीं पहुँच सकता।

आजकलकी अर्थान्धानुकरण और अर्थशोषण-नीतिको देखते हुए कविवर नासिखका एक सुप्रसिद्ध शेर याद आ जाता है, जिसे उन्होंने अपनी उत्तम कविताके नमूनेके तौरपर एक विलायती समालोचकको सुनाया था और जिसने सुनकर कहा था कि अकेले इसी शेरको कहकर नासिखका महाकवित्व सुरक्षित है—

नाविकने तेरे सैद न छोड़ा जमानेमें
तड़पै है मुर्ग क़िब्लेनुमाँ आशियानेमें

अर्थात् उसके तीरने यानी धनके तीरने बिना बींधे किसीको भी न छोड़ा। दिक्सूचक यन्त्रके भीतर पड़ी मछली जो तड़प रही है जिन्दा मछलीके धोखेमें उसके भी तीर जा लगा है। इसीलिये गरीब तड़प रही है याने जीते जी तो धनकी मृग-मरीचिकामें आदमी मारा-मारा फिरता ही है, मरनेके बाद भी उसके वारिस किसी पूंजीपतिका कृपापात्र बताकर उसकी अन्त्येष्ठि किया करते हैं, यह है मुर्दा मछलीका तड़पना।

गुप्तजीकी प्रतिभाका विकास पहले उर्दूके साहित्यमें हुआ। इधर-उधरके साधारण पत्रोंमें लिखकर उन्होंने फिर उस साहित्यमें वह नाम

और प्रवीणता प्राप्त की जो उस समयके उर्दू-साहित्यके बड़ेसे-बड़े महारथीको प्राप्त थी। लखनऊके सुप्रसिद्ध व्यंग्य पत्र 'अवध पञ्च' के वे स्थायी लेखकोंमें थे और उनके चुटकियों और गुद-गुदियों भरे लेखोंके लिये उस समयका उर्दू साहित्य-समाज लालायित और तरसता रहता था। हिन्दीमें आनेके बाद भी और हिन्दीमें भी वही अनोखा और ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेने पर भी अपने उर्दू साहित्यिक-मित्रोंके प्रेमके कारण वे कभी-कभी जो कुछ उर्दूके पत्रोंमें लिख दिया करते थे, वह बहुत ही सुन्दर और मनोहारी होता था। उस समयके उनके अनेक सुचिन्तित और सुपाठ्य लेख कानपुरके 'जमाना' पत्रमें प्रकाशित हुए हैं। 'अवध-पञ्च' के सम्पादक अपने अन्तिम दिनोंमें बहुत काल तक पक्षाघात रोगके कारण शय्यारूढ़ रहे थे। उस समय गुप्तजीने अपने सम्पादक मित्रकी सहायताके लिये बहुत काल तक 'पञ्च' के दीपकको प्रज्ज्वलित रखा था। साहित्य जगत्‌में इस तरहकी वज़ादारी और मित्रों पर कृपा करनेका दृष्टान्त बहुत कम मिलता है। संसारके श्रेष्ठ उपन्यासकारोंकी पंक्तिमें बैठनेका सम्मानपूर्ण स्थान पानेवाले भारतके गौरव और बंगलाके सर्वस्व शरद्‌चन्द्र चट्टोपाध्यायके जीवनमें भी हमें इस तरहकी बात मिलती है। उन्होंने भी अपने मित्रकी पत्रिका 'यमुना' को उठानेके लिये बहुत दिनोंतक अपने नामसे और अन्य कल्पित नामोंसे भी प्रत्येक अंकमें अनेक लेख लिखे थे। गुप्तजी साहित्यमें व्यंग्यकी कलाके बहुत ही अच्छे जानकार थे। 'अवध-पञ्च' के लेखोंमें उनकी इस कलाका पूरा निदर्शन होता है और यही कारण है कि हिन्दीमें जब उनके 'चिट्ठे' और 'अनस्थिरता' विषयक लेख प्रकाशित हुए, तब उस समय साहित्यमें चकाचौंधसी आ गई और आज भी उनके वे लेख उस दृष्टिसे अनोखे ही बने हुए हैं।

हिन्दीका बड़ा दुर्भाग्य है कि ऐसी विभूति ४१ वर्षकी अवस्थामें ही अपना चमत्कार दिखाकर विलीन होगई। यदि गुप्तजी कमसे कम

बीस वर्ष और जीते रहते तो हमें आशा है बल्कि विश्वास है कि उनके द्वारा हिन्दीकी बहुत श्रीवृद्धि होती और वे हिन्दीमें और कुछ ऐसी चीजें छोड़ जाते जिन्हें हिन्दी भाषा-भाषी बड़े गौरवकी वस्तु समझते।

उनकी भाषा ऐसी सुन्दर, घुटी हुई और मुहावरेदार होती थी कि उस तरहकी भाषा हिन्दी-साहित्यमें बहुत कम जगह मिलती है। उसमें शब्दोंका आडम्बर बिल्कुल नहीं होता था। सीधे-सादे शब्दोंमें उतार-चढ़ावसे वह रंगत और रौनक पैदा कर देते थे जो उन्हींका हिस्सा थी और दुःख है उनके बाद वह रौनक भी विदा होगई। एक अंगरेजी साहित्यकारने लिखा था कि क्लिष्ट शब्दाडम्बरपूर्ण भाषा एक मूर्ख भी लिख सकता है किन्तु सरल और हृदयमें पैठनेवाली भाषाका लिखना किसी आचार्यका ही काम है। साहित्यकारका यह वाक्य यदि किसी परीक्षा-पत्रमें आये और उसका सच्चा और अकेला दृष्टान्त पूछा जाय तो उत्तर—"बाबू बालमुकुन्द गुप्त" होगा। उन्हें जो बात लिखनी होती थी, वह उसे ऐसे अनोखे और सीधे-सादे ढंगसे लिख जाते थे कि वह पाठकके लिये बहुत ही उपभोग्य वस्तु हो उठती थी। उन्हींकी तरह मार्मिक और व्यंग्यके अनोखे और अलौकिक कवि नील-कण्ठ दीक्षितने नीचे लिखे पद्यमें मानो अपना और लगभग ३०० वर्ष बाद पैदा होनेवाले गुप्तजीका अगाऊ चित्र खींच दिया है—

यानेव शब्दान् वयमालपामः,
यानेवचार्थान् वयमुल्लिखामः।
तैरेव विन्यास विशेष भव्यैः,
*सम्मोहयन्ति कवयो जगन्ति ॥**

* जिन शब्दोंको हम (साधारण जन) बोला करते हैं और जिन अर्थोंका हम उल्लेख किया करते हैं, उन्हीं शब्दों व अर्थोंका चामत्कारिक ढङ्गसे प्रयोग करके कवि लोग संसारको मोहित कर लेते हैं।

१५

खरे पत्रकार

[पण्डित रामनारायणजी मिश्र बी० ए०]

जब मैंने कालेजकी पढ़ाई समाप्त की थी, तब लार्ड कर्जनका जमाना था। उनकी कार्रवाइयोंसे चारों तरफ हलचल मच गई थी। उसी समय "शिवशम्भुके चिट्ठे" भारतमित्रमें छप रहे थे। चन्द्रकान्ताके रचयिता बाबू देवकीनन्दन खत्रीका घर काशीके साहित्य-सेवियोंकी बैठक थी। एक दिन उसमें शिवशम्भुके चिट्ठे वाला एक लेख पूरा मुझे पढ़कर सुनाया गया। उसी दिन पता लगा कि श्रीबालमुकुन्दजी गुप्त कितने निर्भीक और खरे पत्रकार हैं। उनके नामसे तो मैं पहले ही से परिचित था पर उस दिनसे उनके प्रति मेरे मनमें आदर और श्रद्धाका भाव पैदा हो गया।

कुछ दिनोंके बाद जब पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनसे हिन्दी व्याकरणके विषयमें नोंक-झोंक चल रही थी तब उनके लेख पढ़नेका फिर सौभाग्य प्राप्त हुआ। मातृभाषाके दो महारथी उत्तर-प्रत्युत्तर लिखकर साहित्य-चर्चा कर रहे थे। मुझे वे दिन भी याद आ गये, जब पण्डित माधवप्रसाद मिश्रने "सुदर्शन" पत्रमें पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीसे बहस छेड़दी थी।

गुप्तजीसे वाद-विवाद करना टेढ़ी खीर थी। उनके शब्दोंका प्रवाह, उनकी आकर्षक लेखन-शैली और कटीली दलील अद्भुत थी। हिन्दी, बंगला, उर्दू आदि भाषाओं पर उनका इतना अधिकार था कि हिन्दी लिखनेमें भी वे इन भाषाओंके शब्दोंका बड़े मौकेपर प्रयोग कर देते थे।

उर्दू-लेखक गुप्तजीकी हिन्दीकी तरफ रुचि महामना पण्डित मदन-मोहन मालवीयजी के कारण हुई थी, जो उन्हें राजा रामपाल सिंहके हिन्दोस्थान पत्रमें उसका सम्पादन करने ले गये थे। जब मालवीजीने वकालत पास करनेके बाद हिन्दोस्थान पत्रका सम्पादन छोड़ दिया, तब उक्त राजा साहब स्वयं कांग्रेसी होने पर भी गुप्तजीकी उस समयकी सरकारकी कड़ी आलोचनासे घबरा गये। उस समय कांग्रेसमें गर्म दलका प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, पर बालमुकुन्दजी मालूम होता है उसके अग्रदूत थे।

उनके लेखोंमें काशी नागरी प्रचारिणी सभाका भी कई जगह जिक्र आया है। सन १६०५ में सभाने हिन्दीके अन्तर्प्रान्तीय प्रचारार्थ एक उत्सव किया था, जिसके सभापति थे अवसर प्राप्त आई० सी० एस श्री रमेशचन्द्र दत्त और जिसमें अन्य वक्ताओंके अतिरिक्त लोकमान्य प० बालगंगाधर तिलकने भी भाषण दिया था। मैं उस उत्सवमें उपस्थित था, पर उसके सम्बन्धमें जितना गुप्तजी लिखगये हैं उतना तो सभाकी वार्षिक रिपोर्टमें भी नहीं है।

वे सिद्ध-हस्त पत्रकार थे। अपने समयकी प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण बातों पर ओजपूर्ण लेख लिख डालते थे। कलकत्ता हाई कोर्टके यशस्वी जज श्रीसारदाचरण मित्रने "एक लिपि विस्तार परिषद्" स्थापित की थी और "देवनागर" मासिक पत्र निकाला था। उनकी योजना यह थी कि गुजराती, बंगाली, मराठी उड़िया भाषाएँ देवनागरी लिपिमें लिखी जायें। वह योजना बड़ी व्यापक थी। भारतीय एकीकरणके लिये वह अब भी बड़ी लाभदायक है। उस योजनामें गुप्तजी स्वर्गीय जज श्री सारदाचरणजीके साथ थे। गुप्तजी समय-समय पर विनोदपूर्ण कविताएँ भी लिखते थे, जो उनके गद्यकी तरह ही सरल और सरस होती थीं। वे एक निर्भीक और खरे पत्रकार थे।

१६

श्रद्धांजलि

[सा० वा० डाक्टर मैथिलीशरणजी गुप्त]

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तजी उन दिनों असमयमें ही अपनी जीवन-यात्रा पूरी कर रहे थे, जिन दिनों मैंने अपनी साहित्य-सेवा आरम्भ की थी। उनके लिये मेरे मनमें तब भी बड़ा सम्मान था और वह आज भी वैसा ही बना है। उन दिनों वे 'भारतमित्र'का सम्पादन करते थे। हमलोग उत्सुकतापूर्वक प्रति सप्ताह उसकी प्रतीक्षा किया करते थे। यदि कभी उसके आनेमें एक-आध दिनका विलम्ब हो जाता था, तो उस दिनकी डाक सूनी-सी लगती थी।

'भारतमित्र' में भी अपनी रचना छपानेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सका था। एक बार दिवालीके अवसर पर मैंने कुछ पद्य लक्ष्मी-पूजन पर लिखकर उन्हें भेजे थे। तबतक मैंने बोलचालकी भाषामें लिखनेका प्रयास प्रारंभ नहीं किया था। परन्तु जो भाषा मैं पद्योंमें व्यवहार करता था, उसे ब्रजभाषा भी कैसे कहूँ? मुझे बड़ा भरोसा था कि मैंने गणवृत्तोंका प्रयोग किया है। परन्तु बाबू बालमुकुन्दजी पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और उन्होंने मुझे स्पष्ट लिख भेजा था कि "कविता लिखनेका यह ढंग बड़ा वाहियात है। देखूंगा, यदि छाप सका।" परन्तु दो-चार दिन पीछे बिना छापे ही उन्होंने वे पद्य एक लिफाफेमें रखकर मुझे लौटा दिये। फिर कुछ लिखनेका मुझे साहस न हुआ। वे पद्य न जाने कहाँ गये। एक चरण भी मुझे स्मरण नहीं। परन्तु ये शब्द वैसेके वैसे मेरे भीतर लिखे हैं—"कविता लिखनेका यह ढंग बड़ा वाहि-

बात है।" बात उनकी ठीक थी, यह मैं सच्चे मनसे मानता हूँ। तथापि यह भी यथार्थ है कि इससे मैंने अपना उत्साह नहीं छोडा, भले ही वह मेरा दुस्साहस रहा हो।

ठीक यही गति मेरी पूज्य आचार्य द्विवेदीजी महाराजके निकट हुई थी। उन्होंने मेरे पद्य 'सरस्वती' में छाप तो दिये, परन्तु उनमे इतने संशोधन हुए थे कि वस्तुत वे उन्हींके हो गये थे। उन्होंने मुझे लिखा भी था—'आपने इन्हें थोड़े समयमे लिखा होगा, पर इन्हें ठीक करनेमे हमे तीन-चार घंटे लग गये।'

इन्हीं दिनो "भाषा और व्याकरण" पर आचार्य महोदयने 'सरस्वती' मे एक लेख छापा था। बाबू बालमुकुन्दजीने उसपर 'आत्माराम' के नामसे एक उपहासमूलक लम्बा लेख 'भारतमित्र' के कई अंशोमे लिखा। यह विवाद बहुत दिनोतक चला था और उस समयके अनेक पत्रोंने उसमे भाग लिया था। 'हिन्दी बगवासी' मे भी 'आत्मारामकी टें टें' के नामसे उसके उत्तरमे एक लम्बी लेखमाला निकली थी। स्वयं आचार्य द्विवेदीजी भी क्षुब्ध हुए थे। उनका कहना था कि यदि हमारे लेखमे अशुद्धियाँ है तो इससे तो और भी एक अच्छे व्याकरणका अभाव प्रकट होता है। आचार्य महोदयने अपने लेखमे अनेक लेखकोंके लेखोंसे भूलोंके उदाहरण दिये थे। बाबू बालमुकुन्दजीने स्वयं उनके लेखमे भूल दिखाते हुए उनकी हँसी उडाई थी। परन्तु बाबू बालमुकुन्दजी विनोदशील होनेपर भी अनुदार नहीं थे। 'सुदर्शन' के सम्पादक और हिन्दीके तेजस्वी लेखक पंडित माधवप्रसाद मिश्रके निधन पर उन्होंने जो लेख लिखा था उससे सिद्ध होता है कि विरोधी रहने पर भी मिश्रजीके प्रति उनमे कितनी हार्दिकता थी।

भाषा उनकी मँजी हुई और गतिमति होती थी। उनके कुछ प्रशसकोंकी रायमे इसका कारण यह था कि वे पहले उर्दूके लेखक थे। पता

नहीं, यह उनकी प्रशंसा है किंवा उनकी योग्यताका अपमान। उर्दूके कितने ज्ञाता उनकी ऐसी हिन्दी लिख सके हैं? हाँ, यह बात अवश्य कही जा सकती है कि उनका विनोद अथवा मज़ाक कभी-कभी उर्दू—लश्करी अथवा बाजारू ढंगका हो जाता था। एकबार कुछ लेखकोंकी पुस्तकोंकी प्राप्ति स्वीकार उन्होंने इस प्रकार की थी—

पंडित किशोरीलाल गोस्वामीकी —'मस्तानी'

पंडित लज्जाराम शर्माकी—'स्वतन्त्र रमा और परतन्त्र लक्ष्मी' इत्यादि।*

अपनी कविताओंको नम्रतापूर्वक वे तुकबन्दियाँ कहते थे, वे क्या जानते थे कि आगे चलकर हमलोग बेतुकी हाँकेंगे।

किसी उर्दू-लेखकने उर्दूकी ओरसे हिन्दीके विरोधमें बड़े लाटसे फरियाद की थी—

बड़े लाट साहब, सताई हूँ मैं,
तेरे पास फरियाद लाई हूँ मैं।

इस पर बालमुकुन्दजीने लिखा था —

न बीबी, बहुत जीमें घबराइए
सँभलिये जरा होशमें आइए।
सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है,
....
कहाँ सौत? मत सौतका नाम लो,
....

* यह विनोद खास तौरपर होलीके उपलक्षमें किया गया था। होलीके अवसर पर इससे भी बढ़े-चढ़े मज़ाक होते रहे हैं। उनके उदाहरणोंकी कमी नहीं है। सम्पादक।

चढ़ो गोदमें मिस्ल मादर है यह।

....

उन दिनों सनातन-धर्म और आर्य-समाजके वाद-विवाद भी हुआ करते थे। इस सम्बन्धकी उनकी एक हँसीकी रचना इस प्रकार है—

अल्ला गाड औ निराकारमें भेद न जानो भाई रे,
इन तीनोंको अपने मनमें मानो भाई भाई रे!
गाड कभी मूरत ना पूजी अल्लाने तुड़वाई रे,
निराकारने गाली देकर सारी कसर मिटाई रे,

....

'शिवशंभुके चिट्ठे' नामक उनके राजनीतिक-लेख आज भी पठनीय हैं। उनसे उनके विनोदका ही परिचय नहीं मिलता, उनकी निर्भयता और तेजस्विता भी प्रकट होती है, जो उनके लिये संकटापन्न स्थिति भी उत्पन्न कर सकती थी।

निस्सन्देह वे एक सजीव पुरुष थे। मैं हृदयसे उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करता हूँ।

१७

भारतके सच्चे मित्र गुप्तजी

[साहित्यवाचस्पति पण्डित लोचनप्रसादजी पाण्डेय]

बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दीके अन्यतम निर्माता माने जाते हैं। उनकी लेखनीमें गजबका बल था। वे भारतके एक सच्चे मित्रके तुल्य समस्त भारतकी तथा भारत-भारती हिन्दीकी अनुपम सेवा कर अपनेको अमर कर गये हैं। वे गद्य-पद्य उभयके उच्च कोटिके सुलेखक और निर्भीक सत्यप्रिय समालोचक थे। क्या साहित्य-क्षेत्रमें, क्या सामाजिक एवं धार्मिक सुधारके कार्योंमें, क्या राष्ट्रीय आन्दोलन एवं नव-जागृति सम्बन्धी उद्योगोंमें उनका प्रमुख हाथ रहा।

जब गुप्तजी 'भारतमित्र' के सम्पादक थे, तब सन् १६०६ के दिसम्बरके अन्तिम सप्ताहमें मुझे उनके प्रथम दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। बात यह हुई कि श्रीगुप्तजीकी रचनाओंके परम प्रशंसक मेरे मातुल एवं काव्य-गुरु रायगढ़ निवासी पूज्य प० अनन्तराम पांडेय 'अनन्त कवि' महोदय कांग्रेसके लिये कलकत्ते आये हुए थे। मैं भी पूज्य पिताजीके साथ उसी अवसर पर कलकत्ते पहुँचा। जब वे गुप्तजीसे मिलने गये, तब मुझे भी अपने साथ लेते गये। जब हमलोग 'भारतमित्र' कार्यालय (मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट) में पहुँचे तब पता लगा कि गुप्तजी बाहर गये हुए हैं। हमलोग उनके वापस आने पर मिलनेके लिये वहाँ ठहर गये। इस बीचमें प० देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए० (जिन्होंने एक बार सन् १६०६-१० में सरस्वती-पत्रिकाका सम्पादन-भार सम्हाला) तथा पं० सरजूप्रसाद त्रिपाठी एम० ए० भी उनसे मिलनेको वहाँ आये।

वह समय कलकत्तेके लिये बड़ी भीड़-भाड़ और उत्साह-उत्तेजनाका था। वयोवृद्ध श्रीमान् दादाभाई नौरोजीके सभापतित्वमें जातीय महासभा (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) का अधिवेशन चालू था। भारतवन्द्य सभापतिने अपने भाषणमें "स्वराज्य" शब्दका सर्वप्रथम प्रयोग करके यथा समय उसकी स्थापनाको महासभाका चरम लक्ष्य बतलाया था। अंग्रेजी, बंगला और हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें कांग्रेसके अधिवेशन और उसमें प्रदत्त अभिभाषणों एवं प्रस्तावोंकी चर्चा जोरोंसे थी। ऐसे वातावरणमें सर्वत्र एक उत्सुकतापूर्ण पारस्परिक मिलन सम्भाषणकी उत्कंठाका होना स्वाभाविक था। सामान्य परिचय, शिष्टाचार, कुशल-सम्भाषणके पश्चात् हमलोग श्रीमान् गुप्तजी तथा उनके अन्य कई मित्रोंके साथ महामना पूज्य मालवीयजीके वासस्थल पर पहुँचे। वहाँ पूज्य मालवीयजीके तो दर्शन हमें न हो सके, पर 'हिन्दी-प्रदीप' (प्रयाग) के सम्पादकाचार्य पं० बालकृष्ण भट्टजीसे भेंट हुई। श्रीगुप्तजी, पांडेयजी (अनन्त-कवि) तथा पूज्य भट्टजीमें तात्कालिक साहित्य-गति-विधि पर कुछ चर्चा हुई। उस समय हिन्दीके दो धुरन्धर विद्वान् साहित्यिकोंके "अनस्थिरता" शब्द सम्बन्धी विवादको लेकर साहित्य-क्षेत्रमें दो दल हो गये थे। पूज्य पं० बालकृष्ण भट्टजी इस झगड़ेसे अलग थे। अतः कलकत्तेमें उपस्थित बाहरके हिन्दीके कवि, लेखक उसी विषय पर हिन्दीके प्रमुख विद्वानोंकी सम्मतियाँ श्रवण करनेको उत्सुक प्रतीत होते थे। भट्टजीने अपनी कोई सम्मति तबतक न दी थी। अस्तु, वहांसे मैं और पूज्य पं० अनन्तरामजी पाण्डेय, कानपुर निवासी कविवर राय देवीप्रसादजी पूर्ण बी० ए०, बी० एल० तथा सुदर्शन नामक प्रसिद्ध मासिक-पत्रके प्रतिभाशाली विद्वान् सम्पादक भिवानी-निवासी पं० माधवप्रसाद मिश्रके दर्शनार्थ कांग्रेस कार्यालयकी ओर उनका पता लगानेके विचारसे बढ़ गये।

हिन्दीकी दुनियामें गुप्तजीकी बड़ी धाक थी। बड़े-बड़े लेखक उनकी प्रतिभा और सम्पादन-कौशल पर मुग्ध थे। उनका 'शिवशम्भुका चिट्ठा' हिन्दी सम्पादकोंके लिये गौरवकी वस्तु है। स्फुट-कविता नामक उनकी सरस रचनाओंका संग्रह उनकी देश-भक्ति, धर्मानुरक्ति और परदुःखकातरताका द्योतक है। उनके विनोदशील स्वभावका परिचय भी उनकी हास्य एवं व्यंगपूर्ण रचनाओंसे मिलता है। हिन्दी भाषा नामक उनका निबन्ध ज्ञातव्य विषयोंसे परिपूर्ण है। हिन्दी साहित्यके विकासमें उनका उच्च एवं आदरणीय स्थान है, यह निर्विवाद है।

मैंने उनके स्फुट-कविताके बीसियों पद्योंका अनेकों बार पढ़ा और उनसे भाषा, भाव एवं पद्य-रचनाका सबक सीखा है। उनका "वसन्तोत्सव" एवं "सर सैयदका बुढ़ापा" मुझे बड़ा प्रिय था। इन दोनोंको मैंने न जाने कितने बार प्रेमसे पढ़ा और अन्योंको पढ़कर सुनाया है। 'वसन्तोत्सव' कविताकी २० पक्तियाँ मैंने अपने संग्रह—'कविता कुसुम-माला' (इण्डियन प्रेस प्रयाग सन् १६१०) में प्राचीन ग्राम्य-स्मृति नाम देकर उद्धृत भी की थीं, उसकी प्रथम चार पंक्तियाँ ये हैं :—

कहाँ गये वह गाँव मनोहर परम सुहाने,
सबके प्यारे परम शान्ति दायक मनमाने।
कपट-क्रूरता द्वेष पाप औ मदसे निर्मल,
सीधे सादे लोग बसें जिनमें नहिं छल-बल ॥

उनके सम्पादन-कालमें 'भारतमित्र' का प्रचार मध्य-प्रदेश जैसे सुदूर प्रान्तके ग्रामोंमें भी था। इसका कारण था ग्रामीण जनताके दुःख-दर्द, :अभाव-अभियोगके समाचार गुप्तजी बड़ी सहानुभूतिपूर्वक प्रकाशित करते थे। एक घटना सुन लीजिये—रायगढ़ नामक छोटी-सी रियासतमें 'टपरदा' नामक एक गाँव दक्षिणी सीमा पर है। वहाँ मेरे फुफेरे भाई एवं सहाध्यायी पं० दक्षिणधर बड़गैया मालगुजार थे। एक·

बार गर्मीके दिनोंमें ग्रामके तालाव सूख गये और पीने, नहाने तथा ढोरोंके लिये जलका दुर्भिक्ष पड गया। टपरदासे तीन मील पर महानदी तथा ढाई मील पर 'मान्द' नदीकी शरण ग्राम-वासियोंको लेनी पडी थी।

जलाभाव एवं ग्रीष्मकी भीषणतासे बीमारीकी भी शंका थी। देहातके गाँवोंमें इधर उस समय कुएँ कहीं नहीं थे। सर्वत्र तालाब, पोखर तथा नदी या नालेके पानीसे लोगोंका निर्वाह हुआ करता था। जल-कष्टका समाचार पं० दक्षिणधरने 'भारतमित्र' में प्रकाशनार्थ भेजा था। वे 'भारतमित्र' के ग्राहक थे। देहातसे आये हुए समाचारों-पर गुप्तजी विशेष ध्यान रखा करते थे। समाचार छपकर आया तो उसके साथ-साथ सम्पादक द्वारा लिखित एक टिप्पणी भी छपी हुई देखनेमें आई। टिप्पणीमें सम्पादकने लिखा था कि रियासती सरकार ऐसे गाँवोंमें कुआँ खुदवाकर जलकष्ट निवारण क्यों नहीं करती ? कहनेका अभिप्राय यह कि वे भारतके नगरों और ग्रामोंके सुधार एवं उत्थानके हेतु एक सच्चे मित्रकी भाँति अपने कर्त्तव्य-पालनमें निरन्तर तत्पर रहा करते थे।

१८

वह शैली, वह भाषा फिर कहाँ ?

[साहित्यवाचस्पति पण्डित वियोगी हरिजी]

बाबू बालमुकुन्द गुप्तका नाम याद आते ही जैसे एक युग सामने आ जाता है—वह युग जब कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे ज्वलन्त प्रेरणा लेकर अनेक साहित्य-सेवी हिन्दीकी एकान्त उपासनामें संलग्न थे। सच-मुच वे सब राष्ट्र-भारतीके अनन्य उपासक थे। उस युगकी वह निष्ठा, वह तेजस्विता और वह मौलिकता भी बादको बहुत कम देखनेमें आई। बेशक, साहित्यका तबसे विस्तार तो बहुत बढ़ गया, पर वैसी गहराई शायद ही कभी कहीं, बहुत खोज करने पर ही मिले।

गुप्तजीका स्वर्गवास हुआ, तब मैं बारह बरसका था। कुछ धुँधली-सी याद है, 'हिन्दी-बंगवासी' या श्रीवेंक्टेश्वर समाचार-पत्रमें गुप्तजीके सम्बन्धमें कुछ पढ़ा था। 'भारतमित्र' तो तीन-चार साल बाद देखा। उन्हीं दिनों पुस्तक रूपमें प्रकाशित होनेपर, "शिवशंभुके चिट्ठे" पढ़े थे। गुप्तजीने "शिवशंभु" के कल्पित नामसे 'भारतमित्र' के सम्पादन-कालमें कई चिट्ठे लिखे थे। उनमेंसे आठ चिट्ठे लार्ड-कर्जनके नाम लिखे गये थे। हिन्दी और उर्दू दोनों ही जबानोंके अखबारोंमें इन चिट्ठोंको बड़े आदर और चावसे पढ़ा गया था। ऐसा अनूठा व्यंग, ऐसी हास्यरस-मयी भाषामें, एक गुप्तजी ही लिख सकते थे। इन पत्रोंमें स्वदेश-भक्ति की अभिव्यञ्जना भी अपूर्व हुई थी, और वह भी उस जमानेमें! देश-भक्तिका साहित्य बादको बहुत विकसित हुआ, पर वैसी गहरी-चोट करनेवाली मौलिक चीज़ फिर देखनेमें नहीं आई।

हिन्दी-उर्दूके पत्रोंका जो इतिहास गुप्तजीने लिखा, उसका क्या कहना? सारे-के-सारे जीते-जागते चित्र हैं। हरएक पत्र-पत्रिकाकी तसवीर बड़ी खूबीके साथ खींची है। जिन कई पत्रोंने अपने अल्प और दीर्घकालिक जीवनमें दुर्गम-घाटियोंको अकेले ही उन विकट दिनोंमें पार किया था, उनकी साहसपूर्ण-यात्राका वर्णन गुप्तजीने अत्यन्त हृदयस्पर्शी ढंगसे किया है। इन निबन्धोंमें मार्मिक समालोचना, अकृत्रिम शैली और जोरदार भाषा-प्रवाह पग-पग पर देखनेको मिलता है। कालाकाँकरमें जब आप पूज्य मालवीयजीके साथ "हिन्दोस्थान" पत्रका सम्पादन करते थे, तबका, वहाँका, वर्णन इतना सजीव, इतना मनोहर किया है कि उसे बार-बार पढ़नेको मन करता है। पत्र-पत्रिकाओंका इतना सर्वांग सुन्दर इतिहास तो आजतक दूसरा लिखा ही नहीं गया।

गुप्तजीकी लेखन-शैलीमें जिन्दादिली और मौलिकता गजबकी थी। हाँ, उस शैली और भाषाका कुछ-कुछ प्रतिबिम्ब गणेशशंकर विद्यार्थीकी ओजस्विनी लेखनी पर पड़ा था। फिर तो वह शैली लुप्त ही हो गई।

समालोचना भी गुप्तजी अपने ही ढंगकी किया करते थे। जिसके पीछे पड़ जाते थे, धज्जियाँ उड़ा देते। खूब गहरे पैठते थे। द्विवेदीजी और गुप्तजी इन दो साहित्य-महारथियोंके बीच 'भाषाकी अनस्थिरता' को लेकर जो विवाद या द्वंद-युद्ध चला था, उसे हिन्दी-संसार आज भी भूला नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि समालोचना तबसे आज कहीं अधिक परिष्कृत हो गई है, क्षेत्र भी विस्तृत हुआ है, पर पाश्चात्य प्रभावका रंग उस पर अधिक पड़ा दिखाई देता है, मौलिकता बहुत कम देखनेमें आती है। यह सही है कि तबसे लेकर पद्मसिंह शर्माके युग तक व्यक्तिगत आक्षेप और कभी कभी 'तू-तू मैं-मैं' तक समालोचनाओंमें पाई जाती थी और इस प्रकारकी शैली संस्कृत-साहित्यकी देन थी—पर आलोच्य-विषयका अनुशीलन सूक्ष्म, गहरा और मौलिक होता था। तब यह

सम्मति प्रदानका ढंग पसन्द नहीं किया जाता था। गुप्तजी तथा द्विवेदीजी ऐसे ही ऊँचे, खरे और निष्पक्ष समालोचकोंमेंसे थे। हिन्दी संसार पर धाक थी उनकी, सभी उनका लोहा मानते थे।

गुप्तजीने कविताएँ भी लिखी थीं और खासी अच्छी लिखी थीं, पर गद्य-लेखकके रूपमें ही हिन्दी-जगत् उनका स्मरण करता है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनोंमें ही वे कविता लिखते थे। "जातीय गीत" ने अधिक प्रसिद्धि पाई थी। उनकी हँसी-दिल्लगीकी व्यंगभरी कविताओं को बड़े चावसे पढ़ा जाता था। "जोगीड़ा" नामकी कविता तो कई पत्रोंमें उद्धृत हुई थी।

इधर आज जब कि शुद्ध राजनीतिक हेतुको लेकर राष्ट्र-भाषाके बनाने (या बिगाड़ने) का आन्दोलन चलाया जा रहा है, "आमफ़हम" भाषाके नारे बुलन्द किये जा रहे हैं, तब बारबार मनमें न जाने कैसा लगता है? बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा और गणेशशङ्कर विद्यार्थीकी भाषा और शैलीको देखें न वे 'आमफ़हम' जबानके हिमायती! ये महान् लेखक हिन्दी और उर्दू दोनोंके पण्डित थे। भाषाके बारेमें उनके सुलझे हुए विचार थे। देशकी मूल प्रकृतिका उन्हें पूरा ज्ञान था। वे जानते थे कि भाषाका सम्बन्ध देशकी व्यापक संस्कृतिसे होता है, राजनीतिसे तो बहुत ही अल्प। गुप्तजी हिन्दीके ऊँचे लेखक थे, उर्दूके नामी लेखक तो पहलेसे ही थे। दोनों पर उनका समान अधिकार था, पर हिन्दी-उर्दूकी अजीब खिचड़ी पकानेकी वकालत उन्होंने कभी नहीं की थी।

हमारी प्रार्थना है कि हम हिन्दी-सेवकोंको श्रद्धेय गुप्तजी जैसे अमर साहित्यकारोंसे सदा प्रेरणा तथा पथ-प्रदर्शन मिलता रहे, प्रगति हम अवश्य करें, पर पूर्व-परम्परासे हमारा सम्बन्ध-विच्छेद न हो।

१६

अपनी स्मृतिके आधारपर

[*बाबू भगवानदासजी हालना*]

सन् १६०३ या इसके आसपास 'भारतमित्र' कार्यालयमें गुप्तजीके प्रथम बार दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। उस समय 'भारतमित्र' कार्यालय नं० ६७, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीटमें था। मैं बराबर उनकी सेवामें उपस्थित होता था। उनमें खास बात यह थी कि मुझ-जैसे नवयुवकोंको, जिन्हें हिन्दी लिखनेका नया प्रेम हुआ था, उनके द्वारा काफी उत्साह मिलता था। मैं तो यही कह सकता हूँ कि हिन्दी-संसारमें गुप्तजी और 'भारतमित्र' दोनोंका बड़ा प्रभाव था। स्वर्गीय गुप्तजी एक सच्चा आत्म-गौरव रखनेवाले और बड़े ऊँचे दर्जेके देशभक्त सज्जन थे। अगर देश और देशवासी खुशहाल थे तो वे भी अपनेको सुखी समझते थे। अगर देशपर किसी तरहकी आफत और मुसीबतें आती थीं तो वे भी अपनेको पूरी तरह विपत्ति-ग्रस्त मानते थे।

सन् १६०५ में भारतके वायसराय लार्ड कर्जनने बंगभंग करके बंगालके दो टुकड़े कर दिये थे। इससे बंगालहीमें क्या सारे भारतवर्षमें हाहाकार मच गया था। "वन्देमातरम्" का जयघोष करने पर बड़े-बड़े लीडर गिरफ्तार कर लिये जाते थे। विदेशी चीजोंके बायकाट और स्वदेशीके प्रचारका जगह-जगह आयोजन हो रहा था। देशके लोग अपने हृदयकी कसक तरह-तरहसे निकालते थे। अखबारोंमें क्या अँगरेजी, क्या बँगला और क्या हिन्दी, जिधर देखें उधर यही चर्चा सुनाई पड़ती थी। लार्ड कर्जनकी हिन्दुस्थानसे विदाईका समय था।

सन् १९०५ दिसम्बर महीनेके अन्तमें बनारसमें जो कांग्रेस देशभक्त गोखलेके सभापतित्वमें हुई थी, उसमें बंग-विच्छेदका मामला विशेषरूपसे रखा गया था और उस कांग्रेसमें किसी भी प्रस्ताव पर बोलनेवाले किसी भी वक्तासे लार्ड कर्जनके लिये दो-चार उल्टी-सीधी बातें कहे बिना नहीं रहा गया। इसी अवसर पर हमारे पूज्य बन्धु बा० बालमुकुन्दजी गुप्तने भी "कर्जनाना" नामसे एक बड़ी सुन्दर, मर्मस्पर्शिनी और विनोदपूर्ण कविता 'भारतमित्र' में लिखी। यह कविता इन पंक्तियोंके लेखकके सामने ही लिखी गई थी। उस कविताके आरम्भका एक पद्य यह है :—

"झौंक झमाझम ढोल धमाधम कौन बजाता आया,
सब कुछ उलट-पलट कर डाला सब संसार कँपाया ?
'वह मैं ही हूँ' झटसे यों श्री कर्जनने फरमाया,
'आलीशान पुरुष हूँ' मुझ-सा कोई कभी न आया॥"

गुप्तजी अपने ढंगके एक ही समालोचक थे। उनकी समालोचनाका बड़ा प्रभाव पड़ता था। वे बड़े गुणग्राही और सच्चे मर्मज्ञ थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभाने गुसाँई तुलसीदासजी-कृत 'रामचरित-मानस' का कई वर्षोंके परिश्रमके बाद एक सुन्दर संस्करण निकाला, जो इण्डियन प्रेस द्वारा छापा गया था। इसके पाठ अधिक शुद्ध थे। गुप्तजीने इस संस्करणके सम्बन्धमें 'भारतमित्र' में एक कालमका लेख लिखा और उसकी हृदयसे प्रशंसा की कि रामायणका अबतक इतना अच्छा संस्करण नहीं निकला था।

उधर काशीके प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय म० म० पं० सुधाकरजी द्विवेदीने 'रामचरित्र-मानस' के कुछ अंशका संस्कृतमें अनुवाद किया था और उसे छापकर प्रकाशित किया था। गुप्तजीने 'भारतमित्र'में इस अनुवादके सम्बन्धमें लिखते हुए लिखा कि "भारतवर्षमें लोगोंमें संस्कृतका पूरी तरह ह्रास हो चला था, उस समय लोग 'वाल्मीकि-रामायण'

आदि संस्कृत कव्योंसे पूरी तरह लाभ नहीं उठा सकते थे। इसी बातको देखकर गोसाईं तुलसीदासने लोगोंके यथार्थ लाभके लिये अपनी रामा-यण भाषामें बनाई, ऐसी दशामें इस समय लोकहितकी दृष्टिसे भाषा रामायणका संस्कृतमें अनुवाद करनेसे कोई लाभ नहीं है।" इस समा-लोचनाका यह फल हुआ कि पण्डित सुधाकरजीने 'रामचरित-मानस'का और संस्कृत अनुवाद करनेका अपना विचार छोड़ दिया।

स्वर्गीय गुप्तजी बा० हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद आदि हिन्दीके पुराने कर्णधारों और लेखकोंमें बड़ी श्रद्धा रखते थे। स्वर्गीय पं० महावीर-प्रसादजी द्विवेदीने 'सरस्वती' में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक लेख लिखा। इसमें व्याकरणकी दृष्टिसे पुराने लेखकोंमें भी अशुद्धियाँ दिखाई गईं। स्वर्गीय गुप्तजीको द्विवेदीजीका यह कार्य पसन्द नहीं आया। यों द्विवेदीजी और गुप्तजी आपसमें एक दूसरेके बड़े मित्र थे और एक दूसरेका काफी आदर-सम्मान करते थे। द्विवेदीजीने अपने 'भाषा और व्याकरण' वाले लेखमें एक जगह यह वाक्य लिखा थाः—

"एक अखबारकी भाषा दूसरेकी भाषासे नहीं मिलती और दूसरेकी तीसरेकी भाषासे। इससे क्या हुआ है कि 'भाषाको अनस्थिरता' प्राप्त हो गई है।"

ऊपर दिये हुए वाक्यमें हम पाठकोंका ध्यान 'भाषाकी अनस्थिरता' इन शब्दों पर विशेष रूपसे आकर्षित करते हैं। संस्कृत व्याकरणकी दृष्टिसे 'स्थिरता' के अभावके अर्थमें 'अनस्थिरता' नहीं बनता। यह सर्वथा अशुद्ध है। व्याकरणकी दृष्टिसे जो शुद्ध शब्द बनता है, वह 'अस्थिरता' है। द्विवेदीजी महाराज संस्कृतके अच्छे ज्ञाता थे, पर पूर्ण वैयाकरण नहीं थे, नहीं तो 'अनस्थिरता' जैसा अशुद्ध शब्द वे कभी न लिखते। उधर बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका संस्कृत-ज्ञान साधारण ही था। 'अनस्थिरता' और 'अस्थिरता'के वास्तविक भेदको उनके ध्यानमें लानेवाले पं० अक्षय-

वटजी मिश्र थे। उस समय श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयमें पं० अक्षयवटजी मिश्र संस्कृतके अध्यापक थे। वे संस्कृत-हिन्दी दोनोंके पंडित और अच्छे कवि थे। गुप्तजीके वे परम मित्र थे। उन्होंने भी द्विवेदीजी महाराजका वह 'भाषा और व्याकरण' वाला लेख पढ़ा और गुप्तजीसे बोले कि द्विवेदीजी, बड़े-बड़े अन्य हिन्दी-लेखकोंकी व्याकरणकी गलतियाँ दिखाते हैं, पर अपने इसी लेखमें उन्होंने 'अनस्थिरता' जैसे व्याकरणसे अशुद्ध शब्दका प्रयोग किया है। यदि वे व्याकरण जानते, तो शुद्ध शब्द 'अस्थिरता' का ही प्रयोग करते। गुप्तजीको यह सुनकर प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा कि यह बहुत अच्छा हुआ, अब द्विवेदीजीको भी ठीक रास्ता दिखा दिया जायगा। इसके बाद स्वर्गीय गुप्तजीने द्विवेदीजीके लेखके विरुद्ध 'भारतमित्र' में 'आत्माराम' के नामसे कई लेख लिखे। 'भारतमित्र' में आत्मारामजीका पहला लेख प्रकाशित होनेपर द्विवेदीजीका गुप्तजीके पास एक प्राइवेट पत्र आया, जिसका आशय यह था कि आपने आत्मारामके हाथ 'भारतमित्र' के द्वारा हमारे लिये जो मिठाई भेजी है उस कृपाके लिये अनेक-अनेक धन्यवाद !

गुप्तजी खड़ी बोलीके अतिरिक्त उर्दूमें भी अच्छी कविता करते थे। व्रजभाषामें भी उन्होंने सुन्दर कविता लिखी है।

गुप्तजी अपने ढंगके निराले लेखक थे। उनके लेखोंमें ओज तो था ही, पर विनोद भी पूरी मात्रामें था। हिन्दी और उर्दू अखबारोंके सम्बन्धमें उनके जो लेख हैं, उनमें जानकारीकी अनेक बातें हैं और वे बड़ी सुन्दरतासे लिखे गये हैं। आज भी वे सुपाठ्य और उपयोगी हैं। उनके लिखे 'शिव शंभुके चिट्ठे' भी अपने ढंगके निराले हैं और काफी शिक्षाप्रद हैं।

गुप्तजी अवस्थामें मेरे पितातुल्य थे। यहाँ जो कुछ लिखा गया है, वह मेरी ओरसे उनके प्रति श्रद्धांजलिके रूपमें ही समझना चाहिये।

२०

'हिन्दी-हिन्दू-हिन्दुस्थान' मंत्रके साधक

[श्री पण्डित लक्ष्मणनारायणजी गर्दे]

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तका स्थान हिन्दी पत्र सम्पादकोंमें बहुत ऊँचा है। सन् १८८६ ई० से १९०७ तक वह क्रमानुसार 'हिन्दोस्थान', 'हिन्दी बंगवासी' और 'भारतमित्र' के सम्पादक थे। अपने सम्पादन-कालमें वह हिन्दी भाषा और साहित्यकी बहुत बड़ी सेवा कर गये हैं। उनके लेखोंने उस समय जो काम किया, वह बहुत बडा काम था और उसीसे उनका नाम भी हुआ। उनके लेखोंमें स्थायी महत्वकी बहुत सी चीजें हैं, जो आज भी काम दे सकती हैं। उनकी रचनाओंका मूल्य आज भी उतना ही है, जितना उस समय था। आज भी उनमें वही ताजापन है, जो उस समय था।

गुप्तजी, श्री प्रेमचन्द्रजीकी तरह पहले उर्दूके लेखक थे, पीछे हिन्दीके हुए। सन् १८९९ से गुप्तजीने 'भारतमित्र'का सम्पादकीय पद-ग्रहण किया था। 'भारतमित्र' सदासे एक प्रतिष्ठित पत्र रहा है और बहुत योग्य और विज्ञ लोग इसके सम्पादकोंमें रहे हैं। पर यह सभी स्वीकार करेंगे कि गुप्तजीकी-सी लोकप्रियता गुप्तजीको ही प्राप्त थी। गुप्तजीमें कुछ ऐसी ही विलक्षण प्रतिभा थी।

गुप्तजी द्वारा लिखित कुछ प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध लेखकोंके संक्षिप्त चरित्रोंको पढ़नेसे यह मालूम होता है कि वह हिन्दीकी किसी प्रकार सेवा करनेवालेकी बहुत खोज-खबर रखते थे। उनके लिये उनके चित्तमें बड़ा स्नेह और आदर था। उनके बड़े कृतज्ञ रहते थे। हिन्दीके पूर्वा-

चार्यों पर भी उनकी बड़ी आस्था थी। पूर्वाचार्यों पर कोई अनुचित कटाक्ष वह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। उनके इसी गुणके कारण वह विवाद छिड़ा, जो हिन्दी-साहित्य-संसारमें "अनस्थिरता" के नामसे प्रसिद्ध है। वाद-विवादमें गुप्तजी बहुत ही स्थिर देख पड़ते हैं। प्रति-पक्षको वह इस तरह घेरते है कि कहींसे भागनेकी जगह न पाकर वह घबड़ा जाय और प्रहार भी बहुत निर्मम होकर करते हैं, पर व्यक्तिगत आक्षेप नहीं करते, न अन्याय अथवा अनीतिसे काम लेते हैं। भाषा भी उनका खूब साथ देती थी।

इसी प्रकार उनका हिन्दुत्त्व-विरोधी भाव गुप्तजीके लिये असह्य होते थे और उनकी लेखनी खड्ग बनकर उनपर प्रहार करती थी। इसका उदाहरण उनकी अश्रुमती नाटककी आलोचना है। उनके 'शिवशंभुके चिट्ठे और खत' उस समयकी राजनीतिके विनोदयुक्त पर गंभीर विवेचन है। सर सय्यद अहमदके खतोंमें मुसलमानोंकी साम्प्रदायिक राज-नीतिके साथ अंग्रेजोंकी भेद-नीतिका अच्छा खाका खींचा गया है। 'हिन्दीभाषाका इतिहास', उर्दू पत्रोंका इतिहास और हिन्दी पत्रोंका इतिहास आदि चीजें हिन्दीके लेखकों और पत्रकारोंके लिये बड़े कामकी हैं। गुप्तजीकी कविताएँ उनके गद्यकी तरह ही सीधी और साफ भाषामें हैं। हँसी-दिल्लगीकी कविताओंमें जो खूबी है, वह देव-देवी-स्तुतियोंमें भी है। गुप्तजीके अन्दर स्वधर्म-प्रीतिकी एक ज्योति थी। स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान उसीकी ज्वाल-मालाएँ बनकर उनका व्यक्तित्व विकसित कर रही थीं। 'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्थान' इस मंत्र महान्‌के गुप्तजी एक साधक थे।

२१

अपने ढंगके एक ही—

[वेदतीर्थ पण्डित नरदेवजी शास्त्री]

सन् १९०५ ई० मे एक दिन कलकत्तेके कालेज स्क्वेयरमे श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जीका भाषण होनेवाला था। जनताकी अपार भीड थी। स्क्वेयर तो भर ही गया था, स्क्वेयरसे बाहर भी दूर तक लोग खडे थे। हमलोग प्रतीक्षामे थे कि कब सुरेन्द्रनाथ आते हैं और कब भाषण देते है। जनता उतावली हो उठी थी। धक्का-मुक्कीमे मैं कहींका कहीं पहुँच गया। ऐसी जगह पहुँचा कि कहीं हिलनेको जगह नहीं थी, न मैं बाहर ही निकल सक्ता था, न आगे बढ सकता था। इतनेमे पीछेसे एक और हल्ला आया। मेरे सामने एक बंगाली महाशय थे, पीछे एक हिन्दुस्थानी व्यक्ति थे। जब मेरा धक्का बंगाली महाशयको लगा तो वे चिल्ला उठे—"तुम हिन्दुस्तानी लोग बडा गोल-माल करता है।" मैंने कहा—महाशय, हमारा क्या वश है, पीछेसे हल्ला आता है तब हम विवश हो जाते हैं, क्या करें? पिछले सज्जनने कहा—जरा सँभल कर रहिये। आप इन बंगाली महाशयको नहीं जानते क्या? यह Dawn—'डान' नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक-पत्रिकाके सम्पादक हैं। मैंने कहा—मैं नहीं जानता। फिर मैंने बहुत ध्यान रक्खा कि मेरे कारण 'डान' सम्पादकको कोई कष्ट न हो। मेरे पीछे जो महाशय थे, उनसे मैंने उनका परिचय पूछा। उत्तर मिला—"मेरा नाम बालमुकुन्द गुप्त है।" नाम सुनते ही मैं चौंक उठा, मैं इस नामको जानता था, ये 'भारतमित्र' के सम्पादक थे। मैं प्राय• 'भारतमित्र'में लिखा करता था।

अपना नाम बतलाया, तब वे भी प्रसन्न हुए और फिर हमलोगोंकी बातें प्रारम्भ हुईं। मैंने उनसे कहा कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये बंगाली लोग दूसरोंको तुच्छ समझते हैं, देखिये 'डान'के सम्पादक हमसे किस तरह बोले। आप भी तो यहांके एक प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्रके सम्पादक हैं। आप सर्वसाधारण लोगोंकी तरह जनतामें धक्के खा रहे हैं। सम्पादकोंके लिये व्यास-पीठके पास प्रबन्ध होगा ही, वहां क्यों नहीं पहुँचे, आराममें रहते। गुप्तजीने कहा—"नहीं, आरामकी जरूरत नहीं। हम सम्पादकोंका सम्बन्ध तो सर्वसाधारणसे ही रहना चाहिये। परन्तु हां बंगालमें प्रान्तीयताकी बड़ी बीमारी है। 'डान' सम्पादकके शब्दोंमें इसकी दुर्गन्ध मौजूद है।"

मैं सोचने लगा, गुप्तजी ठीक तो कह रहे हैं। मेरा अपना भी तो यही अनुभव है। उस समय मैं मानिकतल्ला घोषेस् लेन नं० २७ सत्यप्रेसमें रहता था। गुरुवर श्री आचार्य सत्यव्रत सामश्रमीके चरणोंमें बैठकर वैदिक साहित्यका विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके लिये मैं गया हुआ था। जिस मुहल्लेमें मैं रहता था, उस गलीमें ढाई वर्ष रहने पर भी सामश्रमीजीके कुटुम्बके अतिरिक्त मेरा किसी अन्यसे परिचय न हो सका। मैं जब कलकत्तेमें रहा, बिहारी-बंगालीका प्रश्न भी उठ चुका था। आज वह प्रश्न गंभीर रूप धारण करता हुआ प्रतीत होता है। अस्तु, इस विवादग्रस्त प्रश्नको यहीं छोड़कर मुझे बालमुकुन्द गुप्तजीके विषयमें दो शब्द लिखने चाहिये। गुप्तजीके कारण 'भारतमित्र' चमक उठा था। उनका मधुर स्वभाव, उनकी हास्य मुद्रा, उनके व्यङ्ग, उनकी टिप्पणियां, उनके अग्रलेख इत्यादि बातोंका जब स्मरण हो आता है, मैं कह सकता हूँ कि वर्तमान हिन्दी-पत्रकार-जगत्‌में गुप्तजी के टाइपके सम्पादक नहीं हैं। वे अपने ढंगके एक ही थे।

जब हिन्दी-पत्रकारोंका पूरा-पूरा इतिहास लिखा जायगा, तब गुप्तजी का नाम सबसे प्रथम लिखा जायगा।

स्वर्गीय श्री पद्मसिंह शर्मा कभी-कभी मित्रगोष्ठीमें गुप्तजीके विषयमें बड़े रसमय प्रसङ्ग सुनाया करते थे। अब तो कुछ याद नहीं आ रहा है।

"सर्वं यस्य वशादगात्
स्मृतिपथं"—कालाय तस्मै नमः
(भर्तृहरिः)

जिस कालके कारण सब बातें स्मृति-पथमें ही रह गईं—विस्मृति-पथमें चली गईं, उस कालको बार-बार नमस्कार। इस महाकालने न जाने किस-किसको भुलाया, और न जाने गुप्तजी जैसे कितने महापुरुष, लेखनीके धनी उस कालकी उदर-दरीमें पड़े हुए हैं। स्वतंत्रता-प्राप्तिके पश्चात् मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि गुप्तजीके स्मृति-रक्षार्थ उनकी अमर रचनाओंको प्रकाशित करनेका आयोजन हुआ है। मैं इस सत्प्रयत्नका हृदयसे स्वागत करता हूँ।

२२

मेरे आदर्श

[श्री बाबू रामचन्द्रजी वर्मा]

'अच्छी हिन्दी'की भूमिका लिखनेमें मुझसे एक बहुत बड़ी चूक हो गई थी। उसमें मैंने अपने विद्या-गुरु स्व० बाबू रामकृष्ण वर्म्माका तो उल्लेख किया था, परन्तु न जाने कैसे अपने आदर्श स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी चर्चा करना भूल गया था। आज मुझे अपनी उस भूलके परिमार्जनका यह सुयोग प्राप्त हुआ है।

मैं बाल्यावस्थासे ही 'भारत जीवन'में रहता था और बाबू रामकृष्ण वर्म्माकी कृपासे हिन्दीकी ओर प्रवृत्त हुआ था। 'भारत जीवन'के बदलेमें पचासों अखबार आया करते थे। वे सब अखबार तो मैं उलट-पुलट कर देखता भर था, पर 'भारतमित्र' पढ़ता था और बहुत चावसे पढ़ता था। बहुत दिनोंतक 'भारतमित्र' मेरा परम प्रिय पत्र था और उसके सम्पादक स्व० गुप्तजीको सन् १६०२-३ से ही मैंने साहित्यिक और विशेषतः भाषाके क्षेत्रमें अपना आदर्श मान रखा था। उस आदर्श तक पहुँचनेकी न तो कभी मुझे स्वप्नमें आशा होती थी और न उस आदर्शकी छाया तक भी मैं कभी पहुँच सका। पर अपने जीवन-कालमें भी और मृत्युके बहुत दिनों बाद तक भी स्व० गुप्तजी मेरे लिये आदर्श बने रहे।

'भारतमित्र' मुझे कई कारणोंसे बहुत अधिक प्रिय था। एक तो उसकी भाषा बहुत ही चलती हुई और बहुत ही निखरी हुई होती थी। उसकी उत्कृष्ट शब्द-योजना और भाव-व्यंजनकी शैली जितनी मनोहर

और प्रभावक होती थी, उतनी ही वह शुद्ध और ठिकानेकी भी होता थी। भाषाकी दृष्टिसे स्व० गुप्तजी अनुपम थे,—अद्वितीय थे। आजतक उनकी-सी हल्की-फुलकी भाषा लिखनेवाला कोई और हुआ ही नहीं।

पर भाषा तो गुप्तजीके अनेक उत्कृष्ट गुणोंमें एक सामान्य अंगके रूपमें ही थी। वस्तुतः गुप्तजीकी गहन-गम्भीर विचारशीलता और बहु-विधि ज्ञान-सम्पन्नताने 'भारतमित्र' को अपने समयके पत्रोंका राजा बना रखा था। गुप्तजी जो कुछ लिखते थे, वह इतने अच्छे ढंगसे और इतना अधिक सोच-समझकर और विचारपूर्वक लिखते थे कि पढ़नेवालोंको वर्बस उनकी ओर खिंचना पड़ता था। उनके लेखोंमें भाषा-सम्बन्धी आकर्षणके सिवा जगह-जगह चुटकुले और चोज़ भरी बातोंका जो गहरा पुट रहता था, वह जल्दी भुलाये नहीं भूलता था। प्रायः 'भारतमित्र' की बहुत-सी बातें महीनों, बल्कि वर्षोंतक ध्यानमें बनी रहनेवाली होती थीं। आज भी लोग उनकी रचनाएँ पढ़कर बहुत-कुछ आनन्द ले सकते और बहुत-कुछ सीख सकते हैं, पर उनका सच्चा आनन्द तो वही लोग ले चुके हैं, जो इस शताब्दीके आरम्भमें 'भारत-मित्र' के ताज़ा-ताज़ा अंक पढ़ते थे। अब तो उनकी कहानी मात्र रह गई है।

'भारतमित्र' की जो पहली चीज़ मेरे लिये सबसे अधिक आकर्षक हुई, वह 'शिवशम्भुका चिट्ठा' नामक लेख-माला थी। इस लेख-मालाका एक लेख पढ़ चुकनेके बाद दूसरा लेख जल्दीसे-जल्दी पाने और पढ़ने की जो उत्कंठा मुझमें होती थी, वह मैं ही जानता हूँ। डाक आते ही मेरा हाथ सबसे पहले 'भारतमित्र' पर जाता था और मैं उक्त लेख दो-दो तीन-तीन बार पढ़ता और प्रायः दूसरोंको सुनाया करता था। गुप्तजीकी उत्कृष्ट कल्पना-शक्ति और लेखन-शैली उक्त लेख-मालामें कदाचित्

अपनी पराकाष्ठा तक पहुँची थी। आज जो लोग वह लेख-माला पढ़ेंगे, वे सहजमे समझ सकेंगे कि गुप्तजी कितनी उच्च कोटिके विचारशील लेखक थे और उनमे कितना उत्कट देश-प्रेम था। अपने देशकी परम्परा और इतिहासका ध्यान रखते हुए अपने समयमे अपने देश और देश-वासियोंकी जो दुर्दशा वे देखते थे, उससे उनके भावुक हृदय पर बहुत गहरी चोट लगती थी और उक्त लेख-माला उस गहरी चोटकी प्रतिक्रिया मात्र थी। पर वह प्रतिक्रिया भी कितनी सुन्दर, कितनी प्रभावोत्पादक और कितनी ठिकानेकी थी।

इस लेख-मालाके समाप्त हो जानेपर मेरे मनमे इस प्रकारकी कुछ और लेख-मालाएँ पढनेकी कामना उत्पन्न हुई। कुछ ही दिन बाद संयोगसे उस कामनाकी पूर्त्तिका एक दूसरा सुयोग आ पहुँचा। इस बार 'भारतमित्र' मे फुलर साहबके नाम शाइस्ता खांके खत प्रकाशित हुए। उन खतोंमे गुप्तजीने जिस निर्भीकतासे फुलरको फटकारा था, वह उन्हींका हिस्सा था और खूबी यह थी कि वह फटकार शाइस्ता खांके मुँहसे सुनवाई गई थी। उसमे अंग्रेजो और अंग्रेजी शासनके दोषोंकी धज्जियाँ उडाते हुए फुलरको खूब आडे हाथो लिया गया था और अन्तमें कहा गया था कि खबरदार, पुराना जमाना लानेकी कभी कोशिश न करना। अंग्रेजोंकी 'प्यारी बीवी' (मुसलमानों) को उन्होंने 'भोली बीवी' कहा था और हिन्दुओंको 'होशियार बीवी'।

गुप्तजीके लेखोंमे मुझे सबसे अधिक आनन्द आया 'भाषाकी अनस्थिरता' शीर्षक लेखोमे। स्व० आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदी भाषाकी शुद्धताके बहुत बडे पक्षपाती थे और उन्होंने अपने समयकी भाषा-सम्बन्धी भूलोंकी 'सरस्वती' में विस्तृत चर्चा की थी। भाषाकी शुद्धताका मुझे भी पुराना रोग था। अतः मैंने द्विवेदीजीका वह लेख-

बहुत ध्यानपूर्वक पढ़ा और उससे बहुत-सी बातें सीखी थीं। फिर जब 'भारतमित्र' में गुप्तजीने 'आत्माराम' के नामसे उक्त लेखकी करारी आलोचना की और द्विवेदीजीकी भाषा-सम्बन्धी बहुत-सी भूलें दिखलाईं, तब मुझे भाषा-सम्बन्धी और भी अधिक शिक्षा मिली और मैंने समझ लिया कि गुप्तजी भाषा-शुद्धताके बहुत बड़े पण्डित और पारखी हैं। यद्यपि बादमें द्विवेदीजीने स्व० विद्वद्वर पं० गोविन्दनारायणजी मिश्रसे 'बंगवासी' में 'आत्मारामकी टेंन्टें' नामक लेख-मालामें गुप्तजीकी बातोंका उत्तर दिलवाया था, पर वह अधिकतर शास्त्रीय चर्चा थी और संस्कृत, प्राकृत आदि व्याकरणोंके जटिल और दुरूह नियमों पर आश्रित थी। जो हो, उन दिनों हिन्दीके बड़े-बड़े विद्वानोंका वह दंगल देखने ही योग्य था।

गुप्तजी बड़े हँसोड़ थे और उनका विनोद ऊँचे दर्जेका होता था। उन दिनों प्रकाशित होनेवाले पत्रोंमें अधिकतर पत्र 'भारत जीवन' में आया करते थे और मैं वे पत्र बराबर देखता था, पर जब गुप्तजीकी लिखी हुई उन समाचारपत्रोंकी आलोचना पढ़ता था, तब मैं यह देखकर दंग रह जाता था कि वह आलोचना कितनी तथ्यपूर्ण है और कैसी सटीक बैठती है। एक बार किसी पत्र (कदाचित् उदयपुरके 'सज्जन कीर्त्ति सुधाकर') के सम्बन्धमें उन्होंने लिखा था कि इसमें एक विज्ञापन छपा है, जिसके अक्षर इतने घिसे-पिसे हैं कि जल्दी कुछ पढ़ा ही नहीं जाता। बहुत परिश्रम करनेपर पता चला कि इसमें लिखा है कि इस प्रेसमें छपाईका काम बहुत अच्छा होता है। जब द्विवेदीजीने 'सरस्वती' में अपना बनाया हुआ 'कल्लू अल्हइत' का आल्हा छापकर गुप्तजी पर अनेक व्यंग किये थे, तब दो ही चार दिन बाद 'भारतमित्र' में 'सरस्वती' के उस अंकके लेखोंकी प्रशंसा करते हुए गुप्तजीने उस आल्हाकी कुछ ऐसे ढंगसे सराहना की थी कि पढ़नेवाले समझें कि उस आल्हाके

व्यंग्योंके लक्ष्य वे (स्वयं गुप्तजी) नहीं हैं, वल्कि वह यों ही साधारण रूपमें लिखा गया है। अर्थात् द्विवेदीजीका सारा वार उन्होंने जरा-सी वातमें हँसकर हवा कर दिया था।

गुप्तजी कवि भी थे और 'भारतमित्र' में प्रायः उनकी कविताएँ निकला करती थीं। मैं वे कविताएँ भी वहुत चावसे पढ़ा करता था। गुप्तजीके सम्बन्धकी और उनके जमानेकी वहुत-सी वातें हैं, विस्तार-भयसे मैं यहाँ उन सवका उल्लेख नहीं कर सकता। पर यह निश्चित है कि गुप्तजी अपने समयमें हिन्दी-जगतके देदीप्यमान नक्षत्र थे। जो वातें मुझे उनकी रचनाओंमें मिलती थीं, वे कहीं नामको भी दिखाई नहीं देती थीं और उनके इन्हीं गुणोंके कारण मैंने वाल्यावस्थासे ही उन्हें अपना आदर्श मान रखा था और मैं समझता हूँ कि जो लोग हिन्दीके लेखक वनना चाहते हों, उन्हें भी गुप्तजीको अपना आदर्श मानना चाहिये और उनकी रचनाओंको ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये।

स्वर्गीय गुप्तजीके दर्शनोंका सौभाग्य मुझे अपने जीवनमें एक ही वार प्राप्त हुआ था। सन् १९०६ के आरम्भमें मैं स्व० पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्रके साथ 'भारतमित्र' कार्यालयमें गया था। मैं कलकत्ते जाकर विना अपने आदर्शके दर्शन किये नहीं रह सकता था। मेरे आग्रह पर ही मिश्रजी मुझे अपने साथ गुप्तजीके पास ले गये थे। मेरी अवस्था उस समय १५-१६ वर्षकी थी। उस समयके ठहाके और चुटीली वातें मैं अपने जीवनमें भूल नहीं सकता। चलते समय नत-मस्तक होकर मैंने गुप्तजीको प्रणाम किया। तव मुझे आशीर्वाद मिला था—'जीते रहो, हिन्दीकी सेवा करो।'

२३

एक महत्त्वपूर्ण बात

(श्री० रायकृष्णदासजी)

भारतेन्दुके अस्त हो जाने पर तो एक बार हिन्दी-जगत् महान अन्धकारमें डूब गया। इतने बड़े आलोकके अदृश्य होने पर ऐसी प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी, किन्तु ज्योंही यह प्रतिक्रिया दूर हुई कि हमारा ध्यान उस भारकी ओर गया जो भारतेन्दु हमपर छोड़ गये थे और शीघ्रही हम हिन्दीकी यानको आगे बढ़ानेमें संलग्न हो गए। राधाकृष्णदास भारतेन्दुके एक लघु संस्करण थे। उनके अतिरिक्त हमारे बीच प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट तथा चौधरी बदरीनारायण उपाध्याय सरीखे व्यक्ति भी विद्यमान थे। दुर्गाप्रसाद मिश्र कलकत्तेमें हिन्दीका कार्य कर रहे थे ; लज्जाशंकर झा बम्बईमें। राजा रामपाल सिंह यू० पी० के एक मुख्य कार्यकर्त्ता थे।

१९ वीं शतीके अन्तिम दशकमें भारतेन्दुका अधूरा कार्य पूरी प्रगति पर था। वहींसे हिन्दीका दूसरा उत्थान मानना पड़ेगा। नागरी-प्रचारिणी सभा, चन्द्रकान्ता, सुदर्शन, सरस्वती आदि १८९० से १९०० तककी देन हैं। उन दिनों यू० पी० में एक ऐसा व्यक्तित्व आगे आ चुका था, जिसने हिन्दी, सनातनधर्म, राजनीति और शिक्षाके लिये वह काम किया, जो अपने ढंगका अनोखा है। मालवीयजी महाराज एक स्कूल मास्टर और सम्पादकसे किस भाँति एक प्रकाण्ड वटवृक्षकी भाँति उन्नत, विस्तृत और बहुशाख हुए, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं।

सन् १८८९ की बात है। मथुरामें भारतधर्म महामण्डलका अधिवेशन हो रहा था। मालवीयजी महाराज भी उसमें पधारे थे। वहीं

उनकी पैनी दृष्टि गुप्तजीकी विशेषताको लख गई। तब तक वे उर्दूके लेखक थे। किन्तु मालवीयजी महाराजने उन्हें हिन्दीमें खींच लिया।

सचमुच महामनाकी यह देन हिन्दीकी एक अद्वितीय विभूति थी। हिन्दी-जगत्‌में आते ही, आरम्भसे ही, गुप्तजीकी लेखनीकी धूम मच गई और उन्होंने अपना सिक्का जमा लिया। वे हिन्दीको जो नयापन प्रदान कर गये हैं—जिस शैलीका निर्माण कर गये हैं—उसमें आज भी ताजगी है।

उस सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण बात याद आती है। उसे तनिक द्रविड़ प्राणायामपूर्वक कहना ठीक होगा—

गुप्तजीको गये तीन वर्ष बीत चुके थे, जब १९१० ई० काशी-नागरी-प्रचारिणी सभाने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका समारम्भ किया। हिन्दी-जगत् एक अभूतपूर्व उत्साह और उद्‌वेलनसे परिपूर्ण हो गया, उसी समय आचार्य द्विवेदीजी मेरे अतिथि होकर आये। मेरा अहोभाग्य था। सवेरेसे शाम तक साहित्यिकोंका ताँता लगा रहता ; मेरा घर एक साहित्यिक तीर्थ बन गया।

मैंने इस सुयोग्यका लाभ उठाया। मैं आचार्य द्विवेदीजीके चरणोंमें एक जिज्ञासुके रूपमें निरत रहता और अपनी जानकारी बढ़ाता। एक प्रसंगवश मैंने उनसे जिज्ञासा की—आपकी रायमें सबसे अच्छी हिन्दी कौन लिखता है? उन्होंने कहा—"अच्छी हिन्दी बस एक व्यक्ति लिखता था—बालमुकुन्द गुप्त।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि द्विवेदीजी स्वयं एक शैलीकार थे। फलतः गुप्तजीके सम्बन्धमें उनका यह मत अत्यधिक महत्व रखता है। यद्यपि गुप्तजी और द्विवेदीजीमें अनेक साहित्यिक विषयोंको लेकर प्रायः मतभेद रहा, किन्तु द्विवेदीजी सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे। वे गुप्तजीकी सरस शैलीके कायल थे, अतएव उन्होंने मुक्तकंठसे यह बात व्यक्त की थी।

———

२४

श्रद्धाके दो-चार विशीर्ण पुष्प

[पण्डित हरिहरस्वरूपजी शर्मा शास्त्री, बी० ए०]

गुप्तजीके मैं संस्मरण क्या लिखूँ ? मैंने जबसे होश सँभाला और जबसे मैंने यह जाना कि पिता एक पूज्य व्यक्ति है, उसी समयसे मैंने यह भी समझा कि पिताके तुल्य ही पितृव्य भी आदरकी वस्तु है। गुप्तजीका और मेरे पूज्य पिता श्री पं० दीनदयालु शर्मा व्याख्यान-वाचस्पतिका सगे भाइयोंसे भी अधिक गहरा और अकृत्रिम प्रेम था। सगे भाइयोंमें तो बहुत दफा झगड़े होते देखे गये हैं, परन्तु इन दोनों भाइयोंमें जन्मभर कभी कोई मन-मुटाव ही किसी भी विषयको लेकर न हुआ। उक्त दोनों महानुभावोंके स्वाभाविक प्रेमकी गहराईका विचार करनेसे ऐसा प्रतीत होता है, मानो वे पहले जन्मके बहुत निकटके बन्धु रहे हों। इसलिये गुप्तजीके प्रति मेरे मनमें श्रद्धा और भक्ति उतनी ही दृढ़ और गहरी है, जितनी पूज्य पण्डितजीके लिये।

उक्त दोनों विभूतियोंने हरियाना-प्रान्तके रोहतक जिलेका नाम अपने जन्मसे उज्ज्वल किया। गुप्तजीने गुड़ियानी नामके कस्बेमें, जो झज्जर तहसीलमें है, जन्म लिया था और पं० दीनदयालुजीका जन्म-स्थान झज्जर था। बाल्य-अवस्थासे ही एक ही तहसीलमें पैदा होनेके कारण दोनोंमें मैत्री हो गई थी। प्रारम्भमें दोनों उर्दूके कवि और लेखक थे, इस कारण एक दूसरेसे प्रेम करते थे। अपनी विद्यार्थी-अवस्थामें दोनों "अवधपञ्च" लखनऊके लेखक बने। उसमें कविता भेजते थे, फिर देखते थे कि किसकी कविता कितनी पसन्द की गई। गुप्तजीकी

कविताका तखल्लुस था "शाद" और पण्डितजीका था "खुरसन्द"। मज्जर उस समय उजड़ी नवाबीका एक कस्बा था, वहाँ उर्दूके मुशायरे होते रहते थे। पण्डितजीने एक "रिफाहेआम—सोसाइटी" मज्जरमें बना रक्खी थी, जिसके हिन्दू मुसलमान सभी सदस्य थे। एक मुसलमान सज्जन मौलवी गुलामनबी उसके सभापति थे। उसके द्वारा मुशायरे (कवि-सम्मेलन) होते रहते थे। गुप्तजीकी उर्दू कविताएं उन सम्मेलनोंमें भी पढ़ी जाती थीं और अन्य कविताओंसे अधिक पसन्द की थीं। इन मुशायरोंमें गुप्तजीका एक मित्र मुसलमान कवि उस इलाकेकी देहाती भाषामें समस्या-पूर्तियां किया करता था, जो हास्यरसका समा बांध देती थीं। उक्त कविका तखल्लुस था 'उजड्ड'। पाठकोंके मनोरंजनकी दृष्टिसे उसकी एक देहाती भाषाकी कविताका नमूना नीचे दिया जाता है। एक तरह थी "जोशे जुनूँ है आमदे फसले बहार है।" इस समस्यापर गुप्तजी, पण्डितजी तथा अन्य कवियोंने कविताएँ कहीं। अन्तमें 'उजड्ड'जीकी बारी आई। उन्होंने बन्द कहे—

"के कूदते फिरैं सैं मदरसामें छोइरे,
ज्यूँ कूदैं यारो खेतमें हिरणांकी डार सै।"
"के होठ सैं नरम के जणूं काची काकड़ी,
टुक आसक ने चखा दे, तेरा ताबेदार सै।"
"तॉह चाल म्हारे खेतमें कैसी बहार सै,
एक ओड़ खड़या बाजरा एक ओड़ ज्वार सै।"

उस समय तक न सनातनधर्मके रहस्यका दोनोंको पता था, न हिन्दी-सेवाका खयाल था। बादमें जीवनका क्रम बदला। कुछ ऐसे कारण उत्पन्न हुये, जिनसे पण्डितजीका ध्यान धर्मकी गिरी हुई दशा की ओर गया और उनको यह आन्तरिक प्रेरणा हुई कि धर्मकी जागृति होना आवश्यक है। उन्हीं दिनों कांग्रेसका दूसरा अधिवेशन भारतकी

राजनीतिके भीष्म दादा भाई नौरोजीके सभापतित्व में हुआ। उसमें पंडित जी "कोहेनूर"—पत्रके सम्पादककी हैसियतसे शरीक हुए। उसी समय कांग्रेसके मंचपर स्वर्गीय पं० मदनमोहनजी मालवीयसे पण्डितजीकी पहली बार मुलाकात हुई और आपसकी सलाहसे यह निश्चय हुआ कि सनातनधर्मका भी कांग्रेसके सदृश विशाल संगठन किया जाय। इसी निश्चयके फलस्वरूप आगे चलकर हरिद्वारमें श्री भारत धर्म महामण्डलकी नींव डाली गई थी। "अखबारे-चुनार"के सम्पादक गुप्तजी पंडितजीके साथ थे। उसके बाद पहला बड़ा मोर्चा लाहौरमें लगाया गया। उस समय गुप्तजी लाहौरके "कोहेनूर"के सम्पादक थे। वहां पण्डितजीने लगातार एक महीने तक प्रतिदिन व्याख्यान देकर वहांके दूषित वातावरणको धर्मानुकूल बनाया और सनातनधर्म सभाकी स्थापना की। इस आन्दोलनके प्रथम दिन जब कहीं भी सभा करनेको स्थान न मिला, तो अनारकलीके एक साधारणसे दिल्ली-वालोंके शिव-मन्दिरमें दोनों मित्रोंने एक सभाका आयोजन किया था। कोई साथी न था। पण्डितजी खुद ही एक तांगेमें बैठकर पहले सभाके नोटिस शहरमें बांट आये और फिर कपड़े बदलकर सभाके समय व्याख्याता बनकर पहुँच गये। सभामें दरी बिछानेको न मिली। दोनों मित्र मुंशी हरसुख रायके "कोहेनूर" अखबारके दफ्तरकी एक फटी-सी दरी लेकर सभा-स्थानमें पहुँचे और दरीको दोनों मित्रोंने स्वयं मिलकर बिछाया। दरीका एक कोना पण्डितजीके हाथमें था और दूसरा कोना था गुप्तजीके हाथमें। दोनों मित्रोंके उद्योगसे वही लाहौर जो महीना भर पहले रावणकी लंकापुरी बना हुआ था, रामकी अयोध्या नगरीके रूपमें परिणत हो गया। लाहौरका मोर्चा फतह करनेसे उनकी धाक सारे पंजाबमें और फिर सारे भारतमें जम गई। उसके बाद दोनों मित्रोंने सलाह की कि पण्डितजी बोलें और गुप्तजी

लिखें। इस व्रतको दोनोंने अपने जीवनकालके अन्त तक निभाया। दोनों मित्र सुख और दुःखमें एक दूसरेके साथ खड़े रहे और एकने दूसरेको किसी भी लोभ, भय या दावावसे धोखा नहीं दिया। पण्डितजीके बहुतसे लोग विरोधी भी हुए और उनके मिशनको धक्का पहुँचाया। परन्तु गुप्तजी ध्रुव नक्षत्रकी तरह उनके सहायकके रूपमें अटल अपने स्थानपर आदिसे अन्त तक डटे रहे। गुप्तजीकी लेखनीके द्वारा हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जातिकी जो स्थायी सेवा हुई है, उसके कारण हिन्दी-जगत्की तरह हिन्दू-जगत्में भी उनका स्थान सुरक्षित है।

हिन्दी-जगत्में गुप्तजी एक स्वतंत्र शैलीके प्रवर्त्तक हुए। उनका एक अपना युग ही पृथक् है। जो कुछ लिखा, नये ढंगसे लिखा। बोलचालकी हिन्दीकी शैली गुप्तजीकी अपनी नीजी थी। "दरबारे अकबरी" और "आबेहयात"—नामकी दोनों पोथियोंको, जो सरल और बामुहावरा उर्दूमें लिखी गई हैं, गुप्तजी बहुत पसन्द करते थे। कई बार उनके मुखसे यह सुना गया कि उक्त पुस्तकोंकी लेखनशैली हिन्दीके लेखकोंको भी अपनानी चाहिये। अब जब देशको स्वतन्त्रता मिली है और यह प्रश्न सामने आया है कि कैसी भाषा व्यवहारकी भाषा बन सकती है, तब इसका उपयुक्त उत्तर यही होगा कि जिसकी दागबेल श्री गुप्तजी ५० वर्ष पहले डाल गये थे। वास्तवमें वे प्रचलित और व्यवहार योग्य हिन्दीके परमाचार्य थे। उनकी-सी गुदगुदी उत्पन्न करनेवाली सच्ची और मार्मिक आलोचना, हँसते-हँसते पेट फुला देनेवाले मीठे मजाकभरे लेख हिन्दी-जगत्की मूल्यवान् सम्पत्ति हैं।

राजनीतिके अतिरिक्त वह साहित्य-सम्बन्धी आलोचना भी जब करनेपर उतरते थे, तब खूब ही करते थे। "भाषाकी अनस्थिरता" शीर्षकसे जो लम्बी लेखमाला उनकी प्रकाशित हुई है, जिसके द्वारा उन्होंने सम्पादकाचार्य स्वर्गीय पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीके साथ

साहित्य-चर्चा चलाई थी—वह हिन्दी-दुनियाके लिये समालोचना-शास्त्रकी परम मीमांसा है। अपने पक्षका समर्थन करनेमें जैसी प्रबल युक्तियों और अद्भुत तर्कोंकी उद्भावना वे करते थे, उसको देखते उन्हें हिन्दीका जानसन कहनेको जी चाहता है।

गुप्तजीको प्रभुने बड़ी वामज़ाक तबीयत दी थी। हम तो उनके बच्चे थे, पर हमसे भी जब वे मज़ाक करनेपर उतरते थे, तब खूब हँसते-हँसाते थे। मेरे हाथमें एक दिन अमरकोष देखा। कहने लगे—आरम्भसे सुनाओ, क्या पढ़ा है। मैंने पहला श्लोक पढ़ा। कहने लगे—वाह, तुमको ठीक पाठ तक नहीं आता। इसका शुद्ध पाठ तो इस प्रकार है—"यस्य ज्ञान दया सिन्धोः, लगा धक्का गिरा पड़ा।" मैं छोटा-सा था। मुझे यह पाठ सुनकर बड़ा मज़ा आया। अबतक उनका शुद्ध किया हुआ यह पाठ मुझे याद है।

एक दिन हमें चौपाईका यह टुकड़ा सुनाकर अर्थ पूछा—'चले राम धर सीस रजाई'। हमने सीधा अर्थ बता दिया कि रामचन्द्रजी अपने पिताकी रज़ा अर्थात् आज्ञा लेकर वनको चल पड़े। गुप्तजीने कहा—नहीं, यह अर्थ नहीं है। इसका अर्थ है कि वनमें रहनेमें ओढ़ने-बिछानेका कष्ट होगा,—यह सोचकर रामचन्द्रजी अपने सिरपर 'रजाई' रखकर वनको चल पड़े। हमें उनके इस अर्थको सुनकर बहुत आनन्द आया। हमारे पूछनेपर उन्होंने ऐसी अनेक चौपाइयोंके इसी प्रकारके विनोदात्मक अर्थ सुनाये। सबके लिखनेसे लेख बढ़ेगा। तात्पर्य यह है कि उनके मिजाजमें विनोद बहुत था।

पण्डितजी सुनाया करते थे कि एक दिन वह ब्रह्म और अद्वैतवाद पर एक लम्बा भाषण कलकत्तेमें देकर आये। गुप्तजी सभामें साथ थे। लोगोंमें भाषणकी बड़ी तारीफ हुई, बड़ी तालियाँ बजीं। गुप्तजीने

भी घर आकर कहा—आजका व्याख्यान बहुत अच्छा रहा। पण्डितजी को पता था कि ये वैसे ही कह रहे हैं, क्योंकि भाषण वे कभी ध्यानसे न सुनते थे। पण्डितजीने पूछा कि अच्छा, बताओ, हमने क्या कहा था, जिसे आप अच्छा बतलाते हो? गुप्तजीने उत्तर दिया कि यह हम कुछ नहीं जानते कि आपने क्या कहा, क्योंकि जो ब्रह्म और जीवका झगड़ा आपने झोया वह तो लोहेके चने थे, जो हमसे नहीं चबाये जाते। पर लोग आपकी बातोंसे खुश हुए, इससे हम भी खुश हैं कि आपने कुछ अच्छी ही बातें कही होंगी। पण्डितजीने कहा कि खैर, तब ध्यान न दिया, अब जरा देर बैठकर समझ लीजिये कि हमने क्या कहा था। गुप्तजीने कहा—नहीं, यह हमसे न होगा। धर्मका रूप आपने समझ लिया है, वह हमारे लिये भी काफी है। आप जिसे धर्म कहते जाओगे, उसे हम मानते जायँगे। अन्त समयमें यदि आप धर्मात्मा निकले और आपका विमान स्वर्गको चला, तो उसका पाया पकड़कर हम भी लटक जायँगे।

तबीयतमें बड़ी बेबाकी थी। पण्डितजी हैदराबाद दक्षिण गये। महाराजा सर कृष्णप्रसाद उस समय वहाँके वजीर आज़म थे। पंडितजी उनके अतिथि थे। महाराजा उर्दूके अच्छे कवि और लेखक थे। पण्डितजीने महाराजासे गुप्तजीका जिक्र किया। गुप्तजीका और महाराजाका कविताका उपनाम इत्तफ़ाक़से 'शाद' था। इस कारण महाराजको उनसे मिलनेकी प्रबल इच्छा हुई। पण्डितजीने गुप्तजीको हैदराबाद आनेको लिखा। गुप्तजीने उत्तर दिया कि मेरे "भारतमित्र" पत्रको २) रु० वार्षिक देकर जो ग्राहक पढ़ता है, वही मेरे लिये महाराजा कृष्णप्रसाद है। यदि महाराजको मुझे जानना है कि मैं क्या हूँ, तो उनसे कहिये कि २) रु० वार्षिक भेजकर "भारतमित्र" के ग्राहक बनें और उसे पढ़ा करें। मुझे आनेका अवकाश नहीं है। यह उनके विचारोंकी स्वतन्त्रता

और मस्तीका नमूना है। हैदराबादमें अच्छा मनसब मिलनेपर महाकवि जौक़ने जो कहा था कि :—

"कौन जाये जौक़ ये दिल्ली की गलियां छोड़कर।"

इस उक्तिको मानो गुप्तजीने फिरसे नया जीवन दे डाला।

उनका निधन दिल्लीके लाला लक्ष्मीनारायणकी धर्मशालामें हुआ। वे बीमार होकर इलाज करानेके लिये दिल्ली आये और स्टेशनके पास उक्त धर्मशालामें ठहरे। पण्डितजीको बीमारीको खबर दी गई। वे एक लम्बा दौरा लगा रहे थे। सब काम छोड़कर वे दिल्ली आये। जिस समय पण्डितजी दिल्ली पहुँचे, तो गुप्तजीकी बीमारी बहुत बढ़ चुकी थी। दोनों जन्मभरके मित्रोंकी आँखें चार हुईं और एक दूसरेको रुलाकर दोनों पृथक् हुए। धर्मशाला उस समय तक पूरी बनी भी न थी। लाला लक्ष्मीनारायण पण्डितजीके पास आये और कहा—"पण्डितजी, यह तो बड़ा अपशकुन हुआ। मेरी धर्मशालाकी तो अभी तक 'प्रतिष्ठा' भी नहीं हुई है और आरम्भमें ही इसमें यह मृत्यु हो गई।" पण्डितजीने लालाजीको समझाते हुए कहा कि लालाजी, आपको इस बातकी चिन्ता न होनी चाहिये। आपकी धर्मशालाकी असली 'प्रतिष्ठा' तो अब हुई है, जिसमें भारतकी एक विभूतिने अन्तिम समाधि ली है। गुप्तजीके नामके साथ आपकी धर्मशालाका नाम भी हिन्दीके इतिहासमें आजसे अमर हो गया। यह सुनकर लालाजीकी घबराहट दूर हुई।

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि भाई नवलकिशोरजी आदरास्पद गुप्तजीकी पुण्य स्मृतिके रक्षार्थ उनकी एक जीवनी और उनके लेखों तथा अन्य कृतियोंका संग्रह प्रकाशित कर रहे हैं और इस कार्यमें मेरे प्रेमास्पद भाई पण्डित झाबरमलजी शर्मा कई माससे सब काम छोड़कर जुटे हुए हैं। ये दोनों भाई धन्य हैं जो श्री गुप्तजीके

श्राद्ध-महायज्ञमें ऐसी तत्परतासे लगे हैं। उस स्वर्गीय महान् आत्माकी पवित्र स्मृतिमें भेंट की जानेवाली श्रद्धाञ्जलिकी पवित्र पुष्प-राशिमें सम्मिलित करनेके उद्देश्यसे मैं भी इन बिखरे हुए संस्मरणों द्वारा दो-चार विशीर्ण पुष्प अर्पण करता हूँ।

२५

गुप्तजीका व्यङ्ग और हास्य

[ले०—पण्डित श्रीनारायणजी चतुर्वेदी, एम० ए०]

मनुष्य और पशुमें एक विशेष अन्तर यह है कि मनुष्य हँस सकता है, व्यंग समझ सकता है और हास्य पर मुस्कुरा सकता है। जो व्यक्ति जितना ही अधिक 'प्रकृत' होता है, उसमें हास्यसे आनन्द उठानेकी मात्रा उतनी ही अधिक होती है। पागलोंमें हास्य या व्यंग समझनेकी क्षमता जाती रहती है। वे शब्दोंका वाच्यार्थ ही ले सकते हैं। उनका व्यंग्यार्थ उनकी समझमें नहीं आता। जब तक कोई व्यक्ति हास-परिहास समझता है, तब तक यह निश्चय है कि उसका दिमाग ठीक ठिकाने है!

जो बात व्यक्तियों पर लागू है, वही बहुत कुछ साहित्य पर भी बैठती है। स्वस्थ साहित्य स्वस्थ समाजका प्रतिबिम्ब है और यदि समाजमें विकृति आ गई है तो उसका प्रभाव उसके साहित्य पर पड़ना अवश्यंभावी और अनिवार्य है। सौभाग्यसे आधुनिक हिन्दी-साहित्य अपने आरम्भ काल ही से प्रकृतस्थ रहा है, क्योंकि भारतेन्दुजीकी कृतियों ही से हमें व्यंग-विनोदके छींटे मिलने लगते हैं। यह परम्परा

प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघनजी आदिने जीवित रखी और इस शताब्दीके आरम्भमें जब हिन्दी-पत्रकारिता निखरने लगी, तब उसमें इसकी भी यथेष्ट मात्रा देखनेको मिली। तत्कालीन पत्रकार-साहित्यमें इस जीवन-दायिनी स्फूर्तिका प्रवेश करानेवालोंमें स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका स्थान प्रमुख है।

श्री बालमुकुन्दजी गुप्तमें हास्य और व्यंगकी अद्भुत प्रतिभा थी। पत्रकार होनेके कारण उन्हें सामयिक विषयों पर आलोचना भी करनी पड़ती थी। अन्य पत्रकारोंकी भाँति वे गम्भीर लेखों और टिप्पणियों द्वारा तो आलोचना करते ही थे, किन्तु उनकी विशेषता यह थी कि वे बहुत ही चुभनेवाली और चुटीली कविताओंके द्वारा भी अपने शिकार * की मरम्मत कर देते थे और यह 'मरम्मत' इतनी चुटीली, मार्मिक और सुन्दर होती थी कि पाठकोंको आलोचित विषयके हास्यास्पद और 'मूढ़' होनेका पूर्ण विश्वास हो जाता था, जिसका होना अनेक तर्कोंसे भी कठिन था।

किन्तु गुप्तजीने गद्यमें व्यंगकी एक गम्भीर किन्तु चुटीली शैली चलाई थी, जो उनकी अपनी थी और उनके पहिले और उनके बाद किसीने उस शैलीमें उनके समान सफलता नहीं पाई। उन्होंने लार्ड कर्जनके नाम 'शिवशम्भुके चिट्ठे' लिखे, जो राजनैतिक व्यंग-साहित्यके रत्न हैं। उनको लिखकर उन्होंने हिन्दी-साहित्यको एक ऐसी देन दी, जो भाषाके शैलियोंके विद्यार्थियों और साहित्य-प्रेमियोंके लिये प्रेरणाप्रद तथा मननीय वस्तु है। इन 'चिट्ठो' के अध्ययनसे इस बातका पता लगता है कि गुप्तजीको राजनैतिक विषयों और समस्याओंका कितना गहरा ज्ञान था और उनकी विश्लेषण करनेकी शक्ति कितनी पैनी थी। इन

* शिकार यहाँ Victim के अर्थमें है।

'चिट्ठों' की भाषा सजीव और चुभती हुई है, उनके तर्कके मर्मवेधी बाण तीक्ष्ण व्यंगमें बुझाकर चलाये गये हैं, जो अपने शिकारको बहुत दिनोंके लिये आहत कर देते हैं और पाठकोंकी दृष्टिमें उसकी कलई खोलकर रख देते हैं।

शिवशंभु भंगड़ी हैं, किन्तु हैं विशुद्ध और घोर भारतीय। राजनैतिक प्रश्नोंको देखनेके लिये उनके पास केवल एकमात्र दृष्टिकोण है—भारतीय। जो भारतके लिये अहितकर है, उसे वे सहन नहीं कर सकते। कूटनीतिके शत-शत आवरणोंमें लिपटे हुए भारतके लिये अहितकर सरकारी कामोंके आवरणोंको व्यंगकी ज्वालासे भस्मकर वे उन्हें पाठकोंके सामने नग्न रूपमें रख देते हैं, जिससे उन्हें उनके सच्चे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। उनके व्यंगके तापमें लार्ड कर्जनके तड़क-भड़कदार कामोंका सुनहली मुलम्मा गायब हो जाता है और उनकी असलियत सामने आ जाती है। अकाट्य तर्क और प्रमाणोंको पंडिताऊ ढंगसे भारी-भरकम शब्दावलीमें न लपेटकर 'शिवशम्भु' सरल और सुबोध ढंगसे कहते हैं और उपमाएँ और उदाहरण भी

हो जाने पर भी अँगरेजी शासन ही में बना हुआ है और पश्चिम बंगाल भी पहलेकी भाँति उसी शासनमें है। किसी बातमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली खयाली लड़ाई है। वंग-विच्छेद करके माई लार्डने अपना एक खयाल पूरा किया है। इस्तैफा देकर भी एक खयाल ही पूरा किया और इस्तैफा मंजूर हो जाने पर इस देशमें पड़े रहकर भी श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागत तक ठहरना एक खयाल मात्र है।"

दिल्ली दरबारके सम्बन्धमें यह व्यंगपूर्ण खरी आलोचना देखिये :—

"माई लार्ड! लड़कपनमें इस बूढ़े भङ्गड़को बुलबुलका बड़ा चाव था। गाँवमें कितने ही शौकीन बुलबुलबाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशम्भु शर्म्मा बुलबुलें लड़ानेका चाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुलको हाथपर बिठा कर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मणकुमारको बुलबुल कैसे मिले? पिताको यह भय कि बालकको बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथसे बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोधसे यदि पिताने किसी मित्रकी बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टेसे अधिक नहीं रहने पाती थी। वह भी पिताकी निगरानीमें!"

उपर्युक्त उद्धरणोंमें गुप्तजीकी गद्यकी शैलीके नमूनेके सिवाय, उनकी लेखनीके चमत्कार और शक्तिका भी उदाहरण विद्यमान है। इतने मनोरंजक ढंगसे इतनी चुभती हुई और पतेकी बात कह देना केवल सिद्धहस्त लेखकका ही काम है।

केवल गद्यमें ही नहीं, पद्यमें भी वे राजनैतिक विषयोंपर व्यंग कस दिया करते थे। लार्ड कर्जनने एक बार हिन्दुस्तानियोंको 'झूठा' कह दिया था। उसपर गुप्तजीने एक व्यंग-कविता लिखी। उसकी कुछ पंक्तियाँ ये हैं—

'चिट्ठों' की भाषा सजीव और चुभती हुई है, उनके तर्कके मर्मवेधी वाण तीक्ष्ण व्यंगमें बुझाकर चलाये गये हैं, जो अपने शिकारको बहुत दिनोंके लिये आहत कर देते हैं और पाठकोंकी दृष्टिमें उसकी कलई खोलकर रख देते हैं।

शिवशंभु भंगड़ी हैं, किन्तु हैं विशुद्ध और घोर भारतीय। राज-नैतिक प्रश्नोंको देखनेके लिये उनके पास केवल एकमात्र दृष्टिकोण है—भारतीय। जो भारतके लिये अहितकर है, उसे वे सहन नहीं कर सकते। कूटनीतिके शत-शत आवरणोंमें लिपटे हुए भारतके लिये अहितकर सरकारी कामोंके आवरणोंको व्यंगकी ज्वालासे भस्मकर वे उन्हें पाठकोंके सामने नग्न रूपमें रख देते हैं, जिससे उन्हें उनके सच्चे स्वरूपका ज्ञान हो जाता है। उनके व्यंगके तापमें लार्ड कर्जनके तड़क-भड़कदार कामोंका सुनहली मुलम्मा गायब हो जाता है और उनकी असलियत सामने आ जाती है। अकाट्य तर्क और प्रमाणोंको पंडिताऊ ढंगसे भारी-भरकम शब्दावलीमें न लपेटकर 'शिवशम्भु' सरल और सुबोध ढंगसे कहते है और उपमाएँ और उदाहरण भी ऐसे देते हैं, जो साधारण पाठकोंके लिये अगम्य न हों। फिर भी इन 'चिट्ठों' की भाषाका प्रवाह स्निग्ध और अबाध है और उनके शब्दोंका चुनाव बड़ी दक्षताके साथ किया गया है। दो उद्धरण देखिये। यह प्रसंग बंग-विच्छेदका है। शिवशम्भु इस सम्बन्धमें कहते हैं :—

"सब ज्योंका त्यों है। बङ्गदेशको भूमि जहां थी वहां है और उसका हरेक नगर और गाँव जहाँ था वहीं है। कलकत्ता उठाकर चीरापूंजीके पहाड़ पर नहीं रख दिया गया और शिलांग उड़कर हुगलीके पुल पर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगालके बीचमें कोई नहर नहीं खुद गई और दोनोंको अलग-अलग करनेके लिये बीचमें कोई चीनकी-सी दीवार नहीं बन गई है। पूर्व बंगाल पश्चिम बंगालसे अलग

हो जाने पर भी अँगरेजी शासन ही में बना हुआ है और पश्चिम बंगाल भी पहलेकी भाँति उसी शासनमें है। किसी बातमें कुछ फर्क नहीं पड़ा। खाली खयाली लड़ाई है। बंग-विच्छेद करके माई लार्डने अपना एक खयाल पूरा किया है। इस्तैफा देकर भी एक खयाल ही पूरा किया और इस्तैफा मंजूर हो जाने पर इस देशमें पड़े रहकर भी श्रीमान् प्रिन्स आफ वेल्सके स्वागत तक ठहरना एक खयाल मात्र है।"

दिल्ली दरबारके सम्बन्धमें यह व्यंगपूर्ण खरी आलोचना देखिये :—

"माई लार्ड! लड़कपनमें इस बूढ़े भङ्गड़को बुलबुलका बड़ा चाव था। गांवमें कितने ही शौकीन बुलबुलबाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे, पालते थे और लड़ाते थे, बालक शिवशम्भु शर्म्मा बुलबुलें लड़ानेका चाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुलको हाथपर बिठा कर ही प्रसन्न होना चाहता था। पर ब्राह्मणकुमारको बुलबुल कैसे मिले? पिताको यह भय कि बालकको बुलबुल दी तो वह मार देगा, हत्या होगी। अथवा उसके हाथसे बिल्ली छीन लेगी तो पाप होगा। बहुत अनुरोधसे यदि पिताने किसी मित्रकी बुलबुल किसी दिन ला भी दी तो वह एक घण्टेसे अधिक नहीं रहने पाती थी। वह भी पिताकी निगरानीमें!"

उपर्युक्त उद्धरणोंमें गुप्तजीकी गद्यकी शैलीके नमूनेके सिवाय, उनकी लेखनीके चमत्कार और शक्तिका भी उदाहरण विद्यमान है। इतने मनोरंजक ढंगसे इतनी चुभती हुई और पतेकी बात कह देना केवल सिद्धहस्त लेखकका ही काम है।

केवल गद्यमें ही नहीं, पद्यमें भी वे राजनैतिक विषयोंपर व्यंग कस दिया करते थे। लार्ड कर्जनने एक बार हिन्दुस्तानियोंको 'झूठा' कह दिया था। उसपर गुप्तजीने एक व्यंग-कविता लिखी। उसकी कुछ पंक्तियां ये हैं—

"हम जो कहें वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।
हमसे सचकी सुनो कहानी, जिससे मरे झूठकी नानी।
सच है सभ्य देशकी चीज, तुमको उसकी कहाँ तमीज़।
औरोंको झूठा बतलाना, अपने सचकी डींग उड़ाना।
ये ही पक्का सचापन है, सच कहना तो कचापन है।
बोले और, करे कुछ और, यही सभ्य सच्चेके तौर।
मनमें कुछ, मुँहमें कुछ और, यही सत्य है कर लो गौर।
झूठको जो सच कर दिखलावे, सो ही सच्चा साधु कहावे।

वंग-भंगका परिणाम विलायत पर स्वदेशी आन्दोलनके कारण अच्छा नहीं हुआ। विलायती कपड़ेके बहिष्कारके कारण वहाँके व्यापारको बड़ा धक्का लगा। 'कर्जनाना' (गर्जन-तर्जनके वज़न पर) नामक कविता में उन्होंने कर्जनसे कहलाया है—

किसने मन्चैस्टरको सड़कों सड़कों पर टकराया
किसने मलमल औ कपड़ोंको आँधीमें उड़वाया ?
"किया है मैंने" बोले कर्जन रेज करेगी चेम्बर
भूत भरें इसका हरजाना जब पहुँचूँ अपने घर।

गुप्तजीकी व्यापक दृष्टि राजनीति तक ही सीमित नहीं थी। तत्कालीन सामाजिक क्रान्ति और पाश्चात्य सभ्यताके आक्रमणकी अशिवताको वे समझते थे। उन्हें पाश्चात्य आचार और पाश्चात्य वस्तुओंकी अंधी नकल पसंद न थी, और वे समय-समय पर उनका मज़ाक उड़ाया करते थे। 'सभ्य बीबीकी चिट्ठी" में उन्होने एक ऐसी महिलासे, जिसका विवाह 'देशी' व्यक्तिसे हो गया है, कहलाया है—

बताओ आके मेरे पास, किस तरह पूरी होगी आस ?
हँसी आती है सुन-सुनकर, बताता नहीं कहाँ है घर।

चमन फूला है किस जाँ पर, कहाँ है वेलोंका 'बावर' ?
कहाँ है 'टेनिसघर' दिखलाय, कहाँ मछलीका बना तलाव ?
बात वह अगली सब सटकी, बहू जब थी मैं घूँघट की ?
मजा अब सुख का पाया है, स्वाद शिक्षा का आया है।
खुले अब नैन नींद गई टूट, बुद्धिके पर आये हैं फूट।
घुटावें क्यों पिंजड़ेमें दम, नहीं कुछ अंधी चिड़िया हम।
पढ़ें हम सुखसे लिटरेचर, सैकड़ों कविता शेक्सपियर।
पढ़े हैं कितने ही दर्शन, लाक, मिल, बैंथम, हैमिल्टन।
सुने सीखे कितने ही लेक्चर, लिवर्टी लाजिक और कलचर।
फराडे, हर्शलका विज्ञान, हैक्सले, हिंडलका कर ध्यान।
सभीको कर डाला है पार, पढ़े हैं नाविल कई हज़ार।
लिखे मैंने डांसिंगके ढंग, और 'सिंगिंग' है उसके संग।
बस अब देखूँ दिखलाऊँगी, और सिखूँ सिखलाऊँगी।
सदा सुन्दर तितली बनकर, उड़ूँगी फूलों-फूलों पर।
सुना भी लाला मौवूदास ! किस तरह होगी पूरी आस ?

गुप्तजीने अपने समयकी सभी समस्याओं पर व्यंग करके उनकी कमजोरियाँ और उनकी तर्क-हीनता एवम् निःसारता दिखलाई, किन्तु वे केवल व्यंग ही नहीं लिखते थे। विशुद्ध हास्यके लिखनेमें भी वे सिद्धहस्त थे। उनके एक पड़ोसोकी बुड्ढी भैंस मर गई। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। भैंसके मरनेका दुःख अस्वाभाविक मात्रामें देखकर उन्होंने 'भैंसका मरसिया' नामक कविता लिखी थी। किन्तु साहित्यिक दृष्टिसे उनकी व्यंग-विनोदकी सर्वोत्तम कृति 'भैंसका स्वर्ग' है। भारतीयजनका आलस्य, उनका अल्प संतोष, उनका दुधारपन—सभी भैंसके समान है। आलसियोंका स्वर्ग भैंसका स्वर्ग है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्तजीने हिन्दी-साहित्यमें सामयिक प्रश्नोंपर क्रमपूर्वक व्यंग-विनोद लिखनेकी परम्परा आरम्भ की। उनकी चलाई परम्परा आज भी हिन्दी-पत्रोंमें चल रही है। कहा है कि "अनुकरण सबसे बड़ी प्रशंसा है।" हिन्दी-संसार उनका अनुकरण करके उनका हृदयसे आदर कर रहा है, अवश्य ही उनके व्यंगमें वे कमियाँ पाई जाती हैं, जो प्रारम्भिक तथा परम्पराहीन कृतियोंकी मिलती हैं। उनके पास पूर्ववर्ती पंडितोंके बनाये मापदण्ड न थे। किन्तु यह एक अंशमें ही असुविधा थी, क्योंकि परम्पराओंसे बँधे न रहनेके कारण उनकी रचनाओंमें ताज़गी थी। उनमें एक विशेष प्रकारकी स्पष्टता और सिधाई थी, जो बादकी कृतियोंकी कृत्रिमतामें बहुधा मन्द हो जाती है। आजका व्यंग-साहित्य अधिक उन्नत, अधिक तीखा, अधिक 'मखमलमें लपेटा' और अधिक 'शर्करा-मण्डित' है। उसकी ध्वनि अधिक गहरी है। किन्तु गुप्तजीके व्यंगमें कुछ बात ही अनोखी थी। उसमें जो स्वाभाविकता थी, और हृदयमें गुदगुदाने तथा मर्मस्थल पर हलकी चोट करनेकी जो शक्ति थी, वह आज कम देखनेको मिलती है।

गुप्तजी हिन्दीके इतिहासमें उन स्मरणीय धुरंधरोंमें सम्मिलित किये जायँगे, जिनके त्याग, लगन, अथक परिश्रम और हिन्दीके अनन्य और एकनिष्ठ प्रेम तथा सेवाके कारण हिन्दी अपनी वर्तमान अवस्थामें पहुँची है। नई पीढ़ीके लोगोंको, जो उस समय पैदा हुए जब हिन्दी प्रतिष्ठित हो चुकी थी, यह समझना कठिन है कि एक ऐसा भी समय था जब हिन्दीकी सेवा करना या उसकी बात भी करना कठिनाइयों और दरिद्रताको निमंत्रण देना था। उन दिनों केवल वे ही लोग हिन्दीकी सेवा करनेको आगे आते थे, जिनमें दूरदर्शिता होती, जो भारतीयताके अनन्य प्रेमी होते, जो यह विश्वास करते कि देशको एकतारूपी सूत्रमें ही बांधा जा सकता है और जो इस देशके अगणित अशिक्षित लोगोंको

शिक्षित करनेका र उनमें ज्ञानके विस्तारका एकमात्र साधन हिन्दीको समझते थे। थ ही साथ जिनमें अपने विश्वास और भावनाओंके लिये त्याग अं तपस्या करनेकी शक्ति होती। गुप्तजीकी गणना हमारी हिन्दीके वि.. ल भवनकी उन्हीं आधार-शिलाओंमें है। किन्तु वे आधारशिलाके सिवाय कुछ और भी थे—वे साहित्यके इतिहासमें एक नवीन अध्याय भी थे। हिन्दीके आरम्भिक परिश्रमशील युगकी गम्भीरता और भारी-भरकम शैलियोंके बीच वे मन्द मुसकान और उल्लास तथा चोज, चुटकी और चुहलको लेकर साहित्यमें आनन्दामृतकी वर्षा करते हुए सामने आये। आजके संघर्षपूर्ण युगमें, जिसमें मतभेदों, वादोंके विवादों और नाना प्रकारकी मानसिक, भौतिक और नैतिक कठिनाइयोंके कारण केवल व्यक्तियोंके ही नहीं, प्रत्युत सारे समाजके स्नायुतन्तु तनाव पर हैं, मानसिक स्वास्थ्यके लिये 'हास्य' हमारी सामूहिक आवश्यकता है। आज हमें गुप्तजीकी याद, इसी कारण विशेष-रूपसे आती है। व्यक्तियों और समाजको प्रकृतस्थ करनेके लिये और उसके मानसिक तनावको मिटानेके लिये हँसीके फौवारेकी आवश्यकता है, जो कहीं अपनी हलकी फुहारसे, कहीं तेज धारसे और कहीं केवल छींटोंसे ही हमारे गर्म मस्तिष्कको कुछ शीतल कर दे। गुप्तजीके प्रदर्शित मार्ग पर चलकर हम समाजका कल्याण कर सकते हैं और उनका अनुकरण ही उनके प्रति सर्वोत्तम प्रकारका सम्मान प्रदर्शन है।

२६

गुप्तजीका सच्चा स्मारक

[श्री मौलिचन्द्र शर्मा, एम० ए०]

हिन्दीके नवनिर्माणके युगारम्भकी उषा-वेलामें जिन साधकोंने हिन्दीको उसका वर्त्तमान रूप दिया था, उनमेंसे एक थे श्री बाल-मुकुन्दजी गुप्त।

हिन्दीका क्षेत्र बहुत विस्तृत है। उसमें अनेक बोलियोंका समावेश रहा है और है। इस समय जब राज-भाषाका मुकुट फारसीके सिरसे उतारकर अँगरेजीने धारण किया था और जब अन्य प्रान्तोंमें वहाँकी जन-भाषाओंको साँस लेनेका अवसर मिला था, तब भी हिन्दीके क्षेत्रपर जन-भाषाके व्याकरणका अवलम्ब ले फ़ारसी, उर्दूके छद्मरूपमें अवतरित हुई थी। इस कारण हिन्दीको बँगला, मराठी, गुजरातीके समान भी अवसर नहीं मिला।

सदाकी भाँति हिन्दीका रूप बोलियोंके अनुसार अलग-अलग प्रदेशोंमें अलग-अलग था। कवितामें ब्रज-भाषा, अवधी, डिंगल, पञ्जाबी, मैथिली आदिका अपना-अपना स्थान था। गद्य बहुत कम लिखा जाता था, दूसरी ओर उर्दूमें राज-भाषा होनेके कारण गद्यकी रचना आवश्यक हो गई। उस गद्यका आधार हिन्दी प्रदेशकी प्रधान राजधानी—दिल्ली और लखनऊकी बोली बनी, यही बोली जिसे हिन्दीके ऐतिहासिकोंने "खड़ी बोली" नाम दिया है। जहाँ दिल्ली, लखनऊके छैलों और मुन्शियोंकी बोलचालके मुहावरेने उर्दूको चुस्त बनाया, वहाँ अरबी, फ़ारसीसे नये-नये पारिभाषिक शब्द गढ़कर उसकी

समृद्धि और योग्यता सम्पादित की गई। इधर हिन्दी सदाकी भाँति पुराणवाचकों और पुरोहितोंके कथा-उपदेशों तथा सेठ-साहूकारोंके हुण्डी-पर्चों, भक्तोंके पदों और जनताके जीवनमें अनेक रूपोंमें चल रही थी। भारतकी बलवती तात्त्विक और सांस्कृति एकता यदि सहायक न होती, तो हिन्दी-क्षेत्रका बोलियोंके अनुसार प्रदेशोंमें विभाजित और छिन्न-भिन्न हो जाना निश्चित था। उन दिनों जिन जन-नायकोंने इस तात्त्विक एकताको पहचान हिन्दीके संवर्द्धनके कार्यमें भाग लिया, उन्होंने इस देशके शरीर और आत्मा—दोनों ही को बचा लिया।

इस मूलभूत ऐक्यका अनुभव मुझे अपने बचपनमें ही अपने जन्म-स्थान दिल्लीके निकट हरियाणा प्रदेशके झज्जर नगरमें होने लगा था। मन्दिरोंमें बाबाजीके साथ जाता, तो देखता था कि अवधी, व्रज, राजस्थानी और पञ्जाबीके पद सब लोग एक समान गाते थे, यद्यपि उन लोगोंमेंसे एक भी ऐसा न था, जो इनमेंसे एकको भी अपनी बोली कह सके। तुलसी, सूर, मीरा, दादू, नानक सभीकी भाषा हरियाणेकी बोलीसे भिन्न है, परन्तु ये सभी पद हरियाणेके उस नगरमें गाये जाते थे।

इसी तात्त्विक एकताने खड़ी बोलीके आधार पर भारतीय तत्त्वोंको लेकर हिन्दीको उसका वर्त्तमान रूप दिया। परन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सदृश एक-दोको छोड़ खरी और चुस्त हिन्दी लिखनेवाले अभी बहुत कम थे। सभी हिन्दीवालोंको, जो उर्दू भी जानते हों, अपनी भाषाके गठनमें कुछ कमी दीखा करती थी। वाक्य शिथिल, बन्ध ढीले, उसमें वह धार नहीं थी, जो पार हो जाय।

बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तने हिन्दीके शिथिल बन्धोंको बाँधा, वाक्योंकी चूलें बैठाईं और मुहावरेके शिकंजेमें दबाकर उन्हें कसा और फिर इस सबल शस्त्रको व्यंग और अनुमितार्थताकी सान पर चढ़ाकर धारदार और पैना बनाया। उन्होंने भारी-भरकम और कूट शब्दोंके बोझिल

और बेडौल अलंकारोंकी हँसली-हमेल और कड़े-पछेली न पहना हिन्दीको हलके-फुलके और सर्वप्रिय चमकते हुये जनभाषाके प्रयोगों द्वारा आभूषितकर 'नागरी' बनाया।

मेरी बाल्यकालकी स्मृतियोंमें गुप्तजीका बहुत बड़ा स्थान है। मेरे पूज्य पिताजी* के जीवनके साथ उनके जीवनका इतना निकट सम्बन्ध था कि उनकी चर्चा हमारे घरकी अनिवार्य नित्य घटना थी।

इन दोनोंका जन्म दिल्लीके निकट हिन्दीभाषी रोहतक जिलेके झज्जर और गुड़ियानी नगरोंमें हुआ था। दोनोंका विद्यारम्भ फ़ारसी-उर्दू से हुआ। दोनोंहीमें अपनी संस्कृति, भाषा, धर्म, परम्परा और समाजके उत्थानके लिये अन्तःप्रेरणा थी। दोनोंमें असाधारण योग्यता, दृढ़ता, मनस्विता और त्याग थे। और स्वभावतः दोनों युवावस्थाके आरम्भमें ही मित्र बन गये थे। दोनों उर्दू के लेखक, कलमके धनी और पत्र-सम्पादक थे। परन्तु पिताजी वक्ता भी थे। उनकी वाणीमें वह रस, ओज और प्रभाव था कि अपने समयके वे हिन्दीके अद्वितीय वक्ता माने जाते थे और इस देशकी कृतज्ञ जनताने उन्हें 'व्याख्यानवाचस्पति' कह उनका सम्मान किया था।

जब कांग्रेसका जन्म हुआ, तो पिताजी उधर खिंचे। कांग्रेसके दूसरे अधिवेशनमें, जो उसका पहला खुला अधिवेशन था, १८८६ में पिताजी और मालवीयजीमें आपसमें परिचय हुआ। पिताजीने उनसे अपना यह विचार कहा कि इसी प्रकार समस्त देशके धार्मिक पुनरुत्थानके लिये एक मंच बनाया जाय। यही विचार जब उन्होंने गुप्तजीसे कहा, तो गुप्तजीने सोचा कि अपढ़ देशमें छपे शब्दका उतना प्रभाव और प्रचार नहीं हो सकता, जितना बोले हुए शब्दका। वे स्वयं वक्ता न थे।

* स्वनामधन्य व्याख्यानवाचस्पति पंडित दीनदयालुजी शर्मा।

अतः उन्होंने सुझाव दिया—"भाई साहब, आप लिखना छोड़िये। आप बोलिये और मैं लिखूँगा।" और जब तक वे जिये, एक बोलते रहे और दूसरे लिखते रहे। इन दोनोंकी यह युक्ति कालके सिवा कोई न तोड़ सका।

जिस उद्देश्यको लेकर दोनों उठे थे, उसकी पूर्ति उर्दूसे न होती देख दोनों हिन्दीकी ओर झुके। जिनका "अदालत और आज़ादी" नामक लेख १८८६ की कांग्रेसमें छापकर बांटा गया था और उस अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष पंडित अयोध्यानाथने जिसे पढ़कर कहा था कि "कूज़ेमें दरिया बन्द कर दिया गया है," वे "मुंशी" दीनदयालु हिन्दी और संस्कृत पढ़कर "पंडित" दीनदयालु शर्मा बने। बाबू बालमुकुन्द गुप्त लाहौरका "कोहेनूर" छोड़ हिन्दी-पत्र-सम्पादक बने। गुप्तजीने "भारतमित्र"को अपने समयके हिन्दी-साप्ताहिकोंमें अग्रगण्य बनाया। वे हिन्दी-सम्पादकोंमें अग्रगण्य थे।

भारतीय राजनीति जब उग्र हो चली थी, तब गुप्तजीकी कलमने बड़ा काम किया था। लार्ड कर्जनको सम्बोधितकर लिखे गये "शिव शंभु के चिट्ठे" उनकी प्रखर राष्ट्रियता और उदात्त किन्तु संयत लेखन-शैलीके उदाहरण हैं। वह पैनापन और वह चोट है, जो दिलमें जगह बनाती है। आज भी जब हिन्दी बहुत आगे बढ़ चुकी है, गुप्तजीके वे लेख पत्राकार-कलाके शिक्षार्थियोंके लिये पाठ्यक्रममें रखे जाने योग्य हैं।

वर्णनमें गुप्तजी बहुत ऊँचे कलाकार थे। छोटे-छोटे वाक्यों और सर्वसाधारण शब्दों द्वारा वे ऐसे प्रखर, प्रांजल और प्रभावोत्पादक चित्र खींचते थे कि पाठकोंकी मानस-आंखोंके आगे दृश्य प्रत्यक्ष आ खड़े होते थे। "आँखों देखी" शीर्षक से उन्होंने उस धर्मान्दोलनका इतिहास लिखा था, जो पूज्य पं० दीनदयालुजीने पंजाबमें तब आरम्भ किया था, जब कोई सहायक न था, जब पण्डितजीके धर्म-विषयक भाषणके लिये मन्दिरोंमें भी स्थान न मिलता था। और जब बहुत कठिनाईसे एक

मन्दिरमें स्थान मिलने पर पंडितजी और गुप्तजीने अपने हाथों दरी बिछाकर एकने बोलना और दूसरेने सुनना आरम्भ किया था। कैसे इस कृष्णार्जुन-संवादसे चढ़कर सहस्रोंकी भीड़के साथ एक मास पश्चात् धर्मके जयघोष, गाजे-बाजे और चँवर-छत्रके साथ वे लाहौरकी सड़कोंसे जुलूसमें ले जाये गये थे, यह सब गुप्तजीकी लेखिनी ही लिख सकती थी। वैसा सजीव चित्र मिलना कठिन है।

गुप्तजी सिद्धान्ती थे। कड़े हिन्दू थे। परन्तु धर्म-विषयक विवादोंमें फँसना उन्हें पसन्द न था। पण्डितजीके दर्शन-विषयक भाषण तो उन्हें सुनने ही पड़ते थे, परन्तु वे कहा करते थे—"यह लोहेके चने तुम ही चबाओ, हम तो भक्तिकी माखन-मिश्रीके ग्राहक हैं।" उनका मन रस चाहता था, शुष्क तर्कवाद नहीं।

गुप्तजी जहाँ गम्भीर थे, वहाँ जीवन पर हँसनेकी भी उनमें पूर्ण सामर्थ्य थी। उनके 'टेसू' देशके सार्वजनिक जीवनके शब्दोंमें खेंचे गये कार्टून होते थे। उनमें सब कुछ कह जाते थे।

वे हँसोड़ तो थे ही, साथमें आत्माभिमानी भी थे। पिताजीको सार्वजनिक कामोंके लिये धनिकोंसे चन्दा लेना पड़ता था। एक बार कलकत्ते में एक ऐसे सेठके पास उन्हें जाना था, जो पीछे ही नहीं, दहिने-बायें भी मोटे-मोटे तकिये रख गुदगुदे गद्दे पर बैठते थे, सामने एक बड़ा बक्स रहता था। इस प्रकार उनके लम्बोदरके दर्शन कम होते थे, केवल ऊर्द्ध-भाग ही दिखाई देता था। पिताजीने चाहा कि गुप्तजी भी चलें। गुप्तजी झुँझलाकर बोले—"मैं उसके पास जाऊँ? वह तो कब्रमें बैठता है।" पिताजीने कहा कि तो क्या हुआ, वह कब्रसे उठकर आपका अभिवादन करेगा। गुप्तजी हाजिर जवाब तो थे ही, तुरन्त बोले—"ऐसे कब्रसे उठनेवालोंकी गति आप ही कर सकते हैं, मेरे बसका रोग नहीं।"

वैश्य होते हुये भी गुप्तजीको धनका मोह कभी नहीं हुआ। वे लेखक और पत्रकार थे, कलाकार थे। तितिक्षा, गरीबी, त्याग और मान उनका सहज स्वभाव था। कलकत्तेमें उनके जातिभाई लाखों-करोड़ों बटोर रहे थे, पर वे जीवन-भर अपनी प्रतिभाके फूल बखरनेमें लगे रहे। उन्होंने संग्रह नहीं, दान किया। न कुछ चाहा, न माँगा। जो मिला, उसी पर सन्तोष किया और कभी किसीसे न दबे। स्वतंत्र पत्रकारके जीवनके लिये जो आदर्श होना चाहिये, उसका वे उज्ज्वल उदाहरण थे।

हिन्दी राष्ट्रभाषा बन रही है। अनेक गूढ़ शास्त्रोंके लिये उसका गूढ़ गम्भीर पारिभाषिकतापूर्ण रूप भी होगा। परन्तु सार्वजनिक कार्योंके लिये तो उसका सरल जनभाषावाला रूप ही उपयोगी रहेगा। शायद कुछ लोग उसीके लिये 'हिन्दुस्तानी' नामका प्रयोग करते हैं। मैं न इस नामका समर्थक हूँ, न उस मनोवृत्ति और तर्कपद्धतिका, जो इसकी पृष्ठ-भूमि है। परन्तु यदि सरल, सुबोध, सर्वप्रिय भाषा किसीको चाहिये, तो उसे "भारतमित्र"की पुरानी फाइलें ढूँढ़कर श्री गुप्तजीके लेख देखने चाहियें। कई दशाब्दियाँ बीत जाने पर भी उनकी उपमा वे स्वयं ही हैं।

मैं चाहता हूँ कि गुप्तजीके चुने हुये लेखों और कविताओंका संग्रह प्रकाशित किया जाय। "भारतमित्र" की पुरानी फाइलोंका मिलना अब सहज नहीं, अतः उनमें बिखरे इन रत्नोंको सदाके लिये बचा रखनेका उद्योग होना चाहिये। गुप्तजीकी लेखावली हिन्दी-जगत्‌की अमूल्य निधि है, जिसे बचा रखना हमारा कर्त्तव्य है। यही श्री गुप्तजीका वास्तविक श्राद्ध होगा और यही उनका सच्चा स्मारक।

२७

निर्भीक गुप्तजी

[*सेठ गोविन्ददासजी मालपानी*]

श्री बालमुकुन्द गुप्तके समयसे अब हिन्दी-जगत्में आकाश-पातालका अन्तर हो गया है। केवल हिन्दी-पत्रोंको ही लीजिये। अब देशके प्रत्येक भागसे सहस्रोंकी संख्यामें छपनेवाले हिन्दी दैनिक, साप्ताहिक और मासिक निकल रहे हैं। परन्तु खेद है कि इस प्रवाहमें उस प्रतिभा का कौशल बहुत कम ही दिखाई देता है, जो गुप्तजीमें थी। गुप्तजी द्वारा सम्पादित "भारतमित्र"के किसी भी अंकको उठाकर देखिये। आपके हृदयको स्पर्श कर जानेवाली कोई-न-कोई सामग्री अवश्य मिल जायगी। किसी अंकमें यदि कोई चुटीला लेख मिलेगा तो किसीमें गंभीर कविता, किसीमें हास्यकी फुलझड़ी मिलेगी तो किसीमें निरुत्तर कर देनेवाली आलोचना। गुप्तजीकी प्रतिभा इतनी बहुमुखी थी कि साहित्यका कोई भी अंग उसका स्पर्श पाकर जगमगा उठता था। आजकलके पत्रोंको यदि गुप्तजी जैसे सम्पादक मिल जायँ, तो निश्चय ही अद्वितीय हो जायँ।

गुप्तजी अपने विरोधियोंको मुँहतोड़ उत्तर दिया करते थे। ऐसा करते समय उनकी प्रतिभा और भी प्रखर हो उठती थी। आचार्य महावीरप्रसादजी द्विवेदीसे उनकी अच्छी नोंक-झोंक हुआ करती थी, परन्तु वह साहित्य-क्षेत्रका प्रेममय आदान-प्रदान ही था। द्विवेदी उनके विरोधी नहीं, सहक्षेत्री ही थे। वास्तविक विरोधी तो वे व्यक्ति थे, जो देशकी स्वतन्त्रता, संस्कृति, सभ्यता और भाषाका विरोध करते थे। इन्हें गुप्तजीने खूब ही आड़े हाथों लिया है। "शिवशम्भुके चिट्ठे और खतों"में

तथा स्फुट कविताओंमे उनकी अच्छी आलोचना की गई है। किसी चिट्ठे में देशद्रोहीका पश्चात्ताप भर दिया गया है, तो किसीमें देशको गुलाम बनानेवाली नौकरशाहीको खरी-खरी सुनाई गई है। इनमे शाइस्ताखा और सर सैयद अहमदखांके खत बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार "सर सैयदका बुढ़ापा" और "उर्दूको उत्तर" शीर्षक कविताएँ भी अकाट्य तर्कों से युक्त हैं। ये सभी रचनायें गुप्तजीको हिन्दी-साहित्यमे सदा अमर रखेंगी।

गुप्तजी भारतीय स्वतन्त्रताके एक निर्भीक सिपाही थे। स्वतन्त्र भारत की भावी पीढ़ियाँ गुप्तजीके दिनोंकी कल्पना भी न कर सकेंगी। लार्ड कर्जनके कालकी अपमानजनक परतन्त्रतावस्थामे किसीको दबी जबानसे भी शासकोंके विरुद्ध बोलनेका साहस नहीं होता था। परन्तु गुप्तजी की निर्भीक लेखनी मानो पूर्णतः निडर थी। बंगालके गवर्नर तथा भारत के गवर्नर-जनरलकी आलोचना करनेमे वे कभी नहीं चूकते थे। शिव-शम्भुके चिट्ठे इसके जीते-जागते प्रमाण है। अपनी निर्भीक रचनाओं द्वारा गुप्तजी हिन्दी-पत्रों और पत्रकारोंके समक्ष एक ऊँचा आदर्श छोड़ गये हैं, जिसे लक्ष्य बनाकर हिन्दीके वर्तमान पत्र और पत्रकार अपना भविष्य उज्वल बना सकते हैं।

२८

गुप्तजी—कविके रूपमें

[कविवर श्री रामधारी सिंहजी 'दिनकर']

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तका नाम कविके रूपमें कम, आलोचक और निबन्धकारके रूपमें अधिक विख्यात है। हिन्दी भाषा और साहित्यके इतिहासमें वे एक उच्चकोटिके पत्रकारके रूपमें भी समादृत हैं। सुगठित एवं प्रांजल गद्यके वे एक ऐसे आचार्य हो गये हैं, जिनका लोहा आचार्य द्विवेदीजीको भी मानना पड़ा था। किन्तु, पद्य भी उन्होंने कम नहीं लिखे और उनके समयमें हिन्दी-कविताकी जो अवस्था थी, उसे देखते हुए उनके पद्य उपेक्षणीय तो नहीं ही कहे जा सकते।

गुप्तजीकी कविताके साथ न्याय करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम उनके समयको ध्यानमें रखें तथा यह बात भी याद रखें कि, प्रायः, पच्चीस वर्षकी उम्र तक हिन्दी-भाषासे उनका कोई विशेष सम्पर्क नहीं था। आरम्भमें उन्होंने अपने लिये उर्दू-पत्रकारका जीवन चुना था। हिन्दीके क्षेत्रमें तो वे बादको आये और वह भी मालवीयजीके

उत्तराधिकारियोंकी रचनाओंमें नहीं मिलती, किन्तु अपनी रचनाओंके द्वारा भारतेन्दुजीने साहित्यकी भूमिमें जो अभिनव बीज गिराये थे, उनमें से एक भी विनष्ट नहीं हुआ तथा उनकी मृत्युके पचास वर्ष बादतक हिन्दी-साहित्यमें जो भी हरीतिमा विकसित होती रही है, वह किसी न किसी रूपमें भारतेन्दु-कालीन क्रान्तिसे संबद्ध है। तफसीलमें न जाकर हम भारतेन्दुकी दो बातोंका उल्लेख यहाँ करना चाहते हैं। पहली बात तो यह है कि भारतेन्दुजीकी कितनी ही कविताओंमें हम एक ऐसा नवीन स्वर पाते हैं, जो पहलेके सभी स्वरोंसे भिन्न है तथा जो हिन्दी कवितामें आगे चलकर उत्पन्न होनेवाले रोमांटिक आन्दोलनकी क्षीण, किन्तु, सुनिश्चित पूर्व सूचना देता है। और दूसरी बात यह है कि भारतेन्दुजीने पहले-पहल समकालीन दुरवस्थाओंको साहित्यके कोमल हृदयमें स्थान देना आरम्भ किया तथा कविताके माध्यमका उपयोग वे जन-चेतनाको जगानेके लिये करने लगे। इस प्रकार वे सिर्फ रोमांटिक आन्दोलनके ही पूर्वपुरुष नहीं, बल्कि, हिन्दीके प्रगतिवादी आन्दोलनके भी पिताके समान हैं।

भारतेन्दुजीने रोमांटिक धाराकी जो सूचन दी थी, वह उनके बाद बहुत दिनों तक इतिवृत्तात्मकताके सिकता-समूहमें विलीन-सी पड़ी रही और बीसवीं सदीके दूसरे दशकसे पूर्व उसका स्पष्ट उद्रेक कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा। किन्तु, प्रगतिवादी धाराका जो उत्स उनकी वाणीमें फूटा था, उसने कभी भी विश्राम नहीं लिया तथा उनके उत्तराधिकारियों में से जो भी कवि कविताकी ओर उन्मुख हुए, उन्होंने अपने समयकी देश-दशाको जरूर प्रमुखता दी।

इस दृष्टिसे बाबू बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दुके सच्चे वारिसोंमें से थे। उनके पद्योंमें सौंदर्यकी सृष्टि कम, समयके चित्रणका प्रयास कहीं अधिक है। उनका काव्य-काल कांग्रेसके जन्मके तीन-चार साल बाद

२८

गुप्तजी—कविके रूपमें

[कविवर श्री रामधारी सिंहजी 'दिनकर']

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तका नाम कविके रूपमें कम, आलोचक और निबन्धकारके रूपमें अधिक विख्यात है। हिन्दी भाषा और साहित्यके इतिहासमें वे एक उच्चकोटिके पत्रकारके रूपमें भी समादृत हैं। सुगठित एवं प्रांजल गद्यके वे एक ऐसे आचार्य हो गये हैं, जिनका लोहा आचार्य द्विवेदीजीको भी मानना पड़ा था। किन्तु, पद्य भी उन्होंने कम नहीं लिखे और उनके समयमें हिन्दी-कविताकी जो अवस्था थी, उसे देखते हुए उनके पद्य उपेक्षणीय तो नहीं ही कहे जा सकते।

गुप्तजीकी कविताके साथ न्याय करनेके लिये यह आवश्यक है कि हम उनके समयको ध्यानमें रखें तथा यह बात भी याद रखें कि, प्रायः, पच्चीस वर्षकी उम्र तक हिन्दी-भाषासे उनका कोई विशेष सम्पर्क नहीं था। आरम्भमें उन्होंने अपने लिये उर्दू-पत्रकारका जीवन चुना था। हिन्दीके क्षेत्रमें तो वे बादको आये और वह भी मालवीयजीके अनुल्लंघनीय आग्रहके कारण।

तुलसीदासके बाद हिन्दी-साहित्यमें सबसे बड़ी क्रान्ति भारतेन्दु-युगमें हुई। साहित्यके अन्य क्षेत्रोंकी बात तो जाने दीजिये, एक कविता के ही क्षेत्रमें भारतेन्दुजीने क्या परिवर्त्तन कर दिखाया। इसे वे ही समझ सकते हैं, जिन्होंने भारतेन्दुके पूर्ववर्ती कवि पजनेस और द्विजदेवकी रचनाओंके साथ भारतेन्दु-काव्यका तुलनात्मक अध्ययन किया हो। यह ठीक है कि भारतेन्दु-काव्यकी सरसता उनके

उत्तराधिकारियोंकी रचनाओंमें नहीं मिलती, किन्तु अपनी रचनाओंके द्वारा भारतेन्दुजीने साहित्यकी भूमिमें जो अभिनव बीज गिराये थे, उनमें से एक भी विनष्ट नहीं हुआ तथा उनकी मृत्युके पचास वर्ष बादतक हिन्दी-साहित्यमें जो भी हरीतिमा विकसित होती रही है, वह किसी न किसी रूपमें भारतेन्दु-कालीन क्रान्तिसे संबद्ध है। तफसीलमें न जाकर हम भारतेन्दुकी दो बातोंका उल्लेख यहाँ करना चाहते हैं। पहली बात तो यह है कि भारतेन्दुजीकी कितनी ही कविताओंमें हम एक ऐसा नवीन स्वर पाते हैं, जो पहलेके सभी स्वरोंसे भिन्न है तथा जो हिन्दी कवितामें आगे चलकर उत्पन्न होनेवाले रोमांटिक आन्दोलनकी क्षीण, किन्तु, सुनिश्चित पूर्व सूचना देता है। और दूसरी बात यह है कि भारतेन्दुजीने पहले-पहल समकालीन दुरवस्थाओंको साहित्यके कोमल हृदयमें स्थान देना आरम्भ किया तथा कविताके माध्यमका उपयोग वे जन-चेतनाको जगानेके लिये करने लगे। इस प्रकार वे सिर्फ रोमांटिक आन्दोलनके ही पूर्वपुरुष नहीं, बल्कि, हिन्दीके प्रगतिवादी आन्दोलनके भी पिताके समान हैं।

भारतेन्दुजीने रोमांटिक धाराकी जो सूचन दी थी, वह उनके बाद बहुत दिनों तक इतिवृत्तात्मकताके सिकता-समूहमें विलीन-सी पड़ी रही और बीसवीं सदीके दूसरे दशकसे पूर्व उसका स्पष्ट उद्रेक कहीं भी दिखाई नहीं पड़ा। किन्तु, प्रगतिवादी धाराका जो उत्स उनकी वाणीमें फूटा था, उसने कभी भी विश्राम नहीं लिया तथा उनके उत्तराधिकारियों में से जो भी कवि कविताकी ओर उन्मुख हुए, उन्होंने अपने समयकी देश-दशाको जरूर प्रमुखता दी।

इस दृष्टिसे बाबू बालमुकुन्द गुप्त भारतेन्दुके सच्चे वारिसोंमें से थे। उनके पद्योंमें सौंदर्यकी सृष्टि कम, समयके चित्रणका प्रयास कहीं अधिक है। उनका काव्य-काल कांग्रेसके जन्मके तीन-चार साल बाद

प्रारम्भ होता है। अतएव हम देखते हैं कि राजनीतिकी ओर वे भारतेन्दुकी तरह सावधान रहकर संकेत नहीं करते, वल्कि, उन्हें जो कुछ कहना होता है, उसे वे वड़ी ही निर्भीकतासे कह जाते हैं। स्वदेशी अन्दोलनके समय उन्होंने जो कविताएँ लिखी थीं, वे तो प्रायः उतनी ही निर्भीक हैं, जितनी कांग्रेस आन्दोलनके समय लिखी गई अन्य कवियोंकी कविताएँ मानी जा सककी है। इंगलैंडमें लिवरल पार्टीकी जीतके समय सन् १९०६ ई० में उनकी "पालिटिकल होली" नामक जो रचना "भारतमित्र"में छपी थी, उसमें उन्होंने वड़ी स्पष्टताके साथ उस सिद्धान्तका निरूपण कर दिया था, जिसपर भारतवर्ष प्रायः सन् ४२ तक चलता रहा :—

ना कोई लिवरल ना कोई टोरी,
जो परनाला सोही मोरी
दोनोंका है पन्थ अघोरी
होली है, भई होली है।
करते फ़ुलर विदेशी वर्जन
सब गोरे करते हैं गर्जन
जैसे मिण्टो वैसे फर्जन
होली है, भई होली है।

उन्नीसवीं सदीके अपरार्द्धका भारतवर्ष एक अपमानित, प्रताड़ित, रुग्ण और दुर्भिक्ष-पीड़ित देश था। अंगरेजोंने अपने शासनके साथ देशकी छातीपर जो अनेक अभिशाप लादे थे, उनमेंसे दीनता, अकाल और प्लेगकी भयङ्करता अत्यन्त कराल थी तथा हिन्दीके तत्कालीन कवि शासकोंको किसी भी प्रकार क्षमा करनेकी मुद्रामें नहीं थे। प्लेगको तो भारतवासी सीधे अंगरेजोंकी देन समझते थे, जो बात बिलकुल ठीक

भी थी। गुप्तजीने "प्लेगकी भुतनी" नामक जो विचित्र कविता लि
थी, उसमें एक स्थानपर हम प्लेगको अंगरेजोंपर ही टूटते देखते हैं :—

आवो आवो रे अंगरेज।
ठहरो ठहरो भागे कहाँ ? खाऊँगी पाऊँगी जहाँ,
फोड़ खोपड़ी भेजा खाऊँ करके रेजारेज।

प्लेगको, उसे भारतमें लानेवाले अंगरेजोंपर ललकारनेमें जो
प्रतिशोधात्मक भाव है, वह सहज ही समझमें आ जाता है।
कवितामें गुप्तजीने वृद्धोंपर भी एक कटु व्यंग किया है, जैसा
प्रत्येक युगके अल्हड़ नौजवान अपने समयके सत्तारूढ़ वयस्क लोगों
किया करते हैं। प्लेग कहती है :—

कच्चे कच्चे लड़के खाऊँ युवती और जवान,
बूढ़ेको नहीं हाथ लगाऊँ, बूढ़ा बेईमान।

जवानीका अर्थ है साहस, त्याग और प्रयोग करनेकी आकांक्षा
बुढ़ापेकी निशानी अगति, रक्षण और अनुदारता है। गुप्तजीका
जवानीके पक्षमें था। सर सैयद अहमद खाँने मुसलमानोंको कांग्रेस
बचे रहनेका जो उपदेश दिया था, उससे गुप्तजी तलमला उठे थे
अपना क्षोभ उन्होंने "सर सैयदका बुढ़ापा" नामक लम्बी कविता
प्रकट किया था, जिसकी आरम्भिक पंक्तियाँ ही भयंकर प्र
करनेवाली थीं :—

बहुत जी चुके बूढ़े बाबा, चलिये मौत बुलाती है,
छोड़ सोच मौतसे मिलो जो सबका सोच मिटाती है।

उन्नीसवीं सदीके अपरार्द्धके कवि अपने देशकी दरिद्रता औ
समाजमें फैली हुई विषमतासे किस प्रकार ऊबे हुए थे, यह बात
"सैयदका बुढ़ापा" शीर्षक कवितासे स्पष्ट मालूम होती है। आश्चर्य य
है कि आज हम अपनेको प्रगतिवादी सिद्ध करनेके लिये कविता

जितनी दलीलोंको एकत्र करनेके आदी हो गये हैं, वे सारी दलीलें गुप्तजीने बड़ी ही स्वाभाविकताके साथ पहले ही उपस्थित कर दी थीं :—

"हे धनियो ! क्या दीन-जनोंकी नहिं सुनते हो हाहाकार ?
जिसका मरे पड़ोसी भूखा, उसके भोजनको धिक्कार।"

× × × ×

"भूखोंकी सुधि उसके मनमें कहिये किस पथसे आवे,
जिसका पेट मिष्ट भोजनसे ठीक नाक तक भर जावे।"

× × × ×

"फिर भी क्या नंगे-भूखों पर दृष्टि नहीं पड़ती होगी ?
सड़क कूटनेवालोंसे तो आँख कभी लड़ती होगी।"
"कभी ध्यानमें उन दुखियोंकी दीन-दशा भी लाते हो ?
जिनको पहरों गाड़ी घोड़ोंके पीछे दौड़ाते हो।"
"लूके मारे पंखेवालेकी गति वह क्योंकर जाने ?
शीतल खसकी टट्टीमें जो लेटा हो चादर ताने।"

× × × ×

"जिनके कारण सब सुख पायें जिनका बोया सब जन खायें,
हाय हाय नित उनके बालक भूखोंके मारे चिल्लायें।"
"हाय जो सबको गेहूँ दें वे ज्वार बाजरा खाते हैं,
वह भी जब नहिं मिलता तब वृक्षोंकी छाल चबाते हैं।"

इन पंक्तियोंमें शैलीका वह निखार तो नहीं है, जो आज देखनेमें आता है, किन्तु कौन कह सकता है कि इनमें निरूपित किया गया सत्य कहींसे भी कमजोर है ?

सर सैयदकी फिलासफीने देशका सत्यानाश किया। अगर सर सैयदका जन्म इस देशमें नहीं हुआ होता, तो सम्भव था मुसलमान कुछ अधिक हिम्मतसे काम लेते और अपनी किस्मतकी डोर कांग्रेसके

साथ बाँधकर राष्ट्रियताकी शक्ति पहुँचाते, जिसके लिये कांग्रेस उनसे बार-बार प्रार्थना कर रही थी। सर सैयदका विरोध उर्दू-साहित्यमें महाकवि अकबरने बड़े जोरसे किया था। किन्तु, हिन्दी-कवितामें यह विरोध शायद गुप्तजीकी ही कवितामें ध्वनित हुआ है।

अकबरसे गुप्तजीकी समता और भी कई बातोंको लेकर है। दोनों ही अंगरेजोंके खिलाफ और उनके आलोचक थे। दोनों ही योरोपसे आनेवाली रौशनीको नापसन्द करते थे और दोनों ही सुधारोंके नारोंसे घबराते थे तथा दोनों ही ने अपने मतामतके प्रकाशनार्थ कटूक्तिपूर्ण पद्योंका माध्यम चुना था। किचनर और कर्जनके झगड़में जब कर्जन की हार हुई, तब अकबरने चार पंक्तियोंका एक बन्द लिखा था, जिसकी "देखलो यह जन पै नर गालिब हुआ" नामक पंक्ति बहुत ही प्रसिद्ध है। उन्हीं दिनों गुप्तजी भी कितनी ही पंक्तियोंमें कर्जनकी पूरी खबर ले रहे थे। किचनर सेनापति था और कर्जन वायसराय। अतएव वायसरायके हारनेपर उन्होंने आनन-फानन लिख दिया :—

"कलम करे कितनी ही चर-चर
भालेके वह नहीं बराबर।"

एक बार कर्जनने हिन्दुस्तानियोंको झूठा कह दिया था, जिसपर अकबर साहबने लिखा था :—

"हम झूठे हैं तो आप हैं झूठोंके बादशाह।"

अकबर साहबकी पंक्ति बड़ी ही सटीक बैठी है। किन्तु, इसी घटना पर गुप्तजीने भी कर्जनकी काफी खबर ली थी :—

"मनमें कुछ मुँहमें कुछ और—यही सत्य है कर लो गौर
झूठको जो सचकर दिखलावे—सोही सच्चा साधु कहावे
मुँह जिसका हो सके न बन्द—समझो उसे सच्चिदानन्द।"

सुधारोंके प्रति जिस अनास्थाका परिचय अकबरने दिया है, उसी से गुप्तजी भी आक्रान्त थे। प्राचीन परम्पराके प्रतिनिधि होनेके कारण वे सुधारके प्रत्येक आन्दोलनको शंकाकी दृष्टि से देखते थे। कहीं-कहीं तो ऐसा मालूम होता है, मानों सुधारोंके नारोंके बीच वास्तविकता ही उन्हें लुप्त होती दिखाई दे रही हो :—

हाथी यह सुधारका लोगो, पूँछ उधर भई पूँछ इधर
आओ, आओ पता लगाओ, सूँड किधर भई मूँड किधर।
इधरको देखो, उधरको देखो, जिधरको देखो दुम ही दुम
बोल रहा हूँ, चाल रहा हूँ, सूंड भी गुम भई मूँह भी गुम।

गुप्तजीने प्रकृति-वर्णन और भक्तिके भी पद्य लिखे हैं। किन्तु, साहित्यके इतिहासमें उनका वैसा महत्व नहीं, जैसा उनकी हास्य-मिश्रित कटूक्तियोंका। ये कटूक्तियाँ ही उनका वह शस्त्र थीं, जिनके माध्यमसे वे तत्कालीन सामाजिक व्यवस्थापर वार करते थे। आगे चलकर रूप तो इनका भी बदल गया। किन्तु, यह धारा बहती ही गई और गुप्तजीसे बादवाला साहित्य इस धाराको अब तक भी पुष्ट ही करता आया है।

गुप्तजीने काव्यकी प्रेरणा पं० प्रतापनारायणजी मिश्रसे ली थी और मिश्रजीके दृष्टिकोणका उनपर गहरा प्रभाव भी पड़ा था। इन महापुरुषोंकी कविताएँ आज उतनी गम्भीर भले ही न दीख पड़ें, पर उस समय समाजमें जागरूकता तथा निर्भयता उत्पन्न करनेमें उन्होंने बड़ा काम किया था।

२९

गुप्तजीकी हिन्दी-सेवा

[पण्डित जगन्नाथप्रसादजी मिश्र, एम० ए०, काव्यतीर्थ]

हिन्दी-गद्यके प्रारम्भिक विकास तथा भाषा-शैलीको परिमार्जित एवं प्रचलित स्वरूप प्रदान करनेमें जिन साहित्य-सेवियोंने अनवरत प्रयास एवं साधना की थी, उनमें बाबू बालमुकुन्दगुप्तजीका नाम अग्रगण्य है। गुप्तजी एक विलक्षण प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए थे और उनकी इस प्रतिभाका परिचय हमें तत्कालीन साहित्यके विभिन्न क्षेत्रोंमें जिस चमत्कारपूर्ण ढंगसे मिलता है, वैसा अन्य किसी भी साहित्यिकका नहीं मिलता। उनके पूर्व जो लोग हिन्दी-गद्य-शैलीके निर्माण एवं उनके रूप-विन्यासमें संलग्न थे, उनकी विभिन्न शैलियोंसे पृथक् गुप्तजी अपनी एक विशिष्ट शैली लेकर चले। इस शैलीमें एक अजीब लोच और जिन्दादिली है। इनकी जैसी सर्वजन-बोधगम्य भाषाका प्रयोग इनके पूर्वके किसी लेखकने नहीं किया था। गुप्तजी हिन्दीके क्षेत्रमें पदार्पण करनेके पूर्व उर्दू-साहित्यमें अपनी प्रतिभाका चमत्कार और कलमका जौहर दिखा चुके थे। इसलिये हिन्दीके क्षेत्रमें एक समाचारपत्र-सम्पादकके रूपमें पदार्पण करते ही उन्होंने संस्कृतिके तत्सम शब्दोंके साथ उर्दूके प्रचलित शब्दोंका प्रयोग करके गद्यकी भाषा-शैलीको एक ऐसा सुष्ठु एवं प्रभावशाली रूप प्रदान किया कि उसके एक-एक शब्दमें जान आ गयी और सारे-के-सारे वाक्य प्रवाहपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी बन गये। गुप्तजीके पूर्व हिन्दीके समाचारपत्रोंकी कोई निश्चित और मुहावरेदार चलती शैली थी ही नहीं,—यदि हम ऐसा कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

गुप्तजीने ही सबसे पहले चुभते हुए छोटे-छोटे वाक्योंका प्रयोग करके हिन्दीके समाचारपत्रोंकी भाषा-शैलीकी दिशामें पथ-प्रदर्शकका काम किया। किस प्रकारके चलते शब्दों और मुहावरोंका प्रयोग करके भाषा को परिमार्जित एवं प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है, इसका जैसा ज्ञान गुप्तजीको था, वैसा उनसे पूर्वके किसी पत्र-सम्पादकको था अथवा था अथवा नहीं—यह सन्देहास्पद है। "भारतमित्र" का सम्पादन करते हुए उन्होंने समाचारपत्रके उपयुक्त एक ऐसी शैलीका प्रवर्तन किया, जिसकी परम्परा आजतक कायम है और उनके बादके कितने ही लेखकों और सम्पादकोंने इसी शैलीका अनुसरण करके लेखकके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त की। उनकी शैलीमें गति है, प्रवाह है, जोर है और सबसे बढ़कर है उनके प्रखर व्यक्तित्वकी अमिट छाप। कहते हैं लेखककी शैली उसके व्यक्तित्वका निदर्शन करती है और यह ठीक भी है, क्योंकि शैली-जीवन से कोई भिन्न वस्तु नहीं है। गुप्तजीके सम्बन्धमें यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती है। उनका चरित्र दृढ़ एवं तेजस्वी था। उनके जीवनमें ऐसे कितने ही अवसर आये जबकि उन्हें कर्त्तव्य-पथसे विचलित करने के लिये बड़ेसे बड़े प्रलोभन दिये गये। किन्तु सत्यनिष्ठाकी इस अग्नि-परीक्षामें तपकर उनका चरित्र और भी कुन्दनकी तरह निखर उठा। उनके नैतिक बल, उनके आत्मतेजकी महिमाके सामने कलकत्तेके तत्कालीन विलासी धन-कुबेरोंकी गौरव-गरिमा किस तरह म्लान पड़ गयी थी, इसकी कहानियाँ आज भी सुनी जाती हैं। अपनी इस अविचलित सत्यनिष्ठा, कर्त्तव्यज्ञान एवं चारित्रिक दृढ़ताके कारण ही गुप्तजीने अपने सम्पादन-कालमें "भारतमित्र"की एक ऐसी मर्यादा हिन्दी-पाठकोंके बीच स्थापित कर दी थी कि उनकी लेखनीका लोहा उनके विरोधी भी मानने लग थे और किसी सार्वजनिक प्रश्न या आन्दोलनके सम्बन्धमें उनके जो विचार, "भारतमित्र" के सम्पादकीय स्तम्भोंमें व्यक्त होते थे, उनकी

अवहेलना करना बड़े-से-बड़े समाज-पतियोंके लिये भी सहज नहीं होता था। संपादन-कलाकी इस प्रतिष्ठा एवं गौरव-गरिमाको गुप्तजीने कभी क्षुण्ण नहीं होने दिया और इस रूपमें वह हिन्दी-पत्र-सम्पादकोंके लिये एक ऐसा आदर्श कायम कर गये हैं, जिसकी परम्पराको अम्लान रख-कर हम निस्सन्देह पत्रकार-कलाके गौरवमे चार चाँद लगा सकते हैं। गुप्तजी जानते थे कि एक पत्र-सम्पादकके लिये अपने कर्त्तव्य एवं दायित्वका ज्ञान होना तथा उनके सम्बन्धमे सचेत रहना कितना आव-श्यक है। यदि वह अपने स्वाभिमानकी रक्षा करता हुआ सत्यनिष्ठ भाव-से अपने कर्त्तव्यों एवं दायित्वोंका पालन करता रहेगा, तो अवश्य ही उसका पत्र लोकमतके गठन एवं परिचालनमे अपना प्रभाव जमाये विना नहीं रह सकता। जनमतको वह सच्चे अर्थमे व्यक्त करेगा और उसका वास्तविक प्रतिनिधित्व करेगा। गुप्तजीने "भारतमित्र" को इसी स्थिति पर पहुँचा दिया था और यही कारण है कि कलकत्तेके तत्कालीन हिन्दी भाषा-भाषी समाजमें "भारतमित्र" और उसके सम्पादक गुप्तजीकी काफी धाक और प्रतिष्ठा थी।

गुप्तजीकी शैलीकी एक और विशेषता थी व्यंग एवं विनोदका पुट, जिससे उनकी कथन-प्रणाली अत्यन्त सरस एवंप्रभावोत्पादक बन जाती थी। उनकी इस शैलीका परिचय हमें उनके आलोचनात्मक निबंधोंमें मिलता है। "शिवशम्भुके चिट्ठों" में उन्होंने इसी प्रणालीका अनुसरण किया है। तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जनके नाम लिखे गये इन चिट्ठों-ने उस समयके हिन्दी-भाषा-भाषी समाजमें एक तहलका मचा दिया था। उस जमानेमें इतनी निर्भीकतासे देशके सर्वोच्च शासकके कार्यकलाप-की तीव्र आलोचना करना गुप्तजी जैसे देशभक्त सम्पादकका ही काम था, विदेशी-शासनके फलस्वरूप देशकी दुर्दशा देखकर उनका हृदय कितना आहत हो उठता था, यह उनके कितने ही लेखोंसे स्पष्ट प्रकट

होता है। उर्दू-साहित्यके मर्मज्ञ एवं सुलेखक होते हुए भी उन्होंने हिन्दीकी सेवा ही नहीं की, बल्कि उर्दूके मुकाबलेमें उसका पक्ष भी ग्रहण किया। संयुक्त-प्रान्तके न्यायालयोंमें नागरी लिपिमें लिखे हुए प्रार्थना-पत्रोंके प्रस्तुत कर सकनेकी आज्ञा मिलनेपर उर्दूके पत्रोंने बड़ा वावेला मचाया था। उस समय गुप्तजीने "भारतमित्र"में हिन्दी भाषा और नागरी लिपिके समर्थनमें कितने ही युक्तिपूर्ण लेख लिखकर उर्दू-पत्रोंके आन्दोलनपर चुटकियाँ ली थीं और साथ ही इसके यह भी सिद्ध कर दिया था कि हिन्दू लोग उर्दूके शत्रु नहीं हैं और जहाँ तक उर्दू-साहित्यके प्रति प्रेम और उसकी सेवाका सम्बन्ध है, हिन्दू मुसलमानोंसे किसी तरह कम नहीं हैं।

गुप्तजीके लेखों, होली आदिके अवसर लिखी गयी उनकी विनोद-पूर्ण टीका-टिप्पणियों, चुटकियों तथा व्यंग्यात्मक आलोचनाओंको पढ़कर आज भी हम एक प्रकारके शुद्ध सात्विक आनन्दका अनुभव करते हैं और उनके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें बड़ी ऊँची धारणा हमारे मनमें उत्पन्न होती है। हिन्दीके प्राचीन-साहित्यका उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था और उसके व्याकरण तथा शैलीकी विशुद्धताके सम्बन्धमें वे अधिकार-पूर्वक अपनी सम्मति प्रकट करते थे। अत्यन्त सहृदय, रसिक तथा विनोदप्रिय प्रकृतिके होनेपर भी वे अपने सिद्धांतोंपर अटल रहनेवाले तेजस्वी पुरुष थे। अपने चरित्र-बलकी पूँजी लेकर ही उन्होंने पत्र-सम्पादककी वृत्तिको ग्रहण किया और अपनी प्रतिभा एवं पाण्डित्यसे संपादन-कलाको चमकाया ही नहीं, बल्कि उसे गौरवान्वित भी किया। आज उनकी सेवाओंको स्मरण करके स्वतः हमारा मस्तक कृतज्ञता-भारसे अवनत हो जाता है।

३०

वे, जिन्होंने अलख जगाया

[पण्डित बालकृष्णजी शर्म्मा 'नवीन']

उनकी चरण-स्मृतिमें शतशः प्रणाम, जिन्होंने अँधेरेमें वर्त्तिका जलाई, जिन्होंने स्वप्न देखा, जिन्होंने अलख जगाया। बाबू बालमुकुन्द गुप्त उन महानुभावोंमें एक अग्रगण्य जन थे। आज मुझे उनकी स्मृति-समाधिपर अपनी विनम्र श्रद्धाञ्जलि अर्पित करनेका अवसर मिला है। इसका श्रेय मेरे अग्रज मित्रवर पंडित झावरमल्लजी शर्माको है। उनकी प्रेरणा यदि मुझे न मिलती तो मैं इस पुण्य-कार्यसे वंचित रह जाता। उन्होंने मुझे गोलोकवासी बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तके प्रति प्रणामाञ्जलि निवेदित करनेका जो यह अवसर दिया है, उसके लिये मैं बहुत ही आभारी हूँ।

बाबू बालमुकुन्दजीका स्मरण करते ही वे सब पूर्वज स्मृति-क्षितिज पर आ जाते हैं जिनके कारण आज हम अपने स्वरूपको पहचान सके हैं। व्याख्यानवाचस्पति भारत धर्म-केसरी पण्डित दीनदयालु शर्मा, महाप्राण पंडित मदनमोहन मालवीय, पंडित प्रतापनारायण मिश्र, पंडित अमृतलाल चक्रवर्ती, श्री मोतीलाल घोष, पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पंडित श्रीधर पाठक आदि अनेक पूर्वजोंका स्मरण बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तके स्मरणके साथ ही हो आता है। ये सब महानुभाव उनके सहयोगी, सहकर्मी एवं समानधर्मा थे। बाबू बालमुकुन्दजी वास्तवमें हमारी भाषाके निर्माता, हमारे भावोंके संमार्जक एवं हमारे लक्ष्यके निर्देशक थे। आज हम जो कुछ हैं, वह इन्हीं पूर्वजोंके परिश्रमके

फलस्वरूप हैं। जिस समय हमारे देशमें स्तब्धता थी, जिस समय हमारी वाणी मूक थी, जिस समय हमारे हृदय स्पन्दन-हीन थे, उस समय इन अग्रजन्माओंने एक शंख-ध्वनि की और उस ध्वनिसे हमारा यह भारतीय आकाश प्रकम्पित हुआ। उस वायु-तरंगको आन्दोलित करनेवालोंमें बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका विशेष स्थान था।

वह समय आज इतिहासके पृष्ठोंके अध्ययनके द्वारा ही हृदयंगम किया जा सकता है। स्वतन्त्राके उन्मुक्त वातावरणमें, स्वाधीनताके बाल-आतपके उदयसे, वह तिमिरकाल आज अतीतके गर्भमें विलीन हो गया है। उस कालकी विवशता, उस कालकी आत्म-हीनता, तत्कालीन मानसिक ग्लानि आज विलुप्त हो चुकी है। अतः आज जिस समय हम गुप्तजीके तथा उनके समकालीन अन्य महानुभावोंके भगीरथ प्रयत्नोंका मूल्यांकन करने बैठते हैं तो तत्कालीन विवशताको बहुधा भूल जाते हैं और इस प्रकार हम उनके प्रयत्नोंके मूल्यको ठीक-ठीक आँक नहीं पाते। पर, जब हम ऐसा करते हैं तो अपने आपको ऐतिहासिक समीक्षाके अयोग्य सिद्ध करते हैं। बालमुकुन्दजी गुप्तने जो कुछ लिखा, जो कुछ किया, जो कुछ हमें दिया, उसका वास्तविक मूल्य हम तभी समझेंगे जब हम उनके समयकी कठिनताओंको, उस कालकी विडम्बनाओंको अपने सम्मुख रखे रहें।

गुप्तजीका जन्म सन् १८६५ ईस्वीमें हुआ और सन् १९०७ ईस्वीमें उन्होंने अपनी इहलोक-लीलाका संवरण किया। इन बयालीस वर्षोंके स्वल्पकालमें गुप्तजीने जितना बड़ा काम किया—हिन्दी भाषा एवं हिन्दी पत्रकारिताकी, उन्होंने जो कुछ उन्नति एवं सेवा की—वह हमारे इतिहासमें एक विशिष्ट घटना है। गुप्तजी बड़े पैने आलोचक, बड़े शैलीवान् लेखक, बड़े प्राणवान् व्यक्ति थे। पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदीसे उनकी खूब चला करती थी, पर वे बड़े ही निर्वैर व्यक्ति थे।

उनकी आलोचना तीखी होती थी, पर उस तीखेपनमे व्यक्तिगत विद्वेष किंवा अहम्मन्यताका लेशमात्र भी नहीं था। अपने मित्रोंमे, जिन्हें भी उन्होंने अपना अग्रज मान लिया, उनके प्रति गुप्तजी सदा विनत रहे। पंडित मदनमोहनजी मालवीय, पंडित दीनदयालुजी शर्मा, पंडित प्रतापनारायणजी मिश्र, पण्डित श्रीधर पाठक आदि महानुभाव गुप्तजीके प्रायः समवयस्क मित्र थे। पर, इनके प्रति गुप्तजीने अपने मनमे अग्रज-भावका आरोप कर लिया था और जीवनभर वे अपनी इस आनको निभाते रहे। केवल एक यह बात गुप्तजीके चरित्रकी एक बड़ी मनोमोहक तथा ऊँची छटा हमे दिखलाती है। उनके इस प्रकारके व्यवहारसे हमें पता चलता है कि वे स्वभावसे विनम्र-जन थे। उनमे अहंता नहीं थी। उनमें शिष्य-भावना (Spirit of discipleship) विद्यमान थी। मैं बहुधा अपने अनुजों एवं मित्रोंसे कहा करता हूँ कि जिस व्यक्तिके अन्तससे शिष्य-भावनाका तिरोधान हो जाता है, उसका विकास रुक जाता है और उसका आध्यात्मिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक पतन प्रारम्भ हो जाता है। बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तमे शिष्य-भावना पर्याप्त मात्रामे विद्यमान थी और यही कारण है कि अपने जीवनमे वे उत्तरोत्तर समुन्नत होते चले गये। स्मरण रखिये, शिष्य-भावनाका अर्थ आत्म-दैन्य किंवा भूमि-रिंगण नहीं है। शिष्य-भावनाका अर्थ है अपने मस्तिष्कके वातायनको खुला रखना और सद्विचार वायुको प्रविष्ट होने देनेका अवसर देना। बालमुकुन्दजी गुप्तके इस शिष्य-भावने उन्हें 'पुनि न नँवै जिमि उकठ कुकाठू' की दशाको प्राप्त नहीं होने दिया और इसी भावने उनकी तीखी आलोचना-वृत्तिको विद्वेष एवं घृणाके निम्नस्तर पर नहीं उतरने दिया।

हमारी हिन्दी भाषा पर, हमारी हिन्दी पत्रकारिता पर, हमारी

आजकी विचार-परिपकता पर बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका बहुत ऋण है। उनकी परिश्रम-शीलताको देखकर दंग रह जाना पड़ता है। उनके पत्र-व्यवहारकी दैनिक पंजिका, उनके लेखोंके विषयोंकी विविधता, उनका भाषा-पाण्डित्य, लार्ड कर्जनके नाम उनके खुले पत्र आदि इस बातके प्रमाण हैं कि वे अत्यन्त परिश्रमी, नियमबद्ध, संयमशील एवं चरित्रवान् सत्पुरुष थे। वे प्रचण्ड देश-भक्त थे। नागरी अक्षरों एवं हिन्दी भाषाके समर्थनमें उनके अनेकों लेख इस बातको सिद्ध करते हैं कि वे कितने सचेष्ट, जागरूक एवं सच्चे पत्रकार थे। गुप्तजी जीवित भाषा लिखते थे। उनकी शैली पैनी, सीधी, तर्कयुक्त एवं हृदयग्राही होती थी। व्यंग लिखनेमें उनकी बराबरी कदाचित् ही कोई कर सकता था।

मुझे विश्वास है कि 'बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रन्थ' गुप्तजीका परिचय आगे आनेवाली और आजकलकी पीढ़ीको करानेमें बहुत सहायक सिद्ध होगा। मैं एक बार फिर गुप्तजीकी पुण्य-स्मृतिमें अपना प्रणाम निवेदन करता हूँ।

३१

समालोचक-प्रतिभा और कर्त्तव्यनिष्ठा।

[पण्डित किशोरीदासजी वाजपेयी]

स्वर्गीय आचार्य श्रीबालमुकुन्द गुप्तको फिरसे आँखोंके सामने लाकर आदरणीय पं० झाबरमल्ल शर्माजीने हिन्दी जगत्का अतुल उपकार किया है। निश्चय ही शर्माजीके इस उपकारका हिन्दी-जगत् सदा ऋणी रहेगा।

गुप्तजीका 'कोहेनूर' महर्षि मदनमोहन मालवीयको भी मोहित कर चुका था। महर्षि मालवीय रत्नोंको पहचाननेमें और उन्हें प्राप्त करके अपने पास रखने में अद्वितीय थे। वे उस समय साहित्य-जगत्में थे—'हिन्दोस्थान' के प्रधान सम्पादक थे। उन्होंने पं० प्रतापनारायण मिश्र जैसे निःस्पृह और मौजी साहित्यकारोंको भी 'कालाकाँकर' खींच लिया था। गुप्तजीको भी उन्होंनेही इधर खींचा। यदि वे वैसी पहचान न रखते और रत्न-संग्रहकी उनकी वैसी प्रकृति-प्रवृत्ति न होती, तो वह अनमोल गुप्त-कोष उर्दू भाण्डारकीही श्रीवृद्धि करनेमें गतार्थ हो जाता और हिन्दी-जगत् उससे सर्वथा वञ्चित रह जाता।

कलकत्ता हिन्दी-साहित्यके लिये उस समय अत्यन्त उर्वर क्षेत्र था। हिन्दी-गद्यका यह गढ़ था। उन्नीसवीं शताब्दी समाप्त होते-होते यह महानगर हिन्दी का प्रधान केन्द्र बन गया था। उस समय तक काशीको भी वह साहित्यिक महत्त्व प्राप्त न हुआ था; यद्यपि भारतेन्दुके उदयनका सौभाग्य वह प्राप्त कर चुकी थी।

कलकत्तेके वे पूज्यजन धन्य हैं, जिन्होंने 'भारतमित्र' समाचार पत्र

प्रकाशित करनेकी कल्पना की और बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलकर उसे आगे बढ़ाया। आगे चलकर यह 'भारत-मित्र' ही हिन्दी-जगत् की एक प्रधान संस्था बन गया। गुप्तजीके पहुँचने पर 'भारत-मित्र' का प्रभाव अत्यधिक बढ़ा। गुप्तजीने इस पत्रके द्वारा सम्पूर्ण हिन्दी-जगत्में राष्ट्रीय चेतना पैदा की, उमड़ती हुई विदेशी भावनाको रोककर भारतीय संस्कृतिकी रक्षा की और अपने देश तथा धर्मके प्रति सम्मानकी भावना पैदा की।

गुप्तजीकी कलम मँजी हुई और सधी हुई थी। उनकी भाषा साफ, सुन्दर और टकसाली होती थी। उसमें बनाव-चुनाव बिलकुल न होता। बिलकुल सीधी-सादी भाषा वे लिखते थे, पर जोरदार और चुस्त। उनके किसी भी निबन्धमें भरतीका कोई एक भी वाक्य न मिलेगा और किसी भी वाक्य में कोई एक भी शब्द अनावश्यक न मिलेगा। नपे-तुले शब्दोंमें वे पूरा चित्र उतार देते थे। उनके उतारे जीवन-चित्र देखिये. देखतेही रह जायँगे। दो-चार पृष्ठोंमेंही मजेके साथ वह सब कह जाते थे, जिसके लिये दूसरोंको पोथे रँगने पड़ें और फिर भी वह रस कहाँ ?

गुप्तजी प्रकृत आलोचक थे। उनकी दृष्टि बहुत प्रखर थी। उनके तर्क अत्यन्त सबल होते थे; पर वैसे कर्कश न होते थे। साहित्यिक रससे वे सराबोर होते थे। भारतीय संस्कृति तथा राष्ट्रीयताके वे प्रबल पक्ष-पोषक थे।

बहुत साफ कहने की प्रकृति गुप्तजीने पायी थी। वे वृद्धजनोंका आदर करते थे और उनकी कीर्ति-रक्षाके लिये सदा सचेष्ट रहते थे।

सनातनधर्मके वे अनन्य व्रती थे; पर कूप-मण्डूक न थे। अपनी प्रत्येक वस्तुको हीन समझने-समझानेवाली विदेशी भावनापर वे प्रबल प्रहार करते थे।

हिन्दी भाषाका परिष्कार भी उनका एक व्रत था। किसी पत्र-पत्रिकाकी या पुस्तककी आलोचना करते समय वे भाषा-सम्बन्धी भूलें बड़ी तत्परतसे बताते थे। इसी सावधानीका फल है कि हिन्दी भी एक भाषा समझी जाने लगी और लोग समझने लगे कि भाषा लिखनेमें भी सही-गलतका विचार होता है। इसीसे हिन्दीमें एकरूपता बहुत कुछ आ पायी।

आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीके समकक्ष उस समय ठहरने-वाला व्यक्ति यदि ढूँढ़ा जाय तो, गुप्तजीके अतिरिक्त दूसरा न मिलेगा। गुप्तजीमें और द्विवेदीजीमें, कई बातोंमें समता है। दोनों एकही काम कर रहे थे ; ढंग भी एकही था। इसलिये कभी कभी टक्कर भी हो जाती थी।

हिन्दीके उस उषःकालमें जो, 'अनस्थिरता' शब्दपर विवाद चला था, उसकी कहानी पीढ़ियों चलती रहेगी। जब वह विवाद हिन्दीके दो महारथियोंमें चल रहा था, 'तब अति रहेउँ अचेत'— समझ पड़ना तो दूर, सुन सकनेकी भी शक्ति इस जनमें न थी। बड़ा होनेपर या बढ़ने पर न सही, तारुण्य आनेपर वह सब पढ़ा और समझनेका प्रयत्न किया। उस वाद विवादको पढ़-समझ कर मेरी समझमें ये बातें आयीं कि :—

१—गुप्तजी उच्च कोटिके भाषाविद् थे और हिन्दीके प्रवाहको खूब समझते थे। वे टकसाली भाषा लिखते थे और नोंक-झोंक या छेड़छाड़का आनन्द लेते थे, दूसरोंको देते भी थे। आचार्य द्विवेदीसे टक्कर लेनेकी शक्ति उनमें अवश्य थी।

२—आचार्य द्विवेदीमें निःसन्देह महावीरता प्रकृतिने दी थी। उनमें विलक्षण प्रतिभा थी और वे प्रतिद्वन्द्वीके आगे झुकना न जानते थे।

३—'अनस्थिरता' शब्दका प्रयोग अवश्य ही द्विवेदीजीसे अनवधानता-

वश हो गया होगा ; क्योंकि उनकी भाषामें ऐसे शब्द हम पाते नहीं हैं। जान-बूझकर, सही समझकर, उन्होंने 'अनस्थिरता' का प्रयोग न किया होगा। अनवधानतावश हम सब लोगोंसे गलत शब्द-प्रयोग प्रतिदिन होते रहते हैं ; छप भी जाते हैं। कोई गलती मान लेता है, कोई कह देता है कि छापेकी गलती है। पर, द्विवेदीजी जैसे भाषा-परिष्कारके एक निष्ठव्रतीने वैसे शब्दका वैसा समर्थन करके भाषा-भ्रम क्यों बढ़ाया ? क्यों न मान लिया कि हाँ, वह शब्द गलत है, या प्रवाह प्राप्त नहीं है। यदि वे कह देते कि वह शब्द गलतीसे निकल गया है, तो क्या उनकी इज्जत घट जाती ? और घट जाती, तो क्या बात थी ? भाषा-परिष्कारसे अधिक महत्त्व तो वे अपनी इज्जतको देते न थे ! फिर हुआ क्या ?

ये सब विचार मेरे मनमें थे। सन् १९३१ या ३२ में द्विवेदीजीके दर्शन करने मैं उनके गाँव (दौलतपुर) गया। उस समय मैंने अपनी जिज्ञासा प्रकट की। आचार्य द्विवेदीने गम्भीरतापूर्वक मुझसे जो कुछ इस सम्बन्धमें कहा, उसका सार यह है :—

"भैया, गलतीसे वह 'अनस्थिरता' शब्द निकल गया था। मैं उस समय भी उसे गलत समझता था और आज भी गलत समझ रहा हूँ। गलत न सही, प्रवाह प्राप्त तो वह है ही नहीं। प्रवाह ही भाषामें बड़ी चीज है। मैं तुरन्त स्वीकार कर लेता, यदि उस तरह कोई पूछता—कहता। बात कुछ दूसरे ढँगसे कही गयी। यह भी नहीं कहा गया कि 'अनस्थिरता' सही है या गलत ; बल्कि कहा यह गया कि द्विवेदीजी अनस्थिरताको व्याकरणसे सिद्ध करें। सो, इस ललकारका जवाब मैंने दिया और 'अनस्थिरता' को व्याकरणसे सिद्ध कर दिया। परन्तु व्याकरणसे सिद्ध हो जाने पर भी कोई शब्द भाषामें चल नहीं जाता, यदि प्रवाह प्राप्त न हो।" इसलिए, भाषा-भ्रमकी कोई गुंजाइश न थी।

उन्होंने आगे कहा :—"और भैया, मुझे भी अपनी शक्तिके अनुसार हिन्दीका कुछ काम करना था। वैसा काम करनेके लिये साख-की भी जरूरत है। प्रभाव उखड़ गया, तो सब गया। जिस ढँगसे और जिस रूपमें वह विवाद उठाया गया था, उसे मैंने उचित न समझा। उस समय मैं दब जाता, तो लोग खिल्ली उड़ाते और फिर मैं उस रूपमें कुछ कर न पाता।" बस, यही उस प्रकरणका तत्त्व है।

द्विवेदीजीने जो कुछ कहा था, ऊपर दे दिया गया है। अब न गुप्तजी हमारे बीचमें अपने पार्थिव शरीरसे हैं, न द्विवेदीजी ही हैं। इसलिये, विशुद्ध ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे ही हम उन सब घटनाओंको लेते हैं; जो उस उषःकालमें सबसे पहले 'अलख जगानेवाले' हमारे उन पुरखोंके समुद्र-मन्थनके समय सामने आयी थीं।

'अनस्थिरता' के उपलक्षणसे अन्य कितने ही शब्दों पर उस समय विचार-विमर्श हुआ था। भाषाके परिष्कारमें इसका बड़ा महत्त्व है। अवश्य हो उस वाद-विवादमें कुछ ऐसे छींटे हैं, जो व्यक्तित्वको स्पर्श करते हैं। कुछ कटुता भी आ गयी थी। फिर भी भाषा परिष्कारका काम तो हुआ ही।

मैंने स्वर्गीय गुप्तजीके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करनेके लिये ही ये पंक्तियाँ लिखी हैं। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आचार्य द्विवेदीको छोड़ और कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसकी भाषा तथा आलोचना पद्धतिका मेरे ऊपर वैसा प्रभाव पड़ा हो।

वह युग देखिये, उन कठिनाइयोंको देखिये और फिर भाषा-परिष्कार और राष्ट्रीय चेतना जागृत करनेका वह दुर्गम तथा सफल प्रयास देखिये।

३२

मारवाड़ी समाज और गुप्तजी

(सेठ रामदेवजी चोखानी)

सन् १८९९ ई० । उस दिन मारवाड़ी ऐसोसिएशनका एक अधिवेशन था। स्थानीय सरकारी हिन्दी-स्कूलसे ऐन्ट्रेन्स-परीक्षा प्रथम श्रेणीमें पासकर मैं अपने स्वर्गीय पितृव्य श्रीहरमुखरायजी चोखानीके साथ सर्व-प्रथम मीटिंगमें गया था। मारवाड़ी ऐसोसिएशनकी स्थापना इसके कुछ ही महीनों पहले हुई थी। सभामें उपस्थिति और उत्साह —दोनों खूब थे। मारवाड़ी एसोसिएशनको प्रारम्भसे ही भारतमित्र-सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तका सहयोग प्राप्त था। एसोसिएशनके संस्थापक बाबू रंगलालजी पोद्दार और बाबू मोतीलालजी चाँदगोठिया आदिसे उनकी गहरी मित्रता थी। बाबू रंगलालजीके मकानपर ही उन दिनों ऐसोसिएशनके अधिवेशन हुआ करते थे। मकानका नम्बर था १४, आरमेनियन स्ट्रीट। गुप्तजीने बड़े प्रेमसे उस दिन हरियानी लहजेमें "मेरे धोरे आजा" कहकर मुझे अपने पास बिठाया और परीक्षोत्तीर्ण होनेके उपलक्ष्में प्रशंसाकर उत्साहित किया। गुप्तजी एसोसिएशनके प्रायः सभी कामोंमें भाग लेते थे और उनकी रायकी बड़ी कद्र की जाती थी। मेरा परिचय बढ़ते बढ़ते आगे चलकर आत्मीयतामें परिणत हो गया था। प्रसिद्ध विद्याव्यसनी स्वर्गीय रूड़मलजी गोयनकाके स्थानपर हमलोग प्रायः मिलते थे और भारतमित्र-कार्यालय तो मिलनेका केन्द्रही था। मारवाड़ी-समाजके सार्वजनिक जीवनको जगानेमें भारतमित्रके द्वारा गुप्तजी जो कार्य कर गये हैं, वह अतुलनीय

है। कुरीति-संशोधनपूर्वक सार्वजनिक सेवा और शिक्षा-प्रचारकी लगन पैदा करना ही उनका लक्ष्य था। उस समय भारतमित्रको पढ़नेके लिये लोग उत्सुक रहते थे और प्रतीक्षा किया करते थे कि देखें इस वार क्या नई वात निकलती है। व्याख्यान-वाचस्पति पं० दीनदयालुजी शर्माकी प्रेरणासे विद्यालय स्थापित करनेकी गुप्तजीने बात उठाई और उसके लिये मारवाड़ी समाजको निरंतर ध्यान दिलाया, जिसके फलस्वरूप सितम्बर सन् १९०१ ई० में श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय स्थापित हुआ। विद्यालयके प्रथम हेडमास्टर श्री पण्डित उमापतिदत्त शर्मा पाण्डेय बी० ए० थे। वे भी गुप्तजीके मित्रोंमें थे। हमलोग विद्यायल सम्बन्धी कार्यके लिये करीब-करीब प्रतिदिन ही मिलते थे। विद्यालय उस समय नं० १५३, हरिसन रोडमें था। उसी मकानमें मारवाड़ी एसोसिएशनका कार्यालय आ गया था। विद्यालयके मंत्री बाबू मोतीलालजी चाँदगोठिया थे और सहकारी मंत्री थे मेरे पूज्य पितृव्य श्रीहरमुख रायजी चोखानी।

एक चित्र सन् १९०१ के अन्तमें श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके प्राङ्गणमें लिया गया था, उसमें मारवाड़ी एसोसिएशन और विद्यालयके उस समयके प्रमुख कार्यकर्त्ताओंके बीच गुप्तजी भी विराजमान हैं। वह समय कितना सुखकर था, जब वहाँ छुट्टीके वाद बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त, पं० उमापतिदत्तजी पाण्डेय, पं० जगन्नाथ प्रसादजी चतुर्वेदी और बाबू ईश्वरी प्रसादजी बर्मा आदि एकत्र होते थे और उस मित्र गोष्ठीमें लोकहितकी चर्चाके साथ साथ साहित्यिक विनोद एवं पारस्परिक हँसी-मज़ाकका रंग जमता था। बड़ाबाजार लाइब्रेरीकी स्थापना सन् १९०२ ई० में हुई थी। उसमें भी हमारी मित्र-मण्डलीका, जिसके गुप्तजी मुखिया थे पूरा सहयोग रहा। यह लाइब्रेरी "भारतमित्र" "सार-सुधानिधि" "उचितवक्ता" आदि पत्रोंके जन्मदाता स्वर्गवासी पं० दुर्गाप्रसादजी मिश्रके भतीजे स्वर्गीय पं० केशव प्रसाद मिश्र एवं बाबू मुरलीधर गोय-

३३

स्मृतिके दो शब्द

[पण्डित व्रजनाथजी गोस्वामी]

आजसे ४८ वर्ष पूर्वकी बात है, जब कि मेरी अवस्था १७ वर्षकी थी; मुझे हिन्दीका लेखक बननेका चाव हुआ। मैं उन दिनों समाचार-पत्रोंको, विशेषकर 'भारतमित्र' को बड़े मनोयोगसे पढ़ता था; कारण कि उस समय अपनी भाषा, भाव और लेखनशैलीकी विशिष्टताके कारण 'भारतमित्र' ही सर्वश्रेष्ठ समाचार-पत्र समझा जाता था।

उन्हीं दिनों—संवत् १९५७ के श्रावण-मासमें सुविख्यात सनातनधर्म प्रचारक व्या० वा०श्रीमान् प०दीनदयालुशर्माजीने भारतधर्म्म-महामण्डल-का एक विराट् अधिवेशन इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में दरभंगाके श्रीमान् महाराजाधिराजके सभापतित्वमें बड़े समारोहके साथ किया, जिसमें प्रायः सभी धर्माचार्योंके अतिरिक्त भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे बड़े-बड़े विद्वान् एवं अनेक महाराज तथा राजा सम्मिलित हुए थे। भारतमित्रमें उक्त अधिवेशनके समाचार बड़े ही सुन्दर ढंगसे निकला करते थे। उनके पढ़नेसे मेरी हिन्दीके लेखक बननेकी इच्छा और भी दृढ़ हुई। मैंने बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीको एक कार्ड लिखा, जिसमें उनसे पूछा कि आप मुझे बताइये कि मैं हिन्दीका लेखक कैसे बन सकता हूँ। गुप्तजीका उत्तर आया कि अपने नगरके समाचार लिखकर भेजा करो, उन समाचारोंको सुधार कर हम 'भारतमित्र' में प्रकाशित कर दिया करेंगे। उनसे शायद कुछ सीख सकोगे। मैं गुप्तजीके आदेशानुसार समाचार भेजने लगा। गुप्तजीकी कृपासे मुझे 'भारतमित्र' मिल जाता था। अपने

नका (स्वर्गीय श्रीहरिरामजी गोयनकाके जेष्ठ पुत्र) के उत्साह और उद्योगका फल है। गुप्तजीका नियम भारतमित्र कार्यालयसे चलकर बड़ाबाजार लाइब्रेरी होते हुए विद्यालयमें पहुँचनेका था।

श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके लिये सन् १९०२ ई० में स्थायी कोष एकत्रित करनेकी जब योजना बनी, तब मैं उसका मंत्री बनाया गया था। उस चन्देके कार्यमें बाबू बालमुकुन्दजीकी पूरी सहायता और सहानुभूति रही। उनकी कलम और शरीर दोनोंसे पूर्ण सहयोग मिला। दो लाख रुपयेका स्थायी चन्दा एक वर्षमें एकत्र किया जाना निश्चित हुआ था, किन्तु कार्यकर्त्ताओंके अनवरत परिश्रमसे इसके पहले ही यह सत्कार्य सम्पन्न हो गया। इसके लिये गुप्तजीने उत्साह-वर्द्धक शब्दोंमें "भारतमित्र" द्वारा आनन्द प्रकट करते हुए मारवाड़ी समाजको बधाई दी थी। गुप्तजीके इन सब उपकारोंका मारवाड़ी समाज पर बड़ा अहसान है।

खरी समालोचना करना गुप्तजीके स्वभावकी विशेषता थी। भारत-मित्रकी धाक जमानेमें उनके इसी व्यक्तित्वका अधिक भाग है। रात-दिन मिलने-जुलनेवालोंके भी गुण-दोष प्रकट करनेमें वे नहीं चूकते थे। पत्रकार गुप्तजीका ही उस समय यह प्रभाव था कि अमर्यादित कार्य करनेका कोई साहस नहीं कर सकता था। उन्होंने कभी किसी बड़ेसे-बड़े आदमीके मुँहकी ओर देखकर अपना सिद्धान्त नहीं बनाया। वे निस्पृह और निर्लेप थे। उनमें उच्चकोटिकी देशभक्ति और धर्मभीरुता थी। उनका जीवन सादगी और संयमशीलताका उदाहरण था। इसीमें वे सदा मस्त रहे और कभी किसीसे नहीं दबे। उनके जीवनमें प्राइवेट और पबलिक लाइफका कोई भेद नहीं था। वे बातके बड़े धनी थे और जो व्यक्ति अपने वचन या सिद्धान्तसे गिरता दिखाई देता उसकी उनके जीमें रत्ती भरभी इज्जत नहीं रहती। मैं गुप्तजीका अपने गुरुजनोंमें मानता हूँ और अतएव अपनी श्रद्धाञ्जलि ससम्मान समर्पित करता हूँ।

३३

स्मृतिके दो शब्द

[पण्डित व्रजनाथजी गोस्वामी]

आजसे ४८ वर्ष पूर्वकी बात है, जब कि मेरी अवस्था १७ वर्षकी थी ; मुझे हिन्दीका लेखक बननेका चाव हुआ। मैं उन दिनों समाचार-पत्रोंको, विशेषकर 'भारतमित्र' को बड़े मनोयोगसे पढ़ता था; कारण कि उस समय अपनी भाषा, भाव और लेखनशैलीकी विशिष्टताके कारण 'भारतमित्र' ही सर्वश्रेष्ठ समाचार-पत्र समझा जाता था।

उन्हीं दिनों—संवत् १९५७ के श्रावण-मासमें सुविख्यात सनातनधर्म प्रचारक व्या० वा०श्रीमान् प०दीनदयालुशर्माजीने भारतधर्म्म-महामण्डल-का एक विराट् अधिवेशन इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में दरभंगाके श्रीमान् महाराजाधिराजके सभापतित्वमें बड़े समारोहके साथ किया, जिसमें प्रायः सभी धर्माचार्योंके अतिरिक्त भारतके विभिन्न प्रान्तोंसे बड़े-बड़े विद्वान् एवं अनेक महाराज तथा राजा सम्मिलित हुए थे। भारतमित्रमें उक्त अधिवेशनके समाचार बड़े ही सुन्दर ढंगसे निकला करते थे। उनके पढ़नेसे मेरी हिन्दीके लेखक बननेकी इच्छा और भी दृढ़ हुई। मैंने बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीको एक कार्ड लिखा, जिसमें उनसे पूछा कि आप मुझे बताइये कि मैं हिन्दीका लेखक कैसे बन सकता हूँ। गुप्तजीका उत्तर आया कि अपने नगरके समाचार लिखकर भेजा करो, उन समाचारोंको सुधार कर हम 'भारतमित्र' में प्रकाशित कर दिया करेंगे। उनसे शायद कुछ सीख सकोगे। मैं गुप्तजीके आदेशानुसार समाचार भेजने लगा। गुप्तजीकी कृपासे मुझे 'भारतमित्र' मिल जाता था। अपने

भेजे समाचारोंको 'भारतमित्र' में प्रकाशित हुआ देखकर मैं हर्षित भी होता और शिक्षा भी ग्रहण करता। धीरे-धीरे लिखनेका ढंग आ गया और फिर मैं 'भारतमित्र' में लेख भी लिखने लगा।

सन् १९०१ में एन्ट्रेन्सकी परीक्षा देनेके पश्चात् कलकत्ता देखनेकी धुन सवार हुई। मैं मेरे मित्र चतुर्वेदी अयोध्याप्रसाद पाठक और पं० विश्वम्भरनाथ शृंगण कलकत्ता देखनेके लिये चल दिये। कलकत्ते पहुँचकर महाराज-बर्दवानके कटरेमें ठहरे। कलकत्ते जानेका उद्देश्य, कलकत्ता जैसी विशाल नगरी (तत्कालीन भारतकी राजधानी) देखना तो था ही, पर मुख्य उद्देश्य गुप्तजीसे मिलना था।

कलकत्ते पहुँचकर मैं अपने मित्रों सहित, गुप्तजीसे मिलनेके लिये गया। गुप्तजी अपने आफिसमें विराजमान थे। चारों ओर समाचार-पत्र फैले हुए थे। जब मैंने वहाँ पहुँच कर अपना परिचय दिया, तो गुप्तजी बड़े प्रसन्न हुए और मेरे मित्रोंका भी परिचय पूछकर अपना सौजन्य प्रकट किया। जबतक मैं कलकत्ते रहा प्रायः नित्य ही गुप्तजीसे मिलता और थोड़ा-बहुत समय आमोद-प्रमोदमें बिताता था। इसके बाद तो गुप्तजीसे घनिष्ठता हो गई। मैं निरन्तर 'भारतमित्र' में लेख लिखने लगा।

संवत् १९६३ में गुप्तजी आगरेके ऐतिहासिक स्थान देखने पधारे थे। आगरेसे चलकर बरसानेकी यात्रामें भी मुझे गुप्तजीके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस यात्रामें गोस्वामी श्री पं० लक्ष्मणाचार्यजी (मथुरा निवासी मेरे आदरणीय ज्येष्ठ बन्धु) भी साथ थे। गुप्तजीके साथ जितना भी समय व्यतीत हुआ बड़ा आनन्द रहा। वे हास्य की मूर्ति थे।

इसके बाद जब गुप्तजीका सरस्वती-सम्पादक आचार्य पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीजीसे 'भाषाकी अनस्थिरता' को लेकर जो साहित्यिक-

विवाद चला था, तब मैंने भी उनके पक्षमें कई पत्रोंमें, विशेषकर 'अभ्युदय'में लेख लिखे थे। मेरी रायमें गुप्तजीका पक्ष प्रबल था।

गुप्तजी हिन्दी भाषाके मर्मज्ञ और ओजस्वी लेखक थे। आपकीसी सीधी-सादी चटकीली भाषा लिखनेवाले हिन्दी-जगत्में इने-गिने ही लेखक हुए हैं। गुप्तजीके असामयिक स्वर्गवाससे हिन्द देश, हिन्दू-जाति और हिन्दी-जगत्की बड़ी हानि हुई, जिसकी पूर्ति अद्यावधि नहीं हो सकी है।

आज जो हिन्दी-पत्रकारिताका महानद दिखाई दे रहा है, उसका श्रेय हमारे उन पत्रकारोंको है, जिन्होंने अपनी निजी प्रतिभा-शक्ति तपस्यापर मर मिटनेको सक्रिय भावनासे हमारे लिये प्रशस्त मार्ग निकाला। स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्त ऐसे ही पत्रकार पुङ्गवोंमें थे और अपने समयके तो वे अद्वितीय हिन्दी-पत्रकार थे। अद्वितीय इसलिये कि, दैनिक पत्रकारिता (Daily journalism) मे उन जैसा व्यक्ति उनके समयमे कोई दूसरा न था, यद्यपि उन्हें उर्दूके 'कोहेनूर' और हिन्दीके 'हिन्दोस्थान' को छोडनेके बाद दैनिक समाचार-पत्र-क्षेत्रमे कार्य करनेका अवसर नहीं मिला।

पत्रकारके अन्य आवश्यक गुणोमेसे एक गुण है ईमानदारी। पर अकेली ईमानदारी सार्वजनिक जीवनमे कोई मानी नहीं रखती। यदि कोई पत्रकार केवल ईमानदार है और है मूर्ख तो उसकी ईमानदारी खतरनाक हो सकती है। ईमानदारी पत्रकारमे जरूर चाहिये, पर उसके साथ उसमे होनी चाहिये क्रियात्मक कल्पनाशक्ति और उसपर डटकर काम करनेकी क्षमता। पत्रकार वकील नहीं है, जो फीसकी खातिर जेन कतरके मुकदमेसे लगाकर कातिल और क्रान्तिकारीके मुकदमोकी पैरवी करे। पत्रकार एक निष्पक्ष न्यायाधीशके समान है, जो विवादोकी गुत्थियां सुलझाकर देशको स्पष्ट रूपसे अपनी राय देता है और भूले-भटकोंको राहेरास्त लाता है। स्व० गुप्तजीने जीवन भर सचाई, ईमानदारी और साफगोईकी धूनी रमाकर गुटबंदी, ढोंग, अत्याचार और अनैतिकताके विरुद्ध अनवरत सफल संग्राम किया। अपने स्वाभिमान तथा अपने आदर्शकी खातिर उन्होंने यह कभी नहीं किया कि 'हिन्दी बङ्गवासी' अथवा 'भारतमित्र' के कार्यालयमे पहुँचनेसे पहले अपने विचार-स्वातंत्र्य तथा आदर्शको खूँटीपर टांगा हो और संचालकों-की खातिर जैसी आज्ञा हुई, वैसा लिखा हो। 'बंगवासी' में जब एक

३४

पत्रकार पुङ्गव गुप्तजी

(पण्डित श्रीरामजी शर्मा)

बन्धुवर पण्डित झावरमल्लजी का आग्रह है कि मैं स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त पर कुछ लिखूं 'बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रन्थके लिये। सीधा-सा अर्थ इसका यह है, कि मैं भी' गुप्त-स्मारक ग्रन्थ' रूपी बहती गङ्गामें स्नान कर लूं। अतः 'हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागर सङ्गमें, सर्वत्र दुर्लभा गङ्गा...' का स्मरण कर मैं श्रद्धाञ्जलिके रूपमें कुछ शब्द लिखकर कृतार्थ होता हूँ। यों तबीयत तो करती है कि स्वर्गीय गुप्तजीकी पत्रकारिता पर एक विश्लेषणात्मक लेख लिखूँ। क्योंकि उनकी प्रतिभा, ईमानदारी, क्रियात्मक कल्पना-शक्ति, स्वतंत्रता और राष्ट्रियताका मैं कायल रहा हूँ; पर उसकें लिये न स्थान है और न समय ही।

प्रकृति-प्रेमी और भक्त लोग सुरसरिके विशाल और अगाध जलको जब बङ्गाल और विहारमें देखते हैं; तब वे उससे प्रभावित होते हैं। एक समाधिस्थ योगीकी भांति देवापगा बङ्गालकी खाड़ीमें सागरके जलमें तद्रूप हो जाती है; पर यदि कोई बालिका गङ्गाको गङ्गोत्री और गढ़वालके अन्य स्थानोंमें देखे तब उसे पता चलेगा कि नन्हींसी धाराको कितना परिश्रम करना पड़ा है। कितनी उसने तपस्या की है! पत्थरों और चट्टानोंसे टकराकर उसने अपना माथा नहीं फोड़ा वरन् उन महान् बाधाओंको चूर्णकर, हुँकार मारकर वह आगे बढ़ी है और उसके उस त्याग और सेवाके बलबूते हमें मैदानी गङ्गाके रूपका लाभ हुआ है।

आज जो हिन्दी-पत्रकारिताका महानद दिखाई दे रहा है, उसका श्रेय हमारे उन पत्रकारोंको है, जिन्होंने अपनी निजी प्रतिभा-शक्ति तपस्यापर मर मिटनेको सक्रिय भावनासे हमारे लिये प्रशस्त मार्ग निकाला। स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्त ऐसे ही पत्रकार पुङ्गवोंमें थे और अपने समयके तो वे अद्वितीय हिन्दी-पत्रकार थे। अद्वितीय इसलिये कि, दैनिक पत्रकारिता (Daily journalism) में उन जैसा व्यक्ति उनके समयमें कोई दूसरा न था, यद्यपि उन्हें उर्दूके 'कोहेनूर' और हिन्दीके 'हिन्दोस्थान' को छोड़नेके बाद दैनिक समाचार-पत्र क्षेत्रमें कार्य करनेका अवसर नहीं मिला।

पत्रकारके अन्य आवश्यक गुणोंमेंसे एक गुण है ईमानदारी। पर अकेली ईमानदारी सार्वजनिक जीवनमें कोई मानी नहीं रखती। यदि कोई पत्रकार केवल ईमानदार है और है मूर्ख तो उसकी ईमानदारी खतरनाक हो सकती है। ईमानदारी पत्रकारमें जरूर चाहिये, पर उसके साथ उसमें होनी चाहिये क्रियात्मक कल्पनाशक्ति और उसपर डट-कर काम करनेकी क्षमता। पत्रकार वकील नहीं है, जो फीसकी खातिर जेब कतरके मुकदमेसे लगाकर कातिल और क्रान्तिकारीके मुकदमोंकी पैरवी करे। पत्रकार एक निष्पक्ष न्यायाधीशके समान है, जो विवादोंकी गुत्थियाँ सुलझाकर देशको स्पष्ट रूपसे अपनी राय देता है और भूले भटकोंको राहेरास्त लाता है। स्व० गुप्तजीने जीवन भर सचाई, ईमानदारी और साफगोईकी धूनी रमाकर गुटबंदी, ढोंग, अत्याचार और अनैतिकताके विरुद्ध अनवरत सफल संग्राम किया। अपने स्वाभिमान तथा अपने आदर्शकी खातिर उन्होंने यह कभी नहीं किया कि 'हिन्दी बङ्गवासी' अथवा 'भारतमित्र' के कार्यालयमें पहुँचनेसे पहले अपने विचार-स्वातंत्र्य तथा आदर्शको खूँटीपर टाँगा हो और संचालकों-की खातिर जैसी आज्ञा हुई, वैसा लिखा हो। 'बंगवासी' में जब एक

बार ऐसी नौबत आई, तब वे अपने कानमें कलम खोंसे, इस्तैफा देकर, चले आये। उस समय एक महीनेकी नोटिस और पत्रकार संघको शक्तिकी थोड़ी-बहुत धमकी न थी।

लार्ड कर्जनका जमाना था। हमारे अनेक देशवासियोंमें जहाँ देशभक्तिकी बिजली दौड़ रही थी, वहाँ चाटुकारी और 'लायल्टी' के लिये भी घुड़दौड़-सी होरही थी। देशभक्त गुप्तजीका कोमल और शुद्ध हृदय तिलमिला उठा और उन्होंने सूबे पंजाबकी हालत पर कितने सुन्दर व्यङ्ग कसे। कविताका शीर्षक है 'पंजाबमें लायलटी'—

'सबके सब पंजाबी अब हैं, लायलटीमें चकनाचूर,
सारा ही पंजाब देश बन जानेको है लायलपूर!

... ...

धर्मसमाजी पक्के लायल, लायल है अखबारे आम,
दयानंदियोंका तो है लायल्टी हीसे काम तमाम। इत्यादि...

(पूरी कविता पाठक गुप्त-स्मारक ग्रन्थके २२८ पृष्ठपर पढ़लें)

हिन्दी-उर्दूका झगड़ा सन् १६२० ई० से सन् १६४६ तक कितने विकट रूपसे चला, यह हमलोग अपनी आँखों देख चुके हैं, पर वस्तुतः यह झगड़ा शुरू हुआ था सन् १६०० ई० में जब युक्तप्रदेशकी अदालतोंमें नागरी अक्षर जारी हुए। इस समस्यापर गुप्तजीने विनोद और व्यंगसे 'उर्दूको उत्तर' शीर्षक कविता द्वारा 'उर्दूकी अपील'का जो करारा जवाब दिया और उर्दूके हिमायतियोंकी थोथी दलीलोंपर जो युक्तियुक्त लेख लिखे—वे सब हिन्दी-साहित्यके आन्दोलनमें अपना विशेष स्थान रखते हैं। कितने हिन्दीवाले हैं, जिन्होंने हिन्दीकी हिमायत इस शान और आनबानसे की है?

विद्यार्थी-जीवनमें जब हमने उनके 'शिवशम्भूके चिट्ठे' पढ़े, तभीसे हमारी श्रद्धा पत्रकार गुप्तजीके प्रति होगई। उनकी सरल, पैनी और

सीधी चोट करनेवाली व्यङ्गपूर्ण और विनोदपूर्ण शैली आज भी उतनी ही रोचक है, जितनी वह ५० वर्ष पूर्व थी। क्या अच्छा होता, कलकत्तेमें आज उस टक्करका कोई हिन्दीपत्रकार हो, जो इस भांति लिख सके और किसी दल या पूंजीपतिके स्वार्थसे नत्थी न हो!

लार्ड कर्जनके नाम जो चिट्ठे लिखे हैं, उनका स्थान पत्र-लेखनकला और राजनीतिक पत्रोंमें बहुत ऊँचा है। हिन्दीपत्रकारिता उनसे गौरवान्वित होती है। कितनोंमें साहस था उन दिनों, जो लार्ड कर्जनकी आलोचना उस प्रकार कर सकते?

'मानचेस्टर गार्जियन'के स्वनामधन्य सम्पादक स्काट साहबको अपनी दक्षिणी अफरीका सम्बन्धी नीतिके कारण बहुत कुछ सहना पड़ा। उनके पत्रकी ग्राहक संख्या तक घट गई, पर वे सत्यपथसे तनिक भी विचलित नहीं हुए। बादमें उनके देशवासियोंको सम्पादक-शिरोमणि स्काटकी नीतिका तथ्य जान पड़ा, पर वे रौवमें नहीं वहे, वरन् उन्होंने लोगोंके लिये मार्ग प्रदर्शन किया। उस युगकी दैनिक पत्रकारितामें वे वे-जोड़ थे।

पर गुप्तजी कोरे पत्रकारही न थे। वे शैलीकार और उद्भट समालोचक भी थे। और इन प्रवृत्तियोंके पीछे उनका अगाध ज्ञानभंडार था। जिसको वे हमेशा अपने परिश्रमसे भरा करते थे। उन दिनों एक दूसरे पत्रकार और अनन्य साहित्य सेवी भी थे—स्वर्गीय आचार्य द्विवेदीजी। शब्दोंके निर्माण और भावोंके प्रयोगपर कभी-कभी दोनोंमें टक्करें भी हो जातीं—ठीक उस प्रकार जिस प्रकार समुद्रकी लहरें टकराकर फिर एक हो जाती हैं। गुप्तजीकी भाषामें प्रवाह, ओज, सादगी और आकर्षण है। उनकी भाषा गुठ्ठल न थी और न उनकी उर्दू उन्हींके शब्दोंमें 'लकड़ तोड़ उर्दू' थी।

अपनी निष्पक्ष राय देनेमें वे कभी नहीं चूकते थे। दुनियामें

सिद्धान्तों और वादोंकी कमी नहीं, पर व्यावहारिक-जीवनमें सिद्धान्त की अपेक्षा व्यक्तित्व अधिक कारगार होता है।

गुप्तजीने पत्रकारकी हैसियतसे जीवनके लगभग सभी महत्त्व विषयोंपर लिखा और लोगोंको सचेत किया। हिन्दी साहित्य-क्षेत्र समस्याओंपर ही नहीं, वरन् समाजसुधार और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर उन्होंने लिखा। अबसे पचास वर्ष पूर्व उन्होंने वही आदेश दिया, हम सन १९२० से अब तक देते आ रहे हैं। द्वेष, घृणा, लोग धर्म और सम्प्रदायके नामपर भड़कानेकी प्रवृत्तिका उन्होंने शिष्टता घोर विरोध किया।

भविष्यद्द्रष्टा और सूक्ष्मदर्शीकी भाँति उन्होंने मारवाड़ी समा विषयमें सन् १९०० ई० में लिखा था—

"...मारवाड़ी समाजका हाल अब कुछ पतला होता जाता है। उनके साम बंधन ढीले होते जाते हैं। पहले मारवाड़ी लोग खानदान देखते थे, इज्जत थे, मनुष्यत्व देखते थे, यह सब गुण होने पर धनकी ओरभी देखते थे। परन्तु केवल धन देखते हैं, धनही में सब गुण देखते हैं। धनके सिवाय और कुछ देखते। जो सातपीढ़ीका सेठ था, बड़ा धर्मात्मा नेक चलन था, खानदानी इज्ज था, आज यदि समयके उलट फेरसे वह निर्धन होगया है तो मारवाड़ी उसे दो व का समझने लग जाते हैं। कल जिसके बापने यहाँ आकर अदनासे अदना किया था और आज वह धनी होगया है तो मारवाड़ियोंकी आँखमें उससे बढ़कर खानदानी और कोई नहीं है। सब उसीकी ओर दौड़ते हैं, उसके दोषोंको भ समझते हैं। परन्तु सदासे मारवाड़ी समाजकी यह दशा नहीं थी। यह स कि वैश्योंको रुपया बहुत प्यारा होता है, पर सदा प्यारा होने पर भी मारवाड़ी अपने धर्मको, अपनी जातिको, अपनी इज्जतको बड़ी प्यारकी दृष्टिसे देखता था जाने किस पापके फलसे आज मारवाड़ियोंका वह भाव बदल चला है।*

* गुप्तजीका जीवन परिचय पृष्ठ २०९

अपने हितैषी चिकित्सकके इस उचित निदानपर क्या हमारे मारवाडी भाई सोचेंगे और उसका इलाज करेंगे ?

दैनिक पत्रकारिता आधुनिक युद्धके समान है, जहाँ अत्यन्त विघातक अस्त्रों शस्त्रों और साधनोंकी आवश्यकता होती है और पत्रकार—कमांडर इन-चीफकी तनिक सी भूलके कारण सब कुछ बंटाढार हो सकता है। इस क्षेत्रमे गुप्तजी सदा सावधान रहे। वे अपने युगके सफल और युग-निर्माता पत्रकार थे। उनकी पत्रकारितामे चारचाँद इसलिये और लग गये थे कि वे उस समयकी उग्र राजनीतिके पोषक थे। वे कोरे कलम तोड पत्रकार न थे, जो टकोंकी खातिर अपने विचारोंको वेचते हैं। जीवनका मूल्याङ्कन गुप्तजी रुपये पैसेसे न करते थे, वरन करते थ चरित्रगठन, कर्त्तव्य-परायणता, सचाई और सक्रिय ईमानदारीसे। उनकी लेखनी द्वारा देशकी आत्माकी अन्तर्ध्वनि—आजादीकी पुकार—लिपिवद्ध होती थी। अहंकार, ढोंग और गुलामीके गढ़ोंपर उनके लेख गोले उगला करते। जिस दिशामे उन्होंने लिखा उसमे एक नवीन जीवन और नई स्फूर्ति स्पन्दित होती थी।

उक्त बिखरे विचारो द्वारा इन पंक्तियोंका लेखक स्वर्गीय गुप्तजीको अपनी श्रद्धाञ्जलि उसी भांति अर्पित करता है, जसे एक भक्त सूर्यको अर्घ्य देता है। आज देशकी वर्त्तमान स्थितिमे भ्रष्टाचार और अनैतिकताके तमतोममे उस आलोककी लाखों गुनी शक्तिमे आवश्यकता है, *जिसको स्वर्गीय गुप्तजीने और स्वर्गीय गणेशजीने लोगोंको दिया* था। उस महाप्राण आत्माको मेरी आन्तरिक श्रद्धानिवेदन।

३५

गुप्तजीकी बातें

[बाबू रामकुमारजी गोयनका]

स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तकी बातें जब याद करने, लिखने या सोचने लगता हूँ तो उनकी वह गम्भीर मूर्त्ति जिसके दर्शन मैं भारतमित्र-कार्यालयमें किया करता था, आँखोंके सामने आजाती है। मैंने जबसे होश सँभाला, तभीसे भारतमित्र-कार्यालयमें उनके पास मेरा आना-जाना शुरू हुआ। मेरे साथी स्वर्गीय फूलचन्द चौधरीका आना-जाना मुझसे भी पहले आरम्भ हो गया था। सन् १८९८ ई० में मारवाड़ी ऐसोसिएशनकी स्थापना हुई थी। उसी समयसे गुप्तजीके साथ मेरी जान-पहिचानका आरम्भ समझना चाहिये। गुप्तजीमें दूसरोंके प्रति अगाध प्रेमका जो आकर्षण था, उसीने मुझे अधिकाधिक उनकी ओर आकर्षित किया और फिर आठ-नौ वर्ष,—जबतक उनका शरीर रहा, बहुत मेल-जोल और प्रेमसे बीते।

गुप्तजी मारवाड़ी एसोसिएशनके मेम्बर थे और श्रीविशुद्धानन्द विद्यालयकी तो संस्थापनामें उनका मुख्य भाग था। इन दोनों ही संस्थाओंमें उनका पूरा प्रभाव था। वे बहुत कम बोलते थे, परन्तु उनकी बातका बड़ा मूल्य था। गम्भीर मामलोंमें उनकी सम्मति आग्रहके साथ ली जाती थी।

गुप्तजी बड़े ईमानदार, सच्चे, भले, सीधे-सादे, सरल-स्वभाव और गम्भीर प्रकृतिके सज्जन थे। उनको हँसी-मजाक बहुत पसन्द था। विशेषता यह थी कि वे स्वयं न हँसकर दूसरोंको ही हँसाया करते थे। उनकी गम्भीर मूर्त्ति, गम्भीर ही बनी रहती और दूसरे हँसकर लोट-पोट हो जाते।

एक दिनकी बात है। स्वर्गीय बाबू ज्ञानीरामजी हलुवासियाके घर पर चोरबागानमें भारतके प्रसिद्ध संगीताचार्य पं० विष्णुदिगम्बरजीका गाना हो रहा था। हलुवासियाजी गुप्तजीके मित्रोंमेंसे थे। जगह कम और उपस्थिति इतनी अधिक कि कमरेमें तिल धरनेको भी जगह नहीं थी। इतनेमें पंडित छोटूलालजी मिश्र अपने एक साथीके संग पधारे। मिश्रजी कलकत्तेके बड़े प्रतिष्ठित सज्जन, साहित्य-रसज्ञ और हलुवासियाजीके घनिष्ठ मित्र थे। मिश्रजी दरवाजेके बाहर ही खड़े-खड़े झाँकने लगे। भीतर गुंजाइश तो कुछ थी ही नहीं। यह देखकर गुप्तजी कुछ सिकुड़े और बोले—"चले आइये महाराज ! हम हिन्दुस्थानी तो रबड़के होते हैं, सिकुड़ जाते हैं।" सुनते ही सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े !

गुप्तजीके मित्रोंमें पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदीजी तो प्रसिद्ध हँसोड़ थे ही। कभी-कभी जब इस मित्र-मण्डलीमें प्रसिद्ध चित्रकार बाबू ईश्वरी प्रसादजी वर्मा आजाते, तब खूब आनंद आता। उस समय अनेक कारटूनोंका मसाला तैयार हो जाता और कुछ कारटून भी बन जाते थे।

एक दिन दमदमके एक बगीचेमें प्रीति-भोजका प्रबंध किया गया था। चतुर्वेदीजी आदि बहुतसे मित्र पहले पहुँच चुके थे। वे लोग तालाबके उस पारके घाट पर बैठे ठंडाई घोंट रहे थे। उधर ही कोठी थी। मैं और गुप्तजी कुछ देरसे पहुँचे और इस तरफवाले घाट पर बैठ गये। उन लोगोंने गुप्तजीको बहुत पुकारा, परन्तु वे उठे नहीं। जहांके तहां जमें बैठे रहे। इधर हम दोनों ही थे और उधर पचीस-तीस मित्रोंका जमाव। जब तक मित्रलोग बुलाते रहे, तब तक तो गुप्तजी मानलीला करते रहे। फिर उन लोगोंने भी चुप साध ली। अगत्या थोड़ी देर तक तो हम चुप-चाप बैठे रहे, किन्तु अकेले कबतक बैठे रह सकते थे ? आखिर गुप्तजीने अपनी सूझसे काम लिया। वे बड़े जोरसे

हँसने लगे। मैंने भी उस अट्टहासमें उनका साथ दिया। इधर बिना कारण हमलोगोंको इस प्रकार हँसते देख इन सबको भी हँसी आ गई और फिर उधरसे मित्रोंकी बुलाहट इशारोंसे और आवाजसे आरम्भ हो गई, तब हम दोनों भी उधर जाकर मित्र-मण्डलीमें शामिल हो गये! मैंने उसी दिन गुप्तजीको इतने जोरसे हँसते देखा था!

गुप्तजीने जबसे भारतमित्रके सम्पादनका भार लिया, तबसे 'भारत-मित्र' चमक उठा। उसमें वे लेखों तथा समाचारोंका चुनाव इतनी खूबीसे करते थे कि कोई कामकी बात छूटने नहीं पाती थी। मानों वे सागरको गागरमें भरते थे। इसके लिये उन्हें अत्यधिक परिश्रम और चिन्तन करना पड़ता था। उसीका परिणाम यह हुआ कि उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और इसके बाद वे थोड़े ही दिनों जी सके।

उस समय सामाजिक बातोंको लेकर सभा-सोसाइटियोंकी बड़ी चर्चा हुआ करती थी। 'भारतमित्र' समयके साथ था। उसमें नेताओंकी आलोचना, उनके कारटून और व्यङ्गात्मक चुटकियाँ रहती थीं। उनके 'टेसू' बड़े गजबके होते थे। गुप्तजीमें एक विशेष गुण था, जिसने लोगोंके हृदयमें उनका स्थान बहुत ऊँचा कर दिया था और वह यह कि वे स्वार्थको अपने पास फटकने नहीं देते थे। उस समय भी कुछ ऐसे पत्र थे, जिनमें खास-खास लोगोंके हीनचरित्रकी भीतरी बातोंको खोल-कर उनसे रुपये ऐंठ लेनेकी नीति बरती जाती थी। किन्तु गुप्तजीके पास वैसी हवा भी नहीं जा सकती थी। वे जिसकी आलोचना या व्यङ्ग करते, शुद्ध भावसे—सुधारकी कामनासे करते और अपने उत्तर-दायित्वको पूरा समझकर करते थे। इस कारणसे कोई नाराज होता तो उसकी कुछ परवा नहीं की जाती थी। लगभग सन् १९०३की एक घटना और याद आ गई है। स्वर्गीय सेठ दुलीचन्दजी ककरानियाँ उन दिनों श्रीविशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालयके सभापति थे। ककरानियाँजी

बड़े शौक़ीन और अपने ढंगके एक ही अमीर थे। उनको केवल नामके लिये सभापति बना दिया गया था। होली अथवा दुर्गा-पूजाके अवसर पर गुप्तजीने व्यङ्ग्यात्मक एक टेसू लिखा जो "चुन्ना मुन्ना" के नामसे था। इस पर सेठ दुलीचन्दजी बहुत नाराज हुए। उस दिन विद्यालयकी मीटिंग हो रही थी। गुप्तजीको देखकर वे अपना गुस्सा नहीं सँभाल सके और अपने भाषणमें सम्पादकोंके नाम पर बुरा-भला कह डाला। उनके मुँह से "सम्पादक कुत्ते हैं" तक निकल गया था! उस समय गुप्त जीकी शान्ति देखने योग्य थी। मानों वे कुछ सुनही नहीं रहे थे, इन पंक्तियोंका लेखक सभामें उपस्थित था। गुप्तजी भी एक सदस्यकी हैसियतसे मौजूद थे। गुप्तजी उस समय चुप मार गये, कुछ नहीं बोले और अपनी स्वाभाविक मुसकानसे बातें करते रहे। किन्तु बादमें मौका पाकर ककरानियाँजीको उनकी त्रुटियाँ समक्षमें मिलकर बतलाईं और उनको लज्जित किया। गुप्तजीने समझाया कि मारवाडी समाजके नेता होनेके नाते आप हमारी आलोचनाके पात्र हैं। आप नेतृत्व या सभापतित्व छोड दीजिये, फिर हम आपको कुछ न कहेंगे। इसका सेठ दुलीचन्दजी पर इतना प्रभाव पडा कि उन्होंने क्षमा मागी और गुप्तजी-की खरी आलोचनाका सिक्का उनके हृदय पर सदाके लिये जम गया।

मेरा व्यक्तिगत रूपसे स्वर्गीय गुप्तजी द्वारा बहुत उपकार हुआ। मैंने हिन्दी लिखना बहुत कुछ उनकी सहायतासे सीखा। म्युनिसिपैलिटी-के कार्योंके प्रति युवावस्थासे ही मेरी दिलचस्पी है। सन् १९०३ में 'म्युनिसिपल महिमा' शीर्षक मैंने 'भारतमित्र' में कई लेख बिना अपना नाम दिये लिखे थे। गुप्तजी मेरे लेखोंको इतना अच्छा सुधार देते थे कि लेख असर करने वाले बन जाते और मुझे उनके संशोधनों से शिक्षा मिलती। एक बात और। मैं बचपनमें आर्यसमाजकी पुस्तकें बहुत पढा करता था। इसलिये मेरा झुकाव अधिकतर उधर ही था। गुप्तजी आर्यसमाजी नहीं,

सनातनधर्मी थे। किन्तु मेरे उस समयके विचारोंके कारण मेरे प्रति उनके स्नेहभावमें कोई अन्तर नहीं आया। यह उनकी उदारता थी। आगे चलकर मेरे विचारोंमें परिवर्तन होगया था।

संवत् १९७५ तदनुसार सन् १९१८ ई० में मेरी "सचित्र ऐतिहासिक लेख" नामकी पुस्तक बाबू महावीरप्रसाद पोद्दारने हिन्दी पुस्तक एजेंसी (कलकत्ता) से प्रकाशित की थी। उसके समर्पणमें मैंने भक्ति पूर्वक लिखा था "मारवाड़ी-समाजके उज्ज्वल-रत्न, वैश्यकुल-भूषण, हिन्दी भाषाके धुरन्धर विद्वान, और भारतमित्रके भूतपूर्व सम्पादक परम श्रद्धास्पद स्वर्गवासी बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी पवित्रात्माको यह पुस्तक उनके वात्सल्यभाजन और अनुरक्त-भक्त द्वारा समर्पित है"। इस पुस्तककी प्राप्ति स्वीकार करते हुए भारत-प्रसिद्ध व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालुजी शर्माने अपने ११-८-१९१८ ई०के अपने पत्रमें मुझे लिखा था—"सबसे उपादेय बात आपने यह की है कि इस कृतिका हिन्दी-साहित्याकाशके निर्मल शशांक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीकी पवित्रात्माको समर्पण किया है। इस कृत्यसे पुस्तिकाका महत्त्व ही केवल नहीं बढ़ा है, किन्तु आपकी हृदयवत्ता और कर्त्तव्यनिष्ठाका भी भान होता है।" अस्तु, आदरणीय गुप्तजीके स्वर्गवासको ४२ वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु उनके गुणोंकी याद ताजा बनी हुई है। न केवल मेरे लिये, बल्कि कलकत्तेके मारवाड़ी समाजके लिये भी उनका नाम सदा स्मरणीय है।

३६

श्रद्धेय गुप्तजी

(बाबू भगवतीप्रसादजी दारूका)

संवत् १९६० में जब मेरी अवस्था १९ वर्षके लगभग थी, तब मैं भारत-मित्रके लेखोंसे प्रभावित होकर एक दिन उसके सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तसे मिलनेके लिये गया और इसके बाद उनके प्रति मेरी श्रद्धा निरन्तर बढ़ती ही गई। उन दिनों भारतमित्रकी बड़ी धूम थी। लोग भारतमित्रमें गुप्तजीके चोजभरे लेख पढ़नेको बड़े उत्सुक रहते थे। सुसंस्कृत अभिरुचिके लोगोंको उनकी अपनी मन पसन्द सामग्री उसमें मिल जाती थी। मुझे हिन्दी लिखनेमें गुप्तजीने ही प्रवृत्त किया था। उनकी सैदव यही इच्छा रहती थी कि अधिकसे अधिक नवयुवक हिन्दी लेखक तैयार हों। जब मैं लेख ले जाता था तो वे उसकी गलतियाँ सुधार कर मेरा उत्साह बढ़ानेके लिये प्रकाशित कर दिया करते थे। उन्हीं दिनों मैंने मारवाड़ी बोलीमें एक "वृद्ध-विवाह-नाटक" लिखा था। उत्साह वर्द्धक शब्दों में उन्हों ने भारतमिन्त्रमें उसकी समालोचना करनेकी कृपा की थी, जिससे उत्साहित होकर मैंने कई पोथियाँ लिखीं।

गुप्तजी मिलनसार और खुश मिजाज तो थे ही, साथ ही लोभ-रहित भी एक ही थे। मेरा एक निजी अनुभव है। एक स्थानीय प्रसिद्ध फार्मके कार्यकर्त्ता महाशयने एकवार मुझसे कहा था कि गुप्तजीको किसी दिन अपने यहाँ लाकर मिलाइये। मैंने यह प्रस्ताव गुप्तजीके सामने रक्खा उत्तरमें उन्होंने कहा—"बड़े आदमियोंकी हाजिरी भरना मेरे सिद्धान्तके

सनातनधर्मी थे। किन्तु मेरे उस समयके विचारोंके कारण मेरे प्रति उनके स्नेहभावमें कोई अन्तर नहीं आया। यह उनकी उदारता थी। आगे चलकर मेरे विचारोंमें परिवर्तन होगया था।

संवत् १९७५ तदनुसार सन् १९१८ ई० में मेरी "सचित्र ऐतिहासिक लेख" नामकी पुस्तक बाबू महाबीरप्रसाद पोद्दारने हिन्दी पुस्तक एजेंसी (कलकत्ता) से प्रकाशित की थी। उसके समर्पणमें मैंने भक्ति पूर्वक लिखा था "मारवाड़ी-समाजके उज्ज्वल-रत्न, वैश्यकुल-भूषण, हिन्दी भाषाके धुरन्धर विद्वान्, और भारतमित्रके भूतपूर्व सम्पादक परम श्रद्धास्पद स्वर्गवासी बाबू बालमुकुन्द गुप्तकी पवित्रात्माको यह पुस्तक उनके वात्सल्यभाजन और अनुरक्त-भक्त द्वारा समर्पित है"। इस पुस्तककी प्राप्ति स्वीकार करते हुए भारत-प्रसिद्ध व्याख्यानवाचस्पति पं० दीनदयालुजी शर्माने अपने ११-८-१९१८ ई०के अपने पत्रमें मुझे लिखा था—"सबसे उपादेय बात आपने यह की है कि इस कृतिका हिन्दी-साहित्याकाशके निर्मल शशांक स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्तजीकी पवित्रात्माको समर्पण किया है। इस कृत्यसे पुस्तिकाका महत्त्व ही केवल नहीं बढ़ा है, किन्तु आपकी हृदयवत्ता और कर्त्तव्यनिष्ठाका भी भान होता है।" अस्तु, आदरणीय गुप्तजीके स्वर्गवासको ४२ वर्ष बीत चुके हैं, किन्तु उनके गुणोंकी याद ताजा बनी हुई है। न केवल मेरे लिये, बल्कि कलकत्तेके मारवाड़ी समाजके लिये भी उनका नाम सदा स्मरणीय है।

३६

श्रद्धेय गुप्तजी

(बाबू भगवतीप्रसादजी दारूका)

सं वत् १९६० में जब मेरी अवस्था १९ वर्षके लगभग थी, तब मैं भारत-मित्रके लेखोंसे प्रभावित होकर एक दिन उसके सम्पादक बाबू बालमुकुन्दजी गुप्तसे मिलनेके लिये गया और इसके बाद उनके प्रति मेरी श्रद्धा निरन्तर बढ़ती ही गई। उन दिनों भारतमित्रकी बड़ी धूम थी। लोग भारतमित्रमें गुप्तजीके चोजभरे लेख पढ़नेको बड़े उत्सुक रहते थे। सुसंस्कृत अभिरुचिके लोगोंको उनकी अपनी मन पसन्द सामग्री उसमें मिल जाती थी। मुझे हिन्दी लिखनेमें गुप्तजीने ही प्रवृत्त किया था। उनकी सदैव यही इच्छा रहती थी कि अधिकसे अधिक नवयुवक हिन्दी लेखक तैयार हों। जब मैं लेख ले जाता था तो वे उसकी गलतियाँ सुधार कर मेरा उत्साह बढ़ानेके लिये प्रकाशित कर दिया करते थे। उन्हीं दिनों मैंने मारवाड़ी बोलीमें एक "वृद्ध-विवाह-नाटक" लिखा था। उत्साह वर्द्धक शब्दों में उन्हों ने भारतमित्रमें उसकी समालोचना करनेकी कृपा की थी, जिससे उत्साहित होकर मैंने कई पोथियाँ लिखीं।

गुप्तजी मिलनसार और खुश मिजाज तो थे ही, साथ ही लोभ-रहित भी एक ही थे। मेरा एक निजी अनुभव है। एक स्थानीय प्रसिद्ध फार्मके कार्यकर्त्ता महाशयने एकबार मुझसे कहाथा कि गुप्तजीको किसी दिन अपने यहाँ लाकर मिलाइये। मैंने यह प्रस्ताव गुप्तजीके सामने रक्खा उत्तरमें उन्होंने कहा—"बड़े आदमियोंकी हाज़िरी भरना मेरे सिद्धान्तके

विपरीत है।" मैंने उनसे चलनेके लिये बहुत आग्रह किया, किन्तु
राजी न हुए। मारवाड़ी समाजके लिये सभा-सोसाइटियोंका वा
आरम्भिक युग था। समाज-सेवा और कुरीति-संशोधनके आकांक्षियों
को उनसे उस समय बड़ा प्रोत्साहन मिलता था। श्रीविशुद्धानन्द सरस्वत
विद्यालयके वे जन्मदाताओंमेंसे थे। स्त्रीशिक्षाके पूर्ण पक्षपाती होने
साथ विलायती फैशन और विलासिताके वे पूर्ण विरोधी थे
अपने मित्र प० शम्भुरामजी पुजारी आदिको स्थानीय श्रीसावित्र
पाठशालाकी स्थापनाके लिये प्रबन्धादि करनेको उत्साह दिलाने वालों
गुप्तीजी मुख्य थे। गुप्तजीके समयमें भारतमित्रके निकलनेके दिन
को लोग प्रतीक्षा किया करते थे। यह करामात गुप्तजीकी लेखनीमें
थी। आजके जमानेमें पत्रोंका प्रचार करना सहज है, क्योंकि जन
पढ़ने-लिखनेमें बहुत आगे बढ़ गई है और समाचारपत्रके प्रति रु
उत्पन्न होगई है। परन्तु उस जमानेमें प्रेस और पत्रों चलाना
खीर समझा जाता था। उस समय गुप्तजीने अपनी योग्यता अ
पुरुषार्थसे भारतमित्रको ऐसे सुन्दर ढंगसे चमकाया कि देखने
दङ्ग रह गये। उन दिनों हिन्दीके दो ही साप्ताहिक पत्र छप पढ़े
एक भारतमित्र (गुप्तजी द्वारा सम्पादित) और दूसरा श्री वेंकटे
समाचार,—जिसके सम्पादक पण्डित लज्जारामजी मेहता। मुझे
बात का गौरव है कि गुप्तजीके कृपापात्रोंमें मैं भी एक था।
श्रद्धास्पद थे।

३७

पितृ-तर्पण

(पण्डित रमावल्लभजी चतुर्वेदी)

बाबू बालमुकुन्दजी गुप्त और मेरे पू० पिता स्वर्गीय पं० प्रसादजी चतुर्वेदीमें इतना घनिष्ठ प्रेम था कि, सभा-सम्मेलन शोंमें भी दोनों साथ-साथ जाते थे। गुप्तजी और पिताजी- और छोटे भाईके जैसी थी। गुप्तजी पिताजीसे उमरमें ताजीसे सुना है कि, साहित्य जगत्में वह जो कुछ हो सके, का बहुत कुछ हाथ था। पिताजी हिन्दी दुनियामें हास्य- मसे प्रसिद्ध हुए। गुप्तजी भी बहुत विनोदी और हास्यप्रिय बातचीतमें भी वह ऐसी चुटकियां लेते थे कि, सुननेवालोंको आता था। गुप्तजीकी ऐसी अनेक चुटकियां पिताजीसे सौभाग्य मिला है। गुप्तजीकी रचनाओंमें उनकी विनोद- हास्यरस पर अधिकारका प्रमाण रसिकजन पा सकते हैं। अपने परिचयमें कहा करते थे—

पितृभाषाके बिगाड़क समल एफ० ए० फिस्स,
जगन्नाथ परसाद बेदी बीस कम चौबिस्स,

र द्विवेदीजी महाराजने सरस्वतीमें स्व० बाबू श्यामसुन्दर त्रके नीचे छापा था—

मातृभाषाके प्रचारक विमल बी० ए० पास।
सौम्यशील निधान बाबू श्यामसुन्दर दास॥

र व्यंग करते हुए आदरणीय गुप्तजीने ऊपर वाली तुकबन्दी

आज तो हम स्वाधीन हैं। लेकिन एक समय ऐसा था कि, भारती स्वाधीनताकी बात तो दूर, अपने अभाव-अभियोग कहनेमें भी आफत पड़ सकते थे। लेकिन उस आतंकके समय भी गुप्तजीने अंगरेजी राज और उसके अफसरोंकी जैसी आलोचना की है, वह उनके उत्क स्वाधीनता-प्रेमका एक ज्वलन्त उदाहरण है। हमारी आजकी स्वाधीनत क्या इन तपस्वियोंकी साधनाका परिणाम नहीं है ?

गुप्तजीकी याद मुझे नहीं है। लेकिन भारतमित्र-कार्यालयके ऊपर हिस्सेमें हमलोग और गुप्तजीके परिवारके लोग रहते थे, दोनों परि वारोंमें कितना प्रेम था, उसकी याद मुझे है। गुप्तजीके पुत्र श्रीनवल किशोरजीको हम सब "नवल भय्या" कहते हैं। वह पिताजीक "चाचाजी" कहते थे और उनका बड़ा आदर करते थे। मुझे याद कि ; गुप्तजीके कनिष्ठ पुत्र श्रीपरमेश्वरीलालकी और मेरी तो खूब ब पटती थी। कैसे थे वह मधुर दिन।

गुप्तजी मेरे अपने थे—ताऊ थे। उनकी प्रशस्ति मैं लिखूं, य भारतीय परम्पराके अनुकूल नहीं है। परन्तु पूज्य गुरुजनोंके चरणों श्रद्धांजलि देना हमारी संस्कृति है। उसी नाते यह पितृ-तर्पण है

हिन्दीको 'हिन्दुस्तानी' के संकटसे छुटकारासा मिल गया है। लेकि अभी उसपर एक दूसरा संकट अत्यन्त क्लिष्टताका आ गया है 'हिन्दुस्तानी' रोगसे वह 'हिन्दी' शेख शादीकी भाषा बनती तो इस क्लिष्टता सर्वसाधारणके समझने योग्य न रह जायगी। भगवान और हिन्द हितैषी इन महारोगोंसे हिन्दीकी रक्षा करें। हिन्दीको हिन्दी ही रहने दें ऐसी सरल मुहावरेदार और सजीव हिन्दीकी शैली गुप्तजी छोड़ गये हैं। हिन्दी वाले उनका अनुकरण करें। "हिन्दी शब्द संपदाहीन" नहीं है उसकी शब्द-संपत्ति बड़ी है, जहां बहुत सी और बातोंके लिये गुप्तजी का अहसान हिन्दीवालोंको मानना चाहिये; वहां, हिन्दीकी शैल